जीवन-प्रभात

गांधी-परिवार तथा दक्षिण अफ्रीका में
गांधीजी के अभूतपूर्व प्रयोगों तथा संघर्ष की
ज्ञानवर्द्धक, शिक्षाप्रद और रोचक कहानी

•

लेखक
प्रभुदास गांधी
भूमिका
काका साहेब कालेलकर

१९८०
सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशकीय

गाधीजी के जीवन तथा कार्य पर जितनी पुस्तके लिखी गई है, उतनी ससार के शायद ही किसी महापुरुष के विषय मे लिखी गई हो। फिर भी प्रस्तुत पुस्तक गाधी-साहित्य मे अपना विशेष स्थान रखती है। इसके लेखक गाधीजी के कुटुम्बी-जन ही नही है, अपितु बचपन से ही गाधीजी की छत्र-छाया मे उनका लालन-पालन हुआ है। गाधीजी के पूर्वज कैसे थे, कौन थे, उनसे गाधीजी को विरासत मे क्या-क्या गुण मिले, गाधीजी के अद्भुत जीवन-प्रयोगों तथा सत्याग्रह का लोगो पर क्या प्रभाव पडता था, उनके परिवार तथा आसपास के लोग उनसे किस प्रकार प्रभावित होते थे, उनके प्रत्येक कार्य मे व्यवस्था, त्याग, चारित्र्य आदि का कितना आग्रह रहता था, किस प्रकार वे बराबर नये-नये परीक्षण करते रहते थे, उनके दैनिक जीवन का कार्यक्रम क्या था, आदि-आदि बातो पर लेखक ने बडे ही विशद, प्रामाणिक तथा रोचक ढग से प्रकाश डाला है।

दक्षिण अफ्रीका मे गाधीजी ने जितने प्रयोग किये थे, छोटी अवस्था होते हुए भी लेखक ने उन्हे अपनी आखो देखा था और उनमे भाग लिया था। यही कारण है कि वह इतने अधिक और इतने सूक्ष्म विवरण दे सके है।

गाधी-परिवार तथा गाधीजी के प्रयोगो के विषय मे हिन्दी मे इतनी विपुल और महत्वपूर्ण सामग्री पहली बार पुस्तकाकार प्रकाशित हो रही है। अनेक घटनाए तो प्रथम बार प्रकाश मे आ रही है। काका साहब के शब्दो मे "गाधी-युग के इतिहासकारो मे और गाधीजी के चरित्र-लेखको मे" निस्सदेह "लेखक ने इस पुस्तक द्वारा चिरस्थायी स्थान प्राप्त कर लिया है," कारण कि इसमे मौलिक, आध्यात्मिक तथा प्रामाणिक सामग्री कूट-कूट कर भरी है।

हम लेखक के आभारी है कि उन्होने हिन्दी के पाठको को इतनी मूल्यवान् सामग्री प्रदान की है। हमे विश्वास है कि हिन्दी के पाठक इस पुस्तक को मनोयोगपूर्वक पढेगे और इससे लाभ उठावेगे।

—मंत्री

आत्म-निवेदन

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात् पुण्यकर्मणाम् ।
तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः ।
(—गीता अ० १८।७१,७७)

"जो कोई यह बात ध्यान देकर सुनेगा और इसके प्रति चिढ़ न रखकर सरलता के साथ इसे अपने हृदय की गहराई में उतारेगा वह पुण्यकर्मी होगा और स्वतंत्रता को प्राप्त करके कल्याणकारी समाज में जा पहुंचेगा।. .फिर, सच बात तो यह है कि हरि के उस अद्भुत स्वरूप की ज्यों-ज्यों मुझे याद आती जाती है त्यों-त्यों मेरा अचरज बढ़ता जाता है और हृदय गद्‌गद हो उठता है।"

भगवद्‌गीता के अत मे कही गई यह वात पूज्य गाधीजी की जीवन-चर्या के वारे मे भी अक्षरश सत्य है। कहा जा सकता है कि जबसे मैंने इस दुनिया मे आकर अपनी आखे खोली, प्राय. तभी से गाधीजी का विराट् स्वरूप मेरी आखो को चकित करता रहा। ज्यो-ज्यो मेरी उम्र वढती गई, मुझे उनके और उनके जमाने की पुरानी स्मृतियो के वारे मे वार-वार वाते करने मे आनन्द आने लगा। पूज्य गाधीजी ने 'रौलेट एक्ट' के समय मे जव सत्याग्रह-आन्दोलन छेडा और सन् '२२ मे जव उनको यरवडा के 'कृष्ण-मन्दिर' मे पहुचाया गया तव सावरमती आश्रम मे एक गंभीर वातावरण छा गया। गाधीजी ने, अपने घर से ही श्रीगणेश करने के आग्रह के अनुसार, सत्याग्रहाश्रम के विद्यार्थियो को ही अपनी पढाई स्थगित करने के लिए समझाया और उन्हे स्वराज्य की लडाई मे झोक दिया। हम लोगो का अधिकतर समय खादीकी उपासना और अछूतो के साथ मिलने-जुलने मे वीतता था। आश्रम की राष्ट्रीयशाला के आचार्य काका-साहव कालेलकर की प्रेरणा से, अपने स्वाध्याय को ताजा रखने के लिए 'मधपूडो' (मधुमक्खी का छत्ता) नाम से विद्यार्थियो का एक द्विमासिक हस्तलिखित पत्र चलाया जा रहा था। उसके सपादन का भार मुझपर 'ला। गया था।

मुझमे यह साहस नही था कि मै सदुपदेश से भरे हुए लेख लिखता। फिर इतिहास, विज्ञान, साहित्य या अन्य किसी प्रकार के शास्त्र के साथ मेरा सक्रिय सबध भी न था। सोचते-सोचते मुझे फीनिक्स की बाते लिखने का विचार सूझा।

यह अनुभव मुझे पहले ही हो चुका था कि बापूजी की छोटी-मोटी बाते सुनने मे सभी को आनन्द आता है। हमारे आश्रम का प्रारम्भ कैसा था, बापूजी के इर्दगिर्द कैसे-कैसे व्यक्ति रहते थे, बापूजी क्या करते थे, किस प्रकार पढाते थे, हमको जेलयात्री बनने के लिए किस प्रकार तैयार कर रहे थे—ये सारी बाते लोग मुझसे मानो कहानी के आह्लाद से सुना करते थे। बार-बार के इस अनुभव के कारण मैने फीनिक्स की बातो को लिखना शुरू कर दिया।

उस समय तक गाधीजी का 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' प्रकाशित नही हुआ था। उनकी आत्मकथा भी नही लिखी गई थी। इसलिए मै जो कुछ अव्यवस्थित और अधूरी बाते लिखता था वह भी लोगों को पसन्द आती थी और 'मधपूडो' पाठको के हाथ से लौटकर मेरे हाथ मे आता ही नही था। फिर तो मैने नि:सकोच होकर, एक इतिहासकार की शान से लिखना प्रारम्भ कर दिया और देखते-देखते छोटा-सा 'फीनिक्स-पुराण' तैयार हो गया। जिस समय की बाते इसमें मैने दी है उस समय मेरी उम्र बारह वर्ष से भी कम की थी।

इस पुस्तक मे मेरा उद्देश्य अपनी आत्मकथा लिखने का नही है। आत्मकथा लिखू ऐसी कोई योग्यता भी मुझमे नही है। फिर भी सारी कथा मैने अपने को ही केन्द्र मे रखकर लिखी है। अन्य प्रकार से लिखना सभव भी नही हो सकता था। मनुष्य की चार से लेकर बारह वर्ष तक की उम्र ही ऐसी होती है कि वह सारी दुनिया को अपने बालगज से ही नापता है, पहचानता है और उसका अनुभव करता है। मेरे पास उस समय इतिहास की दृष्टि नही थी। मुझे होश भी न था कि जिस वातावरण मे मेरा लालन-पालन हो रहा है, वह संसार का कोई अनोखा वातावरण है। यह कल्पना ही मुझे कैसे हो सकती थी कि जिनके कधे पर सवार होने का अवसर मुझे मिल रहा है वे हमारे घर के मोहनदासकाका ससार के एक अद्वितीय व्यक्ति माने जायेगे। इसलिए चाहने पर भी अपनी स्मृतियो को सवार-सवार कर लिखे हुए इन लेखो को मै पूज्य बापूजी के या अपने मगनकाका के जीवन-चरित के रूप मे पेश नही कर सकता। आश्रम के इतिहास के रूप मे या दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के रूप मे मै यह सब लिख

ही नही सकता था। हा, बापूजी के शिक्षण-प्रयोगो के इतिहास के रूप मे मै इसे लिखने का प्रयास कर सकता था। पर मुझे उचित यही लगा कि मै इसे अपने बालजीवन के सस्मरणों के रूप मे लिख डालू। ऐसा करने मे ही कम-से-कम अभिमान और अधिक-से-अधिक सच्ची बात इसमे आ सकती थी।

असल मे ये प्रकरण आश्रमवासी पाठको के लिए लिखे गए थे, इसलिए इनमे घरेलू बातो का समावेश बहुत हुआ है। अपने आश्रम को अपना घर समझकर बेखटके चाहे-जैसी घरेलू बातो को बताने मे सकोच नही होता। यदि इसमे कुछ बाते अशोभन जान पडे या विनय और शिष्टता मे कुछ अधूरापन मालूम दे तो पाठको से मै प्रार्थना करता हू कि वे मुझे क्षमा करे। गाधी-परिवार ससार का अनोखा और अपूर्व परिवार है, सत्याग्रह-आश्रम या फीनिक्स-आश्रम, जहा सत्याग्रहाश्रम की प्रथम नीव डाली गई, पूर्णतया आदर्श सस्था थी, ऐसा मैने कभी नही माना। फिर उसका आधार लेकर आत्म-प्रशसा करने की मनोवृत्ति को अवकाश ही कहा रह जाता है?

इस पुस्तक मे हिन्दी के पाठको को बहुत-सी ऐसी सामग्री मिलेगी जो गाधीजी के आगे के जीवन की आधारशिला थी। अपनी बाल-स्मृति के आधार पर जिन प्रसगो को मैने चित्रित किया है उनकी प्रामाणिकता के लिए गाधीजी के पत्रो का सहारा लिया है और अपने पिता की डायरी आदि सामग्री की पूरी सहायता ली है। गाधी-परिवार का इतिहास भी इस पुस्तक के प्रारम्भ मे आ गया है।

हिन्दी मे यह सामग्री प्रथम बार पुस्तकाकार प्रकाशित हो रही है। पाठको को इससे लाभ हुआ तो मै अपने परिश्रम को सफल समझूगा।

हिन्दी मे इस सामग्री को पहले 'हिन्दुस्तान' मे निकालते समय भाई श्री सीताचरण दीक्षित तथा बाद मे पुस्तकाकार करते समय भाई श्री यशपाल जैन ने जो परिश्रम किया उसके लिए मै उनका अत्यत आभारी हू।

—प्रभुदास गांधी

प्रस्तावना

जिस समय यूरोप मे पहला विश्वयुद्ध फैला, उन्ही दिनो पूज्य गाधीजी ने दक्षिण अफ्रीका मे उज्ज्वल विजय के साथ अपना कार्य पूरा किया। बाद मे वे अपने साथियो को भारत भेज कर स्वय श्री गोखले से मिलने के लिए इग्लैड चले गए। गाधीजी की वह 'फीनिक्स-मडली' दीनबधु एन्ड्रयूज की इच्छा के अनुसार गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के शातिनिकेतन मे रहने चली गई। मै भी उसी समय बगाल में चलते हुए राष्ट्रीय शिक्षा के उस महत्वपूर्ण प्रयोग को निकटता से एव सतह के भीतर से देखने-जाचने के लिए शातिनिकेतन पहुच गया।

शातिनिकेतन का अर्थ था भारतीय सस्कृति के आचार्य श्री रवीन्द्रनाथ द्वारा सचालित ब्रह्मचर्याश्रम। दूसरी ओर 'फीनिक्स-मंडली' का अर्थ था कर्मवीर गाधी द्वारा दक्षिण अफ्रीका में स्थापित किये हुए एक अभिनव ब्रह्मचर्याश्रम का भारत मे लाया हुआ पौधा। इस प्रकार जब एक आश्रम दूसरे आश्रम के घर अतिथि के रूप मे रहने गया था तभी मैं भी वहा जा पहुचा। 'फीनिक्स-मडली' के लोग दुपहर का भोजन शातिनिकेतन के भोजनालय में करते थे और शाम के समय सोडा या खमीर के बिना बनाई हुई ईंट-जैसी डबल रोटी कुछ फल-मेवे के साथ खा लेते थे। दोनो ओर के व्यवस्थापको की सम्मति प्राप्त करके मै दोनो में शामिल हो गया। 'फीनिक्स-मडली' के साथ मेरा सबध अधिक घनिष्ठ हो गया। उसके साथ उसकी शाम की प्रार्थना मे शामिल होता और प्रात काल की प्रार्थना का आरभ तो मैने ही किया। शाम की प्रार्थना के बाद उन लोगो को मै थोड़ा-थोडा करके अपने हिमालय के प्रवास की बाते सुनाने लगा। उसके बाद तपोधन उग्रशासन, निष्ठावीर मगनलालभाई गाधी के मुख से दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की लडाई के और फीनिक्स-आश्रम के विविध रसो से भरे हुए जीवन के बारे मे खत्म न होने वाली बाते ब्यौरे से सुनता रहा। उस समय वे सारी घटनाए बिलकुल ताजी ही थी और उस अपूर्व लडाई मे तथा उस आश्रम मे सहयोग देने वाले, अर्थात् उस प्रकार से नवभारत के नये इतिहास का निर्माण करने वाले लोगो के बीच रह कर, उन्ही के मुह से, वह सारी कथा मैने सुनी।

मेहमान-आश्रम चलाने का भार श्री मगनलालभाई पर था। उनकी सहायता के लिए मगनभाई पटेल मास्टर भी थे। मणिलाल, रामदास, देवदास तीनो भाई वहा थे। प्रभुदास, कृष्णदास और केशू भी थे। कुछ दिन के लिए श्री जमनादास गाधी भी आये थे। शिवपूजन, छोटम, भैयम, श्री थबी नायडू के पुत्र आदि अनेक बालवीर उस मडली मे थे। प्रतिदिन सवेरे हम लोग खोदने का काम करने जाया करते थे। मेरे शामिल होने के कुछ दिन बाद इस मडली ने एक छोटी-सी टेकडी की मिट्टी खोद कर

पास की एक तलैया को पुरा देने का काम उठाया। हमारे हाथ से वह काम पूरा होगा या नही और होगा तो कब होगा, इस बात की हमे कोई चिन्ता न थी। अनासक्त-वृत्ति से नित्य सवेरे खुदाई का काम पूरा करने के बाद ही हम लोग नाश्ता करते थे।

इस प्रकार के वातावरण मे श्री मगनलालभाई और अन्य फीनिक्स-वासियो के साथ मेरा परिचय हुआ। मेरी बातो मे सबको रस आता था। उनके श्रमजीवन मे मैं बिलकुल घुलमिल गया था। उनमे भी छोटा प्रभुदास मेरी ओर अधिक आकर्पित हुआ, ऐसा कहा जा सकता है।

पूज्य गाधीजी जब इग्लैड से लौटकर स्वदेश पधारे और उन्होने शाति-निकेतन तथा ब्रह्मदेश की यात्रा भी कर ली, तब अपने फीनिक्स-आश्रम को वे शातिनिकेतन से ले गए, पहले हरिद्वार के कुभ मेले मे और वहा से अहमदाबाद। मै भी शातिनिकेतन छोड़ कर महाराष्ट्र लौट गया और बाद मे बडौदा जाकर ग्रामसेवा का काम करने लगा।

किन्तु जो सबध शातिनिकेतन मे स्थापित हो गया था वह टूटने वाला नही था। वह मुझे गाधीजी के सत्याग्रह-आश्रम मे ले गया। पहले हम कोचरब मे रहे, इसके बाद साबरमती के तट पर वाडज के पास स्थायी रूप से सत्याग्रहाश्रम की स्थापना हो गई। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि 'जीवन-प्रभात' मे जहा पर प्रभुदास के और फीनिक्स-आश्रम के जीवन की कथा समाप्त होती है प्राय. वहा से उनका और मेरा सबध शुरू होता है।

सत्याग्रह-आश्रम मे गाधीजी ने बालको की शिक्षा पर अधिक महत्व देकर आश्रम के अन्तर्गत ही एक स्वतन्त्र पाठशाला स्थापित की थी। उस पाठशाला मे थोडे दिन तक श्री छगनलालभाई गाधी ने भी काम किया। राष्ट्रीयशाला मे विद्यार्थियो का हस्तलिखित मासिक पत्र तो होना ही चाहिए—हम लोगो ने उसका नाम 'मधपूडो'—मधुमक्खी का छत्ता—रखा। उपनिपद की कथा पढने वाले हम लोग 'मधपूडो' के सपादको को 'मधुकर राजा' कहने लगे। प्रभुदास वैसा ही एक राजा बना। उसको लेख लिख देना जैसे हम शिक्षक लोगो का काम था, वैसे ही विपय सुझा देने का काम भी हमारा ही था। मैने प्रभुदास से कहा, "दक्षिण अफ्रीका के आश्रम-जीवन का वर्णन क्रमश क्यो नही लिखते?" आत्मविश्वास कम होने के कारण प्रभुदास ने इसके लिखने मे शका प्रदर्शित की, "क्या मुझसे यह सब लिखा जा सकेगा?" मैने उससे कहा, "इसमे क्या बात है? वह सब—सस्मृत्य-संस्मृत्य, याद कर-करके लिख डालो।" उसने वह विचार अपना लिया और 'तच्च सस्मृत्य-सस्मृत्य' के शीर्षक से एक लेख-माला मे

अपने वाल-जीवन के सस्मरण लिखना आरंभ कर दिया। वहुत-कुछ लिख जाने पर उसने उन सव लेखो को अपने वालसखा देवदास को दिखाया। आश्रम के शिक्षक और विद्यार्थीगण तो यह सव वडे चाव से पढते ही थे, परन्तु गाधी-कुटुव के वहुत-से लोग भी उसे ध्यान से पढने लगे। कुटुव की मानमर्यादा के आग्रही कुछ पुराने विचार के स्वजनो को यह अखरा। "प्रभुदास यह क्या कर रहा है? अपने कुटुव की घरेलू—गोपनीय—वाते इस तरह प्रकाशित की जाती है क्या?" परन्तु अन्तर-वाह्य का भेद न मानने वाले गाधीजी के हाथो मे पले और शिक्षा पाये प्रभुदास ने साहस के साथ वहुत-काफी लिख ही डाला।

इस पूरी-की-पूरी लेखमाला मे तवूरे के सुर की भाति एक वात सतत सुनाई देती है। विलकुल वचपन मे ही प्रभुदास से कहा गया था कि वह निरा वुद्धू है। होशियारी उसमे कुछ भी नही है। देवदास-जैसी कुशलता प्रभुदास मे भले न हो, छोटे कचा (कृष्णदास) के वरावर चातुर्य भी उसके पास न हो, लेकिन मैने तो उसको वुद्धि-विहीन न पाया है और न माना है। किन्तु घर के वडो ने यद्यपि अत्यंत सद्वुद्धि से प्रेरित होकर उसके ऊपर जो 'आत्मनि अप्रत्यय' ठोक-ठोक कर जमा दिया वह उसके स्वभाव का एक अग ही वन गया और विद्या-निष्ठा, कर्म-निष्ठा, ध्येय-निष्ठा आदि समर्थ सद्गुणो का अस्तित्व उसके पास होते हुए भी केवल आत्मविश्वास के अभाव के कारण उसके जीवन का सारा भविष्य मानो मुरझा गया।

इस पुस्तक में छोटी-मोटी वातो की जो भरपूर वारीकिया दिखाई देती है उनमे से वहुत-कुछ श्री मगनलालभाई के मुंह से मैने सुन रखी है। गाधी-परिवार के कई व्यक्तियो ने भी इन वातो को पढा है। इसलिए इनकी यथार्थता के वारे मे सदेह के लिए कोई स्थान नही रह जाता। जो दिमाग इतनी सारी वातो को व वारीकियो को सग्रहीत और समर्थता से प्रतिपादित कर सकता है उसे वुद्धू वताना अनर्थ ही कहलायेगा।

चि० प्रभुदास खादी-विद्या और कला के एक समर्थ आचार्य है। खादी का तत्त्वज्ञान, उसका अर्थशास्त्र, उसकी जड मे निहित समाजशास्त्र आदि सवके वे ज्ञाता है ही, इसके अतिरिक्त खादी के यन्त्रशास्त्र मे भी उन्होने नई-नई खोजे की है। पैरो से गति देकर दोनो हाथो से सूत कातने वाले चर्खे की खोज प्रभुदास की ही है। उन्होने खादी-विद्या के आद्याचार्य श्री मगनलालभाई के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करने के लिए उस चर्खे को 'मगन-चर्खे' का नाम दिया है।

गाधी-परिवार के लोग जिस प्रकार दक्षिण अफ्रीका मे जाकर वस गए और वहा पर जैसे उन्होने लोक-सेवा की, उसी प्रकार प्रभुदास ने भी

हिमालय मे अलमोडे की ओर जाकर वहा पर खादी का काम किया और उत्तरप्रदेश मे अपना विवाह हो जाने के बाद उसी प्रात की सेवा करने के हेतु से वही बस गए। उस प्रदेश मे प्राय. चौथाई शताब्दी तक उन्होंने खादी व ग्राम-सेवा का काम किया। देश की स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के बाद जब उत्तर प्रदेश की सरकार ने प्रयाग मे खादी विद्यापीठ की स्थापना की तब प्रभुदास को वहा के मुख्य आचार्य के रूप मे नियुक्त किया और दो वर्ष मे वहा से कई खादी-विद्यार्थी शिक्षा पाकर उत्तीर्ण हुए। इसके बाद नव-सगठित सौराष्ट्र मे ग्रामोद्योग और खादी-विद्या के प्रशिक्षण के लिए उनको आमन्त्रित किया गया और पोरबन्दर मे गाधीजी के जन्मस्थान पर बनाये गए उस कीर्ति मन्दिर का केन्द्र सुगठित और सचालित करने का उत्तर-दायित्व उन्हे सौपा गया, जिसका उद्देश्य बापू के जीवन-कार्य व सर्वोदय समाज की प्रवृत्तियो का भली-भाति प्रदर्शन करना है। अब वह पुन उत्तर प्रदेश मे मुरादाबाद जिले के गावो मे खादी और ग्रामोद्योग की नीव पर अहिंसक और शोषण-विहीन समाज के विकास का कार्य 'अखिल भारत खादी ग्रामोद्योग मडल' की ओर से कर रहे है।

बहुत लोगो को इस बात का पता न होगा कि जब चम्पारन मे गाधीजी पहली बार गिरफ्तार किये गए तब उन्होने वहा के देहातो मे जाकर किसानो के पास अपना सदेश पहुचाने का जिम्मेदारी भरा काम बालक प्रभुदास को ही सौंपने का निश्चय किया था।

फिर भी इस सपूर्ण पुस्तक मे प्रभुदास का यह ध्रुवपद हमे लगातार सुनाई देता है कि "मै बुद्धू हू, मै जड हूं, दूसरो के जैसा होशियार नही हू।" और उनकी लेखनी इतनी समर्थ है कि क्षणभर के लिए हमे भी प्रतीत होता है कि "उनकी यह बात सही होगी," परन्तु उनकी वर्णनशक्ति की सामर्थ्य देखने पर विश्वास हो जाता है कि वह कोई मामूली साहित्यकार नही है।

सारी पुस्तक में प्रभुदास के मन की बापूभक्ति अखड रूप मे दीप्तिमान है। साथ-ही-साथ स्वर्गस्थ मगनलालभाई के प्रति उनका आदरभाव भी उतना ही स्पष्ट दीख पडता है। दोनो सिरे के मील-पत्थरो को देखकर जैसे हम बीच का अन्तर नाप लेते है, वैसे ही इसे पढ कर खयाल हो जाता है कि श्री मगनलालभाई ने अपने स्वभाव पर विजय पाने के लिए अपने अंतर मे कितना भयानक युद्ध चालू रखा होगा और उन्होंने उसमे कैसी अद्भुत सफलता पाई। श्री मगनलालभाई के बारे मे लिखते हुए श्री चद्र-शकर शुक्ल ने उनको 'उग्रशासन' बताया है। यह विशेषण सभी बातो मे उनके अनुरूप ही है। अखड जागरूक, अखड दक्ष और एकाग्र निष्ठावान मगनलालभाई के तप के कारण ही सत्याग्रह-आश्रम विकसित हो पाया।

मगनलालभाई का जब देहान्त हो गया तब बापूजी ने उनके घर मे ही बैठ कर लिखा था, "उसकी विधवा घर के अन्दर सिसक-सिसक कर रो रही है। उसे क्या पता कि सचमुच तो मैं ही विधुर बन गया हू।"

श्री मगनलालभाई का एक छोटा-सा जीवन-चरित्र प्रकाशित हुआ है, किन्तु यथार्थ रूप मे उनके जीवन का सही-सही चित्रण तो प्रभुदास की इस पुस्तक मे ही हमको मिलता है। नि.सदेह मगनलालभाई बापूजी के हनुमान थे। जो कुछ बापूजी ने करना चाहा वह सब मगनलालभाई ने कर दिखाया।

गांधीजी ने 'सत्याग्रह-आश्रम का इतिहास' मे राष्ट्रीय शिक्षा के लिए जिन सिद्धान्तो को निष्कर्ष के रूप मे बताया है, उसी का वातावरण जान मे या अनजान मे प्रभुदास ने अपने इस 'जीवन-प्रभात' के अन्दर तादृश रूप से चित्रित किया है।

गाधीजी ने स्वय 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' लिखा है। वहा की जेल के अनुभव लिखे है। उनकी आत्मकथा मे भी उस समय का इतिहास मिल जाता है। फीनिक्स-आश्रम का बोझ कुछ अश मे उठाने वाले श्री रावजीभाई पटेल ने भी 'गाधीजी की साधना' और 'जीवनना झरणा' नामक दो पुस्तको मे पर्याप्त सामग्री दी है और वह सब बहुत प्रभावोत्पादक है। फिर भी कहना पडेगा कि उन सब पुस्तको मे कुछ बाते छूट गई थी, जो प्रभुदास ने अपने 'जीवन-प्रभात' मे दी है। हमे यह महसूस हुए बिना नही रहता कि कुछ बाते प्रभुदास ही हमे दे सकते थे। प्रभुदास ने इस पुस्तक को लिखकर गाधी-युग के इतिहासकारो व गाधी-जीवन के चरित्र-लेखको मे सदा के लिए स्थान पाया है, क्योकि इसमे मौलिक, प्रामाणिक और आध्यात्मिक सामग्री कूट-कूट कर भरी हुई है।

गाधीजी के पुरुषार्थ का इतिहास इस पुस्तक मे होने के कारण इसका महत्त्व है ही, किन्तु केवल साहित्य के रूप मे भी इस पुस्तक ने उत्तम आदर्श पेश किया है।

गाधी-परिवार का आवश्यक इतिहास इसमे सुन्दर तरीके से दिया गया है और इस प्रकार गाधीजी की आत्मकथा मे जो न्यूनता रह गई थी वह इसमे पूरी की गई है।

भूगोल की बाते और प्रकृति के साथ घासपात, फल-फूल, पक्षियो और बादलो के साथ—तदाकार होने के आनन्द का जब प्रभुदास वर्णन करने बैठते है तब तो उनकी लेखनी की सामर्थ्य सोलहो कला से प्रकट होती है। अपने समवयस्क बालको से और अपने घर के बडो से जो पोषण बाल प्रभुदास को नही मिलता था वह उन्होने प्रकृति के पास से पाया। इसी कारण यह वर्णन-शक्ति इस हद तक उनमे सजीव हो उठी है। प्रकृति-

वर्णन करने मे प्रभुदास को जो सफलता प्राप्त है वही सफलता मनोविश्लेषण करने मे भी उनको प्राप्त है। अपने बुजुर्गों के लिए अदब रखने के लिहाज से बधे रहने के कारण अपनी विश्लेषण-शक्ति को उन्होंने स्वय अपने ऊपर ही आजमाया है। लेकिन भविष्य मे जब वह कोई उपन्यास या इतिहास लिखने बैठेगे तब उनके द्वारा हमे मानवचित्त की सविशेष गहनता का पर्याप्त परिचय मिलेगा। इस पुस्तक मे भी स्वभाव-चित्रण कम नही है, और जो है काफी प्रभावपूर्ण है।

आज के युग के पाठक इस पुस्तक को गाधीजी के जीवन के एक पहलू के चित्रण के रूप मे ही पढेगे। किन्तु वास्तव मे 'जीवन-प्रभात' प्रभुदास के बचपन की आत्मकथा या अपने वय के चौथे वर्ष से लेकर बारहवे वर्ष तक की स्मरण-यात्रा है। इसमे बालमानस के विकास का और उसमे पैदा होने वाली विकृति का पारदर्शक चित्र है। शिक्षा का कार्य करने वाली और बहुत से माता-पिताओ की दृष्टि खोल देने वाली सामग्री इसमे है। अपने दोषो पर प्रभुदास ने कही भी पर्दा नही डाला है, बल्कि ठीक वैसे ही अपने प्रत्येक दोष का ब्यौरा दिया है, जैसे कि चित्रगुप्त के सामने उपस्थित हो। कही भी उन्होंने अपने ऊपर रहम नही किया है। इसी वजह से उन्होंने दूसरो के बारे मे लिखने का अधिकार पा लिया है। इसमे भी, जो लोग अदरूनी इतिहास के पूरे जानकार है वे अवश्य कहेगे कि प्रभुदास ने इसके लिखने मे कलामय सयम ही साधा है।

गाधीजी द्वारा लिखे गए 'सत्याग्रह-आश्रम का इतिहास' को पढने के बाद ही फीनिक्स-आश्रम के इस इतिहास को पढने पर जो विचार मन मे उठा है उसे यहा मै प्रस्तुत कर देता हू।

आश्रम के इतिहास की प्रस्तावना मे जिस फीनिक्स अथवा 'अग्निसभव' आश्रम का इतिहास मैने मागा था वही यहां पर बालसुलभ ढग से प्राप्त हो जाता है। फीनिक्स-आश्रम का यह इतिहास पढने से सत्याग्रह-आश्रम-सबधी बापूजी की जीवन-दृष्टि और कार्य-पद्धति अधिक स्पष्ट हो जाती है।

सत्याग्रही वीर जेल मे जाकर हार न माने, इस हेतु से फीनिक्स मे गाधीजी ने श्रम-सहिष्णुता, स्वादजय और कठोर जीवन की शिक्षा अपनाई। इस दृष्टि से फीनिक्स-आश्रम को जेल-आश्रम कहना चाहिए। यह विचार मन मे आने के साथ-साथ यूरोप के इतिहास मे पढी हुई एक बात याद आती है कि यूरोप के जेल-जीवन का कार्यक्रम ईसाई तपस्वियो के मठ-जीवन की बेहूदा नकल थी। जेल मे मजबूरी से पुण्य कराया जाता था, जबरदस्ती सयम रखवाया जाता था और बलपूर्वक प्रायश्चित्त कराया जाता था।

जेल-जीवन की आवश्यकता समझ कर गांधीजी ने अस्वाद-व्रत का

महत्व बढा दिया होगा; जैनो की तप के लिए आग्रह-भरी चुस्ती को देख कर भी बापूजी अस्वाद-व्रत की ओर झुके होगे; ब्रह्मचर्य के पालन मे स्वादजय को अपरिहार्य समझ कर उन्होने उन प्रयोगो को बढावा दिया होगा—'जित सर्व जिते रसे'—किन्तु ये सारे प्रयोग उन्होने अपनी निजी कल्पना के अनुसार ही किये थे और इन प्रयोगो से अनेकविध अनुभव प्राप्त करने के बाद उन्होने अपने विचारो मे आवश्यक परिवर्तन भी किया था। एक बार बापूजी ने बताया था, "केवल स्वादजय पर्याप्त नही है। जिन्होने नमक का, मीठी-मीठी चीजो का और तरह-तरह के नमकीन पदार्थों का सदा के लिए सतोष के साथ त्याग कर दिया है, ऐसे लोगो को भी मैंने भूख से अधिक आहार करने के लिए व्याकुल देखा है। केवल नियमो के पालन से अस्वाद-व्रत या आहार-सयम सधता नही है।"

एक इन्द्रिय यदि ढीली पड जाती है तो दूसरी सब इन्द्रियां भी हलके-हलके ढीली हो ही जाती है, यह सच बात है, किन्तु एक इन्द्रिय को वश मे कर लेने से दूसरी सब इन्द्रिया भी वश मे आ ही जाती है, ऐसा अनुभव नही है। सबसे पहले और सबसे अन्त मे जिसको वश में लाना चाहिए वह है अपना चित्त। ऐसा न करके एक या अनेक इन्द्रियो का दमन करने पर चित्त का वेग अन्यत्र फूट पड़ता है।

आश्रम-जीवन का प्रधान तत्व है मृत्यु के साथ मैत्री। मनुष्य-जाति मृत्यु की कल्पना से इतनी अधिक भयभीत रहती है कि उसने निर्भय होकर मृत्यु का मुख देखा ही नही। मनुष्य के विकास के लिए मृत्यु आवश्यक है। मृत्यु हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। मृत्यु परम मित्र है, नये-नये प्रयोगो के लिए जीवन को ताजगी देने वाला वह एक आरामगाह है। मृत्यु, थके हुए जीवन की केचुली उतार देने की एक क्रिया-मात्र है—यह बात जो समझ लेता है वही जीवन का रहस्य समझ पाता है व जीवन की कमजोरियो पर विजय पा सकता है। वही अपने कर्तव्य-पालन मे दृढ रह सकता है और सत्य का दर्शन कर सकता है। दु.ख, रोग और मृत्यु तीनो पर विजय पाने के बाद ही हम मनुष्य-जाति की सेवा कर सकते है और अपने निज के जीवन को कृतार्थ बना सकते है। इस निश्चय से गाधीजी ने जीवन की जिस साधना का आरम्भ किया उसका इतिहास भविष्य मे अनेक ढग से लिखा जायगा और उनकी वह परम्परा मनुष्य-जाति को आगे चल कर अनेक प्रकार से विकसित करेगी।

इस पुस्तक मे हमे केवल साहित्य-रस या जीवन-रस ही नही चखना है, इससे प्रयोग-रस भी चूसना है।

—काका कालेलकर

वर्णन करने मे प्रभुदास को जो सफलता प्राप्त है वही सफलता मनोविश्लेषण करने मे भी उनको प्राप्त है। अपने बुजुर्गो के लिए अदब रखने के लिहाज से बधे रहने के कारण अपनी विश्लेषण-शक्ति को उन्होने स्वय अपने ऊपर ही आजमाया है। लेकिन भविष्य मे जब वह कोई उपन्यास या इतिहास लिखने बैठेगे तब उनके द्वारा हमे मानवचित्त की सविशेष गहनता का पर्याप्त परिचय मिलेगा। इस पुस्तक मे भी स्वभाव-चित्रण कम नही है, और जो है काफी प्रभावपूर्ण है।

आज के युग के पाठक इस पुस्तक को गाधीजी के जीवन के एक पहलू के चित्रण के रूप मे ही पढेगे। किन्तु वास्तव मे 'जीवन-प्रभात' प्रभुदास के बचपन की आत्मकथा या अपने वय के चौथे वर्ष से लेकर बारहवे वर्ष तक की स्मरण-यात्रा है। इसमे बालमानस के विकास का और उसमे पैदा होने वाली विकृति का पारदर्शक चित्र है। शिक्षा का कार्य करने वाली और बहुत से माता-पिताओ की दृष्टि खोल देने वाली सामग्री इसमे है। अपने दोषो पर प्रभुदास ने कही भी पर्दा नही डाला है, बल्कि ठीक वैसे ही अपने प्रत्येक दोष का ब्यौरा दिया है, जैसे कि चित्रगुप्त के सामने उपस्थित हो। कही भी उन्होने अपने ऊपर रहम नही किया है। इसी वजह से उन्होने दूसरो के बारे मे लिखने का अधिकार पा लिया है। इसमे भी, जो लोग अदरूनी इतिहास के पूरे जानकार है वे अवश्य कहेगे कि प्रभुदास ने इसके लिखने मे कलामय सयम ही साधा है।

गाधीजी द्वारा लिखे गए 'सत्याग्रह-आश्रम का इतिहास' को पढने के बाद ही फीनिक्स-आश्रम के इस इतिहास को पढने पर जो विचार मन मे उठा है उसे यहा मै प्रस्तुत कर देता हू।

आश्रम के इतिहास की प्रस्तावना मे जिस फीनिक्स अथवा 'अग्निसभव' आश्रम का इतिहास मैने मागा था वही यहा पर बालसुलभ ढग से प्राप्त हो जाता है। फीनिक्स-आश्रम का यह इतिहास पढने से सत्याग्रह-आश्रम-सबधी बापूजी की जीवन-दृष्टि और कार्य-पद्धति अधिक स्पष्ट हो जाती है।

सत्याग्रही वीर जेल मे जाकर हार न माने, इस हेतु से फीनिक्स मे गाधीजी ने श्रम-सहिष्णुता, स्वादजय और कठोर जीवन की शिक्षा अपनाई। इस दृष्टि से फीनिक्स-आश्रम को जेल-आश्रम कहना चाहिए। यह विचार मन मे आने के साथ-साथ यूरोप के इतिहास मे पढी हुई एक बात याद आती है कि यूरोप के जेल-जीवन का कार्यक्रम ईसाई तपस्वियो के मठ-जीवन की बेहूदा नकल थी। जेल मे मजबूरी से पुण्य कराया जाता था, जबरदस्ती सयम रखवाया जाता था और बलपूर्वक प्रायश्चित्त कराया जाता था।

जेल-जीवन की आवश्यकता समझ कर गाधीजी ने अस्वाद-व्रत का

महत्व बढा दिया होगा, जैनो की तप के लिए आग्रह-भरी चुस्ती को देख कर भी बापूजी अस्वाद-व्रत की ओर झुके होगे; ब्रह्मचर्य के पालन मे स्वादजय को अपरिहार्य समझ कर उन्होने उन प्रयोगो को बढावा दिया होगा—'जित सर्व जिते रसे'—किन्तु ये सारे प्रयोग उन्होने अपनी निजी कल्पना के अनुसार ही किये थे और इन प्रयोगो से अनेकविध अनुभव प्राप्त करने के बाद उन्होने अपने विचारो मे आवश्यक परिवर्तन भी किया था। एक बार बापूजी ने बताया था, "केवल स्वादजय पर्याप्त नही है। जिन्होने नमक का, मीठी-मीठी चीजो का और तरह-तरह के नमकीन पदार्थो का सदा के लिए सतोष के साथ त्याग कर दिया है, ऐसे लोगो को भी मैने भूख से अधिक आहार करने के लिए व्याकुल देखा है। केवल नियमो के पालन से अस्वाद-व्रत या आहार-सयम सधता नही है।"

एक इन्द्रिय यदि ढीली पड जाती है तो दूसरी सब इन्द्रिया भी हलके-हलके ढीली हो ही जाती है, यह सच बात है, किन्तु एक इन्द्रिय को वश मे कर लेने से दूसरी सब इन्द्रिया भी वश मे आ ही जाती है, ऐसा अनुभव नही है। सबसे पहले और सबसे अन्त मे जिसको वश में लाना चाहिए वह है अपना चित्त। ऐसा न करके एक या अनेक इन्द्रियो का दमन करने पर चित्त का वेग अन्यत्र फूट पडता है।

आश्रम-जीवन का प्रधान तत्व है मृत्यु के साथ मैत्री। मनुष्य-जाति मृत्यु की कल्पना से इतनी अधिक भयभीत रहती है कि उसने निर्भय होकर मृत्यु का मुख देखा ही नही। मनुष्य के विकास के लिए मृत्यु आवश्यक है। मृत्यु हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। मृत्यु परम मित्र है, नये-नये प्रयोगो के लिए जीवन को ताजगी देने वाला वह एक आरामगाह है। मृत्यु, थके हुए जीवन की केचुली उतार देने की एक क्रिया-मात्र है—यह बात जो समझ लेता है वही जीवन का रहस्य समझ पाता है व जीवन की कमजोरियो पर विजय पा सकता है। वही अपने कर्तव्य-पालन मे दृढ रह सकता है और सत्य का दर्शन कर सकता है। दुख, रोग और मृत्यु तीनो पर विजय पाने के बाद ही हम मनुष्य-जाति की सेवा कर सकते है और अपने निज के जीवन को कृतार्थ बना सकते है। इस निश्चय से गाधीजी ने जीवन की जिस साधना का आरम्भ किया उसका इतिहास भविष्य मे अनेक ढग से लिखा जायगा और उनकी वह परम्परा मनुष्य-जाति को आगे चल कर अनेक प्रकार से विकसित करेगी।

इस पुस्तक मे हमे केवल साहित्य-रस या जीवन-रस ही नही चखना है, इससे प्रयोग-रस भी चूसना है।

—काका कालेलकर

विषय-सूची

●

मैरित्सबर्ग-जेल से रिहाई के बाद स्टेशन पर गांधीजी का स्वागत

जीवन-प्रभात

: १ :

सौराष्ट्र का भौगोलिक चित्र

यदि सौराष्ट्र की आकृति पर दृष्टिपात किया जाय तो सौराष्ट्र का स्वरूप कुछ-कुछ ऐसा मनोरम दीख पडेगा, जैसा कि समुद्र के क्षितिज पर सुशोभित अपूर्ण चन्द्र का दृश्य दीखता है। एक सिरे पर सौराष्ट्र भारतमाता से लगा हुआ है और दूसरे सिरे पर वह पश्चिम सागर की गोदी मे जा बैठा है। यदि कल्पना की दृष्टि से देखा जाय तो समग्र सौराष्ट्र की आकृति शुक्ला एकादशी या कृष्णा चतुर्थी-पचमी के अधूरे चन्द्र के समान दिखाई देती है। यदि भारत देश को हम माता की मूर्त्ति मानते है, कच्छ को वडा-सा तुवा बताते है, तो सौराष्ट्र को एकादशी का चन्द्र कह सकते है। सौराष्ट्र के प्रायद्वीप ने पूर्व मे खभात के पास मातारूपी भूमि को पकड रखा है और पश्चिम मे द्वारका के पास वह सागर रूपी पिता के वक्षस्थल पर खेल रहा है। उधर, दक्षिण की ओर सौराष्ट्र की भूमि ने अपना सारा किनारा, जो कि प्राय· एक हजार मील है, समुद्र को समर्पित कर दिया है और सौराष्ट्र का उत्तरी हिस्सा कच्छ के रण द्वारा भूमि के साथ आख-मिचौनी कर रहा है। सौराष्ट्र का पश्चिम, दक्षिण और पूर्व दिशा मे समुद्र का सुडौल घुमाव है। इस प्रकार तीन ओर से नील सिन्धु का जल सौराष्ट्र की भूमि का पाद-प्रक्षालन करता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म-स्थल टकारा ग्राम जहा पर है, वह मोरवी का राज्य उत्तर-भारत मे काफी प्रसिद्ध है। सौराष्ट्र के विलय के पहले अग्रेजो की व्यवस्था के अनुसार मोरवी राज्य प्रथम श्रेणी का राज्य माना जाता था और वहा के राजाओ ने अपने मोरवी नगर के पास नवलखी-वन्दर का यथाशक्ति विकास किया था। उत्तरी भारत के साथ स्थल मार्ग से व्यापार करने के लिए यह नवलखी-वन्दर दूसरे वन्दरो से अधिक पास पडता है। ऊटो के कारवाँ पर राजपूताना मे वहा से

सामान का यातायात सुगम होता है। इस नवलखी-बन्दरगाह की भौगोलिक महत्ता का पता इस बात से चलता है कि उसी के ठीक सामने, आठ-दस मील चौडी कच्छ की खाडी के उस पार, कच्छ-राज्य की सीमा मे, भारत सरकार ने अब करोडो रुपये खर्च करके विशाल पैमाने पर कादला बन्दर का निर्माण किया है और उसका नाम गाधीनगर रखा है। आशा है कि निकट भविष्य मे ही वह स्थल स्वतन्त्र भारत की राजधानी दिल्ली के लिए निकटतम समुद्र-द्वार साबित होगा और भारत के सबसे अधिक बल-शाली तथा व्यापारिक बन्दरगाह के रूप मे विश्वविख्यात हो जायगा।

यदि एक जहाज मे बैठकर हम नवलखी-बन्दर से सौराष्ट्र के समुद्री किनारे की परिक्रमा आरम्भ करे तो वहा से पूर्व मे कुछ दूर जाने पर जाम-नगर राज्य का बेडी-बन्दर आ जाता है।

नवलखी-बन्दर और बेडी-बन्दर, दोनो ही कुछ बन्द समुद्र मे है। इनके बाद कच्छ की खाडी से बाहर निकलने पर खुले महासागर मे सर्व-प्रथम बन्दर द्वारका के पास का ओखा-बन्दर है। भारत की पश्चिमी सीमा की विदेशियो से रक्षा करने के लिए दीर्घदर्शी और कूटनीतिज्ञ श्री-कृष्ण भगवान ने प्राय इसी स्थल को प्रहरी के रूप मे चुना था। सौराष्ट्र की परिक्रमा करने के लिए जो जहाज पूर्व से पश्चिम की ओर जाता है उसे अब एकदम दक्षिण मे मुडना होता है, तब जाकर वह परम-तीर्थ द्वारका पहुचता है। द्वारका से आगे, कुछ आग्नेय दिशा मे मुडता हुआ प्राय. पच्चीस-तीस मील पर जहाज मियाणी-बन्दर पहुचता है, जहा से पुराने पोरबन्दर राज्य की सीमा शुरू होती है। मियाणी से फिर करीब पच्चीस मील आगे चलने पर पोरबन्दर आता है, जो प्राचीन काल से सुदामापुरी के नाम से सुविख्यात रहा है और अब सुदीर्घ भविष्य तक उसी प्रकार गाधी-तीर्थ माना जायगा, जिस प्रकार टकारा महर्षि दयानन्द-तीर्थ माना जाता है। इसके बाद, सौराष्ट्र की परिक्रमा के लिए, जहाज आग्नेय दिशा मे ही बढता जाता है और नवीबन्दर, माधवपुर, मांगरोल, वेरावल, सोमनाथ, पाटण और ड्यू मे पहुचता है।

ड्यू से सौराष्ट्र का किनारा छोडकर यदि जहाज को सीधा पूर्व मे चलाया जाय तो वह सामने के किनारे पर गुजरात के प्रसिद्ध नगर सूरत मे पहुचेगा और आग्नेय दिशा मे कुछ मजिल तय करने पर, सोपारा बन्दर या बबई-बन्दर पहुच जायगा। लेकिन सौराष्ट्र की परिक्रमा पूरी करने के लिए ड्यू से ईशान दिशा मे मुडना होता है। उस दिशा मे जाफरा-बाद और महुआ बड़े बन्दर है। फिर सीधे उत्तर मे चलने पर घोघा

बन्दर और बाद मे सौराष्ट्र का वर्तमान प्रख्यात व्यापारी शहर भावनगर आता है। अन्त मे जहा गुजरात और सौराष्ट्र के बीच की खाडी पूरी होती है, वहा भावनगर से बिलकुल उत्तर मे जहाज खभात शहर पहुच जाता है। यहा पर सौराष्ट्र का समुद्र-तट समाप्त हो जाता है और सौराष्ट्र भारत के भूखड के साथ एकाकार हो जाता है।

सौराष्ट्र के अनेकानेक बन्दरगाहो मे वेरावल, पोरबन्दर और द्वारका भारत मे अधिक प्रसिद्ध हैं। द्वारका भारत के चार धामो मे से एक है और वेरावल-बन्दर पर सोमनाथ महादेव का तीर्थ हमारे देश के नये-पुराने युगो के उतार-चढाव की साक्षी दे रहा है। एक के बाद एक कई बार इस ज्योतिर्लिंग की प्राण-प्रतिष्ठा की गई और १९५१ मे हमारे राष्ट्रपति राजेद्रबाबू के हाथो फिर से वही अनुष्ठान दुहराया गया। जिस प्रकार दिल्ली बार-बार बनी, बार-बार बिगडी और आज फिर समूचे भारत का केद्र बनी हुई है, उसी प्रकार सोमनाथ का ज्योतिर्धाम सौराष्ट्र या गुजरात के लिए ही नही, सपूर्ण भारतवर्ष के लिए महान धार्मिक केद्र बन गया है। दिल्ली के आसपास के टीलो पर जिस प्रकार गतयुग की दिल्ली के भग्नावशेष पुरानी स्मृतियो को जागृत करते है, उसी प्रकार वेरावल के समुद्रतट पर टूटे हुए विशाल मन्दिरो के भग्नावशेष पुरानी कला, पुरानी समृद्धि, पुराने सगठन आदि का परिचय दे रहे है।

सोमनाथ का नया मन्दिर छोटा है, परन्तु उसके निकट समुद्र की तरगे न जाने कितने युगो से अपना धार्मिक रहस्य और सनातन सदेश सुनाती आ रही है!

व्यापारिक दृष्टि से यह सौराष्ट्र का सौभाग्य है कि उसे एक-से-एक टक्कर लेनेवाले सुन्दर बन्दरगाह मिले है। आधुनिक युग मे उनसे कुछ बन्दरगाहो मे सामुद्रिक व्यापार की अच्छी उन्नति हुई है और वहा पर छोटे-छोटे जहाजो का आवागमन रहता है, परन्तु पोरबन्दर सौराष्ट्र का ऐसा बन्दरगाह है जहा बडे-बडे महासागरो को पार करने वाले विशाल स्टीमर भी लगर डाल सकते है। महासागर मे चलने वाले देहाती जहाजो के लिए पोरबन्दर मे ऐसी सुविधा है कि वहा की चौडी सुन्दर खाडी मे एक हजार तक देशी ढग की बडी-बडी नावे आश्रय पा सकती है और समुद्र के प्रलयकारी तूफान के समय निश्चिन्त भाव से आत्मरक्षा कर सकती है।

जिस प्रकार किसानो को हम धरती-माता के पुत्र कहते है, उसी प्रकार इन शूर और साहसी नाविको को समुद्र-सतान कह सकते है। पोरबन्दर

के समुद्र-किनारे पर इन समुद्र-सतानो मे बडी स्फूर्ति नजर आती है। ये बहुत उद्योगी, बलवान, विनोदी और चतुर प्रतीत होते है। जब उन समुद्र-सतानों के कुमार और कुमारिकाए, युवक और युवतिया, हिलमिल कर काम पर जुटते है, तब सारा वातावरण प्रसन्नता से भर जाता है। समुद्र जब शान्त तथा सौम्य होता है तब ये लोग उसका भरपूर आनन्द लूटते है और जब समुद्र क्रुद्ध होकर अपने रौद्र स्वरूप को प्रकट करता है तब भी वे अपने काम को पूरी निर्भीकता और स्थिरचित्त से करते रहते है।

बन्दरगाह की इस चहल-पहल से निकलकर पूर्व की ओर कुछ दूर पर मुक्त समुद्र का सुन्दर पाट आता है।

बापूजी के जन्म से कई शताब्दी पहले से पोरबन्दर ने सातो समुद्रो के जहाजो को देखा है। फिरगी लोग जब इस ओर आये उससे भी पहले यहा का व्यापार ईरान, अरबस्तान और अफ्रीका के साथ चलता रहा है। हिन्द महासागर को चीरकर यहा की नौकाए पूर्वी अफ्रीका मे जजीबार और मोम्बासा तक दौड लगाती रही है। अनुभवी लोगो ने बहुत सोच-समझकर इस स्थल पर यह नगर बसाया है। नगर से सटकर कुछ मूल-कोण के आकार मे समुद्र जमीन मे घस गया है और एक छोटा-सा उपसागर बन गया है। समुद्र-किनारे की इस आकृति का यश उस खाडी को है, जो जमीन के अन्दर धनुषाकार होती हुई डेढ-दो मील तक चली गई है। चौमासे मे जब पानी अधिक भर जाता है तब यह खाडी इतनी अधिक फैलती है कि सौराष्ट्र की भादर नदी तक पहुच जाती है और काफी भीतरी प्रदेश तक किश्तिया जा सकती है।

पोरबन्दर की खाडी मे नावो पर सामान लादने-उतारने के लिए जो अड्डा बनाया गया है, वह लबा-चौडा है। इस चबूतरे पर इन दिनों अनाज की बोरिया, रुई की गाठे, घास की गठरिया, पिड-खजूर के गट्ठे, बारडा डुगर के सफेद पत्थर की बडी-बडी शिलाएं, भैस के घी के कनस्तर, नारियल, नारियल की रस्सी-रस्से के गट्ठर, और किराने आदि सामान के ढेर लगे रहते है तथा नाविक लोग उस माल को नाव मे चढाने-उतारने मे व्यस्त रहते है।

खाडी के मुहाने के पास, खुले महासागर के सामने, ऊचा और सुन्दर दीपस्तम्भ है, जो अधेरी रात्रि मे बीच समुद्र मे जानेवाले जहाजो का मार्गदर्शन करता है। किनारे से बीस मील की दूरी पर बीच समुद्र मे चलनेवाली नावो को भी इस दीपस्तम्भ का सहारा मिलता है।

इधर समुद्र के इस लघु उपसागर के सहारे पोरबन्दर नगर बसा हुआ है। सफेद पोरबन्दरी पत्थर के पक्के दो-तीन मजिल ऊचे मकान, ढाई सौ वर्ष से भी अधिक समय से ज्यो-के-त्यों यहा पर खडे है। पहले यह नगर परकोटे के अन्दर समाया हुआ था, अब परकोटा नही है; लेकिन पुराने शहर की टेढी-मेढी और सकीर्ण गलिया बनी हुई है। मूल शहर के बाहर तिगुने विस्तार मे आधुनिक ढग का शहर फैला हुआ है। यहा के व्यापारी बम्बई और सुदूर अफ्रीका तक भी पैसा कमाने के लिए जाते है। उनमे से कुछ लोगो ने यहा बडे-बडे बगले और कोठिया बनाई है। आधुनिक ढग के मकानो की कतारो के बीच चौडी सडके बनी हुई है और उनमे से एक सडक का नाम युगान्डा रोड रखा गया है। इसके अतिरिक्त इस नगर मे सीमेंट की बडी मिल, दियासलाई बनाने का कारखाना, तेल की मिल, नकली रेशम बुनने की मिल, आदि अनेक कारखाने है। चूने के पत्थरो का भी दूर-दूर तक व्यापार होता है। नगर के मध्य मे जो अच्छे-अच्छे मन्दिर है, उनमे सुदामाजी का मन्दिर सुप्रसिद्ध है। वह कलापूर्ण और सुन्दर बना हुआ है। छोटी-मोटी फुलवाडिया भी जगह-जगह लगी हुई है जिनमे नारियल, बादाम, चीकू, सुपारी जैसे फल-वृक्ष है। कुल मिलाकर यह नगर प्राचीन और अर्वाचीन ढग का अच्छा मिश्रण है। एक ओर यहा मन्दिरो की भरमार है तो दूसरी ओर आर्यकन्या गुरुकुल, सस्कृत पाठशाला और अनेक स्कूल, हाई स्कूल व विद्यालय चल रहे है। चित्रकला मे पोरबन्दर की ख्याति विशेष है। भारत के अच्छे-अच्छे चित्रकार यहा पैदा हुए है।

इस प्रकार के विकसित प्रदेश मे महात्मा गाधी ने जन्म लिया।

: २ :

संस्कार-भूमि

मनुष्य के सारे सामाजिक और व्यक्तिगत सस्कार उस जलवायु और भौगोलिक परिस्थित के अनुरूप बनते है, जिसमे उसका जीवन व्यतीत होता है। जाने या अनजाने हरएक व्यक्ति अपने चारो ओर के वातावरण से प्रभावित हुए बिना नही रहता। जिसमे जितना हृदय-बल,

मनोवल और इच्छाशक्ति होती है, उसी मात्रा मे उसका व्यक्तित्व कम या अधिक विकसित होता है; पर उसके विकास की सामग्री उसके चारो ओर सदैव बनी रहती है।

गाधीजी का जो अद्वितीय और अपूर्व व्यक्तित्व चमक उठा, उसकी नीव मे किस प्रकार की सामाजिक भूमिका थी, इसका सही पता लगाना सहज कार्य नही है। लेकिन जिस जगह पर गाधीजी ने जन्म धारण किया, उस स्थल का भौगोलिक वातावरण अपनी कहानी चिरकाल तक कहता रहेगा।

यद्यपि हमारे परिवार के प्रथम महापुरुष श्री उत्तमचन्द गाधी का मकान पोरबदर मे है, तथापि पता चलता है कि हमारे पूर्वजो का निवास कुतियाणा नामक कस्बे मे था।

सौराष्ट्र की सबसे बडी नदी भादर कुतियाणा की सीमा पर बहती है। उसका पाट चौड़ा है और पानी थोडा होते हुए भी इतना स्वच्छ है कि उसके तले बिछे हुए छोटे-छोटे गोल पत्थरो का रग साफ दिखाई देता है।

कुतियाणा से दक्षिण मे, सौराष्ट्र की अन्तिम सीमा पर, अपने गभीर घोष से आकाश को भर देनेवाला नील सिंधु का जल सतप्त मातृभूमि को अहर्निश शीतल करता रहता है। पश्चिम मे ओखा और द्वारका से लेकर पूर्व मे घोघाबन्दर और भावनगर तक फैले हुए इस महासागर का दक्षिण दिशा मे सामने की ओर हजारो मील तक कही किनारा नही दिखाई पडता। यह महासागर सीधा दक्षिण ध्रुव के प्रदेश तक चला गया है।

सागर के किनारे पूर्व से पश्चिम तक बालू का जो विशाल पट बिछा हुआ है वह मानव-चित्त पर अपना अनोखा ही प्रभाव डालता है। उस पट मे विचरने पर न तो समुद्र ही दीखता है और न हरी भूमि के दर्शन होते है। पर जैसे ही सूर्य थोडा-सा ऊचा चढता है वैसे ही वहा मृगजल के विशाल सरोवर लहराते हुए दीख पडते है। इतना ही नही, उन सरोवरो मे ऊची-ऊची वृक्षराशि की परछाही भी स्पष्ट प्रतीत होती है।

भादर के दोनो किनारो पर लहराते हुए शस्य-श्यामल खेत चित्त को सतोष से भर देते है। दिन मे सूर्य के प्रखर ताप से तपते रहने वाले कठोर व्रती छोटे-छोटे गिरिश्रृंग मन को तपस्या की ओर आकर्षित करते है। बरडा पहाडी की सुहावनी घाटियो मे अपनी दुधारु गाय-भैसो को चराते हुए अहीर, चारण आदि के आलाप वेदकालीन ऋचाओ का स्मरण दिलाते है, महासागर का गहन-गभीर स्वरूप हृदय को बल प्रदान

करता है और उसकी तरग-माला का अखड नृत्य चित्त को ऊर्मिमय बना देता है। सामुद्रिक व्यापार देश-विदेश के साहसिको को आपस के सपर्क मे लाता है और एक-दूसरे की विद्या, कला और सूझ-बूझ का आदान-प्रदान होता रहता है। रेगिस्तान जैसी मृगमरीचिका का अनुभव जीवन के प्रति सावधान रहने की सूचना करता है।

लेकिन पोरबन्दर के आसपास का छोटा-सा प्रदेश अपने मे चाहे कितना ही भरा-पूरा प्रतीत क्यो न हो, फिर भी यह भूलना न होगा कि हमारे विशाल भारत देश का यह एक अश-मात्र है। भारत के चार प्रसिद्ध धामो मे से पश्चिमी धाम द्वारका का यह प्रदेश है। उस समय द्वारका के लिए राजकोट-जामनगर के रास्ते रेल नही बनी थी; अधिकतर यात्री पोरबन्दर के रास्ते द्वारका जाते थे। पैदल और नाव से यह यात्रा की जाती थी। पैदल मार्ग अधिक चलता था।

पोरबन्दर की भाषा शुद्ध गुजराती है। लेकिन व्यापारियो मे हिन्दू और मुसलमान ऐसे भी है, जो अपने घर मे कच्छी बोली बोलते है। हिन्दी-भाषी प्रदेश की तरह, गुजराती भाषा के प्रदेशो मे भी जिले-जिले की बोली अलग है। यह अन्तर गद्य और पद्य दोनो मे ही प्रकट होता रहा है। गुजरात की तरह सौराष्ट्र की बोली मे भी इतना अन्तर है कि एक जिले वाले दूसरे जिले वालो को बोली से पहचान सकते है। कुछ क्षत्रिय और समुद्र के किनारे बसने वाली नाविक जातियो की अपनी अलग बोली है, जिसमे देशज शब्दो का बाहुल्य है। पढे-लिखे नगरवासी की समझ मे यह बोली आसानी से नही आती। गाधीयुग से पहले साहित्य-कार और कवियों के बीच गुजराती तथा सौराष्ट्री की परिधिया अलग-अलग थी और वे अपने-अपने ढग से अलग-अलग मुहावरो, क्रियापदों और वाक्छटा का विकास करने का आग्रह रखते थे। जब सौराष्ट्र और गुजरात दोनो के मध्य मे पड़ने वाले अहमदाबाद नगर मे गाधीजी ने अपने प्रसिद्ध साप्ताहिक 'नवजीवन' का आरम्भ किया और गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की, तब गुजराती और सौराष्ट्री साहित्यकारो ने कधे-से-कधा मिलाकर गुजराती भाषा का विकास करने के लिए कठिन परिश्रम किया। सौराष्ट्र-गुजराती का भेद-भाव लुप्तप्राय हो गया और दोनो ही के सम्मिश्रण से आजकल की गुजराती का ओज बढ गया। एक-दूसरे का सहयोग साधकर अखड भारत को शक्तिशाली बनाने के लिए भारत-भर के भिन्न-भिन्न प्रातो पर गाधीजी ने अपना जो प्रभाव डाला उसी प्रभाव ने गुजरात और सौराष्ट्र को भी विशेष रूप से ओत-प्रोत व सूत्रबद्ध कर

दिया। साहित्यिक दृष्टि से कहना होगा कि सस्कृत से प्रकृत और प्राकृत से अपभ्रश होकर व्रज तथा राजस्थानी की तरह गुर्जरी गिरा का जो विकास हुआ वह गुजरात और सौराष्ट्र मे प्रारम्भ से एक-सा ही रहा। तीन-चार-सौ वर्ष पहले की प्रचीन गुजराती और आजकल की गुजराती मे प्राय ऐसा ही भेद है जैसा व्रज भापा और अर्वाचीन हिन्दी मे।

पुराने जमाने मे गुजराती कवि भी अपनी रचना व्रजभापा मे ही करने मे गौरव मानते थे। प्राय डेढ-सौ वर्ष पहले समर्थ साहित्यकार भट प्रेमानन्द ने गुजराती मे पद्य-साहित्य की रचना करने का वीडा उठाया, तव से लेकर अवतक गुजरात-सौराष्ट्र मे अर्वाचीन गुजराती साहित्य का सतत विकास होता रहा। अग्रेजो ने जव अपने ढग से स्कूलो और कालेजो का जाल विछा दिया तव विद्वानो ने गुजराती को अत्यधिक सस्कृतमय वनाने का प्रयास किया। कुछ विद्वानो ने फारसी शब्दो और मुहावरो की गुजराती मे काफी भरमार की। लेकिन गाधीजी ने गुजराती को 'विद्वद्‌भोग्य' न वनाकर 'लोकभोग्य' वनाने का आग्रह रखा और सस्कृत की अति पर अकुश लगा दिया। साथ-ही-साथ अरवी-फारसी की अति का मोह भी मिट गया।

कृष्ण-वलराम मथुरा से अपने दलवल सहित द्वारका पधारे, तवसे यह प्रदेश भारत के हृदयस्वरूप मध्यदेश के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड गया। महाभारत-युग के वाद भी सौराष्ट्र का सवध उत्तर मे आनर्त, लाट, राजस्थान, मालवा, कन्नौज, मगध और दक्षिण मे महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के साथ घनिष्ठ रूप से वना रहा। इधर समुद्र-मार्ग से कच्छ और सिंध का भी इतना घनिष्ठ सवध रहा कि सौराष्ट्र की वोली और उच्चारण पर भी वहा का काफी प्रभाव पडा। वरडा-प्रदेश का सवध आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक क्षेत्र मे सदैव सपूर्ण भारतखड से जुडा हुआ रहा तथा भारत-भर के महापुरुषो, सतो और शूरो ने अपना-अपना प्रभाव यहा पर डाला।

महाभारत की कथाओ से ज्ञात होता है कि द्वारका से लेकर प्रभास-पाटण (सोमनाथ) और रैवत्तक पर्वत (गिरनार) तक, अर्थात् पोर-वन्दर के केंद्र से मीलो की दूरी तक, यादव-समाज वसा हुआ था। जिस भूमि को यादवो ने इतना अधिक समृद्धशाली वनाया, उसी को उन्होंने अति विशाल और आपसी कलह के कारण ध्वस्त भी कर डाला। कदाचित् इसी अभिशाप के कारण अभी पिछले दिनो तक सौराष्ट्र का यह छोटा-सा प्रायद्वीप प्राय ढाई सौ रियासतो मे छिन्न-विच्छिन्न रहा।

यादवो ने जिस प्रकार सूने प्रदेश को आबाद किया उसी प्रकार सुदामा सरीखे विद्वान, त्यागी और तपस्वी ऋषियो ने और सतो ने यहा पर ऊचे चारित्र्य और सतोषमय जीवन की नीव जमाई। अति प्राचीन काल की बात छोडकर निकट के भूतकाल को देखने पर भी ज्ञात होता है कि सतो का आशीर्वाद यहा के समाज को बराबर मिलता रहा है। जूनागढ के निवासी परमभक्त नरसिह मेहता ने हरिजनो के आगनो मे भी भजन गाकर जनता को 'वैष्णव जन' की महिमा समझाई। उनके पद सैकडो वर्षों से अनपढ लोग भी सौराष्ट्र के गाव-गाव और झोपडी-झोपडी मे नित्य ब्राह्म मुहूर्त्त मे गाते रहे हैं। नरसिह मेहता ने गुजरात के आदि-कवि का विरुद पाया है। उधर द्वारका से मीराबाई के प्रेम-भक्ति के गीतो की ध्वनि सारे वातावरण मे गूज उठी, जो अभी तक लोकहृदय को भावना से विभोर करती रहती है।

सोमनाथ के ज्योतिर्लिंग के उपासक ब्राह्मणो की सस्कारिता ने यहा की जनता को प्रभावित किया। अशोक के प्रतिनिधि और राष्ट्रकूटो के वश का राज्य जब सौराष्ट्र मे स्थापित हुआ तब बौद्ध भिक्षुओ ने करुणा-मय और सयममय जीवन बिताने का सदेश यहा पहुचाया। बाद मे जैन दर्शन के उपासक अर्हतो, श्रमणो और श्रावको ने पग-पग पर अहिसा और जीव-दया का पाठ यहा के लोगो की नस-नस मे भर देने का सतत और सगठित प्रयत्न चालू रखा। साथ ही उनकी प्रेरणा से धनीमानी श्रेष्ठियो (सेठो) ने आबू, गिरनार और शेत्रुजा के पर्वत शिखरो पर भव्य और कलामय मन्दिरो का निर्माण किया। साधारण नागरिको के हृदय मे जैनधर्म के प्रसारको ने दान और त्याग और जितना बन पडे उतना कठोर जीवन बिताने की महिमा बढाई। दूसरी ओर, केरल प्रात से आकर श्रीवल्लभाचार्य ने वैष्णव सम्प्रदाय के मन्दिरो की, और अयोध्या की ओर से आकर स्वामी सहजानन्द ने स्वामीनारायण सप्रदाय के मन्दिरो की गाव-गाव मे स्थापना की। इन दोनो वैष्णवाचार्यो ने श्रमजीवी तथा वेदाध्ययन के लिए अनधिकारी माने जानेवाले शूद्रो, वैष्णवो और स्त्रियो को भी राम-कृष्ण की भक्ति, सत्सग और सदाचार की ओर प्रवृत्त करने के लिए कठोर परिश्रम किया। इन सतो ने तपोमय जीवन की सुगध फैलाने के साथ-साथ लौकिक भाषा और लौकिक छदो मे, सुन्दर, सुमधुर और ज्ञान-वैराग्यपूर्ण गीतो का ऐसा प्रवाह बहाया कि अनपढ स्त्री-पुरुषो के कठ मे भी उन पद्यो ने स्थान पा लिया और ऊचे तत्त्वज्ञान एव साधना-मय जीवन का आदर्श लोगो के मस्तिष्क मे घर कर गया।

दिया। साहित्यिक दृष्टि से कहना होगा कि सस्कृत से प्रकृत और प्राकृत से अपभ्रश होकर व्रज तथा राजस्थानी की तरह गुर्जरी गिरा का जो विकास हुआ वह गुजरात और सौराष्ट्र मे प्रारम्भ से एक-सा ही रहा। तीन-चार-सौ वर्ष पहले की प्रचीन गुजराती और आजकल की गुजराती मे प्रायः ऐसा ही भेद है जैसा व्रज भाषा और अर्वाचीन हिन्दी में।

पुराने जमाने मे गुजराती कवि भी अपनी रचना व्रजभाषा मे ही करने मे गौरव मानते थे। प्राय· डेढ-सौ वर्प पहले समर्थ साहित्यकार भट प्रेमानन्द ने गुजराती मे पद्य-साहित्य की रचना करने का बीडा उठाया, तब से लेकर अबतक गुजरात-सौराष्ट्र मे अर्वाचीन गुजराती साहित्य का सतत विकास होता रहा। अग्रेजो ने जब अपने ढग से स्कूलो और कालेजो का जाल बिछा दिया तब विद्वानो ने गुजराती को अत्यधिक सस्कृतमय बनाने का प्रयास किया। कुछ विद्वानो ने फारसी शब्दो और मुहावरो की गुजराती मे काफी भरमार की। लेकिन गाधीजी ने गुजराती को 'विद्वद्भोग्य' न बनाकर 'लोकभोग्य' बनाने का आग्रह रखा और सस्कृत की अति पर अकुश लगा दिया। साथ-ही-साथ अरबी-फारसी की अति का मोह भी मिट गया।

कृष्ण-बलराम मथुरा से अपने दलबल सहित द्वारका पधारे, तबसे यह प्रदेश भारत के हृदयस्वरूप मध्यदेश के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड गया। महाभारत-युग के बाद भी सौराष्ट्र का सबध उत्तर मे आनर्त, लाट, राजस्थान, मालवा, कन्नौज, मगध और दक्षिण मे महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के साथ घनिष्ठ रूप से बना रहा। इधर समुद्र-मार्ग से कच्छ और सिध का भी इतना घनिष्ठ सबध रहा कि सौराष्ट्र की बोली और उच्चारण पर भी वहा का काफी प्रभाव पडा। बरडा-प्रदेश का सबंध आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक क्षेत्र मे सदैव सपूर्ण भारतखड से जुडा हुआ रहा तथा भारत-भर के महापुरुषो, सतो और शूरो ने अपना-अपना प्रभाव यहा पर डाला।

महाभारत की कथाओ से ज्ञात होता है कि द्वारका से लेकर प्रभास-पाटण (सोमनाथ) और रैवत्तक पर्वत (गिरनार) तक, अर्थात् पोर-बन्दर के केंद्र से मीलो की दूरी तक, यादव-समाज बसा हुआ था। जिस भूमि को यादवो ने इतना अधिक समृद्धशाली बनाया, उसी को उन्होने अति विलास और आपसी कलह के कारण ध्वस्त भी कर डाला। कदाचित् इसी अभिशाप के कारण अभी पिछले दिनो तक सौराष्ट्र का यह छोटा-सा प्रायद्वीप प्राय· ढाई सौ रियासतो मे छिन्न-विछिन्न रहा।

यादवो ने जिस प्रकार सूने प्रदेश को आबाद किया उसी प्रकार सुदामा सरीखे विद्वान, त्यागी और तपस्वी ऋषियो ने और सतो ने यहा पर ऊचे चारित्र्य और सतोपमय जीवन की नीव जमाई। अति प्राचीन काल की बात छोडकर निकट के भूतकाल को देखने पर भी ज्ञात होता है कि सतो का आशीर्वाद यहा के समाज को बराबर मिलता रहा है। जूनागढ के निवासी परमभक्त नरसिह मेहता ने हरिजनो के आगनो मे भी भजन गाकर जनता को 'वैष्णव जन' की महिमा समझाई। उनके पद सैकडो वर्षों से अनपढ लोग भी सौराष्ट्र के गाव-गाव और झोपडी-झोपडी मे नित्य ब्राह्म मुहूर्त्त मे गाते रहे है। नरसिह मेहता ने गुजरात के आदि-कवि का विरुद पाया है। उधर द्वारका से मीराबाई के प्रेम-भक्ति के गीतो की ध्वनि सारे वातावरण मे गूज उठी, जो अभी तक लोकहृदय को भावना से विभोर करती रहती है।

सोमनाथ के ज्योतिर्लिंग के उपासक ब्राह्मणो की सस्कारिता ने यहा की जनता को प्रभावित किया। अशोक के प्रतिनिधि और राष्ट्रकूटो के वश का राज्य जब सौराष्ट्र मे स्थापित हुआ तब बौद्ध भिक्षुओ ने करुणा-मय और सयममय जीवन बिताने का सदेश यहा पहुचाया। बाद मे जैन दर्शन के उपासक अर्हतो, श्रमणो और श्रावको ने पग-पग पर अहिंसा और जीव-दया का पाठ यहा के लोगो की नस-नस मे भर देने का सतत और सगठित प्रयत्न चालू रखा। साथ ही उनकी प्रेरणा से धनीमानी श्रेष्ठियो (सेठो) ने आबू, गिरनार और शेत्रुजा के पर्वत शिखरो पर भव्य और कलामय मन्दिरो का निर्माण किया। साधारण नागरिको के हृदय मे जैनधर्म के प्रसारको ने दान और त्याग और जितना बन पडे उतना कठोर जीवन बिताने की महिमा बढाई। दूसरी ओर, केरल प्रात से आकर श्रीवल्लभाचार्य ने वैष्णव सम्प्रदाय के मन्दिरो की, और अयोध्या की ओर से आकर स्वामी सहजानन्द ने स्वामीनारायण सप्रदाय के मन्दिरो की गाव-गाव मे स्थापना की। इन दोनो वैष्णवाचार्यों ने श्रमजीवी तथा वेदाध्ययन के लिए अनधिकारी माने जानेवाले शूद्रो, वैष्णवो और स्त्रियो को भी राम-कृष्ण की भक्ति, सत्सग और सदाचार की ओर प्रवृत्त करने के लिए कठोर परिश्रम किया। इन सतो ने तपोमय जीवन की सुगध फैलाने के साथ-साथ लौकिक भाषा और लौकिक छदो मे, सुन्दर, सुमधुर और ज्ञान-वैराग्यपूर्ण गीतो का ऐसा प्रवाह बहाया कि अनपढ स्त्री-पुरुषो के कठ मे भी उन पद्यो ने स्थान पा लिया और ऊचे तत्त्वज्ञान एव साधना-मय जीवन का आदर्श लोगो के मस्तिष्क मे घर कर गया।

अन्य अनेक कवियो, साहित्यकारो, विद्वानो और ऋषि दयानन्द जैसे विचार-प्रवर्तको ने इस प्रदेश के समाज की बुद्धि को जगाने और सामाजिक जीवन को सुसस्कारी और उन्नतिशील बनाने की परम्परा चालू रखी।

इसके अतिरिक्त मुसलमानो ने अपने पैगम्बर, खलीफा और सूफियो के धार्मिक विचार और सद्व्यवहार का सदेश यहा के लोगो तक पहुचाया। पारसियो की सुजनता का भी यहा के समाज पर अच्छा प्रभाव पडा और फिरगी (पुर्तगाली) तथा अग्रेज जातियो के ससर्ग से भी यहा के समाज मे चेतना आई।

फिर यहा सैकडो वर्षों तक छोटे-छोटे राज्यो और रजवाडो का एक अनोखा सग्रहालय-सा बना रहा, इसलिए गहरी कूटनीतिज्ञता और उत्तम शूर-वीरता की परम्परा भी यहा के समाज मे पनपती रही।

: ३ :

जहां गांधीजी ने जन्म लिया

पृथ्वी के नक्शे मे सुदामापुरी, अर्थात् पोरबन्दर की स्थिति भूमध्यरेखा के उत्तर मे २१–४५ अक्षाश पर और ग्रीनविच से पूर्व मे ६९–३२ रेखाश पर है। पश्चिम सागर की दिन-रात गरजती हुई उत्तुंग तरगे जहा भूमि को अन्तिम वार प्रणाम करके लौट जाती है, वहा से कुछ उत्तर मे समुद्र-तट का सौ-सवा-सौ गज का पट छोडकर, एक नीचा वाध वधा हुआ है। उस वाध के ऊपर एक चौडी पक्की सडक है। इस सडक के दूसरी ओर शहर के पक्के मकान है। इन्ही मकानो के वीच, समुद्र के किनारे से प्राय: पाव मील की दूरी पर महात्मा गाधी के प्रपितामह श्री हरजीवन गाधी द्वारा खरीदा हुआ मकान वरसो से खडा है।

उस मकान की खरीद का दस्तावेज आज भी उपलब्ध है। यद्यपि उसमे कही-कही जन्तुओ ने सूराख कर दिये है, तथापि हाथ के वने कागज पर लिखा गया वह दस्तावेज अव भी सुपाठ्य है और उसकी स्याही तनिक भी फीकी नही पडी है। लेख गुजराती भाषा मे है, परन्तु वह गुजराती आजकल की गुजराती से कुछ भिन्न है। उसकी वाक्यरचना, क्रियापद

आदि आधुनिक गुजराती से मिलते-जुलते हैं, परन्तु कुछ शब्द पुराने जमाने के हैं। लिपि देवनागरी है। उस गुजराती दस्तावेज का हिन्दी-अनुवाद इस प्रकार है:

गांधी हरजीवन रहीदास

ज्येष्ठ सुद पचम, संवत् १८३३ (अर्थात् ईस्वी सन् १८७७)

"उक्त तिथि पर पोरबन्दर मे महाराणा श्रीसरतानजी पचचक्र के प्रवर्तमान होने के समय यह विक्रय-पत्र लिखा गया है। घर १, जिसमे कमरा १ और ओसारा १ जिसमे १ 'मेडा' (सामान रखने के लिए बनाई गई आधी छत) है तथा जिसकी खपरैल काठीवाण पत्थर और टोले पत्थर की वनी है, उसे मेहता गागजी की श्रीबाई मानबाई ने पूर्ण रूप से बेचा है और उस घर को गाधी हरजीवन रहीदास ने पूर्ण रूप से खरीदकर मोल लिया है। उस घर को करावकोरी[1] ५०० अक्षर मे पाच सौ देकर पूरी तरह खरीदकर मोल लिया गया है। इस घर की दिशाओ की तफसील लिखी जाती है कि पूर्व दिशा मे पिछवाडा है, उसके पीछे, एक अहाता है, अहाते मे दरवाजा है। वह अहाता इस मकान का है, उसके पीछे गढ है। दक्षिण दिशा मे जो दीवार है, वहा श्रीजी का घर है और वह दीवार मजमू (साझे की) है। पश्चिम मे दरवाजा है और दरवाजे के आगे एक फाटक है, जिसका सामना दक्षिण मे पडता है। उस फाटक के अन्दर एक पीपल का पेड है। उसके उत्तर मे एक दूसरी दीवार है, जिससे मिला हुआ गाधी करसनदास रहीदास का मकान है। ऐसा मकान मोढ ब्राह्मण गागजी कला की घर वाली श्रीवाई मानबाई ने पूरा-पूरा वेचा है और गाधी हरजीवन रहीदास ने खरीदकर मोल लिया है, उसे पुत्र-पौत्रादिक भोगते रहे।"

इसके नीचे विक्री करने वाली मानवाई के दस्तखत वडे स्पष्ट अक्षरो मे है, परन्तु राणा साहब ने केवल स्वस्तिक चिह्न वना दिया है, क्योकि वह लिखना-पढना नही जानते थे। स्वस्तिक के अलावा उनके नाम की मोहर लगी हुई है। दस्तावेज पर गवाह के रूप मे दूसरे सात व्यक्तियो के दस्तखत है, जिनके नामो से पता चलता है कि भिन्न-भिन्न पूर्ण वर्ण के नागरिको से उन दिनों गवाही ली जाती थी। गवाहो के नाम ये है—

---

१. सौराष्ट्र में पुराने जमाने में रुपये के स्थान पर कोरी चलती थी, जो चांदी की होती थी और रुपये की चार मानी जाती थी।

१. अध्वर्यु रामजी भीमजी, २. परीख काशीदासजी; ३. ठक्कर त्रिकमजी नानजी, ४. शेशकरण हीरजी, ५. कडवा धरमदास; ६. ओधवजी नानजी; ७. गागजी भीमजी।

गाधीजी के इस पुश्तैनी मकान के चारो ओर पोरबन्दर के पुराने शहर की घनी बस्ती फैली है। पुराने बाजार भी इसी जगह पर केन्द्रित है। नगर के चारो ओर आजकल कही परकोटा नजर नही आता, पर पुराने समय मे था। खुला समुद्र जहा खाडी मे प्रवेश करता है, वहा पर एक घाट बना है, जिसे अस्मावती घाट कहते है। घाट से आगे चलने पर माल को चढाने-उतारने के लिए जो पुश्ता बना है उसे माडवी कहते है। माडवी से लेकर प्राय: चौथाई मील तक एक सकरी गली मे पुराना बाजार लगा हुआ है, जहा पर अधेरी दुकानो मे काफी व्यापार चलता रहता है। जहा पर माडवी का यह बाजार पूरा होता है, वहा एक छोटा-सा खुला चौक है, जिसे माणिक चौक कहते है। इस चौक की चारो दिशाओ मे सुदर दरवाजो से आगे फिर नए-पुराने ढग के बाजार लगे हुए है। माडवी बाजार से जो रास्ता माणिक चौक मे आता है, उसके बाई ओर के दरवाजे मे प्रवेश करने पर बाए हाथ पर पहला मकान श्रीनाथजी की हवेली है और उस हवेली के पीछे हमारा उपर्युक्त पुराना मकान है, जिसका मुहाना अब आगे बढाकर 'कीर्ति-मन्दिर' बनाया गया है और जिसका प्रवेशद्वार श्रीनाथजी की हवेली की सीध मे मिला दिया गया है।

सन् १९४७ मे पूज्य बापूजी की उपस्थिति मे ही उनकी स्वीकृति पाकर पोरबन्दर के बड़े व्यापारी श्री नानजी सेठ और महाराणा ने मिल कर इस पुराने मकान के बाहर और अन्दर बहुत रद्दोबदल कर दी। विश्वयात्री जब यह स्थल देखने आते थे तब उन्हे बहुत छोटे-से खाचे मे से गुजरकर एक दालान मे जाना पडता था, जहा हवा-प्रकाश की इतनी कमी थी कि भरी दोपहरी मे भी बापूजी के जन्मस्थल वाले कमरे को टार्च की रोशनी के सहारे देखना पडता था। दर्शको के आवागमन की सुविधा के लिए तथा महात्माजी के स्मृति-चिह्न कीर्ति-मन्दिर की स्थापना के लिए पुराने मकान का भी कुछ हिस्सा गिरा देना पडा और श्रीनाथजी के मन्दिर तथा अन्य निजी मकानो का भी कुछ हिस्सा लेकर आवश्यक स्थान बनाना पडा। कीर्ति-मन्दिर के बनने से पहले उक्त मकान एक सदूक जैसा बना हुआ था। मुश्किल से दस-बारह हाथ के चौकोर दालान के तीन ओर उस मकान को तिमजिला उठाया गया था और प्रवेशद्वार की दीवार भी ऊचे तक चिन दी गई थी।

तीनो मजिलो को अब रगवा-पुतवाकर और प्रकाश के लिए कही-कही नई खिडकिया लगवाकर नया-सा बना दिया गया है, किन्तु उसका पुराना ढाचा ज्यो-का-त्यो रखा गया है। उसके अन्दर कमरे का क्षेत्रफल कम है, परन्तु प्रत्येक कमरा बहुत पक्का बना है। श्री उत्तमचन्द गाधी के सात पुत्र और अनेक पौत्रो के परिवार इसमे अलग-अलग रहते थे और अपनी-अपनी रसोई बना लेते थे। साथ ही सम्मिलित परिवार का आनन्द भी पा लेते थे। एक कमरे से दूसरे कमरे मे जाने के लिए बने हुए दरवाजे भी इतने मजबूत है कि उन्हे बन्द करने पर कमरे सुरक्षित सदूकनुमा बन जाते थे। खिडकी-दरवाजे बन्द करने पर भी रोशनदान से उनमे धीमा प्रकाश और आवश्यक हवा आ सके, इसकी सुविधा रखी गई थी। इस युग मे यह मकान बिलकुल साधारण और छोटा-सा माना जायगा, पर श्री उत्तमचन्द गाधी के जमाने मे वह बडी सुविधा का माना जाता था। ज्यो-ज्यो परिवार बढता गया त्यो-त्यो मकान मे वृद्धि होती गई और खपरैल हटाकर एक के ऊपर दूसरी मजिले तैयार की गई।

`सन् '४७ मे जब बापूजी नई दिल्ली मे वाल्मीकि मन्दिर मे ठहरे हुए थे और अग्रेजी राज्य को विदा करने के काम मे व्यस्त थे, तब पोरबन्दर-निवासी गाधी-परिवार के दो युवक उन्हे प्रणाम करने दिल्ली पहुचे थे। उस समय हमारे पुरखो के मकान मे रहने वाले एक परिवार से कीर्ति-मन्दिर के निर्माण के लिए मकान खाली कराने की बात चल रही थी। उस चर्चा के समय बापूजी ने अपनी स्मृति को ताजा करते हुए कहा था, "वह मकान भूला नही जा सकता। तिमजिले पर जाकर बैठे तो समुद्र की शीतल वायु बराबर चलती रहती है। परन्तु जब बिल्कुल नीचे के तलेवाले कमरे मे जाते है, तो पाच मिनट के लिए भी बैठना कठिन हो जाता है। इतना अधिक वह गरम और बन्द-सा है।"

बापूजी ने नीचे की जिस मजिल को इतना गरम और बन्द बताया, उसी के एक प्रकाशहीन और बन्द-से कमरे मे उनका जन्म हुआ था और माता पुतलीबाई ने उसी कमरे मे अपना जीवन बिताया था। उस कमरे की लम्बाई २० फुट, चौडाई १३ फुट और ऊचाई ११ फुट है। कमरे के दरवाजे मे जाने पर दाए कोने मे एक दूसरे कमरे का दरवाजा पड़ता है। यह अन्दरवाला कमरा बापूजी के पिताजी श्री करमचन्द गाधी की माता तुलसीमा के रहने का १२×१२॥ फुट के नाप का है और पहले काफी अधेरा था। इस अन्दरूनी कमरे के दरवाजे और बाहर वाले दरवाजे के मध्य मे जो तेरह फुट की जगह है, उसके बीच मे गुजराती

ढग का झूला टगा रहता था, जो प्रसूति की खाट बिछाने के लिए हटा दिया जाता था। प्रवेशद्वार के बाई ओर उसी छोटे कमरे मे पानी रखने की गुजराती ढग की ऊची 'पल्हेडी' बनी हुई थी। उससे सटकर अनाज रखने की मिट्टी की सुडौल कोठिया और बडे-बडे मटको की खूबसूरत कतार लगी रहती थी। कोठी और मटके की उस कतार के ऊपर पीतल और तावे के वर्तन सजाकर रखे जाते। पल्हेडी के बाई ओर ६॥×५॥ फुट का एक छोटा रसोईघर है, जिसमे दो व्यक्ति भी एक साथ कठिनाई से बैठ सकते है।

बापू के जन्मवाले कमरे के बाहर जो बरामदा बना हुआ है, वह असाधारण है। उसके नीचे पानी का एक विशाल हौज है, जिस पर तीन-चार मेहराब बाधकर वह ओसरी बनाई गई है और उसी पर फिर तिमजिला मकान खडा किया गया है। हौज की गहराई १५ फुट और लम्बाई-चौडाई २०×१० फुट है, जिसमे प्राय बीस हजार गैलन पानी समाता है। चूकि पोरबन्दर समुद्र के बिल्कुल किनारे पर बसा हुआ है, अत पीने के लिए मीठा पानी मिलना भी कठिन हो जाता है। कुआ खोदने पर अवश्य अच्छा जल मिल जाता है। परन्तु वह स्वादहीन और फीका होता है। पोरबन्दर के बुद्धिमान नागरिको ने यत्रयुग से पहले ही हौज बनाकर वर्षा-जल का सग्रह करने की सुन्दर व्यवस्था नगर के अनेक मकानो मे की है। चौमासे के आरम्भ मे सबसे ऊपरवाली पक्के पत्थर की छत के फर्श को धो दिया जाता है और जिस नाली से पानी हौज मे जाता है, उस के मुह के पास चूने की ढेरी लगा दी जाती है। इतनी-सी सार-सम्हाल से यह हौज करीब दो सौ वर्ष से काम दे रहा है। इसमे इकट्ठा होने वाला जल पूरे वर्ष तक पीने के लिए पर्याप्त होता है। घरवाले ही नही, अन्य नागरिक भी बडे घर की टकी का जल एक-एक घडा नित्य ले जाते है, क्योकि ऐसे पानी के बिना पोरबन्दर मे अरहर की दाल नही पक सकती और अरहर की दाल और भात के बिना शाम की ब्यालू से पोरबन्दर वालो को सतोष नही होता।

इस ऊची ओसरी के नीचे जो दालान है, उसी मे गाधीजी का लग्न-मडप रचा गया था और यही से चलकर बरात घूमती-फिरती इस मकान के पीछे सात-आठ मकान छोडकर कस्तूरबा के पिता के घर पहुची थी। इस छोटे से दालान के पूर्व की ओर, अर्थात् बापूजी के जन्म के कमरे के ठीक सामने मेरे दादाजी का हिस्सा उस मकान मे था। इससे पता चलता है कि मेरे पितामह श्रीखुशालचन्द गाधी की उनके साथ बड़ी घनिष्ठता

थी। आगे चलकर श्री खुशालचन्द गाधी के पुत्र और मेरे काका मगनलाल गांधी हमारे परिवार-भर मे बापू के मार्ग का अधिक-से-अधिक अनुसरण करनेवाले सिद्ध हुए।

इस मकान मे दो-तीन ऐसे दर्शनीय स्थान थे जो अब नया कीर्ति-मन्दिर बनने पर लुप्त हो गए है। बापूजी के प्रपितामह श्री उत्तमचन्द गाधी—ओतावापा—ने जब राजमाता की हुकूमत के समय राजमाता के सामने सत्याग्रह किया था, तब मकान पर राजमाता की आज्ञा से तोप चलवाई गई थी, जिससे दीवार मे छेद पड गए थे। यद्यपि बाद मे उन छेदो को बन्द कर दिया गया था तथापि गोले के निशान रह गए। गोले की मार से दीवार का ऊपरी हिस्सा गिर गया था। दीवार बडी मोटी होने की वजह से ज्यादा नुकसान तो नही हुआ, फिर भी वहा पर दीवार मे कमजोरी आ गई थी। अब सारी-की-सारी नई चिनकर अधिक मजबूत बना दी गई है।

दूसरा दर्शनीय स्थान ऊपर की मंजिल की एक छोटी-सी कोठरी थी, जिसमे पर्याप्त हवा और उजाला था। उस कोठरी मे पुराने ढग के कुछ भित्ति-चित्र थे। इतने बरसो के बाद देखने पर भी मुझे उसके फूल और पत्तियो के चित्रो का रग चमकता हुआ दिखाई दिया। इन सुन्दर दीवारो मे जहा पुराना पलस्तर टूट जाने के कारण आजकल के कारीगरो ने मरम्मत की है और चूना पोता है, वह बिलकुल अलग दिखाई पड़ता है। बापा की पूजा के लिए यह कोठरी अलग से बनाई गई होगी।

तीसरा लुप्त स्थल, गाधीजी का कमरा कहा जाता था। जन्म-स्थान वाले कमरे से सटकर एक और दुमंजिला मकान था, जो कीर्त्ति-मन्दिर की रचना के समय गिरा दिया गया। इस दुमजिले पर बापूजी गृहस्थाश्रम-प्रवेश के बाद कुछ ही समय रह पाये थे, परन्तु वह कहा जाता था बापूजी का हिस्सा।

इस मकान की बनावट इतनी पक्की और मजबूत है कि अब भी सैकडो वर्षो तक वह ज्यो-का-त्यो टिक सकता है। प्रत्येक मजिल की छते नीची है और उसकी कडिया बहुत मोटी और पक्की लकडी के लट्ठो की बनी है। लकडियो मे अभी तक कही भी कच्चापन नही आया है। इसमे एक जगह पत्थर की सुन्दर नक्काशी वाली दो-एक जालिया थी और कई जगह लकड़ी की नक्काशीवाली सुन्दर खिडकिया थी।

लेकिन अब उस पुराने मकान का दृश्य नए कीर्त्ति-मन्दिर[1] के सामने दब गया है।

: ४ :

गांधीजी के पूर्वज

कुतियाणा मे गाधी-परिवार की कुलदेवी का छोटा-सा, प्राय. घुटनों के बराबर ऊचा मन्दिर है। इस मन्दिर का अहाता बहुत छोटा है। हमारे परिवार मे यह रिवाज था कि नव-विवाहित वर-वधू को हमारी कुल-देवी 'सती-मा' के पास आशीर्वाद लेने के लिए कुतियाणा जाना पडता था। इस परिपाटी से एक बडा लाभ यह होता था कि देश-विदेशों मे बिखरे हुए परिवार के सदस्यो को अपने मूल-स्थान के बारे मे बहुत-सी भौगोलिक और सामाजिक जानकारी मिल जाया करती थी।

गुजराती मे पसारी को गाधी कहते है। गुजरात-सौराष्ट्र मे जिस किसी के यहा जडी-बूटिया, नमक-मसाले, हल्दी-फिटकरी, आदि वस्तुए बिकती है वह गाधी कहलाता है, चाहे वह हिंदू हो, जैन हो, पारसी हो, मुसलमान हो, या कोई और। हमारे किसी पूर्वज ने बीसियो पुश्त पहले कहो पसारी की बढिया दूकान चलाई होगी। इस कारण वह और उनके सब वशज 'गाधी' के नाम से विख्यात हो गए होगे। हमारे पूर्वजो मे सबसे पहले श्री लालजी गाधी का नाम उपलब्ध होता है। श्री लालजी गाधी की पाचवी पीढी मे श्री उत्तमचन्द गाधी का जन्म हुआ और

---

१. बापू की स्मृति में कीर्त्ति मन्दिर की स्थापना की गई है। इस कीर्त्ति-मन्दिर के बीच में संगमरमर का एक चौड़ा सुन्दर चौक है। उसके चारों ओर २६ खम्भों पर बापूजी के सदुपदेश के सुवाक्य खुदे हुए हैं, कलापूर्ण शिखर वाले गर्भागार में पूज्य बापू और बा के आदमकद फोटो लगे हैं और दोनों ओर के कमरो में बापू के रचनात्मक कार्य का कुछ-न-कुछ काम प्रदर्शित किया गया है। कीर्त्ति-मन्दिर के संचालकों का प्रयत्न है कि यहां पर आने वाले यात्री बापू के सत्य और अहिंसा के सिद्धांत पर आधारित समाज-व्यवस्था की कुछ-न-कुछ जानकारी लेकर ही लौटें।

सातवी पीढी मे पैदा हुए हमारे बापूजी—राष्ट्रपिता महात्मा गाधी।

वैसे गाधी-परिवार वैश्यो की उस उपजाति मे है, जो मोढवणिक की जाति कहलाती है। उत्तर गुजरात मे अणहिलपुर-पाटण और सिद्धपुर पाटण के बीच मे मोढेरा नाम का एक गाव पडता है। वहा पर मोढेरा देवी का एक सुन्दर कलापूर्ण मन्दिर है। उसी केन्द्र से मोढे लोगो ने अपनी अलग परिधि कायम की होगी। मोढेरा से चलकर ये मोढ बनिए कर्णावती (अहमदाबाद), स्तम्भ-तीर्थ (खभात) और वहा से सौराष्ट्र के घोघावदर मे जा बसे होगे।

गुजरात के इतिहास मे सुप्रसिद्ध जैन-धर्माचार्य श्रीहेमचन्द्र सूरि का जन्म एक मोढ बनिए के घर हुआ था। किसी जैन यति ने बालक हेमचन्द्र की विलक्षण बुद्धि को पहचाना और उसके माता-पिता को समझा-बुझा-कर उस बालक को प्राप्त कर लिया। फिर उसे दीक्षा देकर परम विद्वान बनाया। भारत-भर के प्रथम श्रेणी के प्राचीन विद्वानो मे और ऊचे चरित्र वाले समस्त सतो मे श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य की गणना की जाती है। उनकी जीवनी को जब हम पढते है और उनके अलौकिक व्यक्तित्व का अध्ययन करते है तब चित्त को विशिष्ट प्रकार की सात्विक प्रसन्नता होती है और मन मे सत्सकल्पो की वृद्धि होती है। ऐसे महापुरुष के एक हजार वर्ष बाद, उनसे भी बढकर प्रभावशाली और सत-हृदय महात्मा गाधी-जैसे नररत्न का वैश्यो की इसी मोढ-वणिक उपजाति मे सौराष्ट्र के ही एक दूसरे बन्दरगाह मे जन्म हुआ। यदि इस घटना को केवल आकस्मिक न मान लिया जाय तो इसमे सास्कारिक परम्परा की झलक मिल सकती है।

इन दोनो महात्माओ के जीवन और स्वभाव मे कई लक्षण मिलते-जुलते है। जनता के उत्थान के लिए दिन-रात सजग रहना और अथक परिश्रम करना, अपने अनुयायियो का जीवन सादा और सयमी बनाने का आग्रह रखना, मोटे और कम-से-कम वस्त्रो से गुजर करने का व्रत पालना, राजनीति पर अधर्म का रग चढने से रोकना, इत्यादि कई बाते दोनो मे एक-सी है। जैसे आधुनिक गुजराती साहित्य के निर्माण मे गाधी-जी का बहुत बडा हाथ है वैसे ही प्राचीन गुजराती-साहित्य के निर्माण मे श्री हेमचन्द्र सूरि का हाथ माना जाता है। गुजराती का सर्वप्रथम व्याकरण हेमचन्द्राचार्य का ही लिखा हुआ है।

गुजरात सौराष्ट्र के बनियो मे से कुछ लोगो ने व्यापार-वाणिज्य का काम किया तो कुछ ने राजसेवा का। राजसेवको को राजाज्ञा के अनुसार

राज्य के भिन्न-भिन्न कस्बो और परगनो मे अपनी नौकरी के कारण जाना पडता होगा। श्री लालजी गाधी को अथवा उनके किसी वशज को जूनागढ के अधीन कुतियाणा ग्राम मे नौकरी मिली होगी। बाद मे वह भादर नदी का हरा-भरा किनारा और शात एव सुन्दर स्थान कुतियाणा देखकर वही बस गए होगे।

परिवार का इतिहास देखने पर पता चलता है कि सौराष्ट्र की रियासतो मे चलने वाले राजकीय सघर्षो मे हमारे पूर्वज भी उलझे हुए रहते थे। एक ही रियासत मे शायद ही किसी की नौकरी लगातार बनी रहती हो। यदि पिता के बाद पुत्र को वह नौकरी मिलती थी तो वह पुत्र के अपने ही बूते से मिलती थी। केवल पिता की विरासत होने की वजह से पुत्र ने किसी रियासत मे अमात्य की जैसी ऊची नौकरी पाई हो, ऐसा उदाहरण कम है। न्याय-निष्ठा, उदारता और प्रेमभरे बर्ताव के कारण जो लोकप्रिय बन सकता हो, ऐसे ही व्यक्तियो को चुनकर राजा लोग अपने अमात्य-पद—दीवानगिरी—पर नियुक्त करते थे। वह अमात्य फिर अपने ही भाई-भतीजो और विश्वासपात्र मित्रो को राज्य की नौकरी मे रखवाने का प्रयत्न करता था। जब राजा के पास किसी दूसरी जाति या खानदान का वसीला बढता था तब पहले वाला प्रायः सारा-का-सारा परिवार राज्य की नौकरी से अलग हो जाता था और उस परिवार के प्राय: सभी लोग व्यर्थ की खीचा-तानी या सघर्ष छोडकर शातिपूर्वक, यथाशक्ति व्यापार-रोजगार करके अपना जीवन-निर्वाह करते थे।

इसी प्रकार से हमारे पूर्वज श्री लालजी गाधी से लेकर, या उनसे भी पहले से, गाधी-परिवार के लोगो को समय-समय पर सौराष्ट्र की रियासतो मे बराबर नौकरिया मिलती रही और छूटती भी रही। राज्य की नौकरी के लिए मारे-मारे फिरने की उनमे आदत नही थी। मालिक की नाराजी या उसके विश्वास मे कुछ कमी देखकर वे लोग बिना हिचकिचाहट के अपनी नौकरी से त्याग-पत्र दे देते थे और जब नौकरी के लिए राज्य की ओर से बुलावा आता था तभी वे प्रामाणिकता और निष्ठा से राजसेवा करने के लिए तत्पर हो जाते थे। कुतियाणा जूनागढ रियासत मे होते हुए भी पोरबन्दर के बिलकुल पास बसा है। इसलिए गाधी-वश के अधिकतर युवको को ही नौकरिया मिलती रही और राज्य का विलीनीकरण होने तक श्री लालजी गाधी के वशज पोरबन्दर मे राज्य की नौकरी मे रहे।

श्री लालजी गाधी के पुत्र श्री रामजी गाधी पोरबन्दर राज्य में

'दफ्तरी' (दफ्तर के अधिकारी) थे। आजकल मन्त्रिमडल मे गृहमत्री का जो उत्तरदायित्व होता है, प्राय. वही उत्तरदायित्व उन दिनो दफ़्तरी का होता था।

जूनागढ के नवाब की ओर से कुतियाणा ग्राम मे उनको थोडी-सी इनामी जमीन मिली थी। सच पूछे तो गाधी-परिवार की पुश्तैनी जायदाद केवल जमीन का यह दो एकड से भी छोटा टुकडा है। हमारे पूर्वज कभी जमीन-जायदाद या बाग-बगीचे वाले रहे हो, ऐसा उल्लेख नही मिलता। वे सदा निम्न मध्यम श्रेणी के ही थे।

श्री रही दास गाधी के दो पुत्र थे—श्री हरजीवन गाधी और श्री दमन गाधी। श्री हरजीवन गाधी के पुत्र हुए श्री उत्तमचन्द गाधी। श्री हरजीवन गाधी भी पोरबन्दर मे 'दफ़्तरी' थे और बाद मे उनके छोटे भाई दमन गाधी भी उसी पद पर रहे।

गाधीजी के प्रपितामह श्री हरजीवन गाधी की निर्भीकता की एक दतकथा सुनी गई है। उससे पता चलता है कि हरजीवन बापा डर कर दबने वाले व्यक्ति नही थे।

जब उनके छोटे भाई दमन गाधी पोरबन्दर राज्य के दफ्तरी नियुक्त हुए तब वह छुट-पुट व्यापार किया करते थे। कहा जाता है कि एक बार जब हरजीवन बापा देहाती नाव मे कच्छ से पोरबन्दर लौट रहे थे, अरब वालो के दो-एक जहाजो ने उसे घेर लिया। यह एक नियमित समुद्री डकैती थी या कुछ और, इसका ठीक पता नही चलता। उन अरब जहाज वालो ने हरजीवन बापा के जहाज को अपने साथ ले चलने की चेष्टा की। उस जमाने मे इक्के-दुक्के चलने वाले जहाज को पकडकर उनका माल लूट लिया जाता था और उनके यात्रियो को गुलाम बनाकर दूर देशो मे ले जाकर बेच दिया जाता था। हरजीवन बापा की नाव को घेरकर उन पर सख्ती की गई तो उन्होने लुटेरों के साथ जाने से साफ इकार कर दिया। कायर बनकर उनके साथ जाने के बजाय वह उसी जगह मरने के लिए तैयार हो गए। खाना-पीना छोड दिया और जमकर अपनी जगह पर बैठ गए। स्वेच्छा से उठकर चलना उन्होंने बिल्कुल अस्वीकार कर दिया। शायद विरोधी दल के पास इतने साधन नही थे कि हरजीवन बापा की नाव को बलपूर्वक बाधकर ले जाते। डरा-धमकाकर वे उस नाव को ले जाने की कोशिश मे लगे रहे। उनका ख्याल था कि ये बनिए लोग डरकर उनके वश मे हो जायगे। कहा जाता है कि किसी दूसरी नाव के नाविको ने इस घटना का समाचार पोरबन्दर के बन्दरगाह मे पहुचाया। पोरबन्दर के

राणा साहब को इस बात का पता चला तो उन्होने राज्य के बलिष्ठ नाविको को भेजकर हरजीवन बापा को उस विपत्ति से छुडाया।

श्री हरजीवन गाधी और श्री दमन गाधी दोनो भाइयों के बीच एक ही पुत्र श्री उत्तमचन्द गाधी थे। दोनो भाइयो का पोरबन्दर मे स्थायी निवास था और वही उन्होने पत्थर का वह पक्का मकान खरीदा, जिसका उल्लेख पिछले अध्याय मे किया जा चुका है।

श्री उत्तमचन्द गाधी की प्रगति और विकास मे उनके चाचा श्री दमन गाधी बहुत सहायक रहे। जब श्री दमन गाधी पोरबन्दर राज्य के 'दफ्तरी' का उत्तरदायी पद सम्हाल रहे थे तब उनके साथ काम करके युवक उत्तमचन्द प्रगति के पथ पर बहुत आगे बढ गए।

: ५ :

पराक्रमी पितामह

श्री उत्तमचन्द गाधी (उर्फ ओता गाधी) ने विद्याभ्यास कितना किया, कहा किया इसकी कोई जानकारी नही मिलती। परन्तु अपनी प्रारम्भिक पढाई पूरी करने के बाद जब श्री उत्तमचन्द गाधी ने कुमारावस्था मे पदार्पण किया और किसी रोजगार मे लग जाने की समस्या उनके सामने आई, तब उन्होने अपने पिता और चाचा के मार्ग से भिन्न एक नये मार्ग का अनुसरण किया। पिताजी व्यापार का काम करते थे। उसमे शायद श्री उत्तमचन्द गाधी को दिलचस्पी नही थी। उधर, उनके चाचाजी, जो राज्य की नौकरी करते थे और दफ्तरी का उत्तरदायी पद सभाले हुए थे, राणा साहब से कहकर अपने भतीजे को राज्य मे सीधी नौकरी नही दिला सके। शायद ऐसी माग करना उनके चाचा (श्री दमन गाधी) को अनुचित प्रतीत हुआ होगा। इसलिए उन्होने युवक उत्तमचन्द को एक स्वतन्त्र काम दिलवाया। वह काम था पोरबन्दर के बन्दरगाह पर समुद्र के द्वारा होने वाले व्यापार पर चुगी वसूल करने के ठेके का। जहा पर सामुद्रिक जकात वसूल करने का यह काम होता था उस स्थल का नाम 'मीठी माडवी' था।

उत्तमचन्द गाधी ने जब मीठी माडवी का उत्तरदायित्व सम्हाला

तब उनकी उम्र छोटी ही थी—मसे भीगी ही थी। फिर भी बडी दक्षता से उन्होने सामुद्रिक चुगी का यह काम किया और नाम कमाया।

चुगी की ठेकेदारी के काम से जो कुछ समय बचाया जा सकता था उसमे वे नित्य-प्रति श्री दमन गाधी की कचहरी मे जाने लगे और वहा विधिवत् दफ्तरी का काम सीखने लगे। थोडे ही समय मे श्री दमन गाधी के काम का बोझ बहुत हल्का हो गया। वह अब कुछ विश्राम लेने लगे और उनके कई काम युवक उत्तमचन्द गाधी अपनी ही सूझ से फुर्ती के साथ निपटाने लगे।

श्री उत्तमचन्द जिस प्रकार बुद्धि, व्यवहार और काम मे तेजस्वी और दक्ष थे उसी प्रकार देखने मे भी बहुत प्रभावशाली थे। वे आजानुबाहु थे। जब तनकर बिल्कुल सीधे खडे होते थे तब उनकी हथेलिया उनके घुटनो से नीचे तक लगती थी। यह वीर पराक्रमी पुरुष का लक्षण माना जाता है। उनका भाल-प्रदेश उन्नत और दमकता हुआ था। उनकी दृष्टि ऐसी पैनी व तेज थी कि जो आदमी उनके पास जाता था, झेप जाता था और अपने मन की बात कहते हुए हकलाने लगता था। फिर भी, लोगो के लिए वे दूर के या गैर-व्यक्ति नही थे। सब लोग उन्हे 'उत्तमचन्द गाधी' के शिष्टाचार-भरे नाम के बदले 'ओता-गांधी' के प्यार के नाम से पुकारते थे।

घर मे, गाव मे और राजदरबार मे जो बुजुर्ग लोग थे, उनके लिए वह 'ओता' या 'ओता-गाधी' थे और छोटो के लिए 'ओताबापा'।

ओताबापा के पहले उनके पूर्वजो मे से किसी ने भी राज्य की नौकरी मे अधिक ऊचा पद पाया हो, इसका सकेत गाधी-परिवार के इतिहास मे नही मिलता। ओता बापा ने ही पहले-पहल दीवान का पद पाया। इस स्थान पर वह किसी के साथ स्पर्धा करके, अर्जिया देकर या उलटी-सीधी कोशिश करके नही, बल्कि अपने सामने आए हुए काम को शक्ति-भर अच्छी तरह पूरा करके पहुचे थे।

एक दिन पोरबन्दर के राणा खेमाजी ने किसी महत्वपूर्ण समस्या को निबटाने के लिए श्री दमन गांधी को बुलावा भेजा। जब राणा साहब का आदमी बुलाने आया तब दमन गाधी कचहरी मे उपस्थित नही थे, कही बाहर गये थे। ओता बापा की जगह पर कोई और युवक होता तो राणा का बुलावा सुनकर घबराहट मे पड जाता और कचहरी के बडे अधिकारी श्री दमन गाधी को बुलाने के लिए दौड उठता; परन्तु श्री ओता गाधी साहसी युवक थे। बिना हिचकिचाहट के वह सीधे चल

दिए और राणा साहब के पास खुद हाजिर हुए । उस समय राजदरबार की विधि के अनुसार राणा साहव का अभिवादन करके नम्रता के साथ ओताबापा ने कहा, "मेरे चाचाजी कचहरी के बाहर गये हुए है। इस कारण मै आपके पास हाजिर हुआ हू । जो सेवा हो, आज्ञा कीजिए । जो कुछ मुझसे बन पडेगा, करूगा । मै भी आपका सेवक ही तो हू ।"

लडके की चतुराई, उसकी वाक्पटुता और उसका साहस देखकर राणा साहब प्रभावित हुए और एक अनुभवी कर्मचारी के करने का काम उसे सौपा । ओताबापा ने वह कार्य बडी सावधानी और दक्षता के साथ पूरा कर दिया। यह देखकर राणा साहब के दिल मे ओता बापा के लिए भरोसा जम गया ।

दूसरे ही दिन राणा साहब ने ओताबापा को दुबारा अपने दरबार मे बुलवाया और पूछा, "ओता, एक पेचीदा कार्य करना है। है साहस ?"

ओताबापा ने नम्रता से कहा, "ऐसा कौन-सा काम है जो आपके लिए इतना कठिन है ?"

राणा साहब बोले, "माधवपुर का इजारदार बडा ढीठ होता जा रहा है। हमे कमजोर समझकर वह हमारी अवहेलना कर रहा है । कई किश्तो की अदायगी खाली जा रही है। उसको सीधा करना पडेगा।"

ओताबापा ने कहा, "यह कौन-सा बड़ा काम है ? मै जाता हू माधवपुर ।"

राणा साहब बोले, "पर वहां जाकर करोगे क्या, यह तो बताओ ।"

ओताबापा ने कहा, "इसका पता तो तब चलेगा जब वहा जाऊ और देखू। आपके आशीर्वाद से काम अवश्य बन जायगा। आप अपना पक्का भरोसा मुझ पर रखिए और आशीर्वाद दीजिए कि बेडा पार हो। अपने बूते पर वह काम मुझे थोड़े ही करना है, आप ही के नाम पर तो करना है ।"

तैयारी करके बापा माधवपुर के लिए चल पड़े।

यह उस समय की बात है, जब सौराष्ट्र के प्रदेश मे अग्रेजो के आधिपत्य का प्रारम्भ हो ही रहा था। सौराष्ट्र की कुल रियासते एक ही सम्राट् की अधीनता मे पूरी तरह से सगठित नही की गई थी। जूनागढ और जामनगर-जैसे प्रबल राज्य पोरबन्दर सरीखे निर्बल पडोसी राज्यों की सीमा को बलात् दबाते चले जा रहे थे। पोरबन्दर राज्य मे इतनी शक्ति नही थी कि वह अपने यहा हस्तक्षेप करने वाले राज्यो से मुठभेड करता। पोरबन्दर राज्य उस समय काफी दब चुका था। उसका शासन गिने-चुने

गावो तक ही सीमित रह गया था। जूनागढ राज्य ने जगह-जगह कई गाव हडप लिये थे और उनमे से कुछ मे पोरबन्दर की जैसी छोटी-मोटी पट्टिया बच गई थी, जहा से केवल भूमिकर वसूलकर पोरबन्दर राज्य को सतोष मानना पडता था। उसकी और कोई सत्ता वहा नही चलती थी।

माधवपुर का बन्दरगाह पोरबन्दर राज्य का ही था। वहा के यातायात और व्यापार पर सामुद्रिक कर वसूल करने का अधिकार पोरबन्दर राज्य के पास था, परतु अब बात यहा तक बढ गई थी कि माधवपुर का इजारदार जूनागढ के बल के भरोसे पोरबन्दर के राज्य-कर की सारी रकमे स्वय निगलने पर तुल गया था। पोरबन्दर के नाम से सामुद्रिक कर वसूल करके वह उसकी एक भी किश्त राज्य-कोष मे जमा नही करा रहा था।

राणा साहब खीमाजी ने कच्ची उम्र वाले ओता गाधी को इस कठिन समस्या का हल करने व हाथ से जानेवाली वसूली को बचा लेने के लिए माधवपुर भेजा। ओतावापा ने वहा जाकर बडी धीरता और गम्भीरता से काम लिया। पोरबन्दर के राणा की अवज्ञा करने के कारण इजारदार को डाट-डपट न करने तथा उसके पास दबे हुए राज्य-शुल्क को निकलवा लेने के लिए कुछ भी कडवी बात न करने की सतर्कता बापा ने रखी। उन्होने सोचा कि जब हमारे पास लडने-झगडने के लिए आवश्यक बल है ही नही तब व्यर्थ बल-प्रदर्शन से हमारी मानहानि ही होगी, धन तो मिलेगा नही और प्रतिष्ठा घट जायगी। इसलिए अच्छा यही होगा कि इजारदार से मोर्चा न लेकर जहा से उसको सहारा मिल रहा है, उस जड को ही दूर कर दिया जाय।

इस बात को ध्यान मे रखकर उन्होने सूक्ष्मता से अध्ययन किया कि जूनागढ राज्य का दखल पोरबन्दर राज्य की सीमा मे कहा-कहा पर और किस प्रकार है। फिर उन्होने जूनागढ के राज्याधिकारियो से कूटनीतिक स्तर पर बाते शुरू कर दी। अपनी नम्रता और कुशाग्र बुद्धि के सहारे इस अकेले युवक ने अत्यन्त चतुर और ताकत मे बढे-चढे राजपुरुषो को समझौते करने के लिए बाध्य कर दिया। उन्होने ऐसी जोरदार भूमिका बांधी कि पोरबन्दर का जो राज्य नित्यप्रति जर्जर और शिथिल होता चला जा रहा था, उसमे नया जीवन और ठोसपन आ गया।

ओतावापा ने जूनागढ राज्य से जो समझौता किया उसमे उन्होंने जूनागढ राज्य के अन्दर जगह-जगह, विभिन्न गावो मे, पोरबन्दर की जो छुटपुट पट्टियां थी, उनका महसूल वसूल करने का दीवानी हक छोड दिया। राणा साहब के राज्य की निश्चित वार्षिक आय पर से बिल्कुल

ही हाथ उठा लेना कम साहस का काम न था। परन्तु पूरे आत्म-विश्वास के साथ ओतावापा ने यह कदम उठाया। जूनागढ के राज-कर्मचारी सतुष्ट हो गए और उन्होने ओता गाधी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। ओतावापा ने जूनागढ़ राज्य से लिखवा लिया कि माधवपुर से लेकर पोरबन्दर तक के सारे समुद्र-किनारे के गावो मे जूनागढ राज्य का कोई दखल नही रहेगा और वे सब-के-सब गाव पूर्णतया पोरबन्दर राज्य की ही अधीनता मे रहेगे। अर्थात् उन पर दीवानी-फौजदारी के पूरे अधिकार पोरबन्दर रियासत के रहेगे। ओतावापा ने जिस समय यह समझौता किया उस समय समुद्र के किनारे का वह सारा प्रदेश बहुत ही रेतीला था और प्राय: सारी जमीन ऊसर थी। लेकिन उस इलाके का उज्ज्वल भविष्य ओतावापा ने अपनी दीर्घ दृष्टि से देख लिया था। जूनागढ से किए गए समझौते का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होने लिखा था, "यदि भादर नदी पर बाध बनाया जाय तो यह सारी रेतीली जमीन बहुत उपजाऊ हो जायगी और मनो सोना उगलेगी।" पोरबन्दर राज्य के पुराने कागजो मे ओतावापा के हाथ की लिखी हुई ये पक्तिया आज भी देखने को मिल जायगी।

कई वर्ष पहले लिखी हुई ओतावापा की यह बात आगे चलकर वस्तुत: सही निकली। अब वहा के एक-एक गाव मे आसानी से प्रतिवर्ष पौन लाख रुपये से भी अधिक की पैदावार होती है। कुछ हजार रुपये की वार्षिक आय वाला पोरबन्दर राज्य अब कई लाख की वार्षिक आय वाला हो गया।

राणासाहब ओतावापा की इस सफलता से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने उसी समय ओतावापा को दीवान की पोशाक भेट की तथा उन्हे अपने राज्य का दीवान नियुक्त कर दिया। इस प्रकार यौवन की दहलीज मे प्रवेश करने वाले श्री उत्तमचन्द गाधी ने राज्य के अमात्य का भारी उत्तरदायित्व प्राप्त किया और तब से लेकर आखिर तक—अर्थात् वृद्धावस्था तक—वह सफल और यशस्वी दीवान बने रहे।

जिस प्रकार ओतावापा के दीवान होने से पहले पोरबन्दर राज्य के हाथ से अनेक गाव जूनागढ और जामनगर के राज्यो मे समा गये थे, उसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र मे भी पोरबन्दर राज्य अपनी स्वतन्त्रता खो बैठा था। कच्छ के, जो समुद्र के रास्ते पोरबन्दर से बहुत निकट है, एक बड़े व्यापारी का ऋण पोरबन्दर पर बहुत बढ गया था। उस व्यापारी की पेढी 'सुन्दरजी की फर्म' के नाम से प्रसिद्ध थी और उसका व्यापार अफ्रीका तक चलता था। पोरबन्दर के राजाओ ने उससे कर्ज लिया था। वह कर्ज इतना बढ गया कि पूरा पोरबन्दर राज्य सुन्दरजी की पेढी के हाथ गिरवी चला गया।

वरसों तक राज्य की कुल वार्षिक आय 'सुन्दरजी वाले' ले लेते थे। वे राज्य का अत्यावश्यक चालू खर्च चुकाकर बाकी रकम अपने कर्ज की वसूली मे दर्ज कर लेते थे।

ओतावापा ने दीवानपद पर आकर 'सुन्दरजी वालो' के साथ की गई लिखा-पढी के कागज मगाये और उसका गहरा अध्ययन करके, अपनी पैनी बुद्धि के प्रयोग से, उसमे एक ऐसा वाक्यांश खोज निकाला जिसकी बदौलत सुन्दरजी की पेढी की आर्थिक अधीनता से राज्य को मुक्त कराने मे सफलता मिली। उस सारी लिखा-पढी के बाद उस रेहननामे के अन्त में कहा गया था कि "पड्यु पान राज्यनुं।" गिरा पत्ता राज्य का अर्थात् "जो कुछ पत्ता गिर पडा हो, उस पर अधिकार राज्य का होगा।" इसका भावार्थ यह होता है कि महसूली-चुगी रूपी फल का अधिकारी तो साहूकार रहेगा, परंतु जो गौण आय होगी उस पर कर्जदार का ही हक रहेगा। बापा ने इस पर से फैसला किया कि सिर्फ जमीन-महसूल और सामुद्रिक व्यापार से प्राप्त चुगी पर ही सुन्दरजी वालो का अधिकार है, राज्य की अतिरिक्त आय पर उनका कोई हक नही। इस फैसले के आधार पर ओतावापा ने राज्य की दूसरी सब प्रकार की आमदनी राज्य के कोष मे जमा करने का इतजाम किया, और 'सुदरजी वालो' को उसका हिस्सा देने से इन्कार कर दिया। उन्होने अदालती मुकदमों, मकानो तथा जमीन के बैंनामो और ऐसे ही अन्य कई साधनो द्वारा राज्य के खाली कोष को परिपूर्ण किया और सुन्दरजी की पेढी वालो के पुराने कर्ज को उतार दिया।

ओतावापा की कुशलता का उल्लेख राजकोट के एक अग्रेज न्यायाधीश ने भी किया है।

: ६ :

सत्याग्रही ओतावापा

न जातु कामान्न भयान्न लोभात् धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुखदु:खे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

"धर्म को किसी भी हालत मे मत छोडो—अपनी किसी मनोकामना की पूर्ति के लिए नही, वडे-से-वडे पद के कारण नही, किसी प्रकार के लोभ

के वश होकर नही और अपनी जीवन की रक्षा के लिए भी नही। धर्म सदा ही कायम रहने वाला, हर समय साथ देने वाला अक्षय बल है। सुख और दु ख केवल क्षणिक है। सुख और दु ख दोनो ही आयगे और जायगे परन्तु जीव ज्यो-का-त्यो बना रहेगा। जीव को पकडे रहने वाला यह शरीर स्थायी नही है। यह तो जल्दी या देर से छूटने वाला ही है। जीव का क्षय या विनाश कदापि नही होने वाला है।"

विद्याशास्त्र-सपन्न न होते हुए भी ओतावापा ने इस धर्मनिष्ठा को आचरण मे उतारने का दृढ आग्रह रखा। उन्होने जिस प्रकार अपनी युवावस्था मे कार्य-दक्षता तथा पुरुषार्थ का परिचय दिया उसी प्रकार ढलती आयु मे श्रेष्ठ धर्मपरायणता और दृढ़ शौर्य का उदाहरण भी प्रस्तुत किया।

राणा साहव खीमाजी दीर्घजीवी नही हो पाए। अपने पुत्र की नाबालिग अवस्था मे ही वह चल बसे। अत. कुवर के वालिग होने तक सारी राजसत्ता पूर्णतया रानी के हाथ मे रही। लेकिन राज्य का कुल प्रबन्ध ओतावापा ही करते थे। बापा नित्य ही राजहित और लोकहित को सबसे ऊपर रखने वाले थे। इसलिए कई बार रानी के साथ उनकी पटती नही थी। वह जीहुजूरी से अलग रहकर, जो सही लगता था, जो धर्म की बात प्रतीत होती और जिसमे प्रजा का कल्याण देखते थे उसी मार्ग को अपनाते थे। यदि मतभेद होता था तो ओतावापा कभी रानी को समझा-बुझाकर, या कभी दबाव डालकर अपने मन की उसी बात पर अमल करते थे, जिसे वह अपना अनिवार्य कर्त्तव्य समझते थे।

ऐसे ही एक मौके पर ओतावापा ने साक्षात् मृत्यु को आमत्रित कर लिया था। कहानी यह है कि राज्य-कोष का खजाची और राज्य के वस्तु-भण्डार का अधिकारी खीमा कोठारी नामक व्यक्ति वडा कर्त्तव्यनिष्ठ और कडाई से काम लेने वाला था। एक सुई तक वह किसी को विना आज्ञा के नही देता था। खीमा कोठारी की इस आदत से रानी की दासिया तग आ गई थी। उनको मनमानी चीजे नही मिल पाती थी। इस कारण कोठारी के विरुद्ध भला-बुरा कह सुनकर दासिया रानी के कान भरती रहती थी। एक वार दासियो ने मिलकर कोठारी के मत्थे कुछ ऐसा विकट अपराध मढ दिया कि रानी आपे से वाहर हो गई। उसने हुक्म दिया कि कोठारी को फौरन वाधकर मेरे सामने ले आओ। कोठारी को रानी की इस कठोर आज्ञा का पहले से ही पता चल गया था। वह भागकर ओतावापा की शरण मे जा पहुचा और उसने उनसे न्याय की माग की। ओतावापा ने उसे अभय

वचन दे दिया। जब रानी को पता चला तब उसने बापा को अपने समक्ष बुलाकर आज्ञा दी कि खीमा कोठारी को मेरे हवाले कर दो। बापा ने इस आज्ञा को अस्वीकार करते हुए रानी से कहा कि मैं उसे इस तरह आपके हाथ मे नही सौंप सकता। आपको चाहिए कि न्याय किस पक्ष में है, इस बात की सही जाच करे। उस पर बाकायदा मुकदमा चलाया जाय।

रानी पूरे तैश मे थी। उसने कहा, "न्याय वही है जो मैं समझू। उसको दण्ड देना मेरा काम है। उसे आप फौरन मुझे सोप दे।"

बापा ने रानी को समझाने की पूरी कोशिश की, पर वह अपनी ज़िद पर अडी रही, यहा तक कि उसने बापा को भी धमकी दे डाली कि यदि वह नही मानेगे तो उनपर जबरदस्ती की जायगी और किसी भी तरह कोठारी को उनसे ले लिया जायगा। बापा इस धमकी के वश मे नही हुए और अपनी बात पर अटल रहे। लगातार चार-पाच दिन तक रानी अपने सदेशे और चुनौती भेजती रही, पर बापा अपनी बात से नही हटे। अन्त मे झुझलाकर रानी ने मकान पर फौजी दस्ता भेज दिया और उसे आज्ञा दी कि उनके मकान से कोठारी को बलपूर्वक ले आया जाय।

ओताबापा का मकान पोरबन्दर के विशिष्ट पत्थरो से बना हुआ था और उसका दरवाजा किले का-सा मजबूत था। रानी की भेजी हुई टुकडी उस मकान मे जब किसी तरह भी न घुस सकी तब रानी उस मकान की दीवार तुडवाने पर तुल गई और उसने तोप भी भेज दी।

इधर बापा की नौकरी मे जो दो-तीन अरब द्वारपाल थे, उन्होने बापा से कह दिया कि जबतक हममे से एक का भी सिर सलामत है तबतक आपको कोई छू तक नही सकेगा। हम मरते दम तक आपकी रक्षा करेंगे। हमने आपका नमक खाया है। बापा ने अपने सेवको की बात पर पूरा भरोसा कर लिया और उन लोगो ने सचमुच बापा की रक्षा मे अपनी जान न्योछावर कर दी।

उन दिनो राजा लोग स्वच्छद होते थे। उनकी नौकरी करना अपनी जान पर खेलने-जैसा था। इस हालत मे जो कोई राजा के दीवान की-सी बडी नौकरी स्वीकार करता था वह किसी मजबूत व्यक्ति को अपना जामिन बना लेता था, अर्थात् राज-प्रकोप से रक्षा करने का काम उस जामिन के जिम्मे रहता था। इस प्रकार उन द्वारपालो का नायक श्री गुलाम मोहम्मद मकरानी ओताबापा का जामिन बना था। राज्य की सेवा करते-करते यदि ओताबापा पर अनुचित आक्रमण हो तो उसका काम था कि वह उनकी रक्षा करे और उसने अपनी जान देकर ओताबापा की रक्षा की। आज भी

उसके नाम का स्मारक ओतावापा के घर से लगे हुए वैष्णव मन्दिर मे मौजूद है।

ओतावापा ने वाहर की रक्षा का भार जब उन अरबो को सौप दिया तव स्वय अन्दर की तैयारी करने लगे। यह तैयारी आक्रमणकारी का मुकावला करने अथवा किसी प्रकार का युद्ध या सघर्ष करने के लिए नही थी, वल्कि सत्य के लिए शाति और सतोष के साथ बलिवेदी पर चढ जाने की थी। वह उस विशाल भवन के मध्यखण्ड मे जाकर बैठ गए। उस समय उनके पास जो पाच पुत्र उपस्थित थे, उन सबको उन्होने अपनी बगल मे वैठाया, फिर बच्चो की माता को बैठाया और आठवे कोठारी को अपने पास बैठा लिया। इस प्रकार सबको शातिपूर्वक बैठाकर ओतावापा ने सबको धीरज वधाया और कहा, "जब भगवान ने हमे सत्य के लिए बलिवेदी पर चढने का सुअवसर प्रदान किया है तब हमे चाहिए कि हम अपने चित्त से उद्वेग, शोक तथा भय आदि को दूर हटा दे और प्रसन्न चित्त से बलि हो जाय।"

वाहर रानी की तोप से एक के बाद दूसरा गोला धडाधड उस मजबूत दीवार पर आघात कर रहा था और अन्दर ईश-स्मरण के साथ सत्य पर अटल रहन की अभ्यर्थना हो रही थी। तोप की मार के आगे पोरवन्दरी पत्थरो की डेढ हाथ चौडी दीवार देर तक टिक न सकी और उसमे दो वडे-वडे छेद हो गए। द्वारपालो मे से गुलाम मोहम्मद मकरानी मारा गया; परन्तु ओतावापा और उसके समस्त वश का बलिदान ले लेना ईश्वर ने उचित न समझा। अनिष्ट घटना होने के पहले ही इस धाधली के समाचार राजकोट जा पहुचे और वहा के अग्रेज सत्ताधीश—पोलिटिकल एजेट—ने रानी के इस अत्याचार को रुकवा दिया।

इस घटना के बाद ओतावापा ने पोरवन्दर छोड दिया और वह अपने मूल गाव कुतियाणा लौट गए। कुतियाणा कस्वा जूनागढ की रियासत के अन्तर्गत था, इसी लिए जूनागढ के नवाव ने अपने प्रदेश मे बसने वाले ऐसे चतुर और प्रख्यात व्यक्ति को दरवार मे आमन्त्रित किया। वापा जूनागढ गए, परन्तु उन्होने नवाव को वाए हाथ से सलामी दी। इस वेअदवी से नवाव का अमला विगड पडा। नवाव खुद भी हैरान हो गया कि ऐसा वुद्धिमान व्यक्ति यह क्या कर रहा है। उसने वापा से इसका कारण पूछा। वापा ने कहा, "दाहिना हाथ तो मै पोरवन्दर राज्य को समर्पित कर चुका हू। पोरवन्दर के सेवक का मेरा नाता टूट नही सकता, उस राज्य से मै वेवफा नही हो सकता। यदि आप चाहे तो यह वाया हाथ आपकी सेवा मे

हाजिर हूँ। लेकिन मैं अब नौकरी नही चाहता, शासन-कार्य से निवृत्त होकर शातिमय जीवन बिताना चाहता हू।"

नवाव के जीहुजूर तो चाहते थे कि वापा को उनकी इस बेअदबी का कुछ पाठ सिखाया जाय, परन्तु नवाव पाकदिल और शरीफ था। उसने वापा की महत्ता को समझा और भरे दरबार मे उनकी वफादारी व निष्ठा की प्रशसा की। फिर भी अपने दरबार तथा राजसिंहासन की शान और आन वनाए रहने के लिए उसने मामूली सजा सुना दी और साथ-ही-साथ उन्हें अच्छा-खासा इनाम भी दिया। सजा यह सुनाई गई कि बाए हाथ से नवाब को सलामी देने के जुर्म मे ओता गाधी को नगे पैर पाच-दस मिनट धूप मे खडा रखा जाय। इनाम मे नवाब की ओर से रुक्का लिख दिया गया कि 'कुतियाणा गाव मे दूकानदारी करने पर ओता गाधी और उनके वशजो को पुश्त-दर-पुश्त चुगी की माफी दी जाय।' ओताबापा कुछ मिनट धूप मे खडे रहे और कुतियाणा लौट आए।

कुतियाणा आकर बापा किसी विशेष प्रवृत्ति मे नही उलझे। उन्हे घुडसवारी का शौक शुरू से ही था। उन्होने बढिया काठियावाडी घोडी खरीद रखी थी। नित्यप्रति कुछ देर उस पर सवार होकर वह आसपास सैर कर आते थे। बाकी समय भजन-कीर्त्तन और कथा-वार्त्ता मे बिताते थे। मेरे प्रपितामह श्री जीवनबापा ने अपने पिता ओताबापा की घोडी के सईस का काम सम्हाला था और आखिर तक बडी लगन और परिश्रम से उन्होने उस घोडी की सेवा की थी।

श्री जीवन गाधी ओतावापा के चौथे पुत्र थे। बिना चुगी के दूकान चलाने का जो रुक्का नवाव से मिला था उसका लाभ जीवनबापा ने उठाया। ओतावापा की सेवा करने के साथ-साथ कुतियाणा मे एक छोटी-सी दुकान वह चलाने लगे।

हमारा खानदान वैष्णव-पथी पुष्टिमार्गी वल्लभ सप्रदाय का था। इसलिए हमारे यहा विशेषत. कृष्ण की उपासना होनी चाहिए थी; परन्तु ओतावापा को पोरवन्दर के एक खाकी साधु[1] पर अधिक श्रद्धा थी। उन्होने उस साधु के लिए पोरवन्दर मे एक चौक भी वनवा दिया था जो आज भी 'खाक चौक' के नाम से प्रसिद्ध है। वह खाकीवावा राम का अनन्य उपासक था। उसके सत्सग मे रहकर ओतावापा भी परम राम-उपासक वन गए थे। अपने जीवन के उत्तरकाल मे दिन का अधिकतम

---

१ रामानंद पंथ के विशेष साधु।

समय ओताबापा गोस्वामी तुलसीदासजी के 'रामचरितमानस'.का श्रवण और अनुशीलन करने मे बिताते थे।

पोरबन्दर मे दीवान पद पर रहते समय उन्हे पूरे दो हजार कोरी वार्षिक वेतन मिलता था। इसके अतिरिक्त अनाज और शाक आदि दरबारगढ के भडार से मिला करता था। यह वेतन कोई बडा वेतन नही था। फिर भी जब बापा ने अपने सबसे बडे दो पुत्र वल्लभजी और पीताम्बरजी का विवाह किया तब, उस जमाने के रिवाज के अनुसार, उन्होने एक बहुत बडा भोज दिया था। उन्होने समस्त पोरबन्दर की 'चौर्यासी' की, अर्थात् सब नगर-निवासियो को भोजन कराया। नगर के कोट के दरवाजे पर चावल चिपकाकर सारे गाव को न्योता दे दिया गया और जो गरीब या भूखे आये उन सबको भोजन कराया गया। इसके अतिरिक्त सारे नगर मे सात दिन तक बराबर फुलवाडी चढाई जाती रही। इसमे स्वय राणा साहब सबसे आगे चलते थे। ऐसा भारी भोज और ऐसी भव्य फुलवाडी उसके बाद कभी देखी-सुनी नही गई।

राज्य के लोकप्रिय दीवान होने के कारण इस विवाह मे ओताबापा के पास प्रजा की ओर से नजराने मे भी बहुत रकम जमा हो गई। बापा ने जो खर्च किया था उसके मुकाबले मे वह रकम कम नहा थी। यदि कोई दूसरा होता तो उस नजराने पर फूला न समाता। वह उस धन को अपनी तिजोरी मे प्रसन्नता से रख लेता, परन्तु बापा ने बरात का काम समाप्त होते ही धन की वह सारी राशि राणा साहब के चरणो में रख दी और उनसे कहा, "यह धन आपकी ही प्रजा का है। आपके आशीर्वाद के कारण ही मै 'चौर्यासी' कर पाया हू। आप इस धन को स्वीकार कर ले।" राणा ने गद्गद होकर उत्तर दिया, "अच्छा, इस धनराशि को सरकारी खजाने मे जमा कर दो और 'चौर्यासी' का सारा खर्च राज्य के खाते मे डालकर हिसाब बराबर कर दो। तुम्हारे पुत्र मेरे ही पुत्र है।"

ओतावापा के पोरबन्दर से चले जाने के बाद जब रानी का कुचक्र समाप्त हुआ और नए राणा विक्रमाजीत गद्दी पर बैठे तब राज्य के हितैषियों ने ओताबापा को फिर से अमात्य-पद पर बैठाने का प्रयत्न किया। किंतु बापा ने अपना निवृत्तिमय जीवन छोडकर पुन. प्रवृत्तिमय जीवन अपनाना पसन्द नही किया। फिर भी उन लोगो के प्रयत्नो का और राणा खीमाजी के उन वचनो का, जो ओताबापा ने राज्य के कागजो मे पक्के करा लिये थे, इतना परिणाम हुआ कि बापा के सब पुत्रों को राज्य मे कोई-न-कोई सेवा-कार्य दे दिया गया।

जव राणा खीमाजी के अन्तिम दिन प्रतीत हो रहे थे तब ओतावापा ने अपनी नौकरी के वारे मे उनसे लिखित प्रमाणपत्र मागने की सावधानी वरती, क्योकि वापा ने देख लिया था कि रानी के कान कच्चे होने के कारण, राणा के वाद उनके अपने भविष्य के सकट मे पड जाने का खतरा है। राणा ने वापा के लिए जो उदारतापूर्ण प्रमाणपत्र लिखा, उसका सार यह था—"ओता गाधी ने इस राज्य की वडी मूल्यवान सेवा की है और मेरा तथा रियासत का काम सदैव पूरी वफादारी के साथ किया है। इसलिए मेरे उत्तराधिकारी इस वात की सावधानी रखे कि ओता गाधी को किसी प्रकार के कष्ट का भागी न वनना पडे, वल्कि मेरे उत्तराधिकारी गाधी के उत्तराधिकारियो को इस राज्य मे सदैव उदारता के साथ नौकरी देते रहे।"

वापा के कुल मिलाकर छ. पुत्र थे। उनमे द्वितीय पुत्र श्री पीताम्बर गाधी रानी के साथ झझट शुरू होने से पहले ही व्यापार के निमित्त कच्छ के राज्य मे जा पहुचे थे। उनके एक पुत्र था और उसने भी अपना जीवन कच्छ मे ही व्यापार करके व्यतीत किया था। उसके वाद श्री पीताम्बर की सतति आगे नही वढी और वह शाखा वही रुक गई।

श्री पीताम्बर गाधी के अतिरिक्त जो पाच भाई थे उनमे सबसे बडे श्री वल्लभजी गाधी राज्य के इमारती काम के महकमे मे इजीनियर नियुक्त हुए। क्रम मे तीसरे श्री रतनजी गाधी राज्य के दफ्तरी हुए, चौथे श्री जीवनजी गाधी पोरवन्दंर के समीप छाया नामक परगना मे परगना-हाकिम नियुक्त किये गए। पांचवे श्री करमचन्द गाधी और छठे श्री तुलसीदास गाधी क्रमश. एक के वाद एक पोरवन्दर के दीवान के पद पर रहे। श्री तुलसीदास गाधी के वशज अबतक, अर्थात् राज्यो के विलय के समय तक, पोरवन्दर राज्य की नौकरी मे उच्च स्थानो पर वने रहे।

छ भाइयो मे ओतावापा की सबसे अधिक विरासत श्री करमचन्द गाधी ने ही पाई—केवल दीवानगिरी की ही विरासत नही. किंतु वापा की प्रतिभा, तीक्ष्ण वुद्धि, सत्य-प्रीति और वहादुरी की भी। वास्तव मे दीवानगिरी तो उन्होने भी अपने पिता की भाति अपने ही पुरुषार्थ से पाई थी। शुरू मे उन्हे मामूली सेवा-कार्य मिला था, पर बाद मे अपनी कुशलता के कारण वे दीवान के पद पर पहुचे थे।

: ७ :

बापू के माता-पिता

मोहनदास करमचन्द गाधी का नाम ससार मे इतना फैल चुका है कि उनके पिता श्री करमचन्द गाधी का नाम दशरथ और वसुदेव की तरह युग-युग तक चिरजीवी बना रहेगा। करमचन्द का नाम बचपन से ही 'कबा' पड गया था। परिवार मे वह कबाभाई, कबाबापा, कबाकाका आदि सम्बोधनो से पुकारे जाते थे और राजकोट मे उनके मकानवाली गली को आज भी 'कबा गाधी की शेरी' (गली) कहा जाता है।

कबाकाका का जन्म ईस्वी सन् १८२२ के आस-पास हुआ था। कबाकाका की पढाई अधिक नही थी, फिर भी आवश्यक प्रारभिक शिक्षा अर्थात् चौथी-पाचवी कक्षा तक की शिक्षा उन्होने भलीभाति पाई थी। पढाई पूरी करने के बाद कबाकाका ने पोरबन्दर के राणा साहब के निजी हिसाब-नवीस और पत्रलेखक का काम किया था। राणासाहब को कबाकाका के काम से सन्तोष मिला और उनकी कार्यदक्षता व चतुराई पर उन्हे पूरा विश्वास बैठ गया। इस कारण उपयुक्त अवसर आने पर राणा साहब ने कबाकाका को पोरबन्दर की दीवानगिरी के पद पर नियुक्त कर दिया।

राज्य के उच्च पदाधिकारी की नियुक्ति का तरीका उस समय यह था कि नियुक्त किये जाने वाले व्यक्ति को राजा की ओर से सुन्दर कलमदान मे तीन-चार कलमे, एक दवात और स्याही सुखाने के लिए बारीक रेती का पात्र भेज दिया जाता था। यदि कलमदान पीतल का भेजा जाता तो इससे तहसीलदार के पद पर नियुक्ति मानी जाती और यदि चादी का भेजा जाता तो दीवान के पद पर नियुक्ति समझी जाती थी। जब पोरबन्दर से ओताबापा पर बार-बार मत्रिपद स्वीकार करने के लिए दबाव डाला गया, तब वह स्वय तो कुतियाणा से पोरबन्दर नही गये, परन्तु अपने पुत्रो मे से उन्होने करमचन्द गाधी को उस पद के लिए भेजना स्वीकार कर लिया।

वस्तुस्थिति कुछ भी रही हो, कबाकाका चाहे पहले राणासाहब के निजी मत्री रहे हो और बाद मे राज्य-मत्री बने हो या सीधे ही कुतियाणा से पोरबन्दर राज्य के मत्रिपद पर नियुक्त किये गए हो—यह बात निश्चित-सी है कि वह बहुत छोटी आयु मे ही दीवान बनाए गये थे।

जब कबाकाका ने दीवान-पद सम्भाला तब उनकी आयु मुश्किल से २५ वर्ष की थी। अनुमान है कि ईस्वी सन् १८४७ मे उनको मन्त्रिपद दिया गया था। अपनी आयु के पच्चीसवे वर्ष से लेकर बावनवे वर्ष तक कबाकाका ने पोरबन्दर मे दीवान का काम किया। इसके बाद उनके जीवन के अतिम दस वर्ष, १८७५ से १८८५ तक, राजकोट के राजकाज मे बीते। यह अतिम समय उनके जीवन मे राजकीय, पारिवारिक और स्वास्थ्य की दृष्टि से बडे सघर्ष का था।

पोरबन्दर मे कबाकाका एक सच्चे और न्यायनिष्ठ दीवान के रूप मे विख्यात थे। उनके द्वारा दिये गए फैसले पर राणा साहब अपील नही सुना करते थे। यदि कोई प्रार्थी अपील लेकर राणा साहबके पास जाता तो राणा साहब उसे लौटा देते और कहते, "जाओ, फिर से गाधी के पास ही जाओ। उनका समाधान होगा तो वही तुम्हारा उचित न्याय करेगे।" कबाकाका के समय मे न्याय-पद्धति पुराने ढग की और सीधी-सादी थी। प्रजा के गरीब वर्गो को न्याय पाने में मुद्दत तक परेशानी नही उठानी पडती थी। मुसीबत मे पडा हुआ व्यक्ति सीधा ही हाकिम के पास पहुच जाता था और राजा तथा दीवान-जैसे सर्वोच्च अधिकारी के समक्ष अपने कष्ट का बयान नि सकोच कर सकता था।

न्यायाधीश के रूप मे कबाकाका की लोकप्रियता का एक कारण और भी था। वह आगन्तुक की बात बडे धीरज और सहानुभूति से सुना करते थे। निजी रहन-सहन मे भी वह अत्यधिक सादे थे। उनकी वेश-भूषा और बातचीत का तरीका इतना सीधा-सादा था कि मामूली राहगीर और दीवान के बीच कोई खास भेद नजर नही आता था। अपने इस स्वभाव के कारण दीन और दुखी के सहृदय मित्र बनने मे और उनके दिल की बात का पता लगाने मे कबाकाका को देर नही लगती थी।

स्कूली शिक्षा अधिक न होने पर भी कबाकाका के ज्ञान की गहराई विलक्षण थी। उनका पठन-पाठन कम था, परन्तु नित्य नियम से साधु-सतो से ज्ञान-श्रवण करते थे।

वैसे तो शुरू से ही हमारे परिवार मे कथा-श्रवण करने की परम्परा चली आ रही थी, पर कबाकाका की श्रवण-भक्ति असाधारण और प्रगाढ थी। कथा-ग्रथो मे वह प्राय श्रीमद्भागवत और गोस्वामी तुलसीदासजी के रामचरितमानस का श्रवण करते थे। इसके अतिरिक्त श्रीमद्भगवद्गीता का प्रवचन सुनने मे भी उनको रस आता था। बुढापे मे भी वह गीता के श्लोको को कण्ठस्थ करने का प्रयास करते थे। दिन भर तो वह

व्यवस्था के काम-काज मे लगे रहते, फिर भी सुबह-शाम दोनो समय घटे-डेढ घटे कथा-श्रवण अवश्य करते थे। विद्वान न होते हुए भी कबाकाका ने असाधारण बौद्धिक विकास प्राप्त किया।

पोरबन्दर मे कबाकाका की दीवानगिरी का समय गाधी-कुटुब की सुख-समृद्धि का मध्याह्न-काल कहा जा सकता है। जब वह भोजन करने बैठते तब उनके साथ नित्य ही कम-से-कम २० थालिया और लगाई जाती थी; उत्सव-पर्व आदि के अवसरो पर तो भोजन करने वालो की सख्या १००-१५० तक पहुच जाया करती थी। कबाकाका के उस बृहद् परिवार मे भाई-भतीजो के अतिरिक्त मुनीम और नौकर आदि का भी समावेश रहता था।

पाच भाइयो के परिवार के अतिरिक्त निकट के रिश्ते के भी कई युवक कबाकाका के पास नौकरी की खोज मे आये थे। उनमे से १५-२० युवको को उन्होने योग्यतानुसार राज्य के विविध महकमो मे नियुक्त करा दिया था। वह स्वय निगरानी रखकर उनकी कार्य-शक्ति का विकास करते थे। इतने विशाल परिवार मे प्रत्येक के घर की, तीज-त्यौहार की, बहू-बेटियो की छोटी-मोटी आवश्यकताओ की और सामाजिक व्यवहार की देख-भाल कबाकाका स्वय करते थे। व्यक्ति छोटा हो या बडा, उसके लिए जब सगाई, विवाह, शिक्षा, बीमारी और रस्म-रिवाज की समस्या सामने आती थी तब कबाकाका के मार्ग-दर्शन मे वह सारा कार्य सपन्न हो जाता था।

पुतलीमां ने भी पूरे परिवार की माता का स्थान ले रखा था। जितनी भी बहू-बेटिया कुटुंब मे थी उन सबको खाना खिलाने के बाद और यह जाच कर लेने के बाद कि एक बच्चा भी भूखा नही रह गया है, पुतली-काकी भोजन के लिए बैठती थी। वह कभी चिडचिडेपन से या ऊची आवाज से नही बोलती थी, न किसी को डाटती-डपटती या अपमानित ही करती थी। अनेकानेक बहू-बेटिया उनकी सेवा मे रहती थी, नौकर भी कई थे, परन्तु वह किसी से अपना काम नही कराती थी। आलस्य तो उनमें नाम को भी नही था। बडे सवेरे अधेरे ही उठ जाती थी। और तबसे आधी रात तक घर या रसोई का कुछ-न-कुछ काम वह करती रहती थी। उनका भोजन बहुत सादा था। सबके भोजन के बाद जो थोडा-सा मिल जाता था उससे सतोप कर लेती थी, पर दूसरो की आवश्यकता की पूर्त्ति का सदैव ध्यान रखती थी।

केवल पुतलीमा ही घर के काम मे जुटी रहती हो और कबाकाका

आदेश-मात्र दिया करते हो, ऐसी बात नही थी। परिवार के सरताज और राज्य के दीवान होते हुए भी कबाकाका ने रसोई का भार हल्का करने के लिए साग-सब्जी काटकर तैयार करने का दैनिक कार्य अपने ऊपर ले रखा था। सवेरे रघुनाथजी के मदिर मे, जो मकान से करीब ही था, कबाकाका की बैठक रहती थी। वही पर मुलाकातियो का ताता लगा रहता था। कबाकाका राजकाज की बातचीत करने के साथ-साथ तरकारी काटने का काम करते जाते थे।

कबाकाका का प्रथम विवाह उनकी १४ वर्ष की आयु मे हुआ था। दूसरा विवाह पच्चीस वर्ष की आयु मे उनके विधुर होते ही हो गया। प्रथम विवाह से कबाकाका के दो पुत्रिया हुईं। सबसे बडी भूलीबहन और दूसरी पानकुवरबहन। भूलीबहन की पुत्री आनन्दबहन बापूजी के समवयस्क थी और आनन्दबहन के सुपुत्र मथुरादास भाई त्रिकमजी बम्बई के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता थे।[1]

पानकुवरबहन के पति दामजी महेता को कबाकाका ने पोरबन्दर मे राज्य की अच्छी नौकरी दिलाई थी।

कबाकाका का दूसरा विवाह उसी वर्ष हुआ, जब पोरबन्दर के दीवान-पद पर उनकी नियुक्ति हुई। इसके बाद तीसरा विवाह कब हुआ, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। लेकिन चौथा विवाह जो पुतलीबाई से हुआ वह तीसरी पत्नी के जीवन-काल मे ही हुआ था। बापूजी की बडी बहन ने, जिन्हे हम गोकी फइबा कहते है, बताया, "मेरे पिता की चार स्त्रिया थी। मेरी मा पुतलीबा दात्राणा गाव की थी। जब मेरी मां से पिताजी ने शादी की तब उनकी पहले की स्त्री जीवित थी। मेरी मा ने मुझे बताया था कि उनकी तीसरी पत्नी अपाहिज थी। उनके पैर वात-रोग से जकड गए थे। अपने आप उठ-बैठ नही पाती थी। इसलिए

---

१ मथुरादास भाई बम्बई कारपोरेशन के बरसों तक मेयर रहे। गांधीजी का साहित्य एकत्र करने का काम मथुरादास भाई ने महादेवभाई से भी पहले शुरू किया था। साबरमती आश्रम के आरम्भ के दिनों में मेरे पिताजी बापूजी के लेखों और भाषणों का सग्रह तैयार कर रहे थे। उसको सुन्दर ढंग से सम्पादित करने और 'गांधीजीनी विचार-दृष्टि' नाम से प्रकाशित करने का श्रेय मथुरादास भाई को है। बापूजी की गुजराती आत्मकथा का संक्षिप्त संस्करण मथुरादास भाई ने तैयार किया है और 'बापू की प्रसादी' नामक पुस्तिका भी उन्होंने लिखी है।

पिताजी उनसे कहा करते थे कि तू कह दे तो मैं वश चलाने के लिए नई ले आऊ। वह कह देती थी कि जीवित पर कोई देता हो तो भले ले आओ। होते-होते एक दिन पिताजी ने उनसे कहा, 'तुम ठीक-ठीक बताओ। अगर तुम कहोगी तो आज ही आ जायगी।' स्वीकृति मिलते ही सचमुच हाथ-के-हाथ मेरी मा से पिताजी की शादी हो गई। विवाह के समय पुतलीमा की आयु प्राय तेरह वर्ष की होगी।"

कबाकाका से पुतलीमा का विवाह सन् १८५७ मे हुआ था। इस हिसाब से तब कबाकाका की आयु ३५-३६ वर्ष की सिद्ध होती है। बापूजी ने जो लिखा है कि उनका अतिम विवाह ४० वर्ष की आयु के बाद, हुआ, यह ठीक नहीं बैठता। पुतलीमा के चार सतान क्रमश १८६० '६२, '६६ और '६९ मे हुई।

प्रथम सतान लक्ष्मीदास गाधी का दूसरा नाम कालिदास गाधी था। वह आजीवन पोरबन्दर राज्य के विश्वस्त सेवक रहे और खजान्ची का काम करते रहे। बापूजी को पढने के लिए विलायत भेजने मे मुख्य समर्थन इन्ही का था और लदन का खर्च बहुत-कुछ पूरा करने का भार इन्होने उठाया था। लक्ष्मीदास गाधी के बडे पुत्र शामलदास गाधी थे।[1]

पुतलीबा की दूसरी सतान रळियातबहन, जो बापूजी से ७ वर्ष बडी है, आज भी राजकोट मे कबाकाका के ही मकान मे रह रही है। अपनी ९० वर्ष की आयु तक वह चक्की भी चलाती रही और चौका-बर्तन भी अपने हाथ से ही करती रही। कट्टर वैष्णव-आचार के कारण बापूजी के साथ वह आश्रम मे हरिजनो के बीच न रह सकी। वैसे उनकी मुखाकृति, बातचीत की ध्वनि, ठेठ गुजराती भाषा तथा सरल छोटे वाक्यो के प्रयोग में वह बापूजी से बहुत मिलती-जुलती है।[2] पुतलीमा की तीसरी सतान करसनदास गाधी का प्रभाव बापूजी पर हाई स्कूल मे प्रवेश होने तक विशेष रूप से रहा। अपनी 'आत्मकथा' मे बापूजी ने 'चोरी और प्रायश्चित्त' वाले प्रकरण मे इस मझोले भाई का उल्लेख किया है। इनका और बापूजी का

---

१ शामलदास गांधी बम्बई के प्रसिद्ध गुजराती पत्र 'वन्देमातरम्' के सम्पादक थे। पाकिस्तान की समस्या ने जब जूनागढ में उग्र रूप धारण किया तब नवयुवको की सशस्त्र टोली के सेनानी बनकर आगे बढ़ने का गौरव इन्हीं को प्राप्त हुआ था । इनका देहान्त हो गया।

२ इनका भी देहान्त हो गया।

विवाह एक ही समय हुआ था। करसनदास गाधी ने पोरबन्दर के पुलिस-विभाग मे नौकरी की थी और कई बरस तक वह मुख्य थानेदार रहे थे।

पुतलीबा ने २ अक्तूबर १८६९ के दिन मोहनदास को जन्म दिया। बापूजी के जन्म के समय कबाकाका की आयु ४७ वर्ष और पुतलीमा की २५ वर्ष से कम थी। जब उन्होने अपने सुपुत्र को विलायत भेजते समय उससे तीन महान प्रतिज्ञाए कराई तब वह प्राय. ४२ वर्ष की थी। ४६ वर्ष की अवस्था मे उनका देहात हो गया। उस समय बापूजी विलायत मे बैरिस्ट्री का अध्ययन कर रहे थे।

: ८ :

न्यायनिष्ठ कबा गांधी

सन् १८७५ तक कबाकाका ने पोरबन्दर के मन्त्रिपद का कार्य सम्हाला। विशाल सयुक्त परिवार की धुरी वहन करते हुए वह सुख-शाति के साथ धर्मग्रन्थो का श्रवण-मनन करते रहे। युवावस्था ढलने पर ५३ वर्ष की आयु मे कबाकाका ने राजकोट के दीवान-पद का नया उत्तरदायित्व सम्हाला।

अग्रेजी राज्य की स्थिति इस बीच सर्वथा बदल चुकी थी। कम्पनी सरकार का मनमाना ताडव समाप्त होकर ब्रिटिश पार्लामेंट का सुयोजित फौलादी पजा पूरे भारतवर्ष पर छा गया था। झासी की रानी की तलवार ने जो सबक सिखाया था उसके फलस्वरूप अब बडे ही नही, छोटे-छोटे, चार-छ गावो के बिन्दु सदृश राज्यो को भी अग्रेजो की ओर से जीवनदान मिल गया था। उन सबकी चतुर्सीमा की रक्षा का भार ब्रिटिश सरकार ने अपने ऊपर ले लिया था और बदले मे उन राज्यो से साम्राज्य-सेवा और भरपूर वफादारी प्राप्त होती रहती थी। भारत मे ही नही, कदाचित् सारी पृथ्वी पर बीसवी शताब्दी के लिए काठियावाड असख्य छोटे-बडे राज्यो का एक बेमिसाल सग्रहालय बन गया था।

जिस प्रकार अग्रेजो ने आम जनता को नि शस्त्र करना आवश्यक समझा उसी प्रकार उन्होने अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिए इन छोटे-मोटे राज्यो की सीमा निर्धारित करना भी अनिवार्य समझा। सौराष्ट्र

मे जहां २४० से अधिक राजा थे, सीमा-निर्धारण का कार्य सरल नही था। अखड भारत को पाकिस्तान और हिन्दुस्तान मे विभाजित करते समय अग्रेज राजनीतिज्ञों ने जिस प्रकार दोनो के पक्ष मे न्याय करने की तीव्र चिता दिखाई वैसे ही सौराष्ट्र मे भी अपनी न्यायनिष्ठा साबित करने के लिए उन्हे गहरी छानबीन मे उतरना पडा। अग्रेज अकेले यह काम पूरा नही कर सकते थे। स्थानीय अनुभवी व्यक्तियो की सहायता प्राप्त करना उनके लिए अनिवार्य था। चतुर वाटसन साहब ने इस काम के लिए स्थानीय लोगों की एक सीमा-समिति नियुक्त कर दी और उसका मुख्य उत्तरदायित्व सच्चरित्र, न्यायनिष्ठ और तीक्ष्णबुद्धि कबाकाका को सौंपा। ब्रिटिश पार्लमेंट द्वारा रानी विक्टोरिया को भारत की सम्राज्ञी घोषित करने का जो प्रस्ताव सन् १८७६ मे स्वीकृत किया गया उसके एक वर्ष पूर्व श्री करमचन्द गाधी को सीमा-समिति के काम पर राजकोट बुलाया गया। इससे कल्पना की जा सकती है कि तबतक इस देश मे अग्रेजी राज्य की जड कितनी दृढ हो चुकी थी। सीमा-समिति का कार्य प्राय. तीन-चार वर्ष तक चलता रहा। इस कार्य से कबाकाका की ख्याति सारे सौराष्ट्र मे फैल गई। किसीके पक्ष या विपक्ष मे वह झुके नही। जो उन्होने न्craftyयुक्त समझा वही किया। इस सम्बन्ध मे एक प्रसग मैंने ऐसा सुना जिससे कबाकाका की न्यायनिष्ठा, स्वार्थत्याग की वृत्ति और निर्णय की दृढता झलकती है।

जब सीमा-समिति का काम चल रहा था, समिति के सदस्य स्वय सीमावर्त्ती गावो मे जाकर किसानो से सारी बात का पता लगा लेने के बाद अपना निर्णय देते थे। कई बार एक ही गाव के खेतो को इस राज्य मे या उस राज्य मे शामिल करने का नाजुक प्रश्न सामने आता था और उसका निपटारा कबाकाका स्वय मौके पर जाकर करते थे। एक बार जब जूनागढ और पोरबन्दर राज्य के बीच की सीमा का निर्णय किया जा रहा था, ठोयाणा ग्राम के पास भीणसार नामक छोटी नदी के किनारे पैमाइश करनेवाले सरकारी कर्मचारियो ने सीमा-रेखा बनाने के लिए ऐसे स्थल पर खूटे गाड दिये कि पूरा ठोयाणा गाव पोरबन्दर की चौहद्दी मे पड जाता था। कबाकाका पोरबन्दर के दीवान रह चुके थे, इसलिए उनका हित इसी व्यवस्था मे निहित था। परन्तु गाव के किसानो ने जब उन्हे बताया कि ठोयाणा गाव वास्तव मे जूनागढ के क्षेत्र का है, तब कबाकाका ने वे खूटे उखडवा डाले और ठोयाणा गाव जूनागढ के प्रतिनिधियो को दिलवा दिया। आज भी ठोयाणा गाव के मुसलमान जागीरदार, जो 'खोखर परिवार' कहलाते हैं और जो जूनागढ के नवाब के 'छोटे सामन्त'

(गरासदार) थे, कवाकाका के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

जब सीमा-समिति का काम समाप्त हुआ तब वाटसन साहब ने कबाकाका के प्रामाणिक और निष्पक्ष कार्य पर बहुत सतोष प्रकट किया। उन दिनो राजकोट राज्य के दो हिस्से किये गए थे। राजकोट राज्य से पचास एकड जमीन अग्रेजो ने ९९ वर्ष के पट्टे पर ले रखी थी और वहां ब्रिटिश सरकार की सीधी हुकूमत और कायदे-कानून लागू थे। इस टुकडे के अतिरिक्त शेष राजकोट पर वहां के ठाकुर की हुकूमत थी। राजकोट की गद्दी पर उस समय ठाकुर बावाजीराज आसीन थे। उनके राज्य की आर्थिक स्थिति अच्छी नही थी। ठाकुर साहब के कर्मचारी राजकाज मे शिथिल थे। इसलिए वाटसन साहब ने कबाकाका को अपना दीवान बना लेने के लिए ठा० बावाजीराज को परामर्श दिया और उन्होने इसे स्वीकार कर लिया।

राजकोट राज्य के दीवान के नाते कबाकाका को राजकोट एजेसी के अग्रेज-अधिकारियो से कई बार मुकाबला करना पडता था, परन्तु वह राजकोट रियासत के स्वाभिमान और हित को हानि पहुचाने के लिए कभी तैयार नही हुए। अपनी नौकरी से हाथ धो बैठने की नौबत आने पर भी अग्रेज साहबो के क्रोध की उन्होंने परवाह नही की।

राजकोट के ठाकुर बावाजीराज प्रजाहितैषी और प्रभावशाली व्यक्ति थे। उनका रौब-दाब काफी था और छोटे-बड़े राजकर्मचारी उनसे भयभीत रहते थे। परन्तु कबाकाका के पुनीत और तेजस्वी व्यक्तित्व के सामने ठाकुर साहब भी दबते थे। ठाकुर साहब को शराब का शौक था। परन्तु वह बडी सावधानी रखते थे कि कही कबाकाका उन्हे मद्यपान करते देख न ले। राजमहल मे मदिरासेवन की तैयारी के समय यदि द्वारपाल कबा गाधी के आने की सूचना दे देता तो ठाकुर साहब तत्काल अपना मदिरापात्र लौटा देते थे और अपनी बैठक का कमरा मदिरा से शून्य करने के बाद ही कबाकाका को मुलाकात देते थे। यदि कबाकाका के आने से पूर्व वह मदिरापान कर चुके होते तो उस हालत मे वह कभी उनके सामने नही आते थे। राजा के हृदय मे अपने तेजस्वी दीवान का इतना अधिक आदर था।

रिश्वत, खुशामद आदि से कबाकाका को बडी घृणा थी। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे भी वह निश्चित वेतन के अतिरिक्त अपने पल्ले मे कुछ भी नही बाधते थे। अपने द्वारा चलाए जानेवाले राजतन्त्र मे भ्रष्टाचार को दूर रखने मे कबाकाका बहुत सजग रहते थे। एक बार ठाकुर बावाजीराज ने उनसे आग्रह किया कि वह अपने लिए जितनी इच्छा हो उतनी

जमीन ले ले। इस आग्रह के पीछे कवाकाका को अनुचित पुरस्कार का आभास हुआ और इस कारण उन्होने इन्कार कर दिया। उन्होने राजा से कहा, "मुझे मेहनताने मे जो निश्चित वेतन मिल रहा है उससे अधिक कुछ भी दान लेना मेरे लिए अशोभनीय है।" इस पर ठाकुर साहब ने उनको समझाने की कोशिश की कि आपको अपने उत्तराधिकारियो के लिए भी तो कुछ इन्तजाम कर जाना चाहिए। किन्तु कवाकाका अटल रहे। वाद मे जव परिवार के लोगो ने भी थोडी-वहुत जमीन स्वीकार करने का आग्रह किया तब बापा ने रहने के मकान के लिए जमीन का एक छोटा-सा टुकडा ले लिया।

राजकोट से उत्तर मे प्राय. पच्चीस मील पर वाकानेर जकशन पडता है, जहा से रेलवे की एक शाखा मोरबी शहर को मुडती है। दो-तीन सौ फुट की ऊचाई वाली एक समतल-सी पहाडी पर वाकानेर शहर के कुछ सुन्दर मकान बने है और इसी पहाडी की तराई मे वह छोटा-सा शहर वसा है।

वाकानेर राज्य भी राजकोट की तरह सौराष्ट्र का एक द्वितीय श्रेणी का राज्य था। वह विस्तार तथा आय मे राजकोट से कुछ अधिक और आवादी मे उससे कुछ कम था। वहा का शासन-प्रवन्ध विगड गया था। कर्मचारियो के भ्रष्टाचार के कारण वहा का राजा तग आ गया था। अनुशासनहीनता और कार्यदक्षता का अभाव दिन-दिन बढता जाता था। ऐसी दशा मे किसी सज्जन ने राजा साहव को परामर्श दिया कि यदि राजकोट से कवा गाधी को वुलाकर उनके हाथ मे वाकानेर राज्य की वाग-डोर दी जाय तो रियासत बर्वादी से बच जायगी। कर्मचारी शीघ्र ही ठिकाने पर आ जायगे। राजा साहव को यह सलाह पसन्द आगई और उन्होने कवाकाका के साथ वातचीत शुरू कर दी। राजकोट के दीवान-पद को छोडकर वाकानेर का दीवान-पद लेने के लिए कवाकाका कुछ शर्तो-पर राजी हो गए। राजकोट की नौकरी से त्याग-पत्र देकर वह वाकानेर गये और वहा के राज्य-प्रवन्ध का काम अपने हाथ मे ले लिया।

सवसे पहले उन्होने वाकानेर राज्य के चालू काम-काज का गहरा अध्ययन किया। कुछ समय वाद रियासत के आतरिक प्रवन्ध मे आवश्यक परिवर्तन करना शुरु कर दिया। उनके कुछ परिवर्तन राजा साहव को पसन्द नही आए। वह अप्रसन्न हो गए और वचनवद्ध होने पर भी अपने को रोक नही पाए। उन्होने कवाकाका के प्रवन्ध मे हस्तक्षेप कर ही दिया। एक पत्र भेजकर राजा साहव ने कवाकाका को सूचित किया

कि अमुक परिवर्तन ठीक नही है, उसे पूर्ववत कर दिया जाय। कबाकाका को यह पत्र बुरा लगा; परन्तु उस समय उन्होने धैर्य से काम लिया। इस घटना को पूरे दो महीने भी न बीते होगे कि राजा साहब के पास से उन्हे दूसरा पत्र मिला, जिसमे कर्मचारियो के छोटे-मोटे परिवर्तन के बारे मे उलहना दिया गया था। इस पत्र के उत्तर मे कबाकाका ने धैर्य व शाति के साथ राजा साहब को सक्षिप्त उत्तर भेजा, "मैने जो किया है, सोच-समझकर किया है और राज्य के हित के लिए ही किया है।"

थोडे समय बाद उन्होने कबाकाका के एक बडे निर्णय को उलटने के लिए प्रत्यक्ष हस्तक्षेप किया, जो कबाकाका के लिए सर्वथा असह्य था।

जमीन महसूल के रूप मे राज्य के पास जो गल्ला इकट्ठा हो जाता था उसे नीलाम करके व्यापारियो को बेच दिया जाता था और वह धन राजकोष मे जमा कर दिया जाता था। नीलाम का तरीका यह था कि पडोस के राज्यो मे अनाज का भाव पूछ लिया जाता था और उसके आधार पर राज्य की ओर से गल्ला नीलाम कर दिया जाता था। कबाकाका ने इस प्रथा के अनुसार अन्य राज्यो के नीलाम के भाव मगवा लिये और व्यापारियो को एकत्र करके राज्य के गल्ले की बोली शुरू करवाई। जब कबाकाका की समझ से उचित मूल्य तक बोली पहुच गई तब उन्होने अपनी जिम्मेदारी पर राजा साहब से सम्मति लिये बिना ही नीलाम समाप्त कर दिया।

इस पर कुछ असन्तुष्ट कर्मचारियो ने राजा साहब से कबाकाका की शिकायत की।

शिकायत सुनकर राजा साहब गुस्सा हो गये और उन्होने कबाकाका के इस कार्य मे हस्तक्षेप करना चाहा, परन्तु उनकी चली नही।

कबाकाका के लिए अब वाकानेर मे ठहरना कठिन हो गया। राज-कोट से जब उनको आमन्त्रित किया गया था तब राजा साहब के साथ बातचीत मे मध्यस्थ नवलशकरभाई थे। उनके पास कबाकाका ने पत्र द्वारा सदेश भेज दिया कि शर्तो का प्रत्यक्ष भग किया गया है। अब मै इस राज्य मे अधिक समय रुकना नही चाहता। मुझे तुरन्त राजकोट लौट जाना है। आप मेरे लिए सवारी का प्रबन्ध करा दे। जबतक सवारी का प्रबन्ध नही होता, मै भूखा-प्यासा रहूगा। इस राज्य की सीमा से बाहर न निकल जाऊगा तबतक पानी की एक घूट भी लेना मेरे लिए अनुचित है।

वाकानेर के महाजनो ने और राजा साहब के प्रतिनिधियो ने कबा-

काका को शान्त करने और मना लेने की बड़ी कोशिश की, परन्तु कबा-काका नही माने।

वाकानेर से कबाकाका के लौट आने के बाद प्राय: दो सप्ताह बाद राजा साहब का एक पत्र कबाकाका के पास आया। उसमे क्षमा मागी गई थी और वाकानेर का मन्त्रित्व पुन. स्वीकार करने के लिए उनसे अनुरोध किया गया था। कबाकाका ने उस पत्र को ध्यान से पढा और उसमे उनको पश्चात्ताप की झलक दीख पडी। अत: वे राजा साहब का अनुरोध स्वीकार करके दुबारा वाकानेर गये; परन्तु वहा मुलाकात मे जो बात-चीत हुई उससे उन्हे सतोष नही हुआ। उन्होने परख लिया कि नित्य के काम मे भी राजा साहब अपना हस्तक्षेप छोडना नही चाहते और पूरा उत्तरदायित्व सौंपने के लिए दिल से तैयार नही है। इसलिए पुन. वाकानेर के दीवान-पद का बोझा उठाना कबाकाका ने उचित नही समझा।

उन दिनो सभी रियासतो मे राज्य-कर्मचारियों का वेतन प्रतिमास नही चुकाया जाता था। पाच-सात महीने या वर्ष-डेढ वर्ष बाद राजा लोग अपनी सुविधा के अनुसार इकट्ठा वेतन चुकाया करते थे। राज-कर्मचारियो को वनियों के यहा खाता खोलने की सुविधा कर दी जाती थी, ताकि घर-खर्च चलता रहे।

इस प्रणाली के अनुसार कबाकाका को भी अपनी वाकानेर की नौकरी का वेतन तबतक कुछ नही मिला था। जब राजा ने देखा कि कबा-काका मानने वाला नही है, तब उन्होने उनसे लिखित त्यागपत्र की माग की। कबाकाका ने तत्काल अपना त्यागपत्र लिख दिया और उसमे स्पष्ट कर दिया कि "चूकि आपने दो बार मुझे धोखा दिया है और मेरे प्रबन्ध मे आपको जहा कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था वहा बार-बार हस्तक्षेप किया है और इस प्रकार हमारी शर्त का भग किया है, इसलिए मै मन्त्री-पद से त्यागपत्र देता हू व शर्त के अनुसार अपना पूरा वेतन चाहता हू।"

राजा साहब को त्यागपत्र की भाषा चुभी और उन्होने त्यागपत्र लौटा दिया। फिर कबाकाका पर राजा साहब ने जोर डाला कि धोखा देने की बात का और शर्त भग का उल्लेख छोडकर केवल सीधा-सादा त्यागपत्र लिख दे, परन्तु कबाकाका ने ऐसा करने से इन्कार करते हुए साफ कह दिया कि जो वास्तविक बात नही है, वह क्यो लिखू? मेरे लिए यहा से जाने का दूसरा कारण ही क्या है?

राजा साहब ने कबाकाका से त्यागपत्र के बदलवाने का बहुतेरा

प्रयास किया और न बदलने पर सारा-का-सारा वेतन न देने की धमकी दी, किन्तु कबाकाका अविचलित रहे। सत्य को छिपाकर खुशामद करने की बात पर उन्होने तीव्र विरोध व्यक्त किया।

अन्त मे राजा साहब ने अधिक बहस करना छोडकर कहा, "आप त्यागपत्र लिखिए ही मत। आपने आजतक राज्य की जो सेवा की है उसको ध्यान मे रखकर मै आपको दस हजार रुपये देता हू। उन्हे ले लीजिए और झगडा समाप्त कीजिए।"

कबाकाका इसके लिए भी राजी नही हुए और उसको अस्वीकार करते हुए बोले, "अगर आपको देना है तो बाकायदा मेरा त्यागपत्र स्वीकार करके शर्त के अनुसार पूरा वेतन दीजिए, अन्यथा मुझे एक कौडी भी नही चाहिए।"

राजा ने कहा, "सोच-समझ लीजिए। बिना लिखा-पढी के कोई इतनी बडी रकम सहज मे नही दे देता। सुना है आप अपने पुत्र (यह सकेत विद्यार्थी मोहनदास गाधी के लिए था।) को पढने के लिए विलायत भेजने का विचार कर रहे है। उस समय यह रकम काम आ जायगी। अपने लिए नही तो अपने बच्चो के लिए ही सही, आप इसे ले लीजिए।"

कबाकाका ने राजा साहब की बात का दो टूक उत्तर दिया, "आप के समान कृपालु राजा-महाराजा अनेक मिल जायँगे, जो अजलि भर-भरकर देने वाले होगे, परन्तु मेरे समान राजसेवक बिरले ही मिलेगे, जो सचाई पर पर्दा डालने से इन्कार करे और इतनी बडी रकम को लात मार दे।"

राजा साहब और कबाकाका के बीच जब यह विवाद चल रहा था तब उन दोनो की जान-पहचान के और मध्यस्थता करने वाले एक और सज्जन वहा उपस्थित थे। उन्होने कबाकाका को समझाने की कोशिश की और कहा, "राजा के रूठने पर क्या होता है, यह तो आप जानते ही है। फिर जब राजा अपनी इच्छा से आपको दस हजार रुपये दे रहे है तो उसको स्वीकार कर लीजिए। यह रकम थोडी नही है।"

यह कहकर उन्होने कबाकाका को उत्तर देने का मौका दिये बिना ही रुपयो की थैलिया उठाकर कबाकाका की सिकरम मे रखवा दी। कबाकाका तुरन्त उठ खडे हुए और स्वय अपने हाथो से उन थैलियो को उन्होने सिकरम से उतारकर ड्योढी के चबूतरे पर रख दिया। इसके बाद सिकरम पर सवार होकर राजकोट के लिए चल दिए।

वाकानेर से लौट आने पर पालीताणा, मागरोल आदि रियासतो से कबाकाका को निमन्त्रित किया गया। लेकिन अब इतनी दूर नई जगह

जाकर नए सिरे से घर वसाने का उत्साह उन्हे नही रहा था। जव कवाकाका वाकानेर गये थे तव भी घर राजकोट मे ही था, तथा वापू वहा के हाई स्कूल मे पढते थे। नौकरी का कोई सिलसिला वैठ नही रहा था, इसी वीच कवाकाका की दमे की वीमारी वढ गई और वारबार दमे के दौरे उन्हे परेशान करने लगे। इस वीमारी के समाचार सुनकर राजकोट के ठाकुर साहव वावाजीराज कवाकाका से मिलने आये। ठाकुर साहव को पता तो चल ही गया था कि वह नौकरी की खोज मे है। मिलने पर उन्होने कवाकाका से कहा, "गाधी, आपको और कही जाने का विचार नही करना चाहिए। राजकोट मे आपका अपना विशिष्ट स्थान वना ही हुआ है। वीमारी से उठने पर अपना दीवान-पद सम्हाल ले।"

असल मे वात यह थी कि कवाकाका के वाकानेर चले जाने के वाद राजकोट रियासत का राज्यप्रवन्ध शिथिल पड गया था और राजकोप खाली हो गया था। मेरे दादाजी ने, जो उस समय राज्य की नौकरी मे थे, वताया था कि पुलिस के महकमे वाले का वेतन पहले प्रतिमास दिया जाता था, पर कवाकाका के वाकानेर जाने पर छ-छ. महीने तक उसे चुकाने की व्यवस्था नही हो पाती थी।

जव वीमारी का दौरा समाप्त हुआ और कवाकाका अच्छे हो गए तो वे राजकोट के ठाकुर के वुलावे की प्रतीक्षा करते रहे। पर शायद ठाकुर साहव अपनी वात भूल गए थे। कई दिन वीत जाने पर भी जव वुलावा नही आया तव कवाकाका ने कही निकट ही नौकरी की तलाग शुरू की। जूनागढ जाने का निश्चय हो गया। किन्तु जाने ही वाले थे कि फिर उन्हे दमे का दौरा उठ आया। वीमारी की वात सुनकर श्री वावाजीराज दुवारा कवाकाका से मिलने आये और स्वास्थ्य की चर्चा करते हुए उन्होने कहा, "आपके पास काम न होने के कारण वार-वार वीमारी का हमला होता है। इस वार वीमारी का दौरा कम होते ही आप मुझे खवर दे। मै आपको मन्त्री-पद सौप दूगा।" यह कहकर ठाकुर साहव घर लौटे और उन्होने दूसरे ही दिन वाकायदा आज्ञापत्र निकालकर कवाकाका को राजकोट के दीवान-पद पर नियुक्त कर दिया।

इसके कुछ समय वाद, अपने पुत्रो के विवाह-सस्कार मे सम्मिलित होने के लिए कवाकाका को पोरवन्दर जाना पडा परन्तु सिकरम की दुर्घटना हो गई। उसमे उन्हे वहुत चोट आई और वह वडी कठिनाई से राजकोट लौट पाए। विस्तर छोडना उनके लिए सम्भव नही रहा। इस वीमारी का ख्याल करके ठाकुर वावाजीराज ने राज्य के दीवान-पद का भार

स्वय सम्हाला और कबाकाका को पूरा वेतन देना जारी रखा। छ महीने तक लगातार इस प्रकार उपकृत होना कबाकाका को उचित नही लगा और उन्होने ठाकुर साहब से त्यागपत्र स्वीकार करने को कहा। किन्तु राजा साहब ने उनकी बात नही मानी। इस प्रकार दूसरी छमाही भी बीत गई, किन्तु चोट बहुत भारी थी और नाजुक जगह पर लगी थी, इसलिए उसमे नासूर हो गया और वह ऐसा विकट था कि कबाकाका अपने काम पर उपस्थित नही हो सके।

इसी बीच बाबाजीराज और उनके कुटुबियो के बीच जमीदारी के बारे मे कुछ मनमुटाव हो गया। इस सघर्ष मे कबाकाका ने न्याय जमीदारो के पक्ष मे देखा, इसलिए उन्होने ठाकुर साहब से जमीदारो की बात मान लेने का आग्रह किया। ठाकुर साहब बुरा मान गए। पर उन्होंने कबाकाका से इतना ही कहा, "आपके साथ हमारा इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी आप विरोधी पक्ष का समर्थन क्यो करते है?"

अपना मत दबा देना कबाकाका के स्वभाव मे नही था। ठाकुर साहब से इस प्रकार बातचीत होने के तुरन्त बाद कबाकाका ने उन्हे सूचित कर दिया, "अब आप कृपया दूसरे किसी दीवान को खोज लीजिए। अब मै अधिक सेवा नही कर सकूगा। मेरा स्वास्थ्य भी सुधरने के बजाय दिन-दिन गिरता जा रहा है।" इस प्रकार कबाकाका को, बिस्तर पर रहने पर भी, लगभग एक वर्ष तक पूरा वेतन मिलता रहा। त्यागपत्र स्वीकृत हो जाने के बाद भी तीन वर्ष तक, अर्थात् जीवन के अन्त तक, उन्हे राजकोट के ठाकुर की ओर से पेशन के रूप मे पचास रुपये माहवार मिलते रहे।

बरसो तक रोग-शय्या मे रहने पर भी कबाकाका के स्वभाव मे चिडचिडापन या बेचैनी नही आई। उनकी भक्ति-परायणता कायम थी और उनका चित्त शान्त और स्वस्थ रहता था। हमारे बापू अपने पिता की सेवा मे बडी एकाग्रता से लगे रहते थे। कबाकाका मोहनदास को 'मनु' कहकर पुकारते थे। यदि कबाकाका को कोई आवश्यकता होती तो पहली आवाज वह मनु को ही देते थे और 'मनु' तत्काल उनके पास उपस्थित हो जाता था। प्रात काल उठते ही मनु अपने पिता को दतौन देता, उनके शौच हो आने का इन्तजाम करता, उनके पैर धो देता, उनको नहलाता और उनके लिए दवा पीसकर उसका नियमपूर्वक सेवन कराता। इसके बाद वह अपने स्वाध्याय मे लीन हो जाता था। पुतली काकी भी कबाकाका की बहुत सेवा करती थी।

मनु और करमचन्द बापा का एक-दूसरे के प्रति बेहद प्रेम और

विश्वास था। कबाकाका के अन्तिम दिनो मे किसीने उनसे पूछा, "काका, आपके बाद आपका स्थान कौन लेगा?"

उन्होने बहुत गम्भीर होकर धीरे से कहा, "मेरी नाक मनु रखेगा। वह कुल को उजागर करेगा।"

अपने पिताजी की सेवा करने से बापूजी स्वय कितने कृतार्थ थे, इस पर चर्चा करते हुए बापूजी ने मुझसे एक बारबहुत ही गम्भीरता के साथ कहा था, "आजकल शिक्षा का जो प्रवाह चल पडा है उसकी निरर्थकता लोगो की समझ मे जाने कब आयगी? सच्चा शिक्षण सेवा मे ही निहित है, हमे अपने आश्रम के विद्यार्थियो को बडो की सेवा करना सिखाना चाहिए। अपने शिक्षक की और मातापिता की सेवा करना कोई हजार सफो के पढ लेने से भी अधिक है। मै जो उन्नति कर पाया हू उसका श्रेय मेरी पितृसेवा को ही है। मैने तो इतना भी नही पढा होगा, जितना तुम लोगो को आश्रम मे पढने को मिल रहा है। मेरी बुद्धि का और मेरे हृदय का विकास, मेरे चारित्र्य का गठन और मेरी लगातार होती रहने वाली प्रगति, सभी कुछ बचपन की मेरी पितृसेवा की आभारी है। उसी की बुनियाद पर मेरा ज्ञान पनपा है। जिसे इस बात का अनुभव लेना हो वह सेवा करके देखे। निश्चय ही सेवा मे उसे अपना सर्वांगीण विकास दिखाई देगा।"

: ९ :

मेरे पितामह

मेरे दादाजी ने सन् १८५३ से लेकर १९३७ तक, अर्थात् ८४ वर्ष की सुदीर्घ आयु पाई और अपना जीवन पवित्रता से गुजारा।

उनका नाम श्री खुशालचन्द गाधी था। श्री उत्तमचन्द गांधी उनके दादा थे। ओताबापा के दो विवाह हुए थे। पहली पत्नी को कडवीमा और दूसरी को लक्ष्मीमा कहा जाता था। कडवीमा के चार पुत्रो मे सबसे छोटे पुत्र मेरे परदादा श्री जीवन गाधी और लक्ष्मीमा के दो पुत्रो मे बडे श्री करमचन्द गाधी थे। इस प्रकार मेरे परदादा और कबागाधी सौतेले भाई थे। परन्तु मेरे दादा पर कबाकाका का वात्सल्य अपने सगे बेटे के समान ही था।

हमारे परिवार मे हाई स्कूल की पढाई पूरी करने वालो मे शायद मेरे दादाजी ही सबसे पहले युवक थे। गणित के पर्चे मे पर्याप्त नम्बर न आने के कारण उनकी गिनती 'नान मैट्रिक' मे की गई। लेकिन तब 'नान मैट्रिक' होना भी बडी बात थी। दादाजी के बाद उनके भाइयो मे केवल बापूजी ही मैट्रिक तक पढे व बैरिस्टर हुए।

'बापू' और 'बापूजी'—इन दोनो सम्बोधनो का अर्थ अब प्राय. एक ही हो गया है। लेकिन जब मै बच्चा था तब हमारे घर मे इनका अर्थ भिन्न था। उस समय बच्चे अपने पिता को 'बापू' और पितामह को 'बापूजी' कहते थे। इस प्रथा के अनुसार मै अपने दादा को 'बापूजी' कहता था। दादाजी के सभी चचेरे भाइयो के लिए उनके नाम के साथ 'बापूजी' का प्रयोग करना मेरे जैसे पौत्र के लिए आवश्यक था। जब मोहनदास बापूजी के साथ हमारे घर का सम्बन्ध अति निकट का हो गया, तब उनका नाम लेना अशिष्ट माना जाने लगा। अतः माता-पिता की शिक्षा से मै उन्हे बापूजी और अपने दादा को 'बडे बापूजी' कहने लगा। देवदासजी तथा रामदासजी अपने पिता को बचपन से 'बापू' कहकर पुकारते थे, किन्तु मै उनका पौत्र था, इसलिए मुझे उनको 'बापू' कहने का अधिकार नही था।

जब बापूजी देश-भर के 'बापूजी' बन गए और राष्ट्र-पिता कहलाने लगे तब सारे देशवासी बापू और 'बापूजी' दोनो शब्दो का एक-सा प्रयोग करने लगे।

बडे बापूजी (मेरे दादाजी खुशालचन्दजी) 'बापूजी' (मोहनदासजी) से अठारह वर्ष बड़े थे। जब बडे बापूजी चार वर्ष के हुए तब उन्होने अपनी माता की गोद खोई और चौदह बरस के होने पर उनके पिता का सहारा टूट गया। जब करमचन्द बापा पोरबन्दर के दीवान के पद पर थे उस समय जीवनबापा छाया परगने के परगना हाकिम थे। एक दिन सवेरे वे दतौन करते-करते मकान के ऊचे चबूतरे पर से अकस्मात गिर पडे और उनके सिर में गहरा घाव होगया। पता चलने पर कबाकाका घोडे पर दौडे हुए तुरन्त पोरबन्दर से छाया पहुचे और अपने बडे भाई को अपने साथ पोरबन्दर लिवा ले गए। वहा पर उन्होने बहुत चिकित्सा व सेवा-सुश्रूषा की, परन्तु जीवन बापा के लिए यह घाव विघातक साबित हुआ। उनके चल बसने पर मेरे दादाजी के माता-पिता का स्थान पुतलीकाकी और कबाकाका ने लिया और उन्होने इतने वात्सल्य और सजगता के साथ उनको पाला-पोसा कि मेरे दादाजी को अपने माता-पिता का अभाव बिल्कुल महसूस नही हुआ।

रिक्त और काम ही क्या है, जिसमे मै समय बिताऊ? आज का संचित ज्ञान अगले जन्म मे काम देगा। नये जन्म मे बचपन से ही बुद्धि तेजस्वी बनेगी।"

अस्सी वर्ष की आयु के बाद जब उनकी देह जरा-जीर्ण हो गई और अंग शिथिल पड गए तब भी वह ब्राह्म मुहूर्त्त मे बिस्तर छोडकर हाथ मे माला व गोमुखी ले लेते थे और स्थिरासन होकर सूर्योदय तक जप तथा चित्त को ध्यानावस्थित करने का अभ्यास किया करते थे। इसके बाद स्नानादि से निवृत्त होने पर दुबारा पूजा मे बैठ जाते थे और मध्याह्न तक श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ व मनन किया करते थे। बीमारी का अवसर छोडकर उन्होने चालीस वर्ष तक नित्य गीता के छः अध्यायो के पाठ का नियम रखा।

केवल धार्मिक स्वाध्याय करके ही उन्होने सन्तोष नही माना। बापूजी के क्रातिकारी जीवन का अनुशीलन करने मे भी उन्होने जीवन-भर अपनी बुद्धि-शक्ति का प्रयोग किया। बापूजी की जिस किसी बात को वह समझ पाए व जिसमे उनको सत्य प्रतीत हुआ, उसे उन्होने स्वीकार कर लिया और अपनी परिपक्व आयु मे भी अपने रहन-सहन व जीवन मे जो परिवर्तन कर सकते थे, उन्हे प्रसन्नतापूर्वक किया।

बापूजी के बैरिस्टरी की शिक्षा के लिए इग्लैड जाने के दिन से, बड़े बापूजी ने, उनके साथ जो सहयोग आरम्भ किया उसे अन्त तक निभाया। एक बडा भाई, अपने से आयु मे अठारह वर्ष छोटे भाई की बात को शिरोधार्य करे और छोटे भाई के मार्गदर्शन के अनुकूल अपने पूरे जीवन मे परिवर्तन करे, ऐसा प्रसग दुर्लभ ही कहा जायगा। रियासत की नौकरियो मे अपने बालको को प्रविष्ट कराना ठीक नही है, यह बापूजी की बात बडे बापूजी ने मान ली। अफ्रीका जैसे दूर देश मे अपने पुत्रो को भेजने की बापूजी की माग को तुरन्त सम्मति दे दी और एक-एक करके चारो पुत्रो को बडे बापूजी ने बापूजी के हाथ सौंप दिया। यदि बडे बापूजी चाहते तो अपने पुत्रो को ऐसे रोजगारो मे लगे रहने का आग्रह कर सकते थे, जिसके सहारे पर्याप्त कमाई होती और घर मे लक्ष्मीजी की कृपा हो जाती; पर ऐसी स्थूल अभिलाषा को उन्होने नही अपनाया, बल्कि अपने छोटे भाई मोहनदास की सूचना के अनुसार सत्कार्य एव सत्पथ पर बने रहे, यही मनोकामना उन्होने अहर्निश रखी।

बडे बापूजी प्रति तीन-चार वर्ष के बाद साबरमती आश्रम मे बापूजी के पास आया करते थे। उनकी भेट का भव्य दृश्य देखते ही बनता था।

दादाजी की तरह दादीजी भी बहुत भक्तिपरायण और कर्मठ थी। हमारे घर मे नौकर-चाकर कभी-कभी ही होते थे और जो रहे वे भी तब जब दादीजी वृद्ध हुई और कुए से पानी लाना उनके वश का नही रहा। रसोई-पानी, चौका-वर्तन सब-कुछ अपने हाथ से करने के उपरान्त गायों का सारा काम भी वह स्वय किया करती थी। इतना सब करने पर भी नित्य नियम से दर्शन के लिए मन्दिर आने-जाने मे सुबह-शाम मील-भर से ज्यादा चला करती थी। दोपहर मे जहा भागवत की कथा हो, वहा जाती थी और रात को हमे कृष्ण-चरित की व दूसरी कथाए सुनाया करती थी। अपनी दादीजी से सुनी हुई पौराणिक कथाओ का मुझपर गहरा असर पडा है।

जब बापूजी का स्वराज्य-आदोलन तेजी पर था व सत्याग्रह के सिल-सिले मे लाठी-मार और जेल-यात्राए बढ गई थी, तब दादीजी का उत्साह दर्शनीय था। जेल जाने वाले या लाठी का प्रहार सहने वाले युवक जब उनके पास आते तब वह उनके शौर्य को बढावा देती और उन्हे आशीर्वाद देती। वह बिल्कुल निरक्षर थी, परन्तु अखबार मे आने वाली बातो से परिचित रहती थी और उनका लोकस्वभाव का ज्ञान गहरा था। अपने बुढापे मे उन्होने महीन कपडा त्याग दिया था और हाथ के सूत की मोटी व भारी साडी पहनना शुरू किया था।

दादीजी व दादाजी दोनो की एक महत्वाकाक्षा थी कि अपने मोहन-दासभाई की अलौकिक जीवन-साधना का सफल परिणाम अपने जीवन-काल मे ही देख ले और मृत्यु से पहले ही स्वराज्य का अनुमान हो जाय। अशत. उनकी यह मनोकामना पूर्ण भी हुई। सन् १९३५-३६ मे भारत के आठ प्रान्तो मे कांग्रेस का मन्त्रिमडल कायम हो गया। उनको बापूजी की इस सफलता पर बहुत सन्तोष हुआ। इसके वर्ष भर बाद, कुछ ही महीने के अन्तर से, पहले दादीजी और बाद मे दादाजी स्वर्गवासी हुए।

बडे बापूजी का अन्तकाल बडा सुखद था। मृत्यु के समय उनकी आयु ८४ वर्ष की थी। एक दिन मध्याह्न के समय गीता पर प्रवचन सुनकर लौटने के बाद वे बैठे-ही-बैठे मूर्तिवत हो गये। कुछ देर बाद आखे खुलने पर उन्होने बताया कि अब मुझे ससार मे किसी प्रकार की आकाक्षा नही है, केवल गीता-पाठ सुनाया जाय।

मेरे काका श्री नारायणदासजी गाधी और उनके पुत्र भाई पुरुषोत्तम गाधी उनके अन्तकाल मे उनके पास पहुच गये थे। दोनो ने मिलकर गीता-पाठ का आरम्भ किया और उसे सुनते-सुनते बड़े बापूजी बाह्य जगत

से निवृत्त हो गए। सास और हृदय चलता रहा और ध्यानावस्थित की भाति वह परम-शान्ति से तीन-चार पहर लेटे रहे। इसके बाद देह से जीवन-ज्योति उड गई और मुखमडल पर एक प्रकार का शात तेज छा गया।

: १० :

बालक मोहन

विदेश से आने वाले कुछ लेखको ने बापूजी के बारे मे अपना अभिप्राय बताते हुए लिखा है, "देखने मे गाधी का शरीर रूपवान नही लगता था, किन्तु उनकी असुन्दर मुखाकृति पर भी एक प्रकार की ऐसी आभा दमकती थी कि उनके दर्शन के लिए गया हुआ व्यक्ति बहुत प्रभावित हो जाता था।" परन्तु बापू के मुख और शरीर की सुन्दरता के बारे मे मेरी दादीजी कहा करती थी कि मोहनदासभाई बचपन मे इतने रूपवान थे कि उन्हे बार-बार गोद मे लेने को जी ललचाता था। बडा सौम्य मुखडा था उनका। उनके बाल कुछ घुघराले थे और शरीर अपने पिता का-सा गोरा था। नुकीली नाक, सुन्दर आखे और भाल चौड़ा व चमकता हुआ था।

दादीजी ने यह भी बताया था कि वैसे तो मै मोहनदासभाई की भाभी थी, परन्तु जब मै ससुराल आई तब वह बिल्कुल छोटे थे। पुतलीकाकी का मन उनपर लगा ही रहता था, और सबसे छोटे होने के कारण वह उन्हे बहुत प्यार करती थी। फिर भी बहुत बडे परिवार की गृहस्थी के काम से पुतलीकाकी को फुरसत कम मिलती थी और वह छोटे मोहनदासभाई को बहलाने-घुमाने का काम हम बहू-बेटियो के जिम्मे कर देती थी।

मोहनदासभाई साधारण बच्चो की अपेक्षा रोते कम थे, इसलिए उनको गोद मे लेकर घूमने तथा खेलने मे हमे आनन्द आता था। बाद मे पुतलीकाकी ने मोहनदासभाई की रखवाली का कार्य रम्भाबाई को सौंप दिया था। रम्भाबाई का वात्सल्य मोहनभाई पर बहुत था और मोहनभाई भी रम्भाबाई से बहुत हिल गए थे।

वापूजी का जन्म होने तक उनकी दादीजी लक्ष्मीमा जीवित थी। अपने दो पुत्र करमचन्द गाधी और तुलसीदास गाधी मे से उन्होने छोटे पुत्र के साथ अपना उत्तर-जीवन बिताना पसन्द किया। तुलसीदास गांधी का घरेलू नाम चकन गाधी था। कबाकाका को राजकाज का वोझ ज्यादा उठाना पडता था और वार-वार पोरबन्दर छोडकर वाहर जाना पडता था, इसलिए घर का कार्यभार हलका करने मे चकनकाका उनको भरसक सहायता देते थे। यो तो सभी भाई एक ही मकान मे रहते थे और त्यौहार-पर्व आदि मे एक साथ भोजन करते थे, परन्तु साधारण जीवन मे सबके चौके-चूल्हे अलग-अलग थे। कबाकाका के कमरे से लगा हुआ जो कमरा था उसी मे लक्ष्मीमा रहती थी, पर उनके खान-पान व सेवा-शुश्रूषा का प्रवन्ध चकनकाका करते थे।

कबा गाधी और पुतलीमा के बच्चो मे से प्रथम तीन तो सामान्य ढग से पल गए, परन्तु बालक मोहन ने आकर अपने माता-पिता की चिन्ता को बहुत बढा दिया। वैसे मोहन शरारत करने वाले, दूसरो को सताने वाले या वडो को तग करने वाले नही थे, उनका स्वभाव सीधा था, परन्तु वचपन से ही उनमे पारे के-जैसी चचलता थी। वह कही चैन से वैठते ही नही थे। जब देखो, भागते-फिरते थे और आखो से ओझल हो जाते थे। पुतलीमा भारी गृहस्थी के वोझ मे इतनी दबी हुई थी कि वह अपने मोहन के लिए पूरा समय नही दे पाती थी। स्वय कबाकाका भी उन पर निगरानी नही रख पाते थे। पर उनको चपल और स्फूर्ति से भरे हुए इस वालक के लिए वडी आशका रहती थी। अपनी इस चिन्ता को हलका करने के लिए उन्होने एक दिन अपने छोटे भाई चकनकाका से रम्भावाई को प्राप्त कर लिया था।

वापूजी के वडे भाई और वहनो के नाम पिछले प्रकरण मे वता दिये गए है। उन सबके घरेलू नाम इस प्रकार थे . लक्ष्मीदास गाधी—'काला', करसनदास गाधी—'करसनिया', मोहनदास गाधी—'मोनिया', और रलियात वहन—'गोकी'। वापू की इन वडी वहन को हम लोग गोकी फइवा (वूआ) कहते है।

सन् १९५२ मे जव मै वुआ से मिला तो उन्होने अपने भैया के वारे मे वहुत-सी वाते सुनाई :

मै 'मोनिया' से सात वर्ष वडी हू। कालाभाई के वाद और करसनिया तथा मोनिया के पहले मेरा नम्वर था। मोनिया वहुत खिलखिलाकर हँसता था। मै कई वार उसे गोद मे लेकर चलने की कोशिश करती थी,

पर मां मुझे डांटती थी। वह कहती थी, "तू उसे गिरा देगी," मोनिया फाटक के बाहर जाता तो मा मुझे उसके साथ नही जाने देती थी। मा खुद भी मोनिया के पीछे नही जाती थी। केवल रम्भाबाई ही उसके पीछे-पीछे जाती थी। घर से बाहर निकलने पर गाय, घोडे, बैलगाडियो, ऊंट आदि से कुचल जाने का तो खतरा था ही, उसके खो जाने का भी डर था। एक बार वह गीत गाती हुई लडकियो की टोली के पीछे-पीछे चल दिया। घर मे किसी को पता न चला। लडकिया झुड बनाकर बस्ती के बाहर एक सुनसान जगह पर पूजा करने के लिए जाया करती थी। इधर पिताजी (कबाकाका) ने गाव-भर में मोनिया की खोज करवा डाली। रम्भाबाई ने गली-गली छान डाली और मा ने घर का कोना-कोना देख डाला, पर मोनिया न मिला। बडी देर के बाद एक जानपहचान वाली लडकी मोनिया को ले आई। तब कही सबको शाति हुई। इसके बाद पिताजी ने रम्भाबाई से कह दिया कि वह मोनिया को अकेला बिल्कुल न छोडे।

घर मे बैठना मोनिया को अच्छा नही लगता था। भूख लगने पर घर मे आता और खा-पीकर तुरन्त खेलने चला जाता। जब घर मे रहता तब पिताजी के सामने तो थोडा शात रहता, पर जैसे ही पिताजी बाहर चले जाते, घर की चीजो की उलट-पुलट करने लग जाता। कभी-कभी पिताजी की पूजा करने की जगह पहुचकर वह पूजा के बर्तनो को उलट देता। ठाकुरजी की मूर्त्ति को चौकी से नीचे रखकर वह स्वय चौकी पर बैठ जाता।

कुछ बडे हो जाने के बाद घर की जमीन पर जगह-जगह गोल-गोल लकीरे बनाने मे उसको आनन्द आता था। बडो को लिखते देखकर वह भी लिखने का प्रयत्न करता था। मा कहती, "मोनिया, ऐसा मत कर। जमीन खराब हो जायगी।" वह जवाब देता, "नही बिगडती, मां।" और फिर अपने काम मे मगन हो जाता था।

मन्दिर मे खेलने जाने का उसे बहुत शौक था। वहा कुआ भी था और पेड भी। वहा कही गिर न जाय इसलिए रम्भाबाई चुपके-चुपके उसके पीछे हो लेती। पर मोहनभाई उसे देखता तो पुकार उठता, "मुझे रम्भा नही चाहिए। मुझे रम्भा नही चाहिए।" पिताजी उसे समझाते, "रम्भा तुझे कहा पकडती है? तुझे जहा जाना है जा। कही खो जायगा तो हम तुझे कहा ढूढते फिरेगे?" मोनिया उत्तर देता, "मै नही खो जाऊगा। मुझे रम्भा नही चाहिए अकेला जाऊँगा।" परन्तु उसको स्वतत्र घूमने मे बाधा न हो इस प्रकार रम्भाबाई उसके पीछे-पीछे ही रहती थी।

बदन से मोहनभाई सदैव छरहरा ही रहा। कालाभाई और करसन-भाई की तरह उसका बदन दोहरा नही हुआ।

खेलने मे मोहनभैया अकेले रहना अधिक पसन्द करते थे। दूसरे बच्चो से खेलते तो कभी किसी बच्चे की ऐसी शिकायत न आती कि मोनिया ने मुझे मारा है या तग किया है। कभी-कभी मोहनभैया खुद मार खाकर रोता-रोता आता पर पिताजी या माताजी जरा पुचकार देते तो वह तुरन्त चुप हो जाता।

खेल-कूद मे उसको पेडो पर चढना अच्छा लगता था। मंदिर मे लगे हुए पपीते और अमरूद के पेडो से वह बहुधा पके फल तोड लाता था। गिर पडने के डर से पिताजी उसे पेड पर चढने से बार-बार मना करते परन्तु वह मानता नही था। कभी-कभी कालाभाई उसको पेड पर चढा हुआ देखकर टाग पकडकर नीचे उतार देते थे। तब वह रोता हुआ मा के पास चला आता और कहता "मा, भाई ने मुझे मारा।"

मां कहती, "तू भी उसे मार दे।"

मोनिया उत्तर देता, "ऐसा सिखाती हो! क्या मै मारू? बड़े भाई को मारू? मै किसी को क्यो मारू?"

मा कहती, "बच्चे आपस मे लडाई-झगडा करते ही है। भाई-बहन भी आपस मे मार लिया करते है। अगर भाई ने तुझे मारा तो तू भी मार दे!"

मोनिया उत्तर देता, "बडे भाई भले मार दे। वह बडे है। मै नही मारूंगा। जो मारते है उन्हे मारने से तू क्यो नही रोकती? मारनेवाले से न मारने को कहना चाहिए या मार खानेवाले को मारना सिखाना चाहिए?"

तब मा मोनिया से कहती, "तुझे कहा से ऐसा जवाब सूझता है? कौन ऐसी बाते तुझे सिखाता है? जाने विधाता ने तेरे लिए क्या लिखा है!"

मोनिया को जब पाठशाला मे बैठाया गया तब उसका मन पढ़ने मे लग गया। दूसरे बच्चे पाठशाला जाने से बचने के लिए तरह-तरह के ढोग करते और तरकीब लड़ाते, परन्तु मोहनभैया समय होते ही खुशी-खुशी पाठशाला जाता।

बुआजी ने आगे बताया—मेरे पिताजी मेरी मा के लिए बहुत चिन्तित रहते थे। चौथी बार की वह शादी थी। अपना वश चलानेवाला कोई हो, इसलिए उन्होने यह शादी की थी। पहली तीन पत्नियो से एक भी बेटा नही हुआ था। अब जब बेटे हुए तो पिताजी को यह आशा न थी कि बेटो की कमाई खाने के लिए वह स्वय जीवित रहेगे। परन्तु मा को बेटे सुखी रखे, यह उनकी अभिलाषा थी। बार-बार पिताजी मा से कहा

करते थे कि तेरी कोख को यह मोनिया जरूर उजागर करेगा। यह सस्कारी है और इसका भाग्य ऊचा है। यह पढकर होशियार होगा।

पाठशाला जाने मे जिस प्रकार बचपन से ही मोहनभैया नियमित था, उसी प्रकार खाने के बारे मे भी चुस्त और सादा था।

बापूजी ने पोरबन्दर की जिस प्रारम्भिक पाठशाला मे शिक्षा पाई वह हमारे परिवार के मकान से दो मिनट के रास्ते पर थी। आजकल उसमें किसी व्यापारी का कोयले का गोदाम है। पर उन दिनो पोरबन्दर मे वह महत्व की पाठशाला थी। वहा पर पुराने जमाने के पडित फर्श पर धूल बिछाकर उसपर अगुली से अक्षर बनाना सिखाते थे। इसलिए वह धूलिशाला कहलाती थी।

बालक मोहन स्वभाव से ही सच्चाई का पक्षपाती था। भूलकर भी वह सत्य से विचलित नही होता था। उसके इस स्वभाव के कारण उसके साथ खेलने वाले बालको ने उसे ऊचा स्थान दे दिया था।

एक बार बालक मोहन के साथी बच्चो ने मन्दिर के खेल मे ठाकुरजी को झूला झुलाने का निश्चय किया। साधारणत. ऐसे खेल के लिए गारे की मूर्ति बनाकर ठाकुरजी के स्थान पर बिठाई जाती थी, किन्तु इस बार एक-दो बालको को सूझा कि लक्ष्मीनारायण के मन्दिर मे अनेक प्रकार के ठाकुरजी सिंहासन पर बैठे है, उनमे से दो-एक को उठा लाया जाय। सबको यह प्रस्ताव पसन्द आया और पाच-छ बालको की टोली लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की ओर चल पडी। उनमे दो-तीन बालक 'मोनिया' से कुछ बडे थे। दो-एक छोटे भी थे। ठाकुरजी को उठा लाने का काम सबसे छोटे साथी पर डाला गया। यहा हम उसे चन्दू कहेगे।

वह समय पुजारी के आराम का था। अत. उसकी अनुपस्थिति का लाभ लेकर चन्दू ने चुपचाप एक के बाद एक देवमूर्त्ति को अपने कुर्ते के पल्ले मे रखना शुरू किया। इस पराक्रम मे मूर्तिया आपस मे टकराकर बज उठी और पुजारिन को बच्चो की कारस्तानी की आहट मिल गई। उसने पुजारी को आवाज दी तो चटपट चन्दू वहा से नौ-दो-ग्यारह हो गया। बाकी बच्चे भी भागे और पुजारी उन्हे पकडने के लिए पीछे दौडा। एक बडे बालक ने चन्दू से उन मूर्त्तियो को फेक देने के लिए कहा। पुजारी की नजर बचाकर चन्दू ने उन मूर्त्तियो को आनन्दबावा के मन्दिर के आगन मे फेक दिया। पुजारी के हाथ एक भी बच्चा न आया और सब-के-सब हवा हो गए।

उनमे अधिकाश बच्चे गाधी-परिवार के थे और सब भागकर अपने-

बापूजी जहां जन्मे
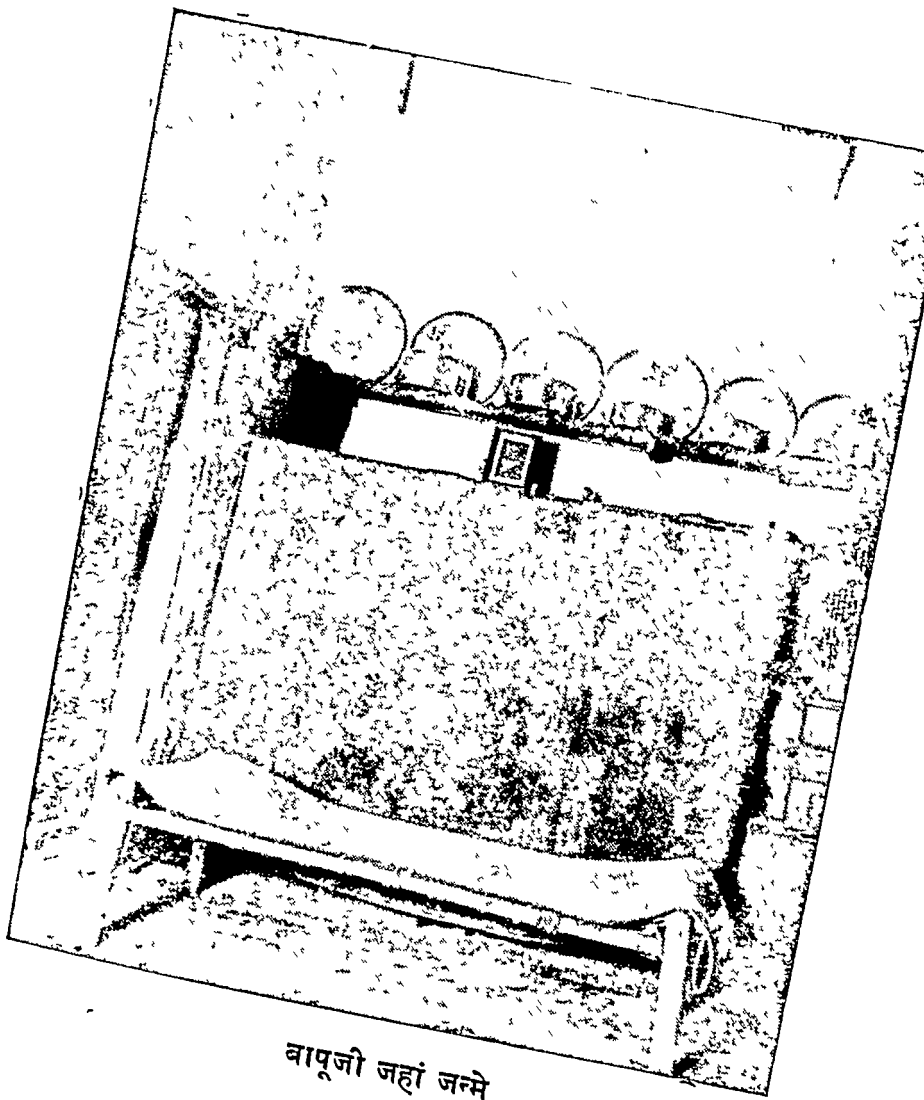
बाल मोहन

विद्यार्थी मोहन

अपने घर मे—ओता गाधी के मकान मे—जा घुसे। मन्दिर की नित्य पूजा की मूर्त्तियो के बिना पुजारी कैसे लौट सकता था ? अत उसने चन्दू के पिता से, जो बापूजी के चचेरे भाई थे, शिकायत की। चन्दू के पिता तेज स्वभाव के थे। शिक्षा देने के लिए बच्चो को पीटने मे उन्हे कोई सकोच नही होता था। फिर वह पक्के वैष्णव थे। लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की मूर्त्तियो को चुराना उनकी दृष्टि मे गभीर अपराध था।

उन्होने चन्दू, उसके बडे भाई और अन्य सब बच्चो को बुलाकर पूछा, "बताओ, मूर्त्तिया किसने उठाई ? कहा रखी है ?" परन्तु किसी ने सत्य नही बताया। चन्दू के बडे भाई ने कहा, "हम मन्दिर मे खेलने गए थे। पुजारी बेकार ही हमारे पीछे पड गया है।" अन्त मे बालक मोहन को बुलाकर पूछा गया तो उसने निर्भय होकर सारी बात बता दी। उसने कहा, "चन्दू ने मूर्त्तिया आनन्दबावा के मन्दिर मे डाल दी है। कहा पर डाली है, यह वही जानता है। मन्दिर मे खेल के लिए हम लोग मूर्त्तिया लेने गए थे।"

इस घटना से मोहन के बाल मित्रो ने समझ लिया कि मोनिया तो ऐसा ही है। बात बना नही सकता। जैसा-का-वैसा कह देता है। इसके बाद से उन्होने उसके साथ बराबरी का बर्ताव करना बन्द कर दिया। इस प्रकार बाल मोहन को एक विशेष प्रतिष्ठा मिल गई। आख-मिचौनी, गिल्ली-डडा आदि खेलो मे वह बहुत तेज था।

पोरबन्दर मे जहा गाधी-परिवार का मकान है वह मुहल्ला बनियो और ब्राह्मणो का है। उससे चार-पाच सौ कदम उत्तर की ओर 'शीतला चौक' नाम का खुला हुआ चौक है, जिसमे शीतला देवी का मन्दिर है।

उस समय उस चौक की दूसरी ओर अधिकतर मकान मुसलमानो के थे। बापूजी के एक बालबधु ने मुझे बताया कि इस शीतला चौक मे हिन्दू-मुसलमानो के लडके इकट्ठे होकर खेला करते थे। चादनी रात मे ब्यालू से निपटकर इधर से हम हिन्दू बच्चे जाते और उधर से मुसलमान बच्चे आते थे। ये सब प्राय आठ-दस वर्ष की उम्र के होते थे। घटे-डेढ-घटे तक सभी बालक मर्दाने खेल खेलते थे। कभी-कभी खेल मे थोडी-बहुत कहा-सुनी हो जाती थी। ऐसे समय मध्यस्थता का काम मोहन को सौंपा जाता था। इस बात का कोई ख्याल नही किया जाता था कि औरो के मुकाबले उम्र मे वह छोटा और शरीर मे दुर्बल है।

स्वय मोहन को आपस मे भिडना और गुत्थमगुत्थी के खेल खेलना पसन्द नही था। वह हिन्दू या मुसलमान किसी के पक्ष मे नही खेलता था। किन्तु जो बच्चे आपस मे जोर दिखाते थे उनका निरीक्षण वह पूरी सजगता

से करता था। किसने पटकी खाई, कौन चित हुआ, इसका फैसला वह वडी स्पष्टता से देता था। उसका निर्णय मिलने पर उसके विरुद्ध कोई वालक आपत्ति नही करता था।

यदि कभी कोई दुराग्रही वालक अड जाता और जबरन अपनी हार को जीत वताने का प्रयत्न करता तो मोहन कहता था, "वेअदबी मत करो। अलग वैठ जाओ, तुम चित हो चुके हो।"

पोरबन्दर मे गाधी-परिवार के मकान मे इतना स्थान नही था कि उसके सामने या पीछे कोई बाग-बगीचा बनाया जा सके। अत. तिमजिले की खुली छत की मुडेर पर वहुत से गमले रख दिये गए थे। उनमे तुलसी के तथा तरह-तरह के फूलो के पौधे थे। उनकी हिफाजत का काम परिवार के वच्चों ने अपने बीच बांट लिया था। मोहन अपने गमलो के पौधों को सवसे अच्छा रखने के लिए वहुत परिश्रम करता था। घडे भर-भरकर तीन मजिल ऊपर पानी ले जाने मे उसे कभी थकावट नही होती थी।

गोकी फइवा वताती है कि जव हम लोग पोरबन्दर से राजकोट आए तव घर के आगन मे मोहन ने बडी सुन्दर छोटी-सी फुलवारी तैयार की थी। जव वह हाईस्कूल मे पढता था तव सवेरे टहलने जाने का और शाम को फुलवाडी मे खोदने आदि का काम नित्य नियम से करता था। राजकोट की इस फुलवाड़ी मे उसने अमरूद, पपीता, रीठा, आदि के वृक्ष; चौलाई, मेथी, धनिया, तुरई आदि की सब्जिया और जूही आदि फूलो की वेल व पौधे लगा रखे थे। शाम को कभी-कभी वह गेंद खेलने जाता था, परन्तु फुलवारी मे वह कसकर काम करता था। दिन-भर में वह जरा भी समय व्यर्थ नही खोता था। या तो वह अपनी पुस्तको मे डूबा रहता था या फुलवाडी मे काम करता रहता था। इसके अलावा वह निश्चित समय पर पिताजी की सेवा के लिए उपस्थित हो जाता था।

मोहन के वालजीवन को अपनी आखों से देखनेवाले उनके वालसाथी वताते है कि उसकी दिनचर्या उस समय भी व्यवस्थित थी। पूर्वाकाश में उजाला होते ही वह उठ वैठता था। फिर प्रात विधि से निवृत्त होने और नहाने के लिए गाव के परकोटे के वाहर पिंजरापोल के पासवाले वागीचे मे पहुंच जाता था। वहा कुए पर मोट चला करती थी, इसलिए स्नान की अच्छी सुविधा थी। मोहन के अन्य वालसाथी भी वहा स्नान के लिए जाते थे और वे सव स्वय अपने कपडे धोते थे। मोहन और उसके वालसाथी गाव के ऊंचे घराने के वच्चे थे। ऊचे घरानेवालो मे गाव के मोटे और हाथ से कते-बुने कपड़े की प्रतिष्ठा घट गई थी और मिल के वने कपड़े

को बढावा मिल रहा था। कबा गांधी के समय मे अहमदाबाद की मिल के बने 'बन्दूक छाप' धोती-जोडे की प्रतिष्ठा थी। छोटा मोहन और उसके साथी भी इसी प्रकार की धोतिया पहनते थे। भले घर के ये बालक आपस मे होड लगाते थे कि कौन अच्छी धुलाई करता है।

मोहन-जैसे लडके को भी अपने बालसाथियों की देखादेखी बीडी पीने का शौक हुआ। किन्तु उसकी यह विशेषता थी कि लुक-छिपकर बीडी पीने के बदले उसने मर जाना अधिक अच्छा समझा। जब अपनी आत्महत्या करना ठीक नही लगा तब अपने सत्य पर बट्टा न आने देने के लिए उसने उसे छोड देने की प्रतिज्ञा की। अपनी आत्मकथा मे उन्होने इसका रोचक वर्णन किया है।

विद्याध्ययन के समय मे सुपारी न खाने का नियम मोहन ने ले रखा था। उस जमाने मे पोरबन्दरवासियो मे सुपारी का प्रयोग बहुत प्रचलित था। इसलिए यह छोटा-सा त्याग भी उस समय के हिसाब से मोहन की विशेषता का प्रतीक था।

: ११ :

तरुण मोहन

पोरबन्दर के एक लकडी के व्यापारी ने मुझे बचपन की एक घटना सुनाते हुए बताया कि एक बार मैंने मोहनभाई के, अपने पिताजी के साथ राजकोट चले जाने के पूर्व, गुस्से मे भरकर जोर की चपत लगा दी। यद्यपि वे मुझसे लगभग तीन वर्ष बडे थे, उन्होने उलटकर हाथ नही चलाया। केवल मुझे अपने पिता के सामने ले जाकर खडा कर दिया और कबा गाधी ने मुझे आंख दिखाकर छोड दिया। इसके बाद मोहनभाई ने बदले का कोई भाव नही रखा। जब हमारा तरीका या खेल मोहनभाई को अच्छा न लगता था तब वे अलग से ,खडे हो जाते थे और कहते थे, "ए मारु काम नहि", अर्थात् ऐसे हुडदग मे तुम लोगो का साथ देना मेरा काम नही है। जब हममे से कोई ज्यादा शरारत करता था तो मोहनभाई डपटकर कहते थे, "तू उद्धत न था", अर्थात् तू उद्दड मत बन, असभ्यता मत कर।

जब कभी विद्यार्थियो के दो दल बन जाते और उनके मुख्य लडके आपस मे द्वेष करने लगते, तब मोहनभाई उन्हे समझा-बुझाकर उनमे मेल-मिलाप कराने का प्रयत्न करते। जब ताकतवर लडके कमजोरो को सताते तब मोहनभाई निर्बलो का साथ देते। एक ओर तो वह मित्रो की टोलियो से अलग रहते थे और जरा भी समय बेकार नही बिताते थे, दूसरी ओर जिससे मित्रता करते थे उसके साथ उसे निभाने मे दूसरो का विरोध भी सहन कर लेते थे।

राजकोट के हाईस्कूल मे पढने के समय से एक व्यक्ति के साथ उनकी घनिष्ठता बढ गई थी। बाद मे वह उनके साथ दक्षिण अफ्रीका भी गया था। उसके नाम का निर्देश किये बिना ही 'आत्मकथा' मे बापूजी ने बताया है कि जबतक उन्होने उसका अनिष्ट आचरण प्रत्यक्ष नही देखा, तबतक उसके बारे मे आने वाली शिकायतो को वह अनसुनी ही करते रहे थे।

वह मित्र एक मुसलमान लडका था। मुसलमान होने के कारण नही, उसके लक्षण अच्छे न होने के कारण घर वालो ने प्रारम्भ से ही मोहन-भाई को सचेत किया था कि वह उसकी मित्रता छोड दे। परन्तु अपने बडे भाई और अन्य हितैषियो की इस सूचना को उन्होने नही माना था और उत्तर दिया था, "मै उसके ऐबो को सुधारूगा, आप चिन्ता न करे।"

मोहनभाई ने जब मास खाने का निश्चय किया तब इसी लडके ने मास प्राप्त करने मे उनकी सहायता की थी; किन्तु जब उन्होने यह निषिद्ध आहार न करने का सकल्प किया तब इस मित्र के विरोध का उनपर कोई असर नही हुआ।

मोहनभाई बैरिस्टरी पढने के लिए विलायत गये तो वहा पाई-पाई का हिसाब उन्होने रखा और अपने आहार-विहार मे भरसक कमखर्ची की, परन्तु इस मुसलमान भाई की मित्रता उन्होने वहासे भी निभाई। अपना खर्च काटकर भी उसको पैसो की कुछ सहायता भेजी।

इस मित्रता के पीछे मोहनभाई की कृतज्ञता की भावना काम कर रही थी। मोहनभाई जिस पाठशाला मे पढते थे उसमे छोटे-बडे लडको के बीच सघर्ष बढ जाने पर यह मुसलमान मित्र छोटो का पक्ष लेता था और अपनी शारीरिक शक्ति पर्याप्त होने के कारण बडे लडको की गलत बातो को चलने नही देता था। ऐसे सेवाभावी बहादुर की आदते और भी सुधर जाय, यह तरुण मोहन की मनोकामना थी। परन्तु जब उन्होने अनुभव किया कि उनके सारे प्रयत्न व्यर्थ जा रहे है तब साप की केचुली की भाति उस मित्र से सारी घनिष्ठता उन्होने तत्काल दूर कर दी।

बापूजी ने 'आत्मकथा' के 'चोरी और प्रायश्चित्त' शीर्षक प्रकरण मे विस्तार से बताया है कि किस प्रकार उन्होने माता-पिता से छिपाकर अपने हाथ के कडे का थोड़ा-सा हिस्सा कटाकर बेच डाला था। उसमे उन्होंने अपने पिता की क्षमावृत्ति और उदारता का परिचय कराया है।

परन्तु उनके उस समय के कठिन मनोमथन का जो आखो देखा वर्णन उनकी बडी वहन ने मुझे सुनाया, उससे उनके हृदय की दृढता का परिचय मिलता है।

गोकी फइबा ने कहा, "मुझे उस शाम की बात एकदम याद है। मोनिया जब बाहर से आया तो उसके हाथ के कडे मे फूल नही था। बा-बापू (पुतलीमा-कबाकाका) दोनो को इस बात का पता चला तो उन्होने पूछा, "मोनिया, कड़ा तो है, फूल क्या हुआ? कही खो गया क्या?" इसका मोहनभाई ने इतना ही जवाब दिया, "मै क्या जानू?" फिर किसी ने कुछ नही कहा। "खो गया होगा" कहकर बा-बापू दोनो शान्त हो गए। मोनिया को वे कभी टोकते नही थे।

फइबा ने आगे की बात बताते हुए कहा, "इसके बाद मोहनभाई अपने पढने के काम मे लग गया। परन्तु डेढ-दो घटे के बाद वह फिर बा के पास आया और उसने उनसे सही बात बता दी। बाद मे पूछा, "बा, मेरी इस भूल पर बापू मुझे मारेगे?"

बा ने कहा, "जा, अपने बापू से भी सही बात बता दे। वे मारेगे नही। तुझे क्यो कोई मारेगा? चाहे तो तू मत कह, मै ही बता दूगी और कहूगी कि तुझे न मारे।"

मोनिया बोला, "मेरी भूल है तो मै ही बापू को बताऊगा। मुझे ही बताना चाहिए।"

ऐसा कहकर मोहनभैया बा के पास से गया और थोडी देर मे उसने एक चिट्ठी लिखकर बापू के हाथ मे दी। उसे पढकर बापू ने कहा, "कडे का फूल क्या, समूचा कडा भी यदि तू ले जाय या खो दे तो भी मेरे लिए तुझसे बढकर कडा नही है। मै तुझे क्यो मारूगा? मैने कभी तुझे हाथ से छुआ भी है?"

मोनिया बोला, "लेकिन बापू, जो चोरी करे उसे मारना नही चाहिए? मै चोर नही कहलाऊगा?"

फइबा ने कहा, "मोनिया की इस बात को सुनकर बापू रो पडे। उनकी आखो से आसू टपकने लगे। मोनिया के लिए उनके हृदय मे बहुत प्रेम था। उसके ऊपर घर मे कोई गुस्सा नही करता था।"

राजकोट मे कबाकाका बीमार थे। पुतली बा का समय उनकी शुश्रूषा मे अधिक बीतता था और मोहनभाई की बडी भाभी रसोई का काम सभालती थी। स्कूल जाने का समय होने पर मोहनभाई आवाज लगाते—भाभी, रसोई तैयार है?

भाभी कहती, "दाल-भात तैयार है। शाक छौककर तवा चढा रही हू।"

मोहन कहते, "बस, जो तैयार है वही परोस दो। जो बाकी है उसकी राह देखूगा तो स्कूल मे देर से पहुचूगा।" यह कहकर वह रसोई मे जा बैठते और रात की बासी रोटी खाकर स्कूल चले जाते।

कबाकाका को अपने अन्तिम दिनो मे मोहनभाई की यह आदत ठीक नही लगती थी। वे कहते थे, "मोनिया, जरा रुककर गरम खाना खाकर जाना। काला और करसन ताजा भोजन करते है। तू बासी मत खा। अभी रसोई हुई जाती है। देर हो जाय तो घोडागाडी मे चला जाना।"

इसपर मोहन अपने घुटनो को दिखाकर कहते, "बापू, सच्चे गाडी-घोड़े तो यही है। मुझे पैदल ही जाने दीजिए। भोजन के लिए मै ठहरूगा तो मेरा नम्बर अन्तिम आयगा।"

ग्रहण के दिन हमारे घरो मे खाना-पीना बन्द रहा करता था। पूरे घर की सफाई होती थी और छूत निकाली जाती थी। मां कहती, "मोहन, आज खाना नही है।" मोहन उत्तर देते, "यह नही होगा। मोनिया को खाना तो चाहिए ही। चाहे रूखी रोटी ही दे दो।" हार मानकर पुतली-मा दूध से भाखरी[1] बनाकर रख लेती और ग्रहण का विचार न करके मोहनभाई वह खा लेते। इसी प्रकार जन्माष्टमी के दिन मोहनभाई कहते कि हमारे जन्म के दिन जब लड्डू बनते है तो भगवान के जन्म के दिन हम क्यो भूखे रहे?

बापू के विवाह के संबध मे फइबा ने बताया कि पहले दो बार बापू की सगाई हो चुकी थी। परन्तु दोनो कन्याए छोटी आयु मे ही मर गई। उन दिनो कन्या के मरने पर श्मशान मे ही नई कन्या का तिलक किया जाता था। कस्तूरबा के साथ तिलक हुआ। तीसरी बार जब विवाह-सस्कार की बात चली तब बापूजी ने अपनी अनिच्छा प्रदर्शित की और माता-पिता से कहा, "इतनी छोटी उम्र मे शादी क्या करना है!" पिता-जी ने उत्तर दिया था, "तुम अपने बच्चो की शादी बड़ी उम्र मे करना।

---

१. गेहूं के आटे की मोन डालकर बनाई हुई मोटी कुरकुरी रोटी।

मैं तो तुम्हारी शादी अभी करूगा। मेरे लिए तुम अनमोल निधि हो। मुझे तो अपने जीतेजी सब आनन्द मनाने है।"

उसके बाद पिता का मन रखने के लिए मोहनभाई ने शादी का विरोध नही किया। पर गोकी फइबा बताती है कि शादी के अवसर पर भी मोहनभाई ने सादगी ही रखी। करसनभाई और दूसरे चचेरे भाई ने तो साज-शृगार किया, परन्तु मोहनभाई ने सादे कपडे पहने। उन्होने सोने का हार पहनने से इन्कार किया और कहा, "मिट्टी के इस शरीर पर पीली मिट्टी लादने से क्या लाभ!"

उन दिनो लगातार चार-पाच दिन तक सज-धज के साथ दूल्हे की सवारी निकाली जाती थी, पर मोहनभाई केवल सस्कार के लिए जाते समय पिताजी का मन रखने-भर के लिए घोडे पर बैठे थे। वह विवाह सम्पन्न होने के बाद अपने विद्यार्थी-जीवन मे फिर से मग्न हो गए थे।

असमय ही कबाकाका का स्वर्गवास हो जाने के कारण मोहनभाई के विलायत जाने के मार्ग मे अनेक विघ्न आ खडे हुए। पाठक जानते है कि किस प्रकार मा ने तीन प्रतिज्ञाए लेकर मोहनभाई को विलायत जाने दिया।

परन्तु पुतलीमा अपने मोनिया की चिन्ता मे बीमार हो गई और दिन-दिन उनका शरीर क्षीण होता गया। जिस दिन बापू को बैरिस्टरी की उपाधि मिलने की खबर आई उस दिन पुतलीमा अपनी रुग्ण-शैया पर बैठ गई और पुत्र की इस सफलता पर उनके हर्ष के आसू बह चले। बडे भाई को बुलाकर उन्होने कई बार पूछा, "मोनिया कब आयगा? अब कितने दिन है? उसका मुह देखकर मरू तो मुझे शान्ति मिलेगी।"

लोगो ने उनको धैर्य बधाने का प्रयत्न किया, पर उन्हे अपने जीवन का भरोसा नही रहा था। उन्होने कहा, "अगर मै मोनिया का मुख न देख पाऊ तो एक बात अवश्य करना—विलायत से आने पर नासिक ले जाकर उसकी शुद्धि करवाना और उसके हाथ से राजकोट की पूरी जाति को भोज दिलाना।"

बापूजी के विलायत से लौटने पर जब उनको माताजी के देहावसान का समाचार सुनाया गया तो उनको बहुत धक्का लगा। वे 'आत्मकथा' मे लिखते है :

"पिताजी की मौत से जो चोट मुझे पहुची उससे अधिक इस मृत्यु-समाचार से पहुची। मेरे बहुत से मनोरथ मिट्टी मे मिल गए।....."

: १२ :

पिता और काका

हमारे परिवार मे ऐसी परम्परा चली आ रही थी कि भतीजो के जीवन पर काकाओ का अधिक प्रभाव रहा। इसके अनुसार मेरे काका श्री मगनलाल गाधी ने भी अपने मोहनदासकाका से सस्कारिता और दक्षता पाई तथा आगे चलकर बापू ने खुद मगनकाका को अपना चुना हुआ प्रथम वारिस बनाया। मुझे भी शिक्षा-दीक्षा देने में मगनलालकाका का मुख्य हाथ था। मेरे जीवन मे तो मगनलालकाका इतने समा गए है कि जब मै पिता शब्द का उच्चारण करता हू तब पिता और काका दोनो की मूर्त्ति मेरे समक्ष उपस्थित हो जाती है।

पिता और काका दोनो भाइयो का साहचर्य, सहजीवन- सहपठन प्राय: अविच्छेद्य हो गया था। दोनो की आयु मे भी अधिक अन्तर नही था। काका पिताजी से कोई दो वर्ष छोटे थे। दोनो मे अधिक प्राणवान छोटे भाई थे, इसलिए घर मे उनका ही प्रभाव अधिक रहता था। दोनो के स्वभाव मे भी बहुत अन्तर था।

पिताजी का स्वभाव छुटपन से ही शान्त और सीधा था। मगन-काका तीखे, अक्खड और उत्पाती थे। वह सुबह से शाम तक ऊधम मचाते रहते और किसी के भी वश मे नही आते थे। दोनो हाई स्कूल मे पढने लगे। पाठशाला से लौटने पर पिताजी घटो मेरे दादाजी के काम मे हाथ बटाते थे। बाजार से सौदा लाने और घर के दैनिक व्यय का हिसाब लिखने का काम उन्ही के जिम्मे था। सध्या के समय वह दूर तक टहलने जाया करते थे और देवदर्शन करके घर लौटते थे। उनको खेलकूद मे दिलचस्पी नही थी और शरीर से भी वह कुछ दुर्बल रहा करते थे। उधर मगनकाका अखाडेबाज थे। उस समय राजकोट के नवजवानो मे दड-बैठक, मुगदल, और दूसरे मर्दानगी तथा साहस के खेलो का अच्छा उत्साह था। अपनी मडली में मगनकाका प्राय. प्रथम रहा करते थे। अन्धेरा होने पर खेल और व्यायाम के बाद घर आने से पहले ग्वालो के घर जाकर वह गाय का पाव-भर ताजा दूध अवश्य पी लेते थे। तब राजकोट आज की तरह बडा शहर नही था। वहा ग्रामजीवन ही अधिक था। वह मेरे दादाजी के घोडो और तमचो का भी लाभ उठाने मे नही चूकते थे। फलत: उनका शरीर असली काठियावाडी योद्धा का-सा पुष्ट था। कक्षा मे शिक्षक जो

पिता
श्री छगनलाल गांधी

लेखक के

काका
श्री

बैरिस्टर गांधी

फीनिक्स मे
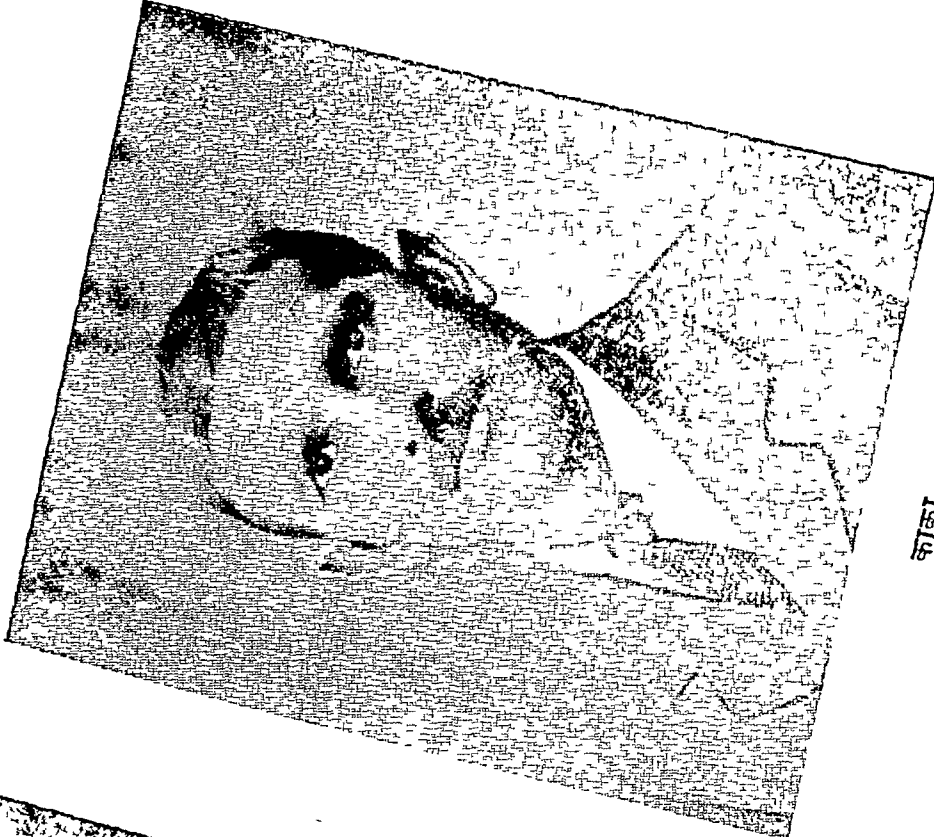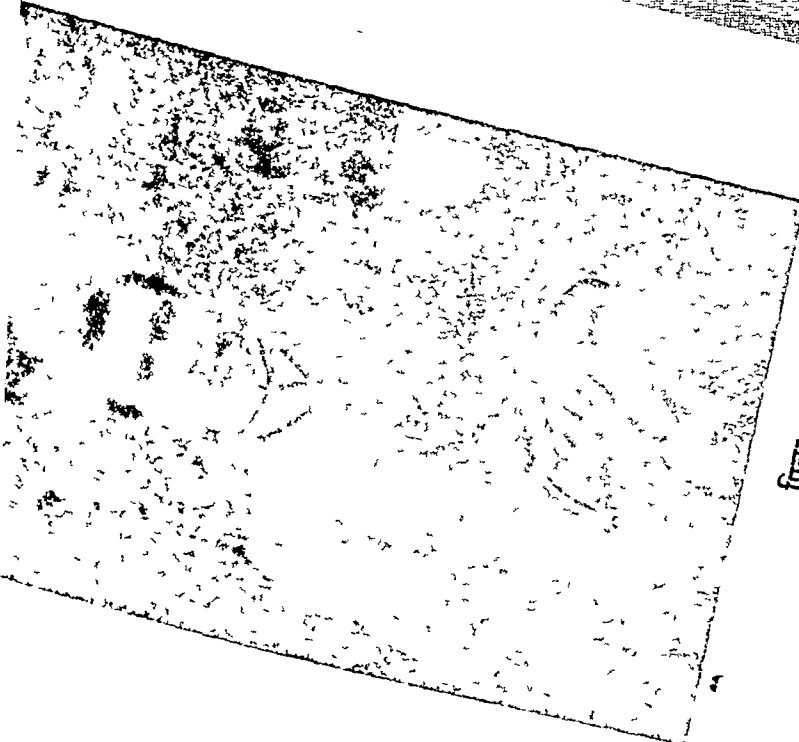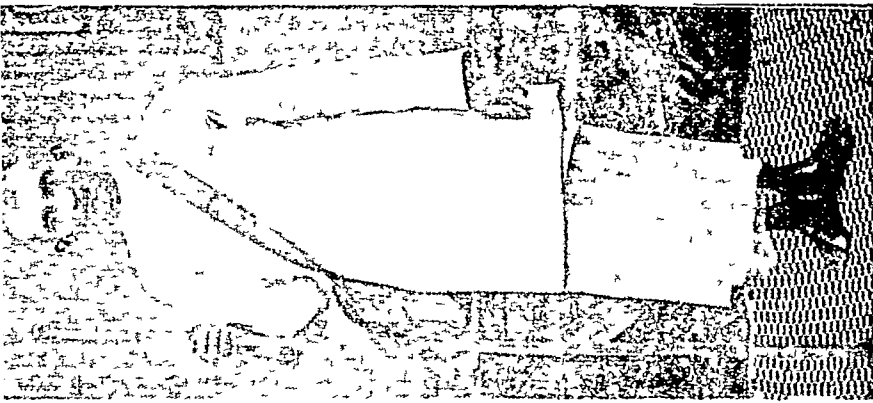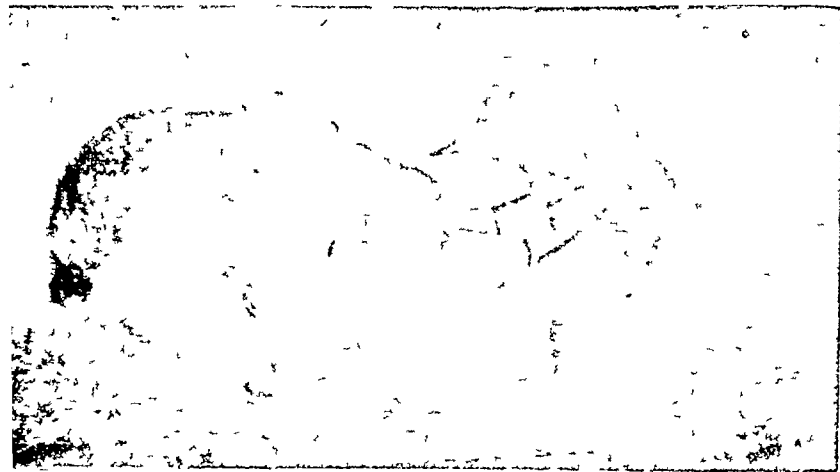
सत्याग्रही गांधी

कुछ सिखाते उसे वे बडी एकाग्रता से सुनकर ध्यान मे रख लेते थे और पाठशाला से लौटने के बाद पुस्तको मे हाथ नही लगाते थे।

पिताजी ने प्रथम बार सन् १६०० मे बम्बई जाकर मेट्रिक्युलेशन की परीक्षा दी, परन्तु उत्तीर्ण न हो सके। दूसरे वर्ष अहमदाबाद भी परीक्षा-केन्द्र बन गया और पिताजी के साथ मगनकाका भी मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा देने के लिए वहा गए। पिताजी उत्तीर्ण हो गए, परन्तु मगनकाका रह गए। उनको भी हाई स्कूल मे दूसरा वर्ष खर्च करना पड़ा। कालेज की पढाई का खर्च पूरा करना दादाजी के बूते के बाहर था। घर का आर्थिक बोझ हलका करने की भी बहुत आवश्यकता थी, इसलिए ग्रेजुएट होने का स्वप्न त्यागकर पिताजी को लाचार कुछ काम खोजने मे लग जाना पडा। उन्हे राजकोट-स्थित ब्रिटिश पोलिटिकल एजेट के कार्यालय मे उम्मीदवार के तौर पर तीन महीने के लिए क्लर्क की नौकरी मिल गई।

जब पिताजी इस सरकारी नौकरी की तलाश मे थे, उन्ही दिनो बापूजी दक्षिण अफ्रीका से राजकोट लौटे और उन्होने वहा अपनी बैरिस्टरी जमाने का श्रीगणेश किया। उसी समय उन्होने पिताजी को अपने साथ काम मे ले लिया।

पिताजी ने मुझे बताया कि बापूजी के बारे मे उनकी सबसे पहली स्मृति तबकी है जब बापूजी इग्लैड से बैरिस्टर बनकर लौटे थे। उस समय राजकोट मे एक बडा जाति-भोज हुआ था। उसमे नये बैरिस्टर बापू ने परोसने का काम किया था और पिताजी भोजन करने वाले बच्चो की पक्ति मे थे। भोज बापूजी की शुद्धि के सिलसिले मे उनके बडे भाई की ओर से दिया गया था। इग्लैड जाने मे बापू ने जो समुद्रयात्रा की उसके कारण उनको भ्रष्ट घोषित किया गया था और राजकोट की मोढवणिक जाति से वह और उनके साथ उनके भाई बहिष्कृत कर दिये गए थे। लौटने पर बडे भाई ने उन्हे नासिक ले जाकर उनकी शुद्धि करवाई थी और प्रायश्चित्त के रूप मे यह भोज देना पडा था। इस भोज मे परोसने का सत्कृत्य करने पर जाति के बडे-बूढो ने बापू को और उनके भाइयो को धर्मभ्रष्टता के पातक से मुक्त करके धर्मशीलता की मुहर प्रदान करदी। उस समय पिताजी की आयु दस वर्ष की और मगनकाका की आठ वर्ष की थी। बापूजी से वे क्रमश चौदह और बारह वर्ष छोटे थे।

बापूजी के दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना होने से दो दिन पहले ही मगनकाका राजकोट से बम्बई पहुचे। १६०२ के नवम्बर मे उन्होने अहमदाबाद केन्द्र से मैट्रिक की दुबारा परीक्षा दी और बम्बई घूमने और

भविष्य के काम-काज के लिए बापूजी से सलाह लेने के इरादे से वह बम्बई गये थे। उनके पास पूरे कपड़े भी नही थे। बापूजी से मुलाकात होते ही बापूजी ने मगनकाका से पूछा, "मेरे साथ दक्षिण अफ्रीका चलोगे? यहा नौकरी के चक्कर मे पडने से फायदा क्या? वहा नया पुरुषार्थ करके स्वावलम्बी बनोगे।"

"अभी तो मेरा मैट्रिक का नतीजा ही कहां आया है!" मगनकाका ने कहा।

"पास-नापास होने की चिन्ता क्यो करते हो? इसके पीछे दिन बरबाद करने से क्या फायदा? पास हो जाओगे तब भी रोजगार की तलाश तो करनी ही पडेगी। यहा दर-दर ठोकरे खाने के बाद मुश्किल से नौकरी मिलेगी। नौजवानो को तो परदेश जाने का साहस करना चाहिए।" बापूजी ने कहा।

"मुझे आपके साथ चलना बहुत अच्छा लगेगा, पर परीक्षा-फल की चिन्ता मन मे रहेगी। फिर भी आप कहते है तो मै चलूगा। लेकिन दो दिन के लिए मुझे पिताजी के पास राजकोट हो आने की छूट दे दे।" मगन-काका ने कहा।

"अब इतना समय नही रह गया है। मै तार करके खुशालभाई से स्वीकृति प्राप्त कर लेता हूँ।" बापू बोले।

"अच्छा, जैसा आप उचित समझे।" और इसके बाद बापूजी ने बडे बापूजी के पास तुरन्त नीचे लिखा तार भेजा, "यदि आप और देवभाभी स्वीकृति दे तो मै मगनलाल को अपने साथ दक्षिण अफ्रीका ले जाना चाहता हूं।"

उत्तर मे बडे बापूजी का तुरन्त तार आया, "अगर आपको उचित प्रतीत होता हो और मगनलाल जाने को तैयार हो तो अवश्य ले जाइये।" इस प्रकार अपने माता-पिता से मिले बिना ही एकाएक मगनकाका विदेश-यात्रा को चल पडे। उनके लिए उचित कपडो आदि का प्रबन्ध पिताजी ने कुछ अपने पास से और कुछ खरीद कर किया।

इसके बाद बापूजी के साथ का दूसरा प्रसंग, जिसका पिताजी को पक्का स्मरण रह गया है, हरे कवर वाली पत्रिका का था। उस पत्रिका की हजारो प्रतियो पर पते लिखने और उन्हे रवाना करने मे पिताजी से बापूजी ने कई दिन परिश्रम कराया था। यह वही पत्रिका थी जिसके कारण डरबन के बन्दरगाह पर कदम रखते ही अंग्रेजो की भीड ने बापू-जी पर हमला किया था।

वापूजी के सपर्क मे आने का पिताजी का तीसरा अवसर चिरस्थायी वन गया। वह सपर्क कैसे वढता चला गया, इसका पता पिताजी की उस समय की डायरी के पन्नो से चलेगा, जो सयोगवश मेरे हाथ लग गई है। पिताजी ने लिखा है:

१४-१२-१६०१—मोहनदासकाका (सारा परिवार) नेटाल से पोरवन्दर उतरे और राजकोट आये।

१७-१२-०१—मोहनदासकाका कलकत्ते गये।

१६-१२-०१—मेरे मैट्रिक पास होने का तार आया।

१६-१-०२—डी० ए० पी० ए० द्वारा एजेसी मे दाखिल होने के लिए अर्जी दे दी।

२५-१-०२—अर्जी मजूर हो गई और आफिस जाना शुरू किया।

२६-२-०२—कलकत्ते से मोहनदासकाका लौटे।

४-३-०२—मोहनदासकाका के टाइपराइटर पर टाईपिंग सीखना प्रारम्भ किया।

१४-३-०२—शार्टहैंड शुरू किया। एजेसी मे जाना वन्द किया।

१८-३-०२—मोहनदासकाका के साथ मुकदमे के सिलसिले मे जामनगर गया।

३-४-०२—मोहनदासकाका के साथ वेरावल आया। प्रभासपाटण देखा।

६-४-०२—वेरावल से लौट आये।

३०-६-०२—मोहनदासकाका का वम्वई जाना निश्चित हुआ।

५-७-०२—मोहनदासकाका ने प्लेग कमेटी की अन्तिम रिपोर्ट दे दी।

७-७-०२—पोरवन्दर वाले सेठ दाऊजी और दादा अव्दुल्ला मोहनदासकाका से मिलने आये, उनको लेने स्टेशन गया।

८-७-०२—मोहनदासकाका शहर सुधार-समिति के काम मे घिरे रहे।

६-७-०२—दाऊजी सेठ और अव्दुल्ला सेठ पोरवन्दर लौटे।

१०-७-०२—वम्वई जाने के लिए मोहनदासकाका के साथ रवाना। पढने के लिए गोकुलदास (वापूजी की वड़ी वहन के पुत्र) वनारस और हरिलाल गोंडल गये।

११-७-०२—वम्वई पहुचे। रेवाशकर भाई के यहा माटुंगा के वंगले मे ठहरे।"

इस सक्षिप्त-सी डायरी से स्पष्ट हो जाता है कि बापूजी के सपर्क मे आते ही मेरे पिताजी किस वेग से उनके प्रवाह मे बहने लगे। यद्यपि उस समय भी बापूजी अपने जीवन मे स्वार्थ-त्याग, सयम, परोपकार-भावना आदि पर जोर दे रहे थे तथापि उनकी साधुता इस हद तक नही पहुची थी कि कोई उनकी सेवा मे आत्म-कल्याण या नि.श्रेयस की प्राप्ति के लिए उपस्थित हो, परन्तु बापूजी का जीवन-प्रवाह इतना ओज-पूर्ण था कि पिताजी-जैसे कम स्वतत्र व्यक्तित्व वाले गगा मे झरने की भाति लुप्त हो जाते थे। बापूजी के सपर्क मे आते ही पिताजी के पास मानो अपना कुछ रह ही नही गया।

बापूजी ने बम्बई मे जुलाई से लेकर नवम्बर तक के पाच महीने भी मुश्किल से बैरिस्टरी नही की कि अनपेक्षित आमत्रण के कारण उन्हे तत्काल फिर नेटाल जाना पडा। जबतक बैरिस्टरी का काम चला, पिताजी को भी अर्जिया लिखने और छोटे-मोटे मुकदमो मे क्लर्क का काम करने का उचित अश बापूजी से मिलता रहा। नेटाल से दो-तीन मास मे ही लौटने की बात थी, इसलिए वहा से लौट आने तक के लिए बम्बई मे बापूजी ने अपना दफ्तर चालू रखा। पूज्य कस्तूरबा के पास भी किसी के रहने की आवश्यकता थी और मणिलालकाका की पढाई का भी प्रश्न था। इसलिए बापूजी ने पिताजी को वह उत्तरदायित्व सौंपा और कुछ मासिक वेतन निश्चित कर दिया। मणिलालकाका के अतिरिक्त और पुत्रो की पढाई का सवाल उस समय बापूजी के सामने नही था, क्योकि बडे पुत्र हरिलालकाका के लिए गोडल के छात्रावास मे रहकर पढने की व्यवस्था हो गई थी और शेष दो पुत्र रामदासकाका और देवदासकाका अभी बहुत छोटे थे।

इस बार नेटाल पहुचने पर बापूजी तो कुछ ही दिन बाद ट्रासवाल चले गए और मगनकाका को उन्होने डरबन से प्राय. तीस मील की दूरी पर टोगाट नामक कस्बे मे भेज दिया। नेटाल के आदिवासी जूलू लोगो के बीच गोरे व्यापारियो की दूकानदारी इतनी नही चल पाती थी जितनी कि भारतीयो की और उनमे भी गुजराती व्यापारियो की चलती थी। टोगाट और स्टेगर नामक दो कस्बे उत्तरी नेटाल के जगल मे छुटपुट झोपडी मे दूर-दूर तक फैली हुई जूलू आबादी के लिए सौदा-पत्ती करने के मुख्य केन्द्र थे। मगनकाका के टोगाट पहुचने के चार-पाच वर्ष पहले से ही गांधी-परिवार के कुछ लोगो ने मिलकर वहा पर एक दूकान चालू कर रखी थी। उनमे करमचन्द बापा के छोटे भाई श्रीतुलसीदास गाधी के सबसे बडे पुत्र श्रीअभेचन्द गाधी मुख्य थे, जिनकी दुकान आज पचास वर्ष बाद भी वहा चल रही है।

मगनकाका टोगाट की दुकान मे एक नये साझी के रूप मे सम्मिलित हुए। मगनकाका ने पूरा परिश्रम करके थोडे ही समय मे व्यापारिक रीति-नीति सीख ली। बाद मे उन्हे उस दूकान मे भेज दिया गया जो टोगाट की दूकान की शाखा के रूप मे स्टेंगर के घने जगल मे चल रही थी। जगल के बीच मे वह एकाकी दूकान थी और मगनकाका के साथ उन्ही की आयु के केवल दो नौसिखिए युवक और थे। वहा पहुचने तक मगनकाका को जूलू बोली नही आती थी। यद्यपि मगनकाका का शरीर व्यायाम करते रहने के कारण कसा हुआ, गठीला और पहलवान का-सा था, फिर भी वह महाकाय जूलुओ के सामने बच्चे-जैसे थे। वे काले-काले अधनगे और लाठीधारी लोग जब दूकान मे आ बैठते थे तब भय का वातावरण छा जाता था, परन्तु मगनकाका और दूसरे दोनों साथी अपना साहस बनाए रहते थे, दिन और रात वहा जमे रहते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे वहा वह दूकान जम गई और खासी आमदनी होने लगी।

दक्षिण अफ्रीका मे बापूजी को दो महीने के बदले चार महीने हो गए तो उन्होंने पिताजी को बम्बई सूचित किया कि अब देर तक उनका भारत लौटना सभव नही दीखता, अत बापूजी के पत्र के अनुसार पिताजी ने उनका बम्बई का कार्यालय समेट लिया और बा का आवश्यक काम कर देते तथा मणिलालकाका की पढाई का काम भी चलता रहा। लगभग एक वर्ष तक अर्थात् १९०३ के दिसम्बर मास तक यह सिलसिला चलता रहा। बाद मे पिताजी ने सोचा कि बिना काम के इस प्रकार समय बिताने और मोहनदासकाका से वेतन लेते रहना ठीक नही है। इसलिए उन्होंने किसी सालिसिटर के कार्यालय मे अपने लिए नौकरी पक्की कर ली। उस नौकरी मे एक महीना बीतने पर दक्षिण अफ्रीका मे घर बसाने के बारे मे जोहान्सबर्ग से बा के पास बापूजी के पत्र आने लगे। बापूजी जोहान्सबर्ग मे प्लेग-निवारण आदि के कार्य मे इतने अधिक व्यस्त थे कि उनको पत्र लिखने का समय ही नही मिलता था। इसलिए वह अपने स्टेनोटाइपिस्ट को बोलकर पत्र लिखाते थे और वह उन्हे अग्रेजी मे टाइप करके भेज देता था। बा को ये पत्र सुनाने का काम पिताजी के ही जिम्मे था। ऐसे एक पत्र मे बापूजी ने पिताजी के लिए भी लिखा था, "यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी बा के साथ दक्षिण अफ्रीका आ जाना।"

बा के प्रस्थान करने मे अभी विलब था, इस बीच टोगाट के एक साझी का साथ मिल जाने पर पिताजी उसके साथ डरबन जा पहुचे। बापूजी के पास ट्रासवाल पहुचना तो कठिन था, क्योंकि वहा के लिए अनु-

मतिपत्र प्राप्त करना आसान न था। इसलिए टोगाट जाकर मगनकाका से मिल जाने के बाद पिताजी ने डरबन नगर मे अपने लिए कुछ काम खोजने का प्रयत्न किया। डरबन के गुजरातियो के साथ मिलने-जुलने पर पिताजी का परिचय श्रीमदनजीत से हुआ, जो 'इडियन ओपीनियन' साप्ताहिक के सपादक थे। उन्ही दिनो बापूजी ने 'इडियन ओपीनियन' को अपने प्रचार का प्रधान साधन बनाया था और उसमे गुजराती व अग्रेजी दोनो भाषाओ के लेख देते रहते थे। श्रीमदनजीत उसे हिन्दी, तमिल, आदि चार भाषाओ मे छापकर प्रकाशित करते थे। उन्होने पिताजी को भारत से आनेवाले पत्रो से गुजराती और अग्रेजी मे समाचारो का सार तैयार करने का काम दे दिया। पिताजी का काम उन्हे पसन्द आया और धीरे-धीरे वह छापेखाने का सारा काम उन्हे सौपकर बाहर आने-जाने लगे। इस प्रकार पिताजी 'इडियन ओपीनियन' के गुजराती विभाग के सपादक बन गए और प्रतिमास आठ पौड वेतन पाने लगे। यद्यपि पिताजी के मन मे ट्रासवाल पहुचने की और वहा की सुवर्णनगरी जोहान्सबर्ग मे कमाई करके काफी पैसा पाने की मनोकामना बनी हुई थी, तथापि कुछ ही समय मे उनके जीवन का प्रवाह बदल गया।

तीन महीने के बाद बापूजी जोहान्सबर्ग से डरबन आये। रात को एक गुजराती मित्र के घर पर व्यालू करते समय नेटाल-सबधी कई प्रश्नो पर चर्चा होती रही। इस बीच बापूजी ने उनसे कहा, "छगनलाल, तुम्हारे लिए ट्रासवाल-प्रवेश के अनुमति-पत्र की व्यवस्था मैने कर ली है। आठ दिन के अन्दर-अन्दर वह तुम्हे मिल जायगा।"

यह सुनकर श्रीमदनजीत बोले, "छगनलाल को अब ट्रासवाल जाकर क्या करना है? वह तो 'इडियन ओपीनियन' मे काम कर रहे है। मै अब स्वदेश लौटना चाहता हू।"

"फिर इस छापेखाने का क्या होगा?" बापू ने पूछा।

"अखबार का काम तो आजकल वेस्ट और छगनलाल कर ही रहे है। अबतक आपसे मैने जो ऋण ले रखा है, उसके बदले मे यह सारा छापाखाना मै आपको सौप देता हू।" मदनजीत ने उत्तर दिया।

बापूजी आये थे टोगाट के किसी काम के लिए, पर अब यह नई चिंता उनके सिर पर आगई। मदनजीत का इन्टरनेशनल प्रेस काफी घाटे मे चल रहा था और बापूजी बैरिस्ट्री की अपनी कमाई मे से देशभाइयो के हित के विचार से घाटा पूरा करने के लिए काफी रकम देते रहते थे।

डरबन पहुचकर दूसरे दिन उन्होने नया सकल्प और उसे कार्यान्वित करने की योजना मेरे पिताजी को सुनाई और उसमे सहयोग करने के लिए उन्हे आमन्त्रित किया। इस अनोखे प्रस्ताव से पिताजी जितने अचम्भे मे पडे, उतने ही चिंता से भी घिर गए। बापू के प्रस्ताव को स्वीकार करना कठिन जान पडता था और उनकी भली बात को अस्वीकार करना सरासर अनुचित प्रतीत होता था। पिताजी बताते थे कि उस प्रस्ताव को स्वीकार करने से पहले मुझे भारी मनोमथन से गुजरना पडा। ट्रासवाल जाने की तीव्र इच्छा मेरे मन मे थी। जितना अधिक धन कमाया जा सके कमाकर बडे बापूजी के पास भेजना चाहता था। किन्तु दूसरी ओर बापूजी की प्रभावशाली बात मन को पिघला रही थी। रस्किन का बताया हुआ जीवन का उन्नत आदर्श सही प्रतीत होता था। फल-बाग लगाना, परिश्रमी और सादा जीवन बिताना, भाइयो के साथ प्रेम-पूर्वक रहना और सबसे बढकर बापूजी का नित्य सान्निध्य प्राप्त होना, मुझे बहुत अच्छा लगा। यह सारी कल्पना मुझे विशेष कल्याण प्रद प्रतीत हुई और मैने बापूजी की बात को स्वीकार कर लिया।

प्रेस को चलाने और घाटा दूर करने की चिन्ता के इस बोझ को लिये बापूजी टोंगाट गये। वहां उन्होने श्रीअभेचन्द गाधी की दूकान के पीछे लगा हुआ छोटा-सा बागीचा देखा। उससे उनके विचारो को मौलिक प्रेरणा मिली। वह सोचने लगे कि परिवार के ये सब लोग दूकानदारी मे खप रहे है, इसके बदले यदि वे पर्याप्त भूमि लेकर फलो के बाग का काम करने लगे तो वह अधिक श्रेयस्कर होगा। ऐसा करने से जीवन का यह कृत्रिम ढाचा भी मिट जायगा और आर्थिक समस्या का हल भी निकल आयगा। इस प्रकार दोनो बाते उनके मन मे एक साथ मडराने लगी। एक यह कि प्रेस का घाटा किस प्रकार दूर किया जाय और दूसरी यह कि टोंगाट की दूकानदारी के चक्कर मे उलझे हुए नौजवानो को खेतीबाडी के काम की ओर कैसे मोडा जाय।

टोंगाट से लौटने पर बापूजी इस प्रश्न पर गम्भीर चिंतन करते हुए डरबन से जोहान्सबर्ग के लिए रवाना हो गए। जाते हुए यह बताते गए कि प्रेस की व्यवस्था के लिए वह एक सप्ताह बाद फिर डरबन आ जायगे। सप्ताह के बीत जाने पर जब बापूजी जोहान्सबर्ग से डरबन के लिए चले तब श्री पोलक उनको विदा करने के लिए स्टेशन तक साथ-साथ गये और ट्रेन के छूटते समय उन्होने जॉन रस्किन की छोटी-सी पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' बापूजी के हाथ मे रखदी और उनसे कहा कि इस यात्रा मे आप इसे अवश्य पढ लीजिएगा।

श्री पोलक बापूजी के उन गोरे मित्रो मे से थे जो निरामिष भोजन के आग्रही थे और अपने जीवन को सादा और सच्चा बनाने के लिए सुबह-शाम बापूजी के साथ गहराई से मनन-चिंतन किया करते थे। उनकी दी हुई पुस्तक ने बापूजी के लिए गुरुमत्र का काम किया। कुछ अरसे से जो विचार बापूजी के अन्तर मे मडरा रहे थे वे अब मूर्त्त रूप मे उनके सामने आ गए। पुस्तक पढ चुकने के बाद सारी रात वह नही सो पाए। बहुत ही उग्र मनोमथन चलता रहा। अन्त मे उन्होने नागरिक जीवन का परित्याग करके किसान के ग्राम-जीवन को अपनाने का निश्चय किया।

श्री वेस्ट ने भी बापूजी के प्रस्ताव को स्वीकार किया। चार-छः दिन के अन्दर ही फीनिक्स वाली जमीन खरीद ली गई और प्रेस को वहा ले जाने की जोरदार तैयारिया शुरू कर दी गई।

इन्टरनेशनल प्रेस जब डरबन मे था तब श्री वेस्ट को सोलह पौड वेतन मिलता था। एक होशियार अग्रेज कपोजीटर को अठारह पौंड और दूसरो को भी काफी अच्छा वेतन दिया जाता था। फीनिक्स जाते समय इन सबमे से केवल दो व्यक्तियो को पूरे वेतन पर ले जाने का अपवाद करना पडा। बाकी सबका वेतन बहुत कम कर दिया गया। कई लोग तो फीनिक्स गये ही नही। जो गये उनमे दो अपवाद छोडकर शेष सबको प्रतिमास तीन-तीन पौड वेतन देने का नियम बनाया गया।

कुछ ही दिन बाद फीनिक्स मे प्रेस के लिए आवश्यक छप्पर खडा कर दिया गया। तब बापूजी फिर जोहान्सबर्ग से आये और आठ-दस दिन के अन्दर सारा प्रेस डरबन से फीनिक्स ले गये। प्रेस का सामान फीनिक्स पहुचने के दूसरे ही दिन टोगाट से मगनकाका और आनन्दलालकाका भी वहा आ पहुचे। इन सबके रहने के लिए घर नही था। प्रेस की मशीने, सामान और कागज आदि रखने योग्य केवल एक छप्पर ही तैयार हुआ था। उस जमीन के पुराने मालिक ने नौकरो के लिए जो छोटी-छोटी कोठरिया बनवाई थी वे भी खडहर बन चुकी थी। एक प्रकार से फीनिक्स का प्रारम्भिक निवास सर्वथा जगल का ही निवास था। रसोई आकाश की छत्रछाया मे करनी पडती थी और केवल खिचडी पका लेने के लिए भी कम पुरुपार्थ नही करना पड़ता था।

: १३ :

जंगल में मंगल

अफ्रीका एक विराट और अद्भुत भूखड है। उसके दक्षिणी भाग मे पूर्वीय तट पर नेटाल नाम का प्रान्त है। वह ब्रिटिश दक्षिण अफ्रीका मे सम्मिलित है। वहा पर समुद्र-तट से लगभग ६ मील अन्दर की ओर फीनिक्स का वह स्थान है, जो इतिहास मे गाधीजी के धर्मक्षेत्र, साधनाक्षेत्र और कर्मक्षेत्र के रूप मे अमर रहेगा।

नेटाल प्रात के प्रसिद्ध वन्दरगाह और भव्य नगर डरवन से उत्तर दिशा मे जाने वाली 'नार्थकोस्ट रेलवे' पर सातवे स्टेशन का नाम फीनिक्स है। उस समय उसके आसपास कोई वस्ती नही थी। वहा गन्ने की खेती वहुत होती थी और स्टेशन से मुख्यत. गन्ने का निर्यात हुआ करता था।

वापूजी ने जो भूमि ली थी वह फीनिक्स स्टेशन से केवल ढाई मील पर थी। इसीलिए उसका नाम फीनिक्स सेटिलमेट (फीनिक्स वस्ती) रखा गया था। वहा बापूजी साधारण व्यवहार मे तो अपनी भाषा का ही उपयोग करते थे, किन्तु उस देश मे अग्रेजो और अग्रेजी का प्रभुत्व था और अग्रेजो के साथ नित्य ही व्यवहार करना पडता था, इसलिए इस वस्ती का नाम अग्रेजी मे रखा गया। वहा के कार्यकर्त्ताओ और वेतनभोगी कर्मचारियो के लिए 'सेटिलमेटवासी' शब्द का प्रयोग होने लगा।

अनायास प्राप्त हुए इस 'फीनिक्स' नाम से वापूजी वहुत प्रसन्न थे, क्योकि उस समय उनके अन्तर मे जो भावना उमड रही थी वह इस शब्द से वहुत सुन्दर रूप मे व्यक्त होती थी। यूनान के प्राचीन कथाकारो ने 'फीनिक्स' पक्षी की पवित्रता, वलिदान-निष्ठा और अमरता के वारे मे वडा ही लोमहर्षक वर्णन किया है। उन कथाओ के अनुसार 'फीनिक्स' पक्षी ससार मे एक ही होता है, उसका जोडा नही होता। जव समय आता है तव वह अपनी देह को अपनी आन्तरिक ज्वाला से उसी प्रकार भस्म कर देता है, जिस प्रकार दक्ष-यज्ञ मे शिवजी का स्मरण करते हुए सती ने किया था। पूरी तरह भस्म हो जाने के वाद राख की उसी राशि से पुन. फीनिक्स पक्षी उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार वह सदैव अमर रहता है। वापूजी ने जिस श्रद्धा से सर्वोदय के सिद्धात अपनाये थे और उनपर अपना जीवन न्योछावर करने का सकल्प किया था, उसको मूर्त्तरूप देने के लिए फीनिक्स

की इस भव्य कल्पनावाले नाम से अधिक अच्छा नाम कौन-सा मिल सकता था ?

फीनिक्स वाली जमीन जब खरीदी गई तब उसके अधिकतर भाग मे घास उगा हुआ था। दो-तीन एकड के टुकडो को छोडकर वहा कभी हल या कुदाल का स्पर्श नही हुआ था। जमीन भी समतल नही थी। जगह-जगह सौ-दो-सौ फुट तक के ऊचे टीले थे। कुछ टीले पथरीले और कक-रीले थे, किन्तु बहुत-सा हिस्सा काली मिट्टी वाला था। भूमि कभी जोती नही गई थी, इसलिए उसकी उर्वरा-शक्ति भरपूर थी। परिश्रमी किसान के लिए वह सोने से भी अधिक मूल्यवान थी। काली मिट्टी इतनी भुर-भुरी थी कि अच्छी वर्षा हो जाने पर जोते हुए खेत मे प्राय. घुटनो तक पैर धस जाते थे। चौमासे मे वहा अनेक बार मूसलाधार वर्षा हुआ करती थी और छ महीने ऐसे होते थे जबकि पूरा-का-पूरा सप्ताह शायद ही सूखा बीतता हो। लगातार तीन महीने भी सूखे नही बीतते थे। जमीन के एक कोने पर छोटा-सा बागीचा था, जिसमे सतरे, आम, अमरूद, शहतूत आदि के बहुत पुराने जर्जरित पेड थे। दूसरी ओर दूर के कोने पर नाटे बबूलो का घना जगल था। उसमे हिरन, लोमडी और सेही आदि जानवर रहते थे। शेष चारो ओर घास थी। मुख्य भूमि की पश्चिमी दिशा मे एक बडा झरना था, जिसके सामने की ओर भी सस्था की जमीन थी। पूर्वी किनारेवाला नन्हा सूखा-सा झरना सस्था की पूर्व सीमा बनाता था। बडे झरने के, जो बारहो मास बहता था, दोनो किनारो पर सघन वृक्ष थे और कुछ शाखाए झरने पर छत्र की तरह छाई हुई थी। इन पेड़ो पर अनेक बार हरे रग के पतले लम्बे साप झूलते हुए नजर आते थे।

और भी कई प्रकार के साप घासपात मे, रास्तो पर व आगन मे विचरा करते थे। एक ही दिन मे पाच-पाच छ-छ सापो से भेट हो जाना असाधारण बात न थी। ये साप कई प्रकार के थे—कोई छिगुनी के-से पतले तो कोई हाथ की कलाई से मोटे; कोई त्रिकोणाकृतिवाले, तो कोई दूर से ही मनुष्य की आखो मे विष की पिचकारी छोडनेवाले; कोई निर्दोष तो कोई जमीन से उछलकर मनुष्य के मुख पर दात मारकर उसे तत्काल खत्म कर देनेवाले। बाघ-भेडियो आदि का वहा नाम-निशान नही था। पक्षी बहुत प्रकार के थे, परन्तु उनमे मोर, कोयल, तोते, गुरगल, गोरैया और कौआ आदि का कही दर्शन भी नही होता था। ब्राह्ममुहूर्त्त से भी पहले से गाने वाले चण्डूल, सुन्दर चित्र-विचित्र परो के सुनहले पक्षी, सख्त मिट्टी के पक्के घोसले बनानेवाले कारीगर पक्षी, लाल सीनेवाले छोटे पक्षी और

सुवह-शाम क्षितिज मे पक्ति-वद्ध विचरण करनेवाले श्वेत वगुले आदि वहा वहुत थे। इन पक्षियो के कठ से जो सुमधुर कलरव आकाश-मडल में आठो पहर, भिन्न-भिन्न स्वरो मे प्रतिध्वनित होता रहता था, उसके कारण फीनिक्स-क्षेत्र की वह सुदीर्घ, गम्भीर एव पवित्र शान्ति और भी अधिक शातिप्रद वन जाती थी।

आदमियो के कोलाहल से भी वह भूमि शून्य थी। हां, फीनिक्स के स्टेशन से इनाडा की ओर जो पगडण्डी जाती थी उस पर सुवह-शाम रेलवे ट्रेन के समय थोडे से आदिवासी जूलू लोग अपनी बोली मे ऊचे स्वर से वाते करते हुए निकल जाते थे। सामने वाली दूर की टेकडियो पर अलग-अलग झोपडो मे दो-चार जूलू और दो-एक गिरमिट-मुक्त भारतीय परिवार थोडी-थोडी दूरी पर वसे हुए थे। उनके दीपक का टिमटिमाना सध्या के समय फीनिक्स-क्षेत्र से दीख पडता था। जब कभी भारतीय परिवार मे लडाई-झगडा हो जाता था तो उनकी एक-दूसरे को कोसने की आवाज सुनाई पडती थी। इसके अतिरिक्त वह स्थान पूर्णतया शात था।

जाडो मे हवा वडी तेज चलती थी और घरों के किवाडो के दरार से ऐसी पैनी आवाज निकलती थी मानो गीदड रो रहे हो। पाला वहुत पडता था। सवेरे-सवेरे घर से निकलने पर अगुलियां गल-सी जाती थीं। गर्मी के दिनो मे धूप और उमस का जोर रहता था, पर लू का अनुभव याद नही आता। छोटे दिनो मे शाम को पाच-सवा पाच वजे ही सूर्यास्त हो जाता था और गर्मी के लम्वे दिनो मे शाम को सवा सात वजे तक सूर्य का दर्शन होता रहता था।

ऐसी समृद्धि मे भी पीने के पानी का भारी कष्ट था। खेतो के लिए सिंचाई का कोई प्रवन्ध नही था। पौधो को पानी देने के लिए लम्वे ढाल उतरकर झरने से वहगी मे पानी लाना पडता था और पीने के लिए वर्षा का पानी छप्परो के सहारे वडी-वडी टकियो मे इकट्ठा करना पड़ता था। झरने मे पत्तिया सडती रहती थी। इसलिए उसका पानी पिया नही जा सकता था। टीले इतने ऊँचे थे कि वहा कुआ नही वन सकता था। प्रकृति की कृपा ही थी कि लोहे की टकियो के विलकुल खाली होने से पूर्व ही वर्षा हो जाती थी और छत का पानी उनमे भर जाया करता था। जवतक सस्था मे पक्के रास्ते तैयार नही किये गए तवतक चलना-फिरना कठिन था। एक तो घास-फूस, फिर कीचड और इससे भी वडा सकट सापो का। वाजार तो वहा से ठीक चौदह मील पर डरवन मे ही था। दूध भी वहा से आता था। सामने के टीलो पर रहनेवाला उत्तर भारत का

गिरमिट-मुक्त किसान कभी-कभी डेढ मील चलकर अपनी गाय का थोडा-सा दूध दे जाता था। सौदा तथा प्रेस का सामान लाने-लेजाने के लिए एक खच्चर गाडी रखी गई थी, पर स्टेशन के लिए पगडण्डी का रास्ता तो ढाई मील का था और गाडी को चार मील का चक्कर काट-कर जाना पडता था।

फीनिक्स के ऐसे बीहड स्थान पर बापूजी की टोली ने अपना अड्डा जमा दिया। प्रेस का छप्पर इतना बडा था कि उसमे अग्रेजी, गुजराती, हिन्दी और तमिल भाषा के टाइपो के केस तथा दस-बारह कम्पोजीटरो के लिए स्टूल रखने की व्यवस्था हो गई। अग्रेजी व गुजराती सम्पादको के लिए अलग-अलग कार्यालय, हिसाब-किताब, डाक आदि का अलग विभाग और बापूजी के लिए काम करने का विशेष स्थान बना दिया गया। एक साथ सोलह पन्ने छाप सकने वाली बडी मशीन, ट्रेडल, काटने की मशीन, खड़े-खडे काम करने की कई मेजे, ऊची-ऊची अलमारिया, आदि बहुत-सा सामान साफ-सुथरे ढग से सजा दिया गया। चारो ओर काच की खिड-किया बनाई गई थी। इस कारण कही हवा या उजाले की कमी नही थी। मशीन चलाने के लिए भारी-भरकम तेल इजन था। उसके लिए अलग कोठरी बनी थी। इसी इजन के डायनमो से पूरे प्रेस मे बिजली की बत्तिया लगाई गई थी। मिट्टी के तेल के बड़े लैंप भी टगे थे। सक्षेप मे, प्रेस का मकान सादा था, पर उसमे प्रेस के लिए सब सुविधाए थी, पर रहने की उसमे कोई गुजाइश नही थी।

साप्ताहिक के छपने का काम नियमित और व्यवस्थित हो जाने पर सभी कार्यकर्त्ता अपने रहने की जगह ठीक करने मे, छपाई के काम से बचने वाला समय देने लगे। कार्यकर्ताओ मे पहले-पहल दो-तीन अग्रज, दो-चार तमिल-भाषी, दो-चार हिन्दी-भाषी, एक-दो आदिवासी जूलू नौकर और पाच-छ गुजराती थे। डरबन से जो कार्यकर्त्ता स्वेच्छा से अपना वेतन घटाकर आये थे उन सबको निजी खेती और बागीचे के लिए एक-एक, दो-दो एकड जमीन दे दी गई। दो बढइयो की सहायता लेकर सभी ने अपनी-अपनी जमीन पर नालीदार चद्दरो से एक-एक कमरा खडा कर लिया। प्राय सभी ने अपने मकान टीले पर बनाए थे, इसलिए सभी सौ-पचास गज के निकटस्थ पडोसी बन गए। अपने निवास-स्थान की चारो ओर की घास को सभी ने हटा दिया और थोडा-थोड़ा आगन भी समतल बना लिया, इसलिए उस स्थल ने एक छोटी-सी सुन्दर बस्ती का रूप ले लिया। लोगो ने अपनी रुचि के अनुसार अपने मकान के आस-पास छोटा-सा बगीचा भी लगा लिया।

मेरे पिताजी और मगनकाका ने मिलकर चार एकड जमीन ली। वह अलग-अलग तीन जगह बटी हुई थी। बडा हिस्सा मुख्य टीले के ऊपर था। इस टुकडे मे टीले के ऊचे भाग पर घास निकालकर, उन्होने एक बडा चौकोर कमरा बनाया और उसके सामने कुछ दूर पर रसोईघर का एक छोटा कमरा। झोपडो की विशेषता यह थी कि उनमे सील तथा वर्षा के पानी से बचत के लिए लकडी के चौकीनुमा ऊचे फर्श बनाये गए थे, जिससे फर्श के नीचे से गोल खभो के बीच मे होकर चौमासे का पानी निकल जाता था और फर्श पर सील नही होती थी। फर्श की ऐसी रचना के कारण चूहो की परेशानी और सापो के निवास का डर भी कम हो गया था। दीमक का त्रास वहा था ही नही। झोपडो की दीवारे नालीदार चादरो को लकडी के चौखटो पर जडकर बनाई गई थी। छत भी वैसी ही थी। यथास्थान काच की चौडी खिडकिया रखी गई थी। इस प्रकार कहने को झोपडियां होने पर भी वे सुविधा मे हवादार बगलो से कम न थी।

मेरे पिताजी के जिम्मे अधिकतर अखबार के लिए लिखने-पढने वा वही-खाते का काम रहता था। तीसरे-चौथे दिन वह डरबन जाकर साप्ताहिक के लिए विज्ञापन प्राप्त करने, चन्दा वसूल करने और सौदा खरीदने का काम करते थे। मगनकाका दूसरे कम्पोजीटरो के साथ कपोजिग, मशीन चलाने और दूसरी आवश्यक कारीगरी का काम करते थे। बहुत थोडे दिनो मे वह इन कामो मे प्रवीण हो गए। प्रेस का समय समाप्त होते ही वह घर जाकर बढइयो के साथ जुट जाते और इस प्रकार उन्होने बढइगिरी भी सीख ली। फिर बागीचे के काम मे कसकर लग गए और फल के पौधो की बडे ही प्रेम और परिश्रम से परवरिश करने लगे। फलत. दो-तीन साल मे ही हमारे घर का बगीचा नामी हो गया।

सर्वोदय-जीवन की जिस उन्नत कल्पना को बापूजी ने एक रात के जागरण व उग्र मनोमंथन के बाद अपना लिया था, उसको एक वर्ष के अन्दर ही फीनिक्सवासी साहसिक युवको ने अपने प्रखर पुरुपार्थ से कार्यान्वित कर दिखाया। इसका मुख्य श्रेय बापूजी के अपने जीवन की वेगवान प्रणाली, विचारो की उन्नत और पारदर्शक स्पष्टता और उनकी सतत निष्ठा को है। नगर-जीवन के सुखो की मनोरम अभिलापा व विपुल धन-राशि प्राप्त करने की तीव्र लालसा से विमुख करके जगल मे मगलमय जीवन बिताने के लिए बापूजी ने ही उन साहसिक व पुरुपार्थी युवको को लालायित किया। कदम-कदम पर उनके लिए स्पष्ट योजना बनाई, द्विविधा न हो ऐसा मार्ग-

दर्शन कराया, उनमे अटूट विश्वास, अविचल आत्मश्रद्धा और अदम्य उत्साह भर दिया।

जब रहने के लिए ठौर-ठिकाना हो गया तब बापूजी ने उन युवको को परामर्श दिया कि वे अपने-अपने परिवारो को भी फीनिक्स मे बुला ले।

: १४ :

धूमिल स्मरण

इस ससार का सर्वप्रथम आलोक मैने तब देखा जब मेरे पिताजी मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए। उन्ही दिनो पूज्य बापूजी ने दक्षिण अफ्रीका से लौटकर राजकोट मे अपनी बैरिस्टरी जमाने का श्रीगणेश किया था और उन्होने मेरे पिताजी को राजकोट के अग्रेजी हाकिम की क्लर्की से बचाकर अपने साथ काम मे लगा लिया था। मेरे जन्म के समय की यह ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना साबित हुई कि मेरा भविष्य सुधर गया। वह समय सन् १९०१ के वर्ष की समाप्ति का था।

मेरा जन्म अपने नानाजी के घर पर पोरबन्दर मे हुआ था। मेरे नानाजी श्री हीराचन्द वोरा राजकोट मे सुप्रसिद्ध तथा प्रामाणिक सर्राफ थे और मुख्यत. सोना-चादी का व्यापार करते थे। परन्तु देनदारो से वसूली के लिए अदालत की दहलीज पर कदम न रखने के आग्रह के कारण उनकी बहुत-सी पूजी फस गई और वह अपना रोजगार बन्द करके यात्रा को निकल गए।

बताया जाता है कि मेरे नानाजी उन प्रगतिशील व्यक्तियो मे से एक थे जिन्होने सौराष्ट्र मे अपनी कन्याओ को पहले-पहल पाठशाला मे भेजा था और अपने पुत्रो को उन्होने यूनिवर्सिटी की ऊची शिक्षा दिलवाई थी।

बापूजी जब बैरिस्टरी पढने विलायत जा रहे थे तब मोढ़ बनियो की बिरादरी के दकियानूसी वृद्धो का मुकाबला करने मे, उन्होने बापूजी को सक्रिय सहयोग दिया था और विलायत से बापूजी के लौट आने पर राजकोट की बिरादरी मे उनका पुन: प्रवेश कराने मे गाधीजी के बडे भाई को मेरे नानाजी ने बडी सहायता दी थी। धनी सेठ होते हुए भी अपनी तुलना मे निर्धन स्थिति के श्री खुशालचन्द गाधी के पुत्र के लिए केवल सस्कारिता

को देखकर अपनी कन्या को देना उस जमाने मे उनकी प्रगतिशीलता का ठोस प्रमाण माना गया था।

पोरबन्दर मे जब मेरा जन्म हुआ तब नानाजी के दिन बदल गए थे और किराये के बहुत सादे मकान मे वह रहते थे।

सुदामाजी के मन्दिर और ओताबापा के प्राचीन मकान के प्रायः अधबीच मे यह मकान था। अपने बचपन मे पन्द्रह-सोलह की आयु तक मेरे मन मे इस बात का गौरव जाग्रत रहा कि मै सुदामा तथा गाधीजी के गाव का एक बालक हू। इस भावना से मुझे अनेक बार ऊचे उठने मे सहायता मिली।

अपने नानाजी के यहा किस आयु तक मै रहा, इसका मुझे पता नही। परन्तु तब के दो-तीन धुधले स्मरण अब भी मेरे चित्त पर अकित है:

मगनकाका हम लोगो को लिवाकर जब फीनिक्स के लिए रवाना हुए तब मै मुश्किल से चार वर्ष का था। हिन्द महासागर की मेरी उस प्रथम यात्रा मे हमारे सघ मे मगनकाका, मेरी माताजी, मेरी चाचीजी और मै मिलकर साढे तीन प्रवासी थे और दूसरे डेढ प्रवासी थे मेरे दूर के काका श्री आनन्दलाल गाधी की पत्नी झवेर काकी और उनकी छोटी पुत्री विजया।

जब मगनकाका स्टेगर वाली दूकान छोडकर बापूजी के आमत्रण पर फीनिक्स गये तब उनके साथ आनन्दलालकाका भी दूकान और व्यापार का मोह छोडकर किसान का जीवन बिताने स्टेगर से फीनिक्स आ गये थे।

जिस स्टीमर मे हम गये उसका रग-रूप, नाम आदि तो मुझे याद नही है, पर इतना याद है कि हमारे सघ को स्टीमर मे दो तग कोठरिया मिली थी। दिन-भर मगनकाका उन कोठरियो से बाहर रहते थे, और मेरी माता, दोनो काकी और हम दोनो बच्चे कोठरी की सकरी टाड पर बिछे बिस्तर पर बैठे रहते थे। हमारी कोठरी की काच की खिडकी पर समुद्र की कोई बडी लहर जब टकराती थी तब डर के मारे हम सब उस सकरी टाड पर एक-दूसरे के और भी निकट सटकर बैठ जाते थे। हम लोगो का यह डर दूर करने के लिए कभी-कभी मकनकाका हमे ऊपर के खुले डेक पर ले जाते थे; डेक के किनारे लोहे का जगला उस स्टीमर पर शायद नही था। आड के लिए केवल मोटा रस्सा बाध लिया गया था। डगमगाता स्टीमर जब पानी की ओर बहुत ज्यादा झुक जाता तब ऐसा प्रतीत होता था कि बस अब वह बिल्कुल करवट लेकर पानी पर लेट जायगा और हम सब पानी मे जा गिरेगे, पर तुरन्त ही वह दूसरी ओर झुकना शुरू करता और हम गिरने से बच जाते। यह सारा दृश्य भयावह था, फिर भी उस समय समुद्र

का दर्शन करते मुझे तृप्ति नही होती थी। मगनकाका जब लौटाकर कोठरी
मे ले जाते थे तब बुरा लगता था। एक बार जब वर्षा हो रही थी, मगन
काका हमे ऊपर वाले डेक पर टहलाने ले गए। देखते-ही-देखते समुद्र की
एक बडी लहर ने डेक पर आकर झपट्टा मारा और चारो ओर पानी फैल
गया और सब यात्री इधर-उधर भागे। उस समय कोहराम मच गया
मगनकाका ने मजबूती से मेरा हाथ थाम लिया, परन्तु मैने अपनी माताजी
का पल्ला नही छोडा। ऐसी विपत्ति मे मुझे अपनी माता पर ही अधिक
भरोसा रहा। मगनकाका ने मुझे अपने पास लेने के लिए ज्यो-ज्यो जोर
दिया, मै और भी जोर से अपनी माता से चिपका रहा। बाद मे किस
प्रकार डेक से उतरकर हम लोग अपनी कोठरी मे पहुचे, इसका स्मरण मुझे
नही है।

महासागर की वह लम्बी यात्रा कब पूरी हुई, हम लोग स्टीमर से कब
उतरे और फीनिक्स पहुचे, उसका भी कोई स्मरण अब मुझे नही है
इतना याद है कि जब हम फीनिक्स पहुचे तो टीन के एक छोटे से चौकोर
कमरे मे हमारा डेरा था। रात को वहा इतनी भीड हो जाती कि निकलने
भर की उसमे जगह न रहती। इसलिए मै एक कोने मे दुबककर बैठ
जाया करता था। शाम की रसोई तब नही बनती थी। जगल की जमीन
मे और ऊपर से बूदा-बादी का डर होने के कारण एक ही समय की रसोई
मुश्किल से बन पाती थी। चिराग जलने पर घर के बडे लोग बिना कुछ
खाये-पिये ही बिस्तर लगाकर लेटने के इन्तजाम मे लग जाते थे। पिताजी
और मगनकाका कई बार ऊपर की टीन की छतपर भी बिस्तर लगाते थे
सब लोग जब इस काम मे लगे होते थे तब एक कटोरे मे थोडे से दूध मे
भिगोई हुई डबलरोटी मेरी मा मुझे दिया करती थी, जिसे मै बडी देर तक
कोने मे बैठा-बैठा बडे स्वाद से खाया करता था।

हमारे रहने का तग चौरस कमरा कुछ दिन बाद बदल दिया गया
उसकी छत का ढाल ऐसा बनाया गया कि बरसात के पानी का टपकना
रुक जाय।

इसी मुख्य कमरे के पश्चिम मे एक बरामदा और एक कमरा और
बढाया गया। पूर्व मे बाकायदा रसोईघर तैयार किया गया और उसमे
धुआँ निकलने के लिए ईंटो की चिमनी बनाई गई। मकान-भर मे और
कही ईंट-चूना काम मे नही लिया गया था। टीन और लकडी के बने इस
खूबसूरत मकान मे खिडकिया काच की लगाई गई थी। उसमे लोहे की छड
या जाली नही डाली गई थी, रात को भी वे खुली रहती और खिडकी के

रास्ते घर मे प्रवेश करना बिल्कुल सुगम था। परन्तु उस जगल मे न कोई जानवर ही हमारे घर मे घुसा, न कोई चोर। अफ्रीका के आदि-निवासी घर से लगी हुई सडक से दिन-रात आते-जाते थे, पर उनमे से किसी को चोरी करने का लालच नही हुआ। हमारे घर की जैसी ही रचना वाले और भी दो-तीन मकान सौ-दो सौ कदम की दूरी पर तैयार हुए, जो वेस्ट साहब और आनन्दलालकाका आदि के थे।

फीनिक्स के कार्यकर्त्ता-परिवारो मे अभी कोई और लडका नही था, जिसके साथ मै खेलू। इसलिए मुझे सारा दिन अपनी माता के पास उस बडे घर मे अकेले ही विताना पडता था। पास के घर मे आनन्दलालकाका की पुत्री विजया बहुत कम हमारे यहा खेलने आती थी, क्योकि हम लोगो को घर से बाहर निकलने मे काफी रोका जाता था।

इस मुसीवत मे नई मुसीवत यह आई कि घर मे स्लेट-पेन का आगमन हुआ। मै पाच साल का हो गया था इस कारण अब मेरी पढ़ाई शुरू हुई। उस समय की शिक्षा-पद्धति के अनुसार मुझे स्लेट पर इकाई के प्रथम अक को घटे-दो-घटे तक नित्य ही बारबार दोहराते रहना पडता था। माताजी के लिखे हुए मूल अक की लकीर को अपनी छोटी-सी पेन से दोहराते-दोहराते जब वह पौन इच मोटी लकीर बन जाती और मै बिल्कुल थककर उदास हो जाता तब मुझपर माताजी को दया आती और वह मेरे हाथ से तख्ती छीनकर अलग रखती हुई मुझसे कहती, "जाओ, खेलो घर के बाहर।" परन्तु इस प्रकार खेलने की छुट्टी पाने पर भी मेरा उत्साह सूख जाता और खेल-कूद के बदले घर के पास ही मै थोडा-सा चक्कर लगाता। शाम के समय जब आनन्दलालकाका के यहा से विजया आती तब मै उसके साथ-साथ कुछ खेल लेता।

प्रत्येक सध्या को आकाश मे ज्यों-ज्यो अधेरा बढने लगता त्यो-त्यों मेरे सिर पर सकट मडराने लगता। एक से लेकर सौ तक की सारी गिनती मुझे उस समय बडो को सुनानी पडती थी। विजया एक सास मे सारी गिनती सुना देती, पर मुझसे कई भूले हो जाती। वैसे मै आयु में बड़ा था और फिर लडका! इस कारण, मेरी भूल जरा भी सहन नही की जा सकती थी। बारबार डाट-डपटकर मुझे सुनाया जाता : "लाज ही नही है बेशरम को! तुझसे तो यह लडकी होशियार है!" "निरा बुद्धू ही है, बेहतर था कि लडकी ही जनमता।"

अगर पाठ लेते समय मै अकेला ही होता तब तो मुझे और भी अपमान सहन करना पडता था। उस समय मेरी मंदबुद्धि के लिए घर के बड़े लोग

बडा अफसोस प्रकट करते थे और विजया की बुद्धिमत्ता की बडी प्रशसा करते।

इसका परिणाम यह हुआ कि गिनती याद होनी तो अलग रही, उसके प्रति मेरी अरुचि बढने लगी। खुद इकाई-दहाई रटके होशियार बनने की आकाक्षा मेरे मन मे पैदा न हुई, पर विजया की होशियारी पर मुझे रोष जरूर होने लगा, यहा तक कि जब वह अपने ताऊजी के घर चार-पाच दिन के लिए टोगाट जाती थी तब मै मन-ही-मन मनाता रहता था कि वह अब लौटकर फीनिक्स न आये।

धीरे-धीरे मेरी पढाई, अर्थात् गिनती लिखने और सुनाने की विद्या, कसम खाने-भर को आगे बढी, लेकिन घर वालो को उससे सन्तोष नही हुआ। मै सुस्त विद्यार्थी न रहू, तेज बन जाऊ, इसके लिए वे सब अधीर हो उठे और मुझे सुस्त से चुस्त बनाने का बीडा मगनकाका ने उठाया। मै भुलक्कड न रहू, मेरा प्रमादीपन सत्वर दूर हो जाय और बचपन से ही मै तेजस्वी विद्यार्थी बन जाऊ, इस आकाक्षा से रोज सध्या को घटा-दो-घटा मेरे लिए मगनकाका श्रम करने लगे।

जब मेरी माताजी पढाती, तब वह भी मुझे अप्रिय लगती थी, पर जब मगनकाका ने मुझे अपने हाथ मे लिया, तब मेरे मन का भय बहुत बढ गया और मै उनकी निगाह से बचने की कोशिश करने लगा।

प्रात.काल से लेकर शाम तक मगनकाका मुद्रणालय मे और घर के बगीचे मे कठोर परिश्रम करते और शाम को घर आकर सोने से पहले मुझे पढाने का काम करते। थके-थकाये तो वह होते ही थे, उस पर जब गिनती सुनाने मे मुझसे भूल हो जाती तब उनका क्रोध उमड पडता। वह मुझ पर धमकते और अपनी सारी ताकत से मेरा कान पकडकर उसे इस हद तक ऐठते कि मेरे पैर जमीन से ऊपर उठ जाते। कुछ क्षण बाद उनके क्रोध मे और भी बाढ आती और मेरा कान छोडकर वह तडातड मेरे दोनो गालो पर चार-पाच तमाचे लगा देते। ऐसा मालूम होता मानो गाल पर अगारे धर दिये हो, पर मुझे यह साहस नही होता था कि अपने हाथ से मै अपने गाल को सहला लू। अश्रुधारा चलती हो, गला सूख रहा हो, फिर भी पाषाण मूर्त्ति के समान निश्चल खडा रहकर गिनती सुनाने का प्रयास मुझे चालू रखना पडता था। लेकिन जब मेरा चित्त ही विह्वल हो उठा हो तब बिना भूल के गिनती सुनाना कैसे सभव हो सकता था। नतीजा यह होता कि काका की क्रोधाग्नि और भी भडक उठती और उस समय जो भी डडा-लकडी उनके हाथ पड़ जाती उससे मेरे हाथ-पीठ आदि की काफी मरम्मत हो जाती।

किसी-किसी दिन मुझे भरपूर पीट डालने पर भी काका का क्रोध शात नही होता था, तव मुझे नसीहत देने के लिए वह नया उपाय काम मे लाते थे। चार-पाच वार यह प्रयोग उन्होने किया होगा। हमारे घर के वरामदे मे लकडी का एक वडा वक्स पडा रहता था, उसे खाली कर के वह मुझे उसमे वन्द कर देते थे। लकडी के उस सन्दूक मे वडी-वडी दरारे थी, इसलिए मुझे हवा तो मिल जाती, पर मेरा नन्हा-सा जी वेहद व्याकुल हो जाता। मै वहुत छटपटाता, हाथ-पैर पटकता, उस भारी ढक्कन को लाते मार-मार कर खोलने का प्रयास करता और चिल्लाता, परन्तु मेरी इन चीखो को उनके हृदय तक पहुचने से उनका प्रचड क्रोध रोक लेता था। मेरी यह ताकत कहा कि मै उस ढकने को जोर लगा के खोल दू, जिसको मेरे पहलवान काका ने अपने पैरो से दवाया हो। मेरी माता और काकी की आखो से भी अश्रु वहते, परन्तु किसी का साहस नही था. जो क्रोध-भरे मकनकाका से कुछ कहे।

जव मेरी कुछ न चलती तव हार मानकर, थककर, मै उस वक्से मे चुप पड जाता। थोडी देर वाद अपने-आप जव काका के क्रोध का आवेग कुछ कम होता तव वक्से के ढक्कन पर से उतरकर मगनकाका उसे खोल देते और मुझे वाहर निकालकर खडा करते।

ऐसी पिटाई और सजा से जव मुझे छुट्टी मिलती तव सध्या वीत जाती, आकाश मे गाढा अन्धकार छाया हुआ रहता। मै मूढवत आकाश को देखता रहता। मगनकाका मुझे छोडकर जव तक अपने कमरे मे चले नहीं जाते तव तक मुझे भरोसा नही होता कि अव और पिटाई न होगी।

माताजी मेरा हाथ पकडकर मुझे ले जाती, नहला-धुलाकर नये कपडे पहनाकर सुला देती। पिताजी प्राय. घर मे रहते ही नहा थे। वह आधी रात तक मुद्रणालय मे उलझे रहते थे और वैसे भी मगनकाका के अनुशासन मे वाधा डालना उन्हे उचित नही लगता था।

ताडना के इस प्रसग के कारण जितना कष्ट और उद्वेग मार खाने वाले चित्त पर कायम रहा उससे सौ गुना अधिक पछतावा और दुःख मारने वाले के चित्त पर रहा।

उन प्रसगो को याद करके मगनकाका कहा करते थे, "उस समय मै सचमुच नर-राक्षस ही था। अगर वापूजी ने मेरा यह जगली स्वभाव वदल न दिया होता तो उस क्रोधावता ने न जाने कितने पाप आज तक मेरे हाथ से करवाये होते।"

नित्यप्रति बरसती रहनेवाली इस कठोरता ने मेरी बुद्धि के द्वार खोलने मे नाममात्र भी सहायता नही पहुचाई। मेरी मन स्थिति ऐसी हो गई कि अपनी माता, काकी, पिता आदि किसीके पास जाने का, बात करने का मुझे साहस नही रहा। घर मे कही कुछ अच्छा नही लगता था, खाते समय थाली मे जो परोसा जाता, चुपचाप खा लेता, जितना समय तख्ती लिखने के लिए बाध्य किया जाता, लिख लेता और बाकी का सारा समय घर से बाहर दूसरे आदमियो के साथ बिताने के लिए मेरा जी छटपटाता रहता। दुःख की बात यह थी कि फीनिक्स-भर मे जो एकमात्र समवयस्क बालक विजया थी वह भी जब हमारे घर आती तो अपनी मा के हाथ अक्सर पिट जाती। उसकी मा कुछ-न-कुछ घर-काम मे उसे लगा रखती थी और जरा-सी गलती होने पर बेलन या और जो चीज हाथ आये वह उस पर फेककर उसे मारती थी। मुझे स्वय विजया के यहा जाने मे अपने घर वालो का डर लगता था। फिर मेरे मन मे यह भावना जाग्रत कर दी गई थी कि लडका होकर लड़की के घर खेलने जाना शरम की बात है। सार यह कि घर वालों के अतिरिक्त किसी अन्य मनुष्य के सहवास के लिए मै बहुत तरसता रहता था।

मेरी यह कामना तब पूरी होती जब डरबन से कुछ मित्र मेरे पिताजी और काका से मिलने फीनिक्स आते और दिन-भर हमारे यहा अतिथि बनकर रहते। महमान का आना मेरे लिए होली-दिवाली के त्यौहारो का-सा सुखद होता था। महमानो के साथ मिलकर जब मगनकाका हास्य-विनोद और गाना बजाना करते तब वहासे उठकर मै कही नही जाता था। उस सध्या को गिनती सुनाने के सकट से भी मुझे मुक्ति मिल जाती और जब अतिथि लोग फीनिक्स से लौट जाते तब मेरा मन फिर भारी हो जाता।

अतिथियो के आगमन की भाति रविवार का आगमन भी मुझे बहुत अच्छा लगता था। मगनकाका का स्वभाव कुछ आंधी-पानी का-सा था। जब आधी उठती है तब ऐसी खतरनाक मालूम देती है मानो पूरे-के-पूरे जगल को जड से उखाड फेकेगी। बड़ा पेड या छोटा पौधा कुछ भी नही बच पायगा, परन्तु जब आधी का उन्माद शात हो जाता है तब शीतल-मद-सुगध वायु से वातावरण भर जाता है और सर्वत्र आनन्द छा जाता है।

इसी प्रकार जब मगनकाका का क्रोध मिट जाता तब वह सबका आनन्द-विनोद भी बहुत कराते थे। रविवार को दोपहर के बाद घर के सब लोग मिलकर घूमने जाते थे। माता, काकी और दूसरी बहने जगल की पगडडी पर दौड़ती। जो आगे निकल जाती उसको सबकी बधाई मिलती। मगन-

काका किस्म-किस्म के फल-पौधो की पहचान कराते। चार-पाच मील उस दिन हम लोग चलते। जब मै थक जाता तब बारी-बारी से पिताजी और मगनकाका मुझे कधे पर बिठा लेते। फिर तो मै चारो ओर वनराजि की शोभा देखता। बादलो मे खेलता हुआ सूरज देखता और मगनकाका भी मुझे सुन्दर-से-सुन्दर दृश्य दिखाते। उस समय बेखटके मै पूछता कि यहा अमरूद किसने बोया? सबसे पहला बीज किसने बनाया? यह अधेरा कहा से आगया? केले मे बीज क्यो नही है? इन बातो का उत्तर जरा भी गुस्से के बिना पिताजी और काका देते तथा मेरी जिज्ञासा का समाधान करने का प्रयत्न करते।

इस प्रकार मेरा पाचवा वर्ष एक ओर से अतीव शुष्क और दूसरी ओर महीने मे चार-छ बार आनन्द के दिनो का अनुभव करता हुआ बीता। एक ओर गणित की कठोर और दुर्बोध विद्या के पीछे मेरा मन मुर्झा गया और दूसरी ओर फीनिक्स के आसपास की वन-श्री तथा पक्षियो की ओर मेरी दिलचस्पी बढ़ने लगी।

: १५ :

कस्तूरबा का आगमन

अपने घर की चहारदीवारी के भीतर जब मेरी जान बहुत तग आ गई; घर वालो के पास बैठकर बात करने का साहस नही होता था और घर से बाहर और किसी से बोलने-खेलने का मौका ही नही था, तब वहा के वातावरण मे एक के बाद दूसरे परिवर्तन हुए और मेरा मन खिल उठा।

दो नवयुवक फीनिक्स मे आये—हरिलालकाका और गोकुलदासकाका। मै उनके सामने बिल्कुल बच्चा ही था और वे भरे-पूरे जवान मालूम होते थे। श्री हरिलाल गाधी बापूजी के सबसे बडे पुत्र अर्थात् पिताजी के चचेरे भाई और श्री गोकुलदास बापूजी की बडी बहन गोकी फइबा के इकलौते पुत्र अर्थात् पिताजी के फुफेरे भाई थे। इस प्रकार अब मुझे मगनकाका के अतिरिक्त दो छोटे काका ऐसे मिले जो मुझे डाटते-डपटते नही थे, बल्कि प्रसन्न रखते थे। बारी-बारी से अपनी साइकिल पर बैठाकर मुझे फीनिक्स

स्टेशन तक घुमा लाते थे। मैं ठीक तरह बैठ सकू, इसके लिए वे साइकिल के डडे पर मुलायम तकिये बाध लेते थे।

जहा तक मुझे स्मरण है, इन दोनो के पास उस समय फीनिक्स मे कोई काम या उत्तरदायित्व नही था। शायद वे कुछ दिन भ्रमण के लिए ही फीनिक्स आये थे। अच्छे-अच्छे कपडे पहनने मे दोनो एक-दूसरे से बढकर थे। फिर भी मुझे ऐसी याद है कि गोकुलदासकाका हरिलालकाका से कपड़ो आदि की शान मे बढ जाते थे। हरिलालकाका के बाल घुघराले थे, पर गोकुलदासकाका के बालो की माग तथा उसे बनाने का ढग मुझे अधिक अच्छा लगता था। दोनो के हास-परिहास मे हरिलालकाका का हास-परिहास बढ़कर रहता था; परन्तु मुझ पर गोकुलदास काका की मद मुस्कराहट का प्रभाव अधिक पड़ता था। गोकुलदासकाका के साथ-साथ घूमने-फिरने मे मुझे अधिक आनन्द आता था। वे लोग कुछ सप्ताह, या दो-चार महीने, फीनिक्स मे रहकर चले गए थे। बापूजी के पास जोहान्सबर्ग गये अथवा भारत लौट आये, यह मुझे याद नही। केवल इतना याद है कि वे लौटकर फिर फीनिक्स नही आये। बहुत दिन बाद—शायद वर्ष डेढ वर्ष बाद—हरिलालकाका के बापू के साथ ट्रासवाल मे जेल जाने की बात सुनी और गोकुलदासकाका की मृत्यु के समाचार फीनिक्स पहुचे। भारत आने पर गोकुलदासकाका की अकाल मृत्यु हो गई थी और मृत्यु के समाचार से हमारे परिवार मे भारी शोक छा गया था।

बापूजी के लिए ऐसे होनहार भानजे की मृत्यु का आघात कम नही था। गोकुलदास उनके लिए अपने निजी पुत्र से अधिक थे। गोकी फइबा ने बापूजी के प्रेम का उल्लेख करते हुए मुझसे कहा था कि वह "हरिलाल और गोकुल को एक-समान देखते थे।"

बापू ने एक शाम को गोकी फइबा से कहा, "लडको को बाहर पढने भेजना है। एक को बनारस और एक को गोडल के छात्रावास मे भेजना चाहता हू। बनारस किसे भेजू, यह सोच रहा हू। अपने आप मैं निर्णय नही करना चाहता। मेरे लिए दोनो एक बराबर है। मैं चिट्ठी डालूगा और जिसका भाग्य बनारस जाने का होगा उसे वहा और दूसरे को गोडल भेजूगा।"

फिर बापू ने पडोस के एक छोटे बालक को बुलाया। उसके एक हाथ मे एक रुपया दिया और दूसरे हाथ मे पैसा। उस बालक से कहा कि जाओ, इस घर मे जहा तुम्हारा जी चाहे, इन दोनो सिक्को को अलग-अलग जगह छिपा आओ। जब वह बालक सिक्को को छिपा आया, बापू ने अपने

पुत्र और भानजे से कहा, "जाओ, सिक्का ढूढकर ले आओ।" थोड़ी देर वाद गोकुलदासकाका रुपया ढूढ लाये और हरिलाल काका पैसा। यह देखकर वापू ने अपनी वहन से कहा, "गोकुलदास वनारस जायगा, उसे जल्दी तैयार करो। वह भाग्यवान दीखता है।"

जिस भानजे पर वापूजी की इतनी अधिक ममता थी, उसकी अकस्मात मृत्यु पर भी वह शोक का घूट पी गए और मृत्यु का उत्साह से स्वागत करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए तीव्रता से चिन्तन-मनन करने लगे। इस सवध मे वापूजी के दो पत्र यहा उद्धृत कर देना अप्रासगिक न होगा। पहला पत्र है मेरे दादाजी और एक अन्य स्वजन के नाम और दूसरा है मगनकाका के नाम।

ता० १४-५-१६०८

वद्य मेघजीभाई और खुशालभाई,

आपका पत्र मिला। अपने मन के कुछ उद्गार मैने रलियातवहन के पत्रो मे प्रकट किये है। इसी पत्र के साथ वह पत्र भी नत्थी है। उसे आप पढे, उस पर विचार करे और वहन रलियात को पढकर सुनाए। यदि वहन भाई करसनदास के पास हो तो वहा उस पत्र को भेज दे और वहन रलियात की मन.स्थिति के वारे मे मुझे सूचना देने की कृपा करे।

गोकुलदास गया सो जाना। अपने सवध के कारण स्वभावत ही इन पक्तियो को लिखते-लिखते मुझे रोना आता है। किन्तु अपने मन के विचार, जो वहुत अरसे से मन मे मडरा रहे है, आज वहुत प्रवल हो उठे है। मै देखता हू कि हम सव विकट जाल मे फसे हुए है। जैसी हमारे परिवार की दुर्दशा है वैसी ही हमारे देश की भी दुर्दशा मुझे नजर आती है। इन दिनो मेरे मन मे जो विचार मुख्य है, उन्ही को मै यहा आपके सामने रख रहा हू।

गलत लिहाज या शर्म के कारण अथवा गलत मोह मे फसकर हम अपने वालको के शादी-व्याह करने की जल्दी मचाते है। इस वखेडे के पीछे सैकडो रुपये वरवाद करते है और फिर विधवाओ के मुख देख-देखकर तरस खाते है। व्याह करना ही नही, ऐसे तो मै कैसे कहू? पर कुछ हद तो कायम करे। वालको की शादी कराकर उन्हे हम दु ख मे ढकेल देते है। वे फिर सतान पैदा करके झझट मे पड जाते है। हमारे नियम के अनुसार स्त्रीसग तो केवल प्रजोत्पत्ति के लिए ही विहित है। इसके अलावा जो है वह विषय ही है। हम लोग इस पथ का यत्किचित अनुसरण करते हो ऐसा प्रतीत नही होता। यदि मेरा यह कथन गलत नही है तो मानना पडेगा कि अपनी ही तरह अपने वालको के शादी-व्याह रचाकर हम उन्हे विषयी

बना रहे है और इस प्रकार यह विषय-वृक्ष बढता ही चला जाता है। इसको धर्म मानना मुझे स्वीकार नही है।

अधिक नही लिखूंगा। आपने वहा के हालत लिख भेजे है, पर मै और क्या उत्तर दू ? अपने मन की बात ही मै लिख सकता हू। यद्यपि मै आप लोगो से छोटा हू फिर भी आपके द्वारा मै अपने विचार सारे परिवार के सामने रख रहा हू। इसी को आप मेरी कुटुम्ब-सेवा माने। यदि इन उद्‌गारो को आप मेरा अपराध समझे तो उसके लिए क्षमा करे। चौदह वर्ष तक स्वाध्याय और मनन करने के बाद और सात वर्ष के आचरण के बाद अपने इन विचारो को अवसर देखकर आपके पाह रख रहा हू।

—मोहनदास के दडवत् प्रणाम

गोकुलदास काका की नई-नई ही शादी हुई थी और वह अपने पीछे एक छोटी बालिका और विधवा पत्नी छोड गए थे। इस कारण परिवार-भर मे कुहराम मच गया था। इस पर बापूजी ने जो आश्वासन का पत्र भेजा उससे उन लोगो को बडी सात्वना मिली।

इस पत्र के ठीक आठ दिन बाद बापूजी ने मगनकाका के नाम पत्र भेजा। उसमे जीवन-मरण के बारे मे अपने विचारो को उन्होने बिल्कुल स्पष्ट रख दिया था। उस समय ट्रासवाल मे सत्याग्रह का दौर चल रहा था। जनरल स्मट्स ने समझौते का दिखावटी हाथ फैलाया था और उस समझौते को अमल मे लाने के कारण बापूजी का जीवन खतरे मे पड गया था। मीरआलम पठान ने जिस दिन बापूजी पर आक्रमण किया था, मालूम होता है उसके पहले दिन बापूजी ने यह पत्र मगनकाका को लिखा था।

जोहान्सबर्ग

ता० २१-५-१९०८

चि. मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरे लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। मुझे लगता है कि मुझे अपनी बलि चढानी ही होगी। स्मट्स आखिर तक दगा देगा, ऐसा मै नही मानता। पर लोग अधीर हो उठे है। वे मेरी जिन्दगी पर प्रहार करने को तुले हुए है। यदि ऐसा हो तो सतोष मानना। जिसे मै कल्याण की बात समझता हूँ उसे पूरा करने मे यदि जिन्दगी कुरबान करनी पडे तो उससे बढकर मृत्यु और कौन-सी हो सकती है ?

जब ईश्वर ने गोकुलदास को बुला लेना उचित समझा तब मौत की बात से जी उदास क्यो हो जाय ? यह दुनिया फानी है। तो फिर मेरा

जीव इस दुनिया से चल बसे तो उसके लिए चिन्ता क्यो करे? मृत्यु-पर्यन्त मुझसे कुछ अनुचित कार्य न हो, यह इच्छा रखना पर्याप्त है। भूल से भी अपने हाथ से कुछ अनुचित न हो, इसकी चिन्ता मन मे रखनी चाहिए। मुझे मोक्ष मिल जाय ऐसी स्थिति पर भी तो मै अभी पहुचा नही हू, पर मेरी ऐसी मान्यता है कि इन दिनो मेरे विचार जिस लीक पर चल रहे है उनके उसी लीक पर रहते हुए यदि मै अपना शरीर छोड जाऊगा तो पुनर्जन्म मिलेगा जिससे सद्य. मोक्षप्राप्ति होगी।

—मोहनदास के आशीर्वाद

हरिलालकाका और गोकुलदासकाका के फीनिक्स से चले जाने के कुछ समय वाद कस्तूरबा फीनिक्स मे आ गई। पारसी महिला की तरह की उनकी गहरे वादामी रग की साडी, पैरो मे मोजे और गले की पैनी आवाज आज भी नही भूला हू।

वा के साथ वापूजी उस समय फीनिक्स आये हो, ऐसा याद नही पडता। मणिलालकाका, रामदासकाका और देवदासकाका वा के साथ आये और वापूजी का जो घर वन्द-सा पडा रहता था वह अव खुल गया। वह अव 'वडा घर' कहलाने लगा और हमारे घर मे सारे दिन वडे घर की ही चर्चा होने लगी। पूज्य वा जव हमारे घर पर आती तव घर के लोग उनका वहुत आदर करते, परन्तु वह तो हमारे रसोईघर की पैडी पर विना कुछ विछाये ही वैठ जाती थी। मेरी माता, काकी और वा तीनो देर तक साथ वैठी रहती थी। वे वहुत धीरे-धीरे वाते करती थी और उनके मुख पर दुःख और भय की गभीर छाया नजर आती थी।

वापूजी के वारे मे सव वहुत चिंतित हो रही थी। मेरे पिताजी दिन मे कई वार मुद्रणालय से आकर पूज्य वा को समाचार सुना जाते थे। फिर जूलू लोगो के वारे मे वातचीत चलती थी। वे यहा तक पहुचे, वहा तक पहुचे, ऐसी चर्चाए होती रहती थी।

फीनिक्स का स्थान जूलू लोगो के प्रदेश के मध्य में था। फीनिक्स-वासी भारतीयो को अपने विरुद्ध गोरो की सहायता करते देखकर जूलू लोग तत्काल फीनिक्स पर धावा वोल सकते थे और उसे नष्ट कर सकते थे, परन्तु यह वापूजी की महिमा थी कि गोरो की मदद के लिए जाकर भी वह जूलू लोगो के दुश्मन नही, मित्र ही वने, जूलुओ के सेवक कहलाए और जूलू लोग सदा के लिए फीनिक्स के मित्र वन गए।

उन्ही दिनो हमारे घर मे एक घटना घटी। कुछ दिन तक मेरी काकी वीमार रही और घर मे एक छोटा वालक वढा। उसका नाम केशव-

लाल रखा गया। शुरू-शुरू मे मै उसे काकी का भाई समझता रहा जबकि वह भाई मेरा होता था। उसको अपनी गोद मे लेकर खिलाने में मुझे बडा आनद आता था। अब घर मे रहकर दिन काटना कुछ आसान प्रतीत होने लगा था। दोपहर मे पूज्य बा हमारे घर आती थी, इसलिए स्लेट और पेसिल लेकर अपनी मा के पास बैठे रहने का कष्ट मुझे कम समय भुगतना पडता था।

देवदासकाका और रामदासकाका भी हमारे यहा आने लगे थे। पर थोडी ही देर रुककर वे अपने घर लौट जाते। वे दोनो मुझसे क्रमश डेढ और तीन वर्ष बडे थे, इसलिए उनके खेलो मे मै बराबरी नही कर सकता था।

पूज्य बा के आने के बाद बापूजी भी कुछ दिन फीनिक्स मे रह गए। उनके आने पर रोज सध्या के समय उनके घर पर 'सभा' होती थी। उस 'सभा' मे मेरी माताजी बहुत अच्छे-अच्छे भजन सुनाती थीं। आगे चलकर जो आश्रम की साय-प्रार्थना कहलाई उसका पूर्वरूप यह सभा ही था। फीनिक्स-भर के गोरे-काले सभी लोग उस समय बडे घर पर एकत्र होते थे और मेज-कुरसी पर बैठकर भजन आदि गाते थे। सबके बीच मे बापूजी बैठते थे और उनकी बात सब लोग बडी शाति से सुनते थे।

बापूजी जब फीनिक्स से चले गए तब नित्यप्रति हमारे घर मे तुलसी-रामायण की कथा होने लगी। माता-पिता और काका-काकी चारो इकट्ठे बैठकर चौपाई गाते थे। माताजी और मगनकाका का कठ एक-दूसरे का पूरक होता था और वातावरण माधुर्य से भर जाता था। मै इन मीठे सुरो को सुनता-सुनता अक्सर सो जाया करता था।

: १६ :

मेरी शरारतें

शैतानी प्रकट हो जाने या रगे हाथो पकडे जाने पर मार पडेगी, यह जानते हुए भी मै शैतानी करने से बाज न आता था। वैसे ऊधम और शरारत सभी बच्चे करते है, पर मै अपने घर मे अकेला बालक था, इसलिए शायद मेरी शैतानी और ही प्रकार की थी। साइकिल का पम्प घर मे

चाहे कितनी ऊचाई पर क्यो न धरा हो, मैं ऊपर चढकर उसे उतार लाता और फिर पानी से भरी बाल्टी मे उसे डुबोकर दूर-दूर तक पिचकारिया छोडता। पिताजी के हजामत के सामान मे से उस्तरा निकालकर उससे सफाई के साथ साबुन काटना, सीने की मशीन पर चुपके-चुपके हाथ आजमाना, दिन के समय मोमबत्ती जलाना, पानी की टकी का नल खोलकर फव्वारे छोडना, घर रगने के लिए आय हुए सामान को जहा-तहा प्रयोग मे लाना, इत्यादि, उलट-पलट मैं कम नही करता था।

मगनकाका बगीचे के काम के लिए नया चाकू लाये थे। फलवृक्षो की टहनिया काटने के लिए उसकी बनावट खास ढग की थी। उसकी धार उस्तरे की-सी तेज थी। मैंने चुपचाप वह चाकू उठाया और घर के पीछे बैठकर अपनी स्लेट-पेसिल को नुकीली करने लगा। पत्थर की वह पेसिल तेज चाकू से अच्छी तरह छिलने लगी, पर नोक बनने पर आई तो दाए हाथ का झटका ऐसे जोर का लगा कि बाए हाथ के अगूठे का सारा नाखून कटकर अलग हो गया। अपने ही हाथ से घायल हुआ था, इसलिए मैं जरा भी नही चिल्लाया। मिनटो तक बहते खून को अपने कपडे से बन्द करने की कोशिश मे लगा रहा, पर वह बन्द नही हुआ। मैं अगूठा थामे हुए बैठा रहा। इस बीच मेरी माताजी किसी कारण वहा से निकली। इतना रक्त बहता देखकर वह मुझे घर मे ले आई और घाव पर पट्टी बाध दी। दर्द कम नही था, पर रोऊ तो कैसे ? किसी ने मुझे मारा या डाटा नही, इस बात का ही मुझे कम सतोष नही था।

हमारे आगन मे नहाने और खेती के औजार आदि रखने के लिए एक कच्चा झोपडा बना था। उस झोपडे से सटी हुई कच्ची लकडियो का छोटा-सा मडप था और उस मडप के सहारे मगनकाका ने अगूर की बेल लगाई थी। पहली बार उस बेल मे अगूर फले थे। दक्षिण अफ्रीका मे अगूर बहुत मिलते थे, पर घर के बगीचे के अगूरो का आकर्षण और ही था। छोटे-छोटे गोल-गोल, हरे-हरे दानो के गुच्छे मडप से नीचे की ओर लटकते हुए बहुत ही लुभावने लगते थे। इतने छोटे अगूर खट्टे होते है, इसका मुझे पता था; परन्तु उन खट्टे अगूरो को खाने के लिए मेरा जी ललचा रहा था।

एक दिन मुझे मौका मिल गया। घर मे कोई नही था। पिताजी और काका मुद्रणालय मे थे और माता तथा काकी बडे घर गई थी। दोपहर का समय था। मैं अगूर के मडप के नीचे पहुचा। हाथ तो मेरा इतना ऊचे पहुचनेवाला था नही। बास या लकडी से अगूर का गुच्छा तोडता तो बेल बिगड जाती और काका नाराज होते। आखिर मैंने ऊपर चढकर

सावधानी से एक गुच्छा तोड लेने की ठानी। मडप की लकडिया बहुत पतली थी। फिर भी धीरे-धीरे एक-एक लकडी पकडकर लटकता-फादता मैं मडप की छत तक पहुच गया। फिर आगे बढकर मडप के वीच मे पहुचा और धीरे-धीरे अगूर के उस गुच्छे तक पहुच गया जो मुझे सबसे सुन्दर प्रतीत हो रहा था। जैसे ही हाथ वढाकर उस गुच्छे को तोडने को हुआ कि बिना कुछ आवाज या झटके के घडाम से जमीन पर आ गिरा। अच्छा हुआ कि मुह के बल न गिरकर बिल्कुल चित गिरा। गिरते ही ऊपर को देखा तो वह लकडी दो टुकडे हो गई थी, जिसके ऊपर मैंने अपना सारा वजन डाला था। पतली लकडी तो वह थी ही, वर्षा के पानी से सड भी गई थी। चोट ऐसी आई थी कि अपने-आप उठ-बैठना कठिन मालूम हुआ। कम-से-कम आठ-नौ फुट की ऊचाई से गिरा था। मुश्किल से उठा और धीरे-धीरे चलकर अपन कमरे मे बिछी हुई चारपाई पर चुपचाप जा लेटा। चोट कही फूटी नही थी, खून नही निकला था, परन्तु रीढ और कमर की हड्डिया अन्दर से दुख रही थी। मैं तनकर सीधा बिस्तर पर लेटा रहा। शरीर को आराम मिला और कुछ देर के लिए आख भी लग गई। जब आख खुली तो माताजी सामने खडी थी। मैं उठ बैठा। वह बोली, "आज तो तू बडा सयाना बना हुआ है। बात क्या है? खैर, अच्छा किया जो दोपहर मे थोडी देर लेट गया, दिन-भर खेलते रहना ठीक नही होता।"

जबतक मैं अकेला था, मेरा नटखटपन घर और आगन तक ही सीमित था। पर अब कस्तूरबा स्थायी रूप से फीनिक्स मे आकर बस गई थी। रामदासकाका और देवदासकाका से मेरी दोस्ती बढ चली थी और धीरे-धीरे मैं भी बड़ा हो रहा था। थोडे दिन बाद विली नाम का चौथा लडका भी फीनिक्स मे आया और इस प्रकार वहा हमारी पूरी चौकडी बन गई।

दोपहर के समय जब मगनकाका और दूसरे बडे लोग प्रेस मे जाते थे हम चारो की चौकडी बेखटके फीनिक्स के इस सिरे से लेकर उस सिरे तक दौडती फिरती थी और अनेक प्रकार के 'अव्यापारेषु व्यापार' करती थी।

बापू के घर के पूर्व मे फीनिक्स के पुराने मालिक का एक पुराना बाग था। उसमे अधिकतर पेड पुराने हो चुके थे, इसलिए उसे बडा बाग कहा जाता था। उन बूढे वृक्षो पर भी फल खूब आते थे। उस बाग की रखवाली आनन्दलालकाका के जिम्मे थी। उसमे से एक भी फल कोई ले न जाय,

इसके लिए वे बहुत चौकन्ने रहते थे। हम लोगो को लगता था कि ये जो इतने फल लग रहे है और पके हुए पेड पर लटकते है वे खाने के लिए है या सड़ाने के लिए? यदि आनन्दलालकाका हमारी टोली को बगीचे के निकट देख लेते तो डांट-डपटकर तुरत भगा देते थे। इसलिए उनके पीछे उस बगीचे पर धावा बोलने मे हमे आनन्द आता था। वे बेचारे प्रेस का काम छोडकर भरी दुपहरी मे कई बार बगीचे की देख-भाल के लिए चक्कर काटते, किन्तु हम भी अपना इतजाम पक्का रखते थे। मैं छोटा था, ऊचे पेडो पर चढ़ना मेरे लिए कठिन था, इसलिए चोरी की जगह से दूर खडा रहकर पहरा देने और किसी की आहट पाते ही खबर करने का काम मेरे जिम्मे था। रामदासकाका सबसे बडे थे, इसलिए उन बडे वृक्षो की ऊची डालियो पर चढकर फल गिराने का काम उनका था। देवदासकाका और विली फलो को जमीन पर से बटोरने का काम करते थे। शहतूत का एक महावृक्ष प्राय: ४० फुट ऊचा था और ऐसा ही पपीते का एक पुराना पेड करीब २५ फुट ऊचा था। इन दोनो वृक्षो के फल बहुत मीठे होते थे। रामदासकाका फल गिराकर जबतक नीचे उतरते, तबतक उनके गिराए हुए फलो का मीठे-से-मीठा भाग नीचेवाले उदरस्थ कर चुकते थे। खरी मेहनत करने वाले घाटे मे रहते, किन्तु रामदासकाका कभी झगडा नही करते थे। फल खाते समय यदि हमे दूर से आहट सुनाई देती तो हम पगडडी छोडकर उल्टी दिशा मे पलायन कर जाते और झाड-झखार पार करके बापू के मकान के पीछे स्नानघर मे पहुच जाते थे। वहा हाथ-मुह धोकर साफ-सुथरे हो जाते, जिससे किसी को पता भी न चले कि हमने फल खाये है। फलो की मौज उडाने की तुलना मे चोरी करके भी पकडे न जाने की अपनी चतुराई का हम अधिक आनन्द अनुभव करते थे।

उस बागीचे मे जब सतरों की बहार आती तब एक धावे मे सौ-दो-सौ सतरो को चीर डालना हमारे लिए मामूली बात थी। सतरो के पेडो के पास ही दो-तीन पौधे बहुत ही तीखी मिर्च के थे। उनमे इच-सवा-इच की लाल सुन्दर मिर्चे लगती थी। उन्हे लवगी मिर्च कहते थे। साधारण मिर्च से वे आठ-दस गुनी तेज होती थी। उन्हे मुह मे रखते ही सारा मुह आग-आग हो जाता था और आखो से पानी बहने लगता था। इन मिर्चो को कौन ज्यादा खा सकता है, इस पर हमारे बीच होड लगती थी। फिर हम बहुत-से सतरे तोड लाते थे। सतरा छीलकर अपने हाथ मे रखते थे और लवगी मिर्च मुह मे रखते ही ऊपर से समूचा सतरा मुह मे दबा लेते थे। इस प्रकार एक के बाद एक करके दस-पद्रह मिर्चे और उनसे दुगुने-

तिगुने सतरे खा जाते थे। कौन जीतता था, इसकी तो अब मुझे याद नही है, परन्तु इस होड मे मै कोई खास पीछे नही रहता था।

धीरे-धीरे फीनिक्सवासियो के नये बगीचो मे भी फल लगने लगे। आनन्दलालकाका ने अपने घर के पास काले अगूर बो रखे थे। हरे अगूर तो हमे बहुत मिलते थे, पर काले अगूर हमारे लिए नये थे। अपने बगीचे की सार-सभाल के लिए आनन्दलालकाका ने एक नौकर रखा था, जो उत्तरप्रदेश का था। उसे हम 'भैयाजी' कहते थे। वह हमे देखते ही हाथ मे फावडा या खुर्पी लेकर हमारे पीछे पड जाता था और कभी-कभी हमे उसके हाथ का प्रसाद भी मिल जाता था, फिर भी हम किसी-न-किसी युक्ति से आनन्दलालकाका की द्राक्ष-कुजो तक पहुच ही जाते थे और अगूरो पर हाथ साफ करके उनके पकने की नौबत नही आने देते थे। इसी प्रकार उनके बगीचे के अनन्नास, जो कच्चे होने पर इमली से भी कही ज्यादा खट्टे होते थे, चुनचुनकर चट कर डालते थे।

एक बार मगनकाका ने नहाने के कमरे मे एक टोकरी के अन्दर हमारे बगीचे के दस-पन्द्रह आम पकने के लिए रखे। दक्षिण अफ्रीका मे आम नई चीज थी। फीनिक्स-भर मे शायद यह पहली फसल थी। दूसरे ही दिन शाम तक हमारी टोली ने उस टोकरी मे एक भी आम नही रहने दिया।

फीनिक्स-भर मे हमारी नजर से किसी भी बगीचे के नये फलो, ताजे भुट्टो आदि का बचना कठिन था ही, पर अब हमने एक खेल ऐसा शुरू किया, जिसके कारण बिना बगीचेवाले एक सज्जन भी हमसे तग आ गए। वह मद्रास की ओर के ईसाई थे, जो बिना परिवार के एक छोटी कोठरी मे रहते थे। जब वे अपने काम पर प्रेस मे जाते, तब हम लोग उनकी कोठरी पर पहुचते और किसी-न-किसी तरह उसे खोल लेते। वहा उनके सिगरेट के डिब्बो से चमकीले कागजो और चित्रो पर हाथ साफ करते। फिर उनके अडो के सग्रह को बरबाद कर डालते। वे मासाहारी थे और शिक्षक बनने की बात सोचते थे। हमारा ख्याल था कि उनको नुकसान पहुचाकर हम उन्हे विशुद्ध शाकाहारी बना देगे। फीनिक्स मे अडे आदि मिल नही सकते थे, इसलिए वे बाहर से अडे मगाकर कनस्तर मे रखते थे। मछली के डिब्बे भी मगाकर रखते। बाहर आगन मे एक शिला पडी रहती थी। उसपर जोर से एक-एक अडा पटककर हम उसे फोड देते थे। बारी-बारी से हम सब लडके अडा पटक-पटककर देखते थे कि किसकी पटक की आवाज अच्छी हुई और अडे का पीला रस किसने अधिक

दूर तक फैलाया। इस तरह दर्जनो अडे वर्बाद करने के बाद हम उनके मछली के डिब्बे खेत मे दूर फेक देतें थे।

मास या मछली हमारे लिए अभक्ष्य है, किसी जीव को मारने में पाप लगता है, यह भावना मन मे दृढ थी, इसलिए मैंने किसी जीव को कभी मारा तो नही, परन्तु शिकारियो की देखा-देखी चिडियो को जाल मे फासना, ऊची-ऊची घास मे घुसकर घोसलो को ढूढ निकालना, घोसलो मे रखे हुए रग-विरगे अडो को गिनना, अडे से निकले हुए छोटे बच्चो की चीं-ची सुनना और उन्हे घोसलो से निकालकर डराना, सताना इत्यादि खेलो मे मैं अपना काफी समय व्यतीत करता था। दूसरे बाल-साथी न होते तब भी अकेले-अकेले मैं देखा करता था कि कौन-सी चिडिया ने कहा पर कैसा घोसला बनाया है? उसके अडे कितने और किस रग के है? वह कैसा गाना गाती है? चुपके से उन घोसलो तक पहुच जाने की शिकारी जीवन की कला वैष्णव बालक के लिए दुर्लभ ही मानी जायगी, लेकिन फीनिक्स मे यह मुझे सुलभ हो गई थी।

मेरी शरारते फलो, पक्षियो, उनके अडे-बच्चो तक ही सीमित नही रही। देवदासकाका और छोटे भाई केगू पर भी मैं प्रयोग करने लगा।

हमारे घर से कुछ दूरी पर एक कच्चा कुआ था जो सात-आठ हाथ गहरा होगा। चौमासे के बीत जाने पर उसमे एक बालटी पानी भी मुश्किल से निकलता था। उस कुए की तली का ज्यादा भाग कीचड से भरा रहता था। जो थोडा-सा पानी होता उसे लेने के लिए नीचे तक उतरना पडता था और इसके लिए बास की टूटी-सी सीढी लगी रहती थी। उस सीढी के सहारे नीचे उतरकर हम—रामदासकाका, देवदासकाका और मैं—उस गारे से मिट्टी के खिलौने बनाया करते थे। एक दिन देवदासकाका और मैं कुए को देखने गये और ऊपर से झाककर नीचे के कीचड का परीक्षण करने लगे। नीचे झाकते-झाकते न जाने क्यो मेरे मन मे यह जिज्ञासा जागी कि यदि इसमे कूदा जाय तो चोट आयगी या नही? स्वय यह प्रयोग करने का साहस मुझे नही हुआ। इसलिए झट से मैंने एक कदम पीछे हटकर देवदासकाका को, जो कुए की तली की ओर झाक रहे थे, धक्का दे दिया। देवदासकाका ने बडी फुर्ती से अपना सतुलन सम्हाला और वह सीधे अन्दर कूद पडे। पैरो के बल गिरने से उन्हे चोट तो नही आई, पर कीचड में उनके सारे कपडे सन गए। गिरने से भी ज्यादा गुस्सा उनको कपडो के सन जाने के कारण आया। तुरन्त ही वह सीढी से कुए से बाहर निकल आए और मगनकाका से शिकायत करने के लिए प्रेस की ओर

तिगुने सतरे खा जाते थे। कौन जीतता था, इसकी तो अब मुझे याद नही है, परन्तु इस होड मे मै कोई खास पीछे नही रहता था।

धीरे-धीरे फीनिक्सवासियो के नये बगीचो मे भी फल लगने लगे। आनन्दलालकाका ने अपने घर के पास काले अगूर बो रखे थे। हरे अगूर तो हमे बहुत मिलते थे, पर काले अगूर हमारे लिए नये थे। अपने बगीचे की सार-सभाल के लिए आनन्दलालकाका ने एक नौकर रखा था, जो उत्तरप्रदेश का था। उसे हम 'भैयाजी' कहते थे। वह हमे देखते ही हाथ मे फावडा या खुर्पी लेकर हमारे पीछे पड जाता था और कभी-कभी हमे उसके हाथ का प्रसाद भी मिल जाता था, फिर भी हम किसी-न-किसी युक्ति से आनन्दलालकाका की द्राक्ष-कुजो तक पहुच ही जाते थे और अगूरो पर हाथ साफ करके उनके पकने की नौबत नही आने देते थे। इसी प्रकार उनके बगीचे के अनन्नास, जो कच्चे होने पर इमली से भी कही ज्यादा खट्टे होते थे, चुनचुनकर चट कर डालते थे।

एक बार मगनकाका ने नहाने के कमरे मे एक टोकरी के अन्दर हमारे बगीचे के दस-पन्द्रह आम पकने के लिए रखे। दक्षिण अफ्रीका मे आम नई चीज थी। फीनिक्स-भर मे शायद यह पहली फसल थी। दूसरे ही दिन शाम तक हमारी टोली ने उस टोकरी मे एक भी आम नही रहने दिया।

फीनिक्स-भर मे हमारी नजर से किसी भी बगीचे के नये फलों, ताजे भुट्टो आदि का बचना कठिन था ही, पर अब हमने एक खेल ऐसा शुरू किया, जिसके कारण बिना बगीचेवाले एक सज्जन भी हमसे तग आ गए। वह मद्रास की ओर के ईसाई थे, जो बिना परिवार के एक छोटी कोठरी मे रहते थे। जब वे अपने काम पर प्रेस मे जाते, तब हम लोग उनकी कोठरी पर पहुचते और किसी-न-किसी तरह उसे खोल लेते। वहा उनके सिगरेट के डिब्बो से चमकीले कागजो और चित्रो पर हाथ साफ करते। फिर उनके अडो के सग्रह को बरबाद कर डालते। वे मासाहारी थे और शिक्षक बनने की बात सोचते थे। हमारा ख्याल था कि उनको नुकसान पहुचाकर हम उन्हे विशुद्ध शाकाहारी बना देगे। फीनिक्स मे अडे आदि मिल नही सकते थे, इसलिए वे बाहर से अडे मगाकर कनस्तर मे रखते थे। मछली के डिब्बे भी मगाकर रखते। बाहर आगन मे एक शिला पडी रहती थी। उसपर जोर से एक-एक अडा पटककर हम उसे फोड देते थे। बारी-बारी से हम सब लड़के अडा पटक-पटककर देखते थे कि किसकी पटक की आवाज अच्छी हुई और अडे का पीला रस किसने अधिक

दूर तक फैलाया। इस तरह दर्जनों अडे बर्बाद करने के बाद हम उनके मछली के डिब्बे खेत मे दूर फेक देतें थे।

मास या मछली हमारे लिए अभक्ष्य है, किसी जीव को मारने मे पाप लगता है, यह भावना मन मे दृढ थी, इसलिए मैंने किसी जीव को कभी मारा तो नही, परन्तु शिकारियो की देखा-देखी चिडियो को जाल मे फासना, ऊची-ऊची घास मे घुसकर घोसलो को ढूढ निकालना, घोसलो मे रखे हुए रग-बिरगे अडो को गिनना, अडे से निकले हुए छोटे बच्चो की ची-ची सुनना और उन्हे घोसलो से निकालकर डराना, सताना इत्यादि खेलो मे मै अपना काफी समय व्यतीत करता था। दूसरे बाल-साथी न होते तब भी अकेले-अकेले मैं देखा करता था कि कौन-सी चिडिया ने कहा पर कैसा घोसला बनाया है? उसके अडे कितने और किस रग के है? वह कैसा गाना गाती है? चुपके से उन घोसलो तक पहुच जाने की शिकारी जीवन की कला वैष्णव बालक के लिए दुर्लभ ही मानी जायगी, लेकिन फीनिक्स मे यह मुझे सुलभ हो गई थी।

मेरी शरारते फलो, पक्षियो, उनके अडे-बच्चो तक ही सीमित नही रही। देवदासकाका और छोटे भाई केशू पर भी मैं प्रयोग करने लगा।

हमारे घर से कुछ दूरी पर एक कच्चा कुआ था जो सात-आठ हाथ गहरा होगा। चौमासे के बीत जाने पर उसमे एक बालटी पानी भी मुश्किल से निकलता था। उस कुए की तली का ज्यादा भाग कीचड से भरा रहता था। जो थोडा-सा पानी होता उसे लेने के लिए नीचे तक उतरना पडता था और इसके लिए बास की टूटी-सी सीढी लगी रहती थी। उस सीढी के सहारे नीचे उतरकर हम—रामदासकाका, देवदासकाका और मैं—उस गारे से मिट्टी के खिलौने बनाया करते थे। एक दिन देवदासकाका और मैं कुए को देखने गये और ऊपर से झाककर नीचे के कीचड का परीक्षण करने लगे। नीचे झाकते-झांकते न जाने क्यो मेरे मन मे यह जिज्ञासा जागी कि यदि इसमे कूदा जाय तो चोट आयगी या नही? स्वय यह प्रयोग करने का साहस मुझे नही हुआ। इसलिए झट से मैंने एक कदम पीछे हटकर देवदासकाका को, जो कुए की तली की ओर झाक रहे थे, धक्का दे दिया। देवदासकाका ने बडी फुर्ती से अपना सतुलन सम्हाला और वह सीधे अन्दर कूद पडे। पैरो के बल गिरने से उन्हे चोट तो नही आई, पर कीचड मे उनके सारे कपडे सन गए। गिरने से भी ज्यादा गुस्सा उनको कपडो के सन जाने के कारण आया। तुरन्त ही वह सीढी से कुए से बाहर निकल आए और मगनकाका से शिकायत करने के लिए प्रेस की ओर

दौडे। उनको शिकायत करने से रोकने के लिए मै भी उनके पीछे-पीछे दौडा, परन्तु मै उन्हे रोक नही सका। उस दिन मेरा सद्भाग्य ही था जो मगनकाका ने मुझे पीटा नही। घर होता तो शायद वह मेरी खासी मरम्मत करते; लेकिन प्रेस के सभी लोगो ने मुझे इतना कहा-सुना कि वह मार से भी ज्यादा काम कर गया।

ऐसे ही एक बार अपने छोटे भाई केशू को भी अपनी शरारत का निशाना बनाया। जब मेरी काकी भोजन बनाने जाती थी तब अक्सर मुझे केशू के पालने के पास बिठा जाती थी और उसे देर तक झुलाते रहने का कर्त्तव्य मुझे पूरा करना पडता था। मुझे इस तरह घर मे बधा रहना बहुत अखरता था। परन्तु मुझमे इतना बल नही था कि मै साफ-साफ कह देता—"मै नही झुलाऊगा, मुझे खेलने जाना है।"

सोचते-सोचते एक दिन मुझे इस झझट से छूटने की युक्ति मिल गई। मैने सोचा कि केशू को इतना रुलाया जाय कि वह चुप ही न हो, फिर काकी को उसे लेना ही पडेगा और तब मुझे छुट्टी मिल जायगी।

यह दीवाली के बाद की बात है। फीनिक्स के शुरू के दिनो मे दिवाली के अवसर पर हम लोगो के लिए डरबन से छोटे-छोटे पटाखे मगा दिए जाते थे। उनमे रगीन दियासलाई की डिबिया भी होती थी, जो मुझे बहुत प्रिय थी। मैने अपने पास की डिबिया की एक सीक जलाई, उसका बचा हुआ जलता भाग केशू की छाती पर छुआ दिया और तुरन्त ही सीक को खिडकी से बाहर फेक दिया। केशू चिल्लाकर रोने लगा। काकी दौड कर आई। मुझ से पूछा कि क्या हुआ? पर जवाब कौन देता? काकी ने सारा झूला देखा और उसके आसपास भी देख डाला। अन्त मे जब केशू का कपडा उतारा गया तो उसकी छाती के नीचे जलने का निशान दिखलाई पड़ा। काकी सारी बात समझ गई। जब काका घर आये और उन्हे यह किस्सा मालूम हुआ तो मेरी खूब मरम्मत हुई और अपने छोटे भाई से प्रेम करने का सुबह-शाम कई दिनो तक उपदेश सुनना पडा। उसके बाद कभी मैने अपने छोटे भाई को खिलाने का काम छोडकर खेलने जाने का दुस्साहस नही किया।

फीनिक्स मे हमारे सोने के कमरे मे मोमबत्ती और दियासलाई रखी रहती थी। रात के समय बडे कमरे मे मिट्टी के तेल का लैप होता था और अन्यत्र मोमबत्ती से काम चलता था। मुझे कोई दियासलाई या मोमबत्ती को हाथ नही लगाने देता था। मैने लुकछिपकर मोमबत्ती जलाने का समय खोज लिया। दोपहर के समय जब पिताजी और काका

भोजन के बाद प्रेस चले जाते थे और माताजी और काकी रसोईघर मे भोजन करने बैठती थी तब मै सोने के कमरे मे पहुच जाता था और उसे खिडकी से लगी हुई लकडी की चौखट पर खडा कर देता था। फिर उसकी दीप-शिखा को निहारता था और पिघलते हुए मोम को, जो धीरे-धीरे नीचे को उतरकर विविध आकृतिया बनाता था, देखता रहता था।

यह क्रम नियमपूर्वक बीस-पच्चीस दिनो तक चलता रहा। एक दिन अकस्मात् माताजी उसी समय कमरे मे आ पहुची जब मै मोमबत्ती जलाकर उसकी लौ देखने मे मगन था। माताजी को देखते ही मैंने मोमबत्ती को बुझाने के लिए उस पर हाथ से झपाटा मारा और वह टीन की दीवार और लकडी के खम्भे के बीच लुढक गई। उसकी लपट दृष्टि से ओझल तो हो गई मगर बुझी या नही, यह न मैंने देखा, न माताजी ने ही जाचा। पढना छोड़कर ऐसी हरकत करने के लिए माताजी ने मुझे थोडी-सी डाट बताई और फिर वह रसोईघर मे लौट गईं। मै भी खेलने के लिए निकल गया। इसके बाद १० मिनट भी न बीते होगे कि कमरे मे से धुआ निकलने लगा। मेरी काकी ने यह सबसे पहले देखा और बालटी लेकर वह वहा दौड गईं। देखा तो लकडी का बडा खभा जल उठा था और लपटे छत तक जा पहुची थी। माताजी और पूज्य कस्तूरबा भी वहा तुरन्त पहुच गईं। कोई आदमी तो उस समय आस-पास था नही, इसलिए उन तीनो ने ही उस आग को जैसे-तैसे बुझाया। जली हुई लकडी का वह निशान जब मै भारत लौटा तबतक ज्यो-का-त्यो उस घर मे बना हुआ था और मेरे नटखटपन की याद दिलाया करता था।

इन सब घटनाओ से फीनिक्स-भर मे मेरा नाम 'बन्दर' पड गया था। प्रेस मे जब जाता तो वहा भी मशीनों से उलझकर मै कुछ-न-कुछ उलटा-सीधा कर ही डालता था। इसलिए यन्त्र चलाने वाले लोग मुझसे सतर्क रहा करते थे।

: १७ :

देवदास काका के साहचर्य में

देवदासकाका भी शरारती कम नही थे। परन्तु वे मेरी तरह बदनाम नही हुए। उनके खेलो मे निपुणता अधिक थी, तोड-फोड कम। नए-नए खेलो का आरम्भ देवदासकाका ही करते थे। कभी-कभी रामदासकाका खेल मे शामिल हो जाते थे, कभी अकेले ही खेला करते थे। मुझे जब घर से छुट्टी मिल जाती, मै सीधा देवदासकाका के पास पहुच जाता था और उनका अनुसरण करता था। फुर्ती से पेडो पर चढ जाने, पतग बनाकर उडाने, निशाने पर पत्थर मारने इत्यादि मे मै उनसे बहुत पिछडा हुआ था।

प्रेस के पास जो झरना था उसमे कई जगह इतना गहरा पानी था कि हम डूब सकते थे। अगर कोई बडा आदमी हमे उस गहरे पानी मे नहाते हुए देख लेता तो हमारे कान गर्म होते और हमे बाहर निकलना पडता था। इसलिए हम दोनो प्रेस से दूर, जहा झरना बडे-बडे पेडो की आड मे छिपा था, चले जाया करते थे। वहा कपडे किनारे रखकर हम दोनों ही करीब चार फुट गहरे पानी मे कूद पडते और देर तक तैरने का आनन्द लिया करते थे। थक जाने पर पानी मे लेटे-लेटे ही वृक्ष की झुकी हुई डालियो को पकड लेने की सुविधा थी। पहले-पहल मैने जो थोड़ा तैरना सीखा, वह इस तरह देवदासकाका के ही कारण।

फीनिक्स मे पीने के पानी की दिक्कत थी, इसलिए टीन की ऊची-ऊची टकिया मकान की छत के सहारे लगाकर वर्षा के पानी का सग्रह करना पडता था—यह बात पहले बताई जा चुकी है। हमारे घर के लिए एक टकी का पानी पूरा नही पडता था, इसलिए डरबन से एक दूसरी नई टकी मगवाई गई। फीनिक्स स्टेशन से प्रेस तक गाडी आ सकती थी; परन्तु टीले पर, जहा हमारे मकान थे, वहा तक गाडी का पहुचना सभव नही था। इसलिए नई टकी को प्रेस के पास ही उतार लिया गया। चार-पाच दिन के बाद रविवार की छुट्टी के रोज, फीनिक्स के बड़े-बडे आदमी उस टकी को हमारे घर तक ले आने के लिए इकट्ठे हुए। ऐसा बडा और नया काम जहा हो रहा हो वहा देवदासकाका और मै न पहुचूं यह भला कैसे हो सकता था? सबके पहुचने से आध-पौन घटे पहले हम दोनो वहा जा पहुचे। जमीन पर लेटी हुई वह टकी इतनी ऊची थी कि हम एक-दूसरे के कधे पर चढ़कर भी उसे ऊपर तक नही छू सकते थे। हमने चारो

ओर घूम-घूमकर उसे देखा। फिर उसका ढक्कन खोलकर उसका मुआयना किया। वह एक लम्बे-चौडे कमरे-जैसी मालूम देती थी।

दो-चार बार भीतर-बाहर से देखने के बाद हमे वह पसद आ गई। देवदासकाका ने मुझसे कहा, "चलो, हम इसके भीतर ही बैठ जाय। जब यह लुढकती हुई ऊपर जायगी तब अन्दर-ही-अन्दर लुढकने का बडा मजा आयगा।" मुझे उनकी यह बात जच गई और हम दोनो टकी के भीतर बैठ गए। हमने उसका ढक्कन लगा दिया, ताकि हमे कोई देख न ले। जब हमने बडे लोगो के आने की आहट सुनी तो देवदासकाका ने चुप रहने का इशारा किया और हम दोनो मौन होकर बैठ गए। सूर्यास्त होने में देर नही थी, इसलिए बडे लोग आते ही टकी लुढकाने मे पिल पडे और लुढकाते हुए एक-डेढ फर्लांग का चढाव पार करके हमारे घर तक ले आए। सारे समय हम दोनो अपनी सास थामे हुए टकी के भीतर-ही-भीतर लुढकने का आनन्द लेते रहे। जब टकी ऊपर पहुच गई और उसे खडा करने का मौका आया तब देवदासकाका ने अन्दर से धक्का देकर टकी का ढक्कन गिरा दिया और कूदकर निकल आए। उनके पीछे मैं भी बाहर निकला। देवदासकाका साथ में थे, इसलिए मुझे डर नही था। मुझे पक्का विश्वास था कि उनको न कोई मारेगा, न डाटेगा। फिर भी, मुझे कुछ ऐसा याद है कि दो-तीन बडे व्यक्तियो ने देवदासकाका को घेर लिया था और उनपर प्रश्नो की झडी लगा दी थी। शायद हम दोनो के कान भी जरा-जरा गर्म किये गए थे, परन्तु हमने तो इस नए प्रकार की सवारी में आनन्द ही पाया था। बहुत दिनो तक हमे अपनी इस यात्रा का गौरव महसूस होता रहा।

पहले जहा मुझे अपना अकेलापन अखरता था वहा अब हर समय देवदासकाका का साथ अनुभव करता था। इतना ही नही, मेरे दिल मे उनका नेतृत्व बस गया था। बडो की बातो को, बडो के सदुपदेश को मैं जल्दी से मजर नही कर सकता था, पर देवदासकाका के इशारे भी मुझे शिरोधार्य होते थे। उनसे कभी मेरी 'तू-तू मैं-मैं' हुई हो, ऐसा याद नही पडता। मेरे कारण चाहे उनको कष्ट भुगतना पडा हो, तो भी उस छोटी आयु मे भी किसी दिन उन्होने मुझे कोई कडवी बात नही कही। मैंने भी जानबूझकर कभी उनका अनादर नही किया। उस समय मुझपर उनके जीवन का प्रेरक असर फीनिक्स के किसी भी दूसरे आदमी से ज्यादा पडा। बापूजी के प्रत्यक्ष सपर्क मे मैं तबतक नही आया था। माता-पिता तथा काका का प्रभाव मुझपर बहुत था, परन्तु खुश होकर मैं जिनका अनुकरण करता था, वह मेरे बाल-साथी देवदासकाका ही थे।

देवदासकाका के सग घूमने-फिरने मे उनसे मैने कई खेल सीखे। डर छोडकर साहस से विचरना सीखा। रामदासकाका भी हमारे साथ खेल मे सम्मिलित होते थे, परन्तु मै तो अधिकतर देवदासकाका के पीछे ही चलता था।

फीनिक्स मे एक सात-आठ फुट ऊचा छप्पर तैयार हुआ था। उस पर सीधे खडे होकर कूद पडने का खेल हम महीनो तक खेलते रहे। कुछ ही दिन के अभ्यास के बाद मै उसमे निपुण हो गया था। रामदासकाका, देवदासकाका और मै, तीन मे से कोई भी उस ऊचाई से कूदने मे एक-दूसरे को मात नही दे सकता था।

याद नही पड़ता कि हमारी इस प्रकार की मटरगश्ती बेरोकटोक कितने दिन चली, लेकिन कुछ समय बाद हमारी दिन-भर की इस स्वच्छ-दता पर कुछ-कुछ अकुश लग गया। पहले पूज्य कस्तूरबा हमारे घर पर आकर मेरी माताजी और काकी से ही बाते करती थी, पर अब वह मेरे पिता और मगनकाका से भी बाते करने लगी। और बातों का तो मुझे पता नही, पर बा का एक वाक्य मुझे खूब याद है, जो वह दोहरा-दोहराकर पिताजी से कहा करती थी, "छगनलाल, आ देवा-रामा ने पण हवे कइक शीखवोने !" (छगनलाल, इन देवा-रामा—देवदा स-रामदास—को भी अब कुछ पढ़ाओ न !) बा का कहने का मतलब यह था कि जिस प्रकार घर मे मुझे पढाया जाता था, उसी प्रकार रामदासकाका और देवदासकाका को भी पढ़ाया जाय। बा स्वय पढी-लिखी नही थी और बापूजी फीनिक्स मे नही थे। इसलिए उनको अपने मन की बात मेरे पिताजी के पास ही रखनी पडती थी।

बा की सूचना पर अमल हुआ। सवेरे नहा-धोकर देवदासकाका और रामदासकाका हमारे घर अपने बस्ते के साथ आने लगे। प्रायः दो घटे तक वे माताजी के पास पढते थे। घर की रसोई के लिए साग-सब्जी तैयार करने और चावल आदि से ककड़ बीनने के साथ-साथ मेरी माता-जी पढाने का काम भी करती थी। मै देखता था कि पढ़ाते समय वह कभी ऊचे स्वर से या डाटकर कुछ नही कहती थी। वह सदा "देवदासभाई, रामदासभाई, इस तरह नही, इस तरह"—जैसे मीठे और आदरयुक्त शब्दों का प्रयोग करती थी। जितने समय ये दोनों भाई हमारे यहा रहते थे उसमे एक क्षण भी बरबाद नही होता था। लिखना-पढना और प्रारम्भिक गणित सीखना उनका मुख्य कार्यक्रम था। देवदासकाका गुणाकार आदि बहुत जल्दी सीख जाते थे। गुजराती पाठ्यपुस्तक मे भी उनकी प्रगति

इतनी अच्छी थी कि उनके चले जाने पर माताजी मुझसे कहती, "देख प्रभु, देवदासभाई और रामदासभाई कितने होशियार हैं। तू उनकी तरह तेजी से पढा करे तो फिर डाट क्यो खानी पडे।"

: १८ :

बापूजी की पहली सीख

बापूजी कब-कब फीनिक्स आये, कितने दिन फीनिक्स मे रहे और कब जोहान्सबर्ग लौट गए, इस बात का स्मरण कोशिश करने पर भी नही होता। स्मृति-पटल पर जो बहुत धुधली याद है वह इतनी ही कि कभी-कभी कई महीनो के बाद बापूजी दो-एक दिन के लिए फीनिक्स आ जाते थे। उनकी अनुपस्थिति मे भी उनके सबध मे कुछ-न-कुछ बातचीत फीनिक्स के बडे लोगो मे चलती रहती थी। बडे लोगो की बातो का धीरे-धीरे हम पर भी प्रभाव पडने लगा और हमारे खेलकूद का तरीका भी कुछ-कुछ बदलना शुरू हो गया। निर्माण करने की वृत्ति हमारे चित्त मे पैदा होती गई। प्रत्येक बालक अपने-अपने घर के आगन मे छोटी-छोटी क्यारिया तैयार करने लगा और उसमे मेथी, मूली, मटर आदि बोने लगा। रोज शाम को ऊचा टीला उतरकर झरने से छोटी-छोटी बहगियो मे लाद-कर पानी लाने और अपनी-अपनी क्यारी मे पानी देने का परिश्रम हम उत्साह से करने लगे। जब हमारे नाम की आकृति मे बोई हुई मेथी उग निकलती तब हमारे आनन्द की सीमा न रहती। हमारे लिए खेती के छोटे-छोटे औजार ला दिये गए थे। छोटी-सी कुल्हाडी भी हमे मिली थी। कभी-कभी हम सब अपनी कुल्हाड़िया लेकर जगली पौधों के झुरमुट मे चले जाते थे। वहा मोटे तनवाले पौधो पर हम अपनी कुल्हाडियो की शक्ति आजमाते और लबी, गोल, सुन्दर लकडिया और टहनिया लाकर अच्छी-सी झोपडी खडी करने के खेल खेला करते।

झोपडी का खेल हमे बहुत व्यस्त रखने लगा। अपने हाथ से झोपडी खडी करने के बाद उसमे बैठकर हम खाने-पीने का इतजाम करते थे। अपनी ही बोई हुई क्यारियो मे से मटर, भुट्टे, टमाटर आदि ले आते थे और बाकायदा पक्ति बनाकर उन्हे परोसकर खाते थे। फिर वही बैठकर

कागज के तरह-तरह के खिलौने तैयार करते थे। प्रेस के फालतू कागजो मे से हमे रगीन और बडे-बडे कागज मिल जाया करते थे। कागजो को बटोरने मे, उनका सही उपयोग करने मे रामदासकाका निपुण थे। डाक मे आने वाले प्रत्येक लिफाफो को वह इकट्ठा कर लेते थे। पुराने टिकटो को इकट्ठा करने मे बडा परिश्रम किया था। अपने सारे टिकट-सग्रह को रामदासकाका ने हमारी सहायता लेकर गिन डाला। शायद साढे तीन हजार से अधिक टिकट इकट्ठे थे। लम्बे-चौड़े कागजो पर एक ही रग व एक ही कीमत के टिकट बिल्कुल सीध मे लगाये गए थे। इतना बडा सग्रह चार-पाच महीने के अन्दर तैयार हो गया था। इससे अनुमान किया जा सकता है कि जगल मे स्टेशन से दूर रहने पर भी फीनिक्स मे साप्ताहिक पत्र का काम कितना फैला हुआ था और कितनी डाक वहा आती थी।

हमारी बाल-मडली का ऐसा ही सिलसिला चल रहा था कि एक दिन फीनिक्स-भर मे आनन्द की लहर दौड गई। बापूजी आने वाले थे। प्रेस और घर मे विशेष सफाई होने लगी। बडे लोगो के मुख पर एक नया उत्साह झलकने लगा। हम बालको ने भी बापूजी के स्वागत के लिए कुछ आयोजन करने का विचार किया। शायद रामदासकाका के सुझाव पर हमने एक बढिया झोपडी बनाने और बापूजी को दिखाने का निश्चय किया।

हम जगली पेडो से अपनी कलाई के बराबर मोटी लकडिया काट लाये। हममे सबसे ऊचे रामदासकाका थे। हमने इतने ऊचे खभे गाडे कि उनपर बनी छत से उनका सिर न टकराये और फैलकर सोया जा सके। शीघ्र ही हमारी यह लबी-चौडी झोपडी बन गई। ऊपर घास और पत्तो से छप्पर छा लिया गया। धरती पर गोबर से लिपाई करने की बात हमे सूझ ही नही सकती थी, क्योकि वहा लिपाई हमने कभी नही देखी थी। सोच-विचारकर हम लोग प्रेस से बडे-बडे कागज ले आये और उन्हे बिछाकर सुन्दर फर्श बना दिया। फिर कागज के छोटे-छोटे फानूस तैयार करके उनमे मोमबत्तिया जलाई और हमारे उस छोटे-से घर मे दिवाली-सी जगमगा उठी, परन्तु बापूजी को हम वह नही दिखा पाये, क्योकि वह रात को बहुत देर से आये, तबतक हम सो चुके थे।

दूसरे दिन सवेरे जल्दी उठकर, चटपट नहा-धोकर और साफ कपडे पहनकर मै बापूजी के घर पर जा पहुचा। उस समय वह बरामदे के किनारे बैठे हुए दतौन कर रहे थे। दो-एक बडे आदमी जो वहा पर खडे थे उनसे उनकी बातचीत चल रही थी। मेरे-जैसे बालक का वहा जाना उनकी जरूरी बातो मे बाधा-रूप हो सकता था, परन्तु मुझे किसी ने रोका

नही, इसलिए बापूजी के चरण छूकर मैं उनके बिल्कुल पास आकर खडा रहा।

बापूजी के पास खडे-खडे मेरा ध्यान सबसे पहले उनके सुनहले दांतो पर गया। उनकी बत्तीसी मे नीचे के दो दात सुनहले थे। हसने-बोलने पर उनकी चमक बडी अच्छी मालूम होती थी। बाद मे देवदासकाका ने बताया कि वे दात सोने के नही, 'प्लेटिनम' के थे। 'प्लेटिनम' सोने से सख्त और महगी धातु होती है। उन दातो को देखकर और उनकी विशेषता सुनकर मेरे मन पर बापूजी के बहुत बडे आदमी होने की छाप गहरी हो गई। मेरे पिताजी और काका के काका होने के नाते मेरे लिए वह बडे तो थे ही, परन्तु उनके चमकीले सुनहले दातो का प्रभाव मुझ पर अधिक पडा। फिर मेरे लिए कुछ नया अनुभव भी था कि इतने बडे होने पर भी वह हसते है और हमारे घर के और फीनिक्स के बडे लोगो की तुलना मे वह सब से ज्यादा और बराबर हसते है।

दतौन समाप्त होते-होते और भी बच्चे वहा आ गए और बापूजी ने बडो के साथ बात करना छोडकर हमसे खेलना शुरू किया। वह बारी-बारी से हमको अपने कधे पर उठाकर बरामदे के पासवाली ढलवा हरियाली पर लुढकाने लगे। हम फिर-फिर दौडकर उनके कधे पर चढते और वह फिर-फिर हमे लुढका देते। कोई आधे घटे तक यह आनन्द तथा कोलाहलमय खेल चलता रहा।

पहर-भर दिन चढा तब बापूजी हम लोगो को लेकर फीनिक्सवासियों के घरो मे चक्कर लगाने और सबके कुशल समाचार पूछने निकले। उस समय वह जालीदार कपड़े की आधी बाह की सफेद कमीज और सफेद पतलून पहने थे।

हम बापूजी के पीछे-पीछे चल रहे थे। जब उनकी जालीदार कमीज देखने से फुरसत मिली तो मैने देखा कि रामदासकाका हमारी टोली मे नहा है। इसलिए मै ने जोर से पुकारा, "लामदाश काका! ओ लामदाश काका!" बापूजी ने तुरन्त मुझे टोककर कहा, "'लामदाश' क्या कह रहा है? 'रामदास' बोल!" मै फिर से बोला, "लामदाश।" तब बापूजी ने सब बच्चो से कहा, "बोलो, बच्चो हिप-हिप हुर्र्र्रे!" सब मिलकर ऊची आवाज से बोले, "हिप-हिप हुर्र्र्रे!" बापूजी ने हमसे फिर इसे दुहराने को कहा। फीनिक्स की दिशाए गूज उठी। पाच-सात बार सब मिलकर बोल चुके तब उन्होने मुझसे "हुरर्र्र्रे" बुलवाया। ठीक-ठीक बोल देने पर उन्होने मुझसे कहा, "बोल, हुर्र्र्रे रामदासकाका।"

मे बोला, "हुर्र्र्रे रामदासकाका।" चलते-चलते बापूजी ने मुझसे बार-बार यह उच्चारण करवाया, और जब मेरा 'ल' मिटकर शुद्ध 'र' बन गया तब जाकर "हुर्र्र्रे रामदासकाका" कहने की झझट से मुझे मुक्ति मिली। 'ल' से 'र'—यह बापूजी से मिला हुआ मेरा पहला पाठ था। उस दिन से लेकर अन्तिम समय तक जो असख्य पाठ बापूजी ने मुझे पढ़ाये वे उतने ही वात्सल्य से परिपूर्ण थे।

इस समय मेरी आयु छः वर्ष की थी।

दूसरी बार जब बापूजी फीनिक्स आये तब मेरे वदन पर बहुत से फोडे निकल आये थे। मै उनके पास खेलने गया, तो उन्होने इन फोडो को देखा और हमारे घर पर आये। मेरी माताजी से कुछ बातचीत करके उनको बता गए कि मुझे टमाटर खिलाया जाय।

इसके बाद बापूजी ने मुझसे पूछा, "क्यो, तू टमाटर खायगा?"

"खाऊगा।"

"तो देख, पके हुए लाल-लाल टमाटर मत खाना। हरे, कच्चे टमाटर खाना। खाने मे कुछ कड़वे तो लगेगे, परन्तु उनसे रक्त की शुद्धि जल्दी होगी।"

मैने हरे टमाटर खाना आरम्भ कर दिया। खाने मे वह अच्छे नही लगते थे, परन्तु बापूजी ने दवाई के रूप मे खाने को कहा था, इसलिए मन मारकर भी उन्हे खाता था और अपने साथियो के सामने अपनी शान मे बट्टा नही लगने देता था।

उन दिनो बापूजी खाने और खिलाने के शौकीन थे। वह आते तो इतवार की छुट्टी के दिन सारा फीनिक्स एक पक्ति मे बैठकर भोजन करता था। कई प्रकार के बढिया-बढिया पक्वान्न बनते थे। किसी दिन सब लोग बापूजी के घर पर भोजन करते तो किसी दिन हमारे घर पर सबकी दावत होती थी। गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक मे प्रचलित 'पूरनपोली' या 'वेडमी' बापूजी को अन्य मिष्ठान्नो से अधिक प्रिय थी। पूरनपोली के साथ घी अत्यधिक मात्रा मे खाया जाता है। नमकीन चीजो मे उन्हे पकौडी, पकौड़े, मद्रासी इडली-जैसा गुजराती ढोकला पसद थे। जब कभी बापूजी हमारे घर पर भोजन करते तब नमकीन, मिठाई आदि की तैयारी करने मे बा और काकी को काफी परिश्रम उठाना पडता। इसी प्रकार प्रत्येक शुक्रवार की रात भी मेरी स्मृति मे विशेष रूप से रह गई है। साप्ताहिक 'इडियन ओपीनियन' को तैयार करने की वह रात होती थी। कभी-कभी सारी रात रतजगा करना पडता था। बापूजी कभी सबके साथ जागते

थे और खडे-खडे रात-भर काम करते थे। ऐसे अवसर पर काम करने वालो की थकान दूर करने तथा उनका उत्साह बनाये रखने को आधी रात के समय सबके लिए बापूजी खीर बनवाते थे और सहभोज करते थे।

लेकिन इन दावतो तथा बढिया-बढिया पक्वान्नो का सिलसिला शुरू-शुरू मे ही रहा। आगे चलकर जब बापूजी ने अपने जीवन मे भारी परिवर्तन का आरम्भ किया तब ये दावते बन्द हो गई। हमारे घर मे बहुत तेज मसालेवाली और मिर्चवाली शाक-सब्जी तथा पकौडी आदि खाना मगनकाका ने बन्द कर दिया और भोजन मे थोडी-सी भी त्रुटि होने पर उग्र बन जाने वाले मगनकाका अब प्राय सौम्य बन गए। घर मे जो अग्रेजी रहन-सहन धीरे-धीरे बढ रहा था वह भी रुक गया। भोजन के समय मेज पर छुरी-काटे से ही भोजन करने की शान घट गई। रविवार को घर मे स्वाद की अनेक वस्तुए बनाने के बदले सादा भोजन लेकर घर से बाहर कही अमराई या अन्य सुन्दर स्थान पर वनभोज का सात्विक आनन्द लेने का प्रचलन बढा।

इस प्रकार फीनिक्स के जीवन मे महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगे।

: १६ :

पारिवारिक छात्रावास

बापूजी फीनिक्स मे अपनी पूर्ण युवावस्था मे थे और अकेले उनके ही बल पर उस सुदूर देश का वातावरण अनेकविध प्रवृत्तियो से गूज उठा था। शीतकाल मे जिन प्रदेशो मे बर्फ पडती है वहा कुछ वृक्ष ऐसे होते है जो हिमस्नान के तुरन्त बाद ही फूल उठते है।

बापूजी की शक्तिया भी फीनिक्स मे इसी प्रकार खिल उठी थी और उन्होने हर पहलू मे अपने जीवन की सात्विकता प्रस्फुटित कर दी थी। मानवदौर्बल्य तो उनको छू तक नही सकता था। वैयक्तिक, सामाजिक, राजकीय, पारिवारिक—सभी क्षेत्रो मे उन्होने उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण अनुष्ठानो का सूत्रपात कर दिया था। एक ओर उन्होने जीवन-भर के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया था और दूसरी ओर सत्याग्रह का बीडा उठाया था। अपने निकट के नौजवानो की सारी युवावस्था धनसग्रह करने

उनके साथ ही हम लोग सीखे। न जाने क्यो, उस समय हम हिन्दी को कलकतिया बोली के नाम से पहचानते थे। इसका कारण शायद यह रहा होगा कि उत्तरप्रदेश, बिहार आदि से गिरमिट मे बधकर दक्षिण अफ्रीका जाने वाले मजदूरो की समुद्र-यात्रा कलकत्ते से हुआ करती थी, इसलिए उन सबको और उनकी बोली को 'कलकतिया' कहा जाता था।

ये दूसरे बच्चे हमसे डरने के कारण या हिन्दी और गुजराती की बोली के अन्तर के कारण हमसे कुछ अलग-अलग थे। पढने के समय आकर अलग बैठ जाते और पढाई खत्म होने पर आपस मे बातचीत करते हुए लौट जाते थे। उनके पुराने, बिना चमक-दमक के कपडो के कारण उनका अनादर न करने और यथासभव उनकी सहायता करने की भावना हमारे दिल मे जागृत हो गई थी; क्योकि जब पिताजी और मगनकाका आदि हमे पढाते थे तो वे हमारी बात सुनने के पहले उनकी बात सुनते थे। उन्हे समझाने मे भी वे अधिक समय लगाते थे। बच्चे दबकर, धीरे से प्रश्न का उत्तर देते तो उन्हे निस्सकोच होकर जोर से बोलने और शर्मिन्दा न होने के लिए बढावा दिया जाता था। मगनकाका तो उनके किसान-जीवन की, उनके परिश्रम करने की शक्ति की और सादे रहन-सहन की बार-बार हमारे सामने प्रशसा करते थे और उनसे सरलता व सादगी सीखने की शिक्षा भी देते रहते थे। मेरे मन पर इस बात का गहरा असर पडता था और क्लास से छूटने के बाद जब कलकतिया लडके अपने घर को लौटते तब मै भी उनके साथ-साथ थोडी दूर तक जाता और आपस में उनका भाईचारा देखा करता था। दोस्ती करने के लिए उनसे बात करने की कोशिश भी करता था, परन्तु कभी खुलकर वे मिले ही नही। शायद उनके चित्त मे यह भय जम गया था कि उजले घर के ये बालक हमारा मजाक उडायगे।

वे कुछ महीने ही पढने आये। फिर न मालूम क्या हुआ, उन्होने आना बन्द कर दिया। बाद मे उधर का कोई लडका हमारे साथ पढने नही आया। समय बीतने पर धीरे-धीरे हमारी शिक्षा काफी आगे बढी और पाठशाला का भी विकास हुआ, पर अडोस-पडोस के विद्यार्थियो और लोगो से हमारी घनिष्ठता नही बढी।

फीनिक्स की इस सर्वप्रथम शाला मे स्वय बापूजी ने एक भी दिन वर्ग लिया हो, ऐसा मुझे स्मरण नही है, परन्तु जब कभी वह फीनिक्स आते तब पाठशाला देखने अवश्य आते थे। वह बच्चो की पढाई इतनी नही देखते थे जितनी कि सफाई। एक बार उन्होने मेरे कान मे मैल देख

लिया और नहाते समय कान मे भी मैल न रहने देने के लिए मुझे समझाया। इसके वाद, पाठशाला जाने से पहले मुझे अपनी माताजी को दिखाना पडता था कि शरीर पर कही मैल तो नही है। कई वार तो स्वय पिताजी मेरे पैरो का मैल धोते और मेरे नाखून काट देते थे।

पाठशाला मे हमारी पढाई व्यवस्थित रूप से शुरू होने के कुछ दिन वाद फीनिक्स के वातावरण मे अकस्मात् गम्भीरता आ गई। मैने देखा कि घर के वडो के मुख पर उदासी छा गई है। कुछ समय तक मेरी समझ मे इसका कारण नही आया। फिर वडो की वातचीत से मुझे ज्ञात हुआ कि "मोहनदासकाका किसी सकट मे है।" वाद मे यह सुना कि वोथा नामक किसी गोरे ने वापूजी, हरिलालकाका और दूसरो को भी कैदखाने मे डाल दिया है। वहा पर उन लोगो को खाने के लिए केवल मक्की का वना दलिया ही मिलता है, जो उन्हे लकडी के चम्चम से खाना पडता है। पहनने के लिए उनको पूरे कपडे भी नही मिलते।

इस समाचार के वाद कई महीनो तक जव वापूजी फीनिक्स नही आये तव इस वात का अनुमान हुआ कि हम लोगो की परिस्थिति इन गोरो के वीच कैसी विकट है। वोथा की जेल से निकलने के वाद वापूजी को राजनीति के कामकाज मे और भी ज्यादा उलझना पडा। फिर भी फीनिक्स के शिक्षण के प्रयोग को आगे वढाने का उन्होने आग्रह रखा और वहा वाहर के छात्रो को रखने की योजना वनाई।

यद्यपि फीनिक्स के उस छात्रावास का प्रयोग अल्पजीवी सावित हुआ तथापि फीनिक्स की पाठशाला धीरे-धीरे वढती गई। जहा तक मुझे याद है, उस पाठशाला का वाह्य स्वरूप तीन महीने से अधिक शायद ही कभी एक-सा रहा हो। समय-समय पर पाठ्यक्रम, पाठ्य-पुस्तको और शिक्षको मे परिवर्तन होता रहता था। परन्तु पाठशाला सतत चलती रही। श्री कोर्डिस के फीनिक्स छोडने के समय तक वह उनके ही मकान मे थी।

हमारे छात्रावास की स्थापना के सम्बन्ध मे सन् १९०९ की २ जनवरी के 'इडियन ओपीनियन' मे फीनिक्स की पाठशाला के सम्बन्ध मे एक सूचना प्रकाशित की गई थी। ता० ९-१-१९०९ को छात्रावास के वारे मे विशेष सूचना छपी थी, जिसका महत्वपूर्ण अश यह है :

"फीनिक्स के कार्यकर्त्ताओं में जो परिवार वाले हैं वे अपने घर में आठ-आठ लड़कों तक के रहने-खाने की व्यवस्था कर सकेंगे। विचार यह है कि जिसे अपने यहां रखा जाय उसे अपने निजी बालक के समान ही सम्हाला जाय। यह प्रथा हिन्दुस्तान में पुराने समय में चलती थी। जहां तक बन पड़े

उसको फिर से शुरू किया जाय। हर प्रकार के हिन्दुस्तानी को लिया जायगा।

"खाने-पीने में किसी भी प्रकार का भेद नहीं किया जायगा। लड़कों को कुछ परिवर्तन के साथ वही भोजन दिया जायगा जो फीनिक्सवासी लेते हैं। अर्थात् आधी बोतल दूध, दो औंस (एक छटांक) घी, आटा, मीलीं मील (पुपु) अर्थात् मक्का का दलिया, दाल, चावल, हरी सब्जी, ताजे फल, मोंगी (प्रधानतया मूंगफली) खांड और डबल रोटी। इसमें से कौन-सा भोजन किस समय दिया जाय, यह हमारे सामान्य नियम के अनुसार निश्चित किया जायगा।

"इस भोजन में चाय, कॉफी या कोको का समावेश नहीं किया जायगा। अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर हमारा विश्वास है कि चाय आदि बच्चों को तो हानिकारी है ही, बड़ी आयुवालों को भी हानिकारी है।

"कुछ डाक्टरों का कहना है कि चाय आदि के प्रचार से लोगों में रोगों की वृद्धि हुई है। फिर चाय, कोको और कॉफी साधारणतया गुलामी से काम करने वाले मजदूरों द्वारा पैदा कराई जाती है। नेटाल में गिरमिटियो से इनकी खेती कराई जाती है। कोको कांगों में होता है। वहां गिरमिट में बंधे हुए हब्शियों से काम लेने में जो जुल्म किया जाता है उसकी कोई हद नहीं है। चीनी प्रायः गुलाम मजदूरो से ही पैदा कराई जाती है। यह हम लोगों को सुविदित है। इन सब बातों को गहराई से जांचना कठिन है, फिर भी उक्त तीन चीजो—चाय, कॉफी, कोको—का उपयोग जितना कम किया जाय, अच्छा। फिर आज, जबकि हिन्दुस्तान में स्वदेशी का आग्रह जोरों से किया जा रहा है, इन तीनो चीजों का त्याग उचित ही है।

"लड़कों का पहनावा एक-सा रखना सुविधाजनक होगा। पायजामा, कुर्ता, नेकर, सेंडल, धूपटोपी, तौलिया, रुमाल आदि का हिसाब एक पौंड तेरह शिलिंग छः पेन्स लगाया गया है। टोपी सब अपने-अपने समाज की पहनेंगे। धूपटोपी धूप में काम करते समय पहनी जायगी। जो मां-बाप यह पोशाक पहनना या इतना खर्च करना न चाहें अथवा इतनी सादगी सिखाना पसन्द न करें, वे एक अलग सन्दूक में अपने घर के कपड़े दे दें।

"सोने के लिए खाट देने का हमारा इरादा नहीं है, किन्तु जेल की तरह के तख्त का प्रबन्ध करने का विचार किया गया है, क्योंकि हमारी राय में वे अधिक आरोग्यप्रद होते हैं। रजाई-गद्दों के बदले कम्बलों का प्रयोग भी हमें अधिक आरोग्यप्रद प्रतीत हुआ है। इस प्रकार बिस्तर में तीन कम्बल, एक तकिया, चार चादर और तकिए के तीन गिलाफ अवश्य होंगे।

"पढ़ने का शुल्क नहीं रखा गया है। प्रेस में काम करने वाले ही

पढ़ायेंगे और उनको वहां से आजीविका मिल जाती है। इसके लिए प्रेस ने सम्मति दे दी है। फिलहाल एक समिति बनाई गई है, जो शिक्षा-पद्धति आदि के बारे में विचार करती रहेगी।"

यद्यपि 'इडियन ओपीनियन' के इस लेख मे बापूजी के हस्ताक्षर नही है, फिर भी लिखावट से स्पष्ट है कि यह स्वय उनका ही लिखा हुआ है। यह लेख गुजराती मे है।

: २० :

शिक्षा का नवीन प्रयोग

बापूजी ने फीनिक्स मे पहले-पहल जो पाठशाला प्रारम्भ की उसमे उन्होने परीक्षाओ का या दूसरी-तीसरी-चौथी आदि श्रेणियो का नाम तक नही रखा था। यही नही, फीनिक्स की पाठशाला के लिए कोई विशेष शिक्षक भी नही बुलाया गया था। बरसो तक फीनिक्स की पाठशाला चली, परन्तु वहा पर एक भी व्यक्ति ऐसा नही बुलाया गया जिस पर शिक्षक की छाप लगी हो, अर्थात् जो पेशेवर शिक्षक रहा हो, क्योकि बापूजी ने हमारी पढाई की सारी नीव ही और ढग से रखी थी।

पढाई की पुस्तके कौनसी हो, पाठ्यक्रम क्या हो, या पढाई की कसौटी क्या हो, इस सबध मे बापू ने न कोई आदेश दिया न कोई विशेष आग्रह रखा। बालको को पढाने वाले व्यक्ति सुयोग्य हो और विद्यार्थी पर अच्छा प्रभाव डालने वाले हो, इस बात की सावधानी बापूजी ने रखी और यह काम फीनिक्स मे बसे हुए कार्यकर्ताओ को ही उन्होने सौंपा।

बापूजी के प्रेम-भरे परिचयो के कारण यह फीनिक्स को सुयोग प्राप्त हुआ था कि वहा पर अनेक देश और अनेक धर्म के लोग आ इकट्ठे हुए थे। जर्मन, अग्रेज, अफ्रीकी, चीनी, ईसाई, पारसी, मुसलमान, यहूदी तथा वैष्णव, सबका पचमेल फीनिक्स मे माधुर्य से और हार्दिकता से चल रहा था। परस्पर घृणा, ऊच-नीच का भेद, या पग-पग पर कटुता का वहा अस्तित्व नहीं था। उस समय के अपने बालपन के दिन याद करने पर मै यही अनुभव करता हू कि मुझे एक विशाल परिवार मे और सुन्दर सुरक्षित वातावरण मे दिन-रात विचरने का अवसर मिला था। मेरे लिए पिताजी

और मगनकाका-जैसे आदरणीय और माननीय थे, उसी प्रकार हमारी पाठशाला के जर्मन शिक्षक कोर्डिस भी आदरणीय और माननीय थे।

बापूजी ने अपने जीवन मे एक-से-एक बढकर आश्रम और विद्यालय बनाये तथा सचालित किये, किन्तु उन सबमे कोर्डिस-शाला अपने ढग की निराली थी। वहा के चेतनमय वातावरण की स्मृति आज भी मुझमे स्फूर्ति पैदा करती है।

श्री कोर्डिस का घर फीनिक्स मे मिट्टी से बना हुआ और घास से छाया हुआ पहला घर था। उसके चारों ओर मनोहर बगीचा था। कभी-कभी वह एक हब्शी नौकर रख लेते थे, पर अधिकतर काम स्वय ही करते थे। इतने बडे मकान मे अकेले रहने पर भी वह उसे आइने के समान स्वच्छ और पूर्णतया व्यवस्थित रखते थे। उनकी नस-नस मे जर्मन खून दौड रहा था। इसलिए नजाकत तो वे सहन कर ही नही सकते थे। हम लोगो के शरीर चपल बने और हमारी तितिक्षा-शक्ति बढे, इसके लिए वह सदैव जाग्रत रहते थे।

श्री कोर्डिस के पढाने का ढग भी अनोखा था। मुह से बोलकर समझाना मानो उन्हे पसन्द ही नही था। जोर-जोर से अपनी बात दुहराकर, विद्यार्थी के दिमाग मे घुसेड देने का प्रयास करते हुए मैंने उन्हे कभी नही देखा। न किसी अन्य यूरोपवासी शिक्षक को ही ऐसे चीखते हुआ पाया। वह अपने आग्रह को प्रकट करके प्रत्यक्ष अनुभव कराकर शिक्षा देते थे। उदाहरणार्थ, सुलेख सिखाने के लिए दो फुट लम्बी और लगभग आधा इच व्यास की पेन्सिले उन्होने हमारे लिए मगाई थी। लिखते समय उस पेन्सिल का ऊपर का सिरा हमे अपने दाए कधे की सीध मे रखना पडता था और नीचेवाला सिरा पकडने मे अगूठे को और तर्जनी को बिलकुल सीधा रखना पडता था। यदि लिखते-लिखते अगूठे या तर्जनी की जरा भी गोलाकृति हो जाती या हम अगुली पर ज्यादा दबाव दे देते, अथवा ऊपरवाला सिरा दाए कधे की सीध को छोड देता तो कोर्डिस साहब चुपके से हमारी पीठ के पीछे आ धमकते और पेन्सिल को छीनकर उससे हमारी अगुलियो के जोडो पर दो-चार तडातड़ वार कर देते थे। उनकी दृष्टि हमारे भले-बुरे अक्षरो पर उतनी नही रहती थी जितनी कि हमारे लिखने, बैठने और पेन्सिल पकडने के तरीके पर।

उनकी पाठशाला में प्रत्येक विद्यार्थी को अनुशासन का पालन बडी सावधानी से करना पडता था। पाठशाला की समाप्ति पर वह हमे एक कतार मे खडा करके व्यायाम कराते थे। किसी की एडियो के बीच का

कोण थोडा-सा भी वदल जाय या घुटना जरा भी झुक जाय तो उसकी आफत आ जाती थी।

कोर्डिस साहव का इशारा होते ही उनके वताए हुए पेड पर हमे बन्दर की-सी तेजी से चढ जाना पडता था और पेड से उतरते समय जहा से वह बताए तत्काल धरती पर कूद पडना होता था। कूदने मे कोई लडका ढील करे और हाथ मे पकडी हुई डाल को आज्ञा पाते ही छोड न दे तो कोर्डिस साहव का मुह क्रोध से लाल हो जाता था। उनकी हुकार सुनकर अपने-आप डाली हाथ से छूट जाती थी।

कोर्डिस साहव के सजा देने के दो तरीके थे। जरा-जरा-सी वात पर वह विद्यार्थी को दीवार की ओर मुह करके खडा होने के लिए मजबूर करते थे।

अनुशासन, व्यवस्था, स्वच्छता आदि पर कोर्डिस साहव जितना जोर देते थे उतना पुस्तको की पढाई पर नही देते थे। रामदासकाका को अग्रेजी सिखाने के लिए उन्होने काफी परिश्रम किया था, परन्तु अधिकतर वह पदार्थ-विज्ञान के ही पाठ विनोदपूर्ण ढग से पढाया करते थे। खरगोश, बिल्ली, कुत्ते, चूहे आदि के आख, पैर, पजे और दूसरे अवयवो मे जो अन्तर होता है, वह समझाते थे। तरह-तरह के प्राणियो के चित्र वताते थे। भौगोलिक चित्रो को सूक्ष्मदर्शक काच से वडा करके दिखाते थे और ऐसे विषयो की सचित्र पोथिया पढाते थे।

मेरे पिताजी को इस तरह की पढाई पसन्द नही थी। उनको यह समय की वरवादी प्रतीत होती थी और उनके वैष्णव मानस को पशु-पक्षियो के शिकारी अवयवो की बाते अग्राह्य थी। परन्तु फीनिक्स मे वह एक ही पाठ-शाला थी, इसलिए वह मुझे वहा भेजने के लिए मजबूर थे।

मगनकाका इस कोर्डिस-शाला मे नियमपूर्वक समय निकालकर आया करते थे और गुजराती तथा गणित पढाते थे। उस समय हम बडी एकाग्रता से उनके पास पढते थे। दिन-भर मे यही घटा हमे पढाई का प्रतीत होता था। अन्य समय मानो शरीर की आदते वनाने मे बीतता था। मेरा अनुमान है कि यदि पूरे चार वर्ष भी कोर्डिस साहव की वह पाठशाला चली होती तो जर्मन स्फूर्ति और कठोर आदते हम लोगो के जीवन मे स्थायी हो जाती।

कोर्डिस साहब के अतिरिक्त दूसरे विदेशी शिक्षको मे, जिनका मुझे स्मरण है, श्री पोलक बहुधा फीनिक्स आते थे। वह जोहान्सवर्ग के कार्यालय मे वापूजी के पास काम करते थे। रस्किन की उस पुस्तक के वह प्रशसक थे ही, जिसके कारण वापूजी की 'सर्वोदय' की कल्पना सुस्पष्ट हुई थी

और फीनिक्स मे डेरा जमाया था। यहा के विकास मे उनको भी दिलचस्पी थी। फीनिक्स की स्थापना व 'इडियन ओपीनियन' के सचालन मे उनका महत्वपूर्ण सहयोग था। बरसो तक 'इडियन ओपीनियन' के अग्रेजी विभाग का सपादन श्री पोलक ने ही किया था। उन्होने अपने लिए भारतीय नाम 'केशवलाल' चुना था। जब वे फीनिक्स आते थे तो कई बार पोलक साहब मुझसे अपनी अगुली पकडवा लिया करते और अग्रेजी मे अनेक प्रश्न पूछा करते थे। मै अग्रेजी नही के बराबर समझता था, इसलिए वह अपना प्रश्न बार-बार छोटा करके पूछते थे और मुझसे उत्तर प्राप्त करते थे। इस प्रकार उन्होने अग्रेजी मे मेरा प्रवेश कराया। वह इतनी धीमी आवाज मे बोलते थे कि अपनी कर्णेद्रिय को मुझे तीक्ष्ण बनाना पडता था। उनका स्वभाव इतना विनोदी और सरल था कि उनके पास जरा भी सकोच का अनुभव नही होता था।

ऐसे ही दूसरे अग्रेज श्री आइज़क थे, जिनके फीनिक्स आने पर सभी बच्चे खुश हो जाते थे। उनका स्वभाव विदूषक का-सा था। प्रात.काल से रात तक वे हसाने की कोई-न-कोई बात हमारे सामने रखते ही रहते थे। सीधी तरह बोलना और बात करना मानो वह जानते ही न थे। कभी कुर्सी पर बैठकर अपने पैर का अगूठा नचाते, कभी मेढक की चाल चलते, कभी चौंककर भाग निकलते और बच्चो की सारी टोली को अपने पीछे दौडाते। जब वह अभिनय के साथ रीछ और बन्दरो की कहानी सुनाते तब मानो वह जानवर ही हमारे सामने उपस्थित हो जाते थे। किन्तु उनके भरपूर हास्यरस मे अवाछनीय बात जरा भी नजर नही आती थी।

फीनिक्स-निवासी भारतीय व्यक्तियो मे श्री सेम ऐसे थे, जो हमे पढाने के लिए पाठशाला मे नही आते थे, फिर भी परोक्ष रूप से वह हमारे शिक्षक ही थे। वह फीनिक्स के मुद्रणालय के इजीनियर थे। यत्रो को सुधारना, साफ रखना, अखबार छापना, पुस्तको की जिल्द बाधना, इत्यादि कार्य श्री सेम के हाथ मे था। अपने काम मे कुशल इतने थे कि काम करते हुए उनके हाथ काले होने पर भी उनके हाथ से कागज या किताब पर धब्बा नही लगता था। यह देखकर हमे बडा आश्चर्य होता था। वह शिकार भी खेला करते थे। ऊचे वृक्ष की शाखा पर जाते हुए साप को वह एक ही बार बन्दूक चलाकर नीचे गिरा देते थे। जब हिरन का शिकार करने जाते तब ऊंची घास मे छिप-छिपकर चलने की उनकी कला देखने मे मुझे बडा आनन्द आता था। शिकारी होने पर भी वह बालकों के बडे प्रेमी थे। हम लोग बगीचो मे चोरी करे या नटखटपन करके प्रेस की कोई

मशीन से छेडखानी करे तो अनेक वार उनकी पैनी नजर हम पर पड जाती थी। परन्तु उन्होने कभी हमे डाटा-डपटा नही, न हमारी शिकायत ही किसी से की, केवल धीरे-से हमे समझा दिया करते थे। उनकी बात हम मान भी लेते थे। वह मद्रासी ईसाई थे और उनका पूरा नाम 'गोविद-स्वामी' था।

श्री क्वीन नाम के एक चीनी सज्जन भी फीनिक्स मे कुछ समय के लिए आये थे। उनके बारे मे मुझे इतना याद है कि उनके पीछे-पीछे हम फीनिक्स के बगीचो मे घूमते थे। उनके विचित्र उच्चारण सुनने मे हमे मजा आता था। उनका वेश और हावभाव हमे अजीब-सा लगता था।

एक थे श्री किचन। वह जहा-तहा बिजली की रोशनी लगाते रहने में उलझे रहते थे। शाम के समय वह बेकार कनस्तरो को खेतो मे ढग से रखकर अपनी पिस्तौल से चादमारी किया करते थे। मुझे ऐसा याद है कि वह बापूजी के मकान मे ही रहते थे और उस घर के निर्माता भी वही थे। श्री पोलक से पहले 'इन्डियन ओपीनियन' के अग्रेजी विभाग का सपादन-कार्य श्री किचन ही करते थे। पता नही क्यो, वह बहुत पहले ही फीनिक्स से चले गए थे और कुछ वर्ष बाद मैंने सुना कि उन्होने आत्महत्या करली।

डरबन से जब दाऊद शेठ, रुस्तमजी शेठ, उमर शेठ आदि फीनिक्स आते थे, तब उनके आतिथ्य के लिए हमे काफी दौड-धूप करनी पडती थी। उनके लिए आवश्यक चीजे दौडकर हमे ही लानी पडती थी। फीनिक्स मे कहा पर कौन-सा नया शाक किस पौधे पर है इसकी जानकारी मुझे अधिक रहा करती थी और उनके लिए नई तरकारी लाने का काम करने मे मुझे उनसे खूब शाबाशी मिलती थी।

ये अतिथि भी हमारे शिक्षक थे, क्योकि उनके द्वारा फीनिक्स के एकात कोनेमे हमारा सबध शेष दुनिया से थोडा-बहुत जुड़ जाता था।

इस प्रकार यदि बापूजी फीनिक्स मे महीनो तक नही आते थे तो भी उनकी छाया दिन-रात हम पर बनी रहती थी और उनके कारण हमारी उस जगल की पाठशाला मे एक प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय विद्यापीठ का-सा वातावरण कायम रहता था तथा अन्तर्राष्ट्रीय सस्कार हमे जाने-अनजाने मिलते रहते थे।

श्रेणी और वार्षिक परीक्षा का क्रम न होने पर भी फीनिक्स की पाठ-शाला मे पढाई का स्तर 'मैट्रिक्युलेशन' तक पहुचाने का था। परन्तु अनेक शिक्षको के बदलते रहने के कारण यह काम पूरा न हुआ। हमारी पढ़ाई

कुछ ढीली ही रही। जो योजना बनाई गई थी उसकी रूपरेखा ६ जनवरी १९०९ के 'इडियन ओपीनियन' मे इस प्रकार प्रकाशित हुई थी :

"इस पाठशाला के प्रधान उद्देश्य लड़कों के चारित्र्य को विकास करना है। कहा गया है कि सच्चा शिक्षण बच्चे अध्ययन करने पर प्राप्त करते हैं। अर्थात् तब उनमें ज्ञान प्राप्त करने की अभिरुचि पैदा होती है। ज्ञान तो अनेक प्रकार का होता है। कुछ हानिकारक होता है। इसलिए यदि विद्यार्थियों का चारित्र्य सुगठित न किया जाय तो वे विपरीत ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। बिना तरीके के, जो आया सो पढ़ाते रहने के कारण, कई लोग नास्तिक हो जाते है और बहुत पढ़े हुए होने पर भी कई चरित्र-हीन बन जाते हैं। इसलिए लड़कों की नीतिमत्ता सुदृढ़ करने में उन्हें सहायता देना इस पाठशाला का मुख्य उद्देश्य है।

"लड़कों को उनकी स्वभाषा, अर्थात् गुजराती अथवा हिन्दी और शक्यतः तमिल तथा अंग्रेजी का ज्ञान दिया जायगा। अंकगणित, इतिहास, भूगोल, वनस्पति तथा प्रकृति का ज्ञान दिया जायगा। जो लड़के आगे बढ़ पायंगे उन्हे बीजगणित और रेखागणित भी सिखाया जायगा। मैट्रि-क्युलेशन तक तैयारी करा देने की धारणा रखी गई है।

"धर्म-शिक्षण के लिए माता-पिता जिस धर्मगुरु को चाहें, भेज सकते हैं। हिन्दू लड़कों को हिन्दू माता-पिता की इच्छा के अनुसार हिन्दू धर्म के मूल तत्त्व सिखाए जायगे। हिन्दुस्तानी ईसाइयो को ईसाई धर्म के तत्त्व श्री वेस्ट और श्री कोर्डिस थियोसफी के आधार पर सिखायेंगे। मुसलमान लडकों को जुम्मे के दिन डरबन जाने की इजाजत दी जायगी। हमारा विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति की तालीम धर्म की तालीम के बिना व्यर्थ है। इसलिए प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि वह अपने-अपने धर्म का शिक्षण और जिसे सांसारिक ज्ञान बताया जाता है, दोनों ही एक साथ दें। गहराई से विचार करने पर पता चलेगा कि जिसे हम सांसारिक शिक्षण कहते हैं, वह भी धर्म को सुदृढ़ करने की ही तालीम है। हमारा विश्वास है कि इस उद्देश्य से रहित जो शिक्षा दी जाती है वह बहुधा हानिकारक होती है।

"भारत के प्रति बच्चों का प्रेम बढ़ाने और उन्हे स्वदेशाभिमानी बनने में सहायता देने के हेतु से भारत का प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास सिखाया जायगा।

"यह विचार हमारे लोगों को भी सही जंच जाय और जिस ऊंची स्थिति का मैं चित्रण कर रहा हूं, वह हम प्राप्त करें, ऐसी चाह रखोगे तो ईश्वर हमें ऐसा अवसर देगा।"

: २१ :

हमारे संस्कार

फीनिक्स मे पाठशाला और पारिवारिक छात्रावास का जब से श्रीगणेश हुआ, तबसे कुछ ऐसा ही वातावरण वहा उत्पन्न हो गया था कि अन्य विषयो की पढाई मे हम सावधान न भी रहे, धर्म के विषय मे किसी के सामने नीचा न देखना पड़े, इस बात की जागरूकता तथा अभिलाषा हमारे अदर बनी रहती थी।

उस समय जितने बालक पढ रहे थे उनमे हिन्दुओ की सख्या आधे से कम थी। विद्यार्थी अथवा शिक्षक एक-दूसरे के धर्म पर छीटाकशी या वादविवाद नही करते थे। पर अपने-अपने धर्म की अच्छी-अच्छी बाते सुनने-सुनाने का उत्साह उस वातावरण मे था। भारतीय ईसाई अग्रेजी भाषा, अग्रेजी तौर-तरीके और इतवार की सम्मिलित प्रार्थना मे अपना गौरव विशेष रूप से प्रदर्शित करते थे। हिन्दुओ के त्यौहारो का उत्साह छिपता नही था। वे बार-बार आनेवाले त्यौहार मनाने मे अपनी विशेषता अनुभव करते थे। मुसलमान लड़के अपने दीन और कुरान की प्रशसा के गीत गाते हुए नही अघाते थे। लेकिन धर्म की भिन्नता के कारण हमारे बीच कभी अनबन का प्रसग पैदा नही हुआ।

फिर भी अपने बालको की सस्कारिता शुद्ध रहे और वे सगति-दोष के शिकार न बने यह हमारे माता-पिता के लिए चिन्ता का विषय था। बापूजी के जैसी ऊची श्रद्धा को अपनाना उन लोगो के लिए कठिन था, जो सनातन धर्म के परम्परागत भावनाशील अनुयायी थे।

हमारे घर में जो तीन विद्यार्थी थे उनमे दो मुसलमान थे। उनकी देखभाल और सुविधा के लिए हमारे घरवालो को कम परिश्रम नही करना पडता था। कस्तूरबा को बापूजी ने इससे भी कडी कसौटी पर चढाया था। हमारे घर मे सौम्य प्रकृति तथा धनी घराने के गुजराती लडके थे, परन्तु बा के यहा उग्र प्रकृति के ईसाई लडके थे, जो मद्रास की ओर से श्रमिक के रूप मे आकर दक्षिण अफ्रीका मे बसे हुए गिरमिट-मुक्त परिवारो के बालक थे।

मेरे माता-पिता कट्टर वैष्णव परम्परा पालनेवाले थे। अभी तक मैं वह दिन नही भूला हू जब हमारे घर मे बापूजी के मुसलमान मित्रो को आदरपूर्वक भोजन कराने के बाद, मेरी माताजी और काकी उनके उपयोग

मे आए हुए पीतल के बर्तनो को अग्नि में तपाकर ही रसोईघर मे रखती थी। मेरे पिताजी के लिए भी मुसलमानो की पक्ति मे भोजन करना एक विकट समस्या थी। उन्होने अपने-आपको बापूजी के हाथो मे पूर्णतया छोड रखा था, इसलिए वह बापूजी के अनुसार चलने का भरसक प्रयास करते थे और अपने मन की बात मन मे ही रखते थे। परन्तु उनको विधर्मियो के साथ बापूजी की घनिष्ठता विकट समस्यारूप प्रतीत होती थी। पिताजी के मुख से मैने इस सबध मे अधिक नही सुना, क्योकि उन्हे ज्यादा बोलने की आदत नही है। लेकिन उनकी पुरानी डायरी मे कही-कही दो-चार शब्द मिल जाते है, जिनसे उनके मनोमन्थन का पता चलता है। उस समय दक्षिण अफ्रीका मे बापूजी 'भाई' के नाम से प्रसिद्ध थे और पिताजी ने अपनी डायरी मे उनका उल्लेख मोहनदासकाका के साथ-साथ केवल 'भाई' के नाम से भी किया है। डायरी के कुछ उद्धरण इस प्रकार है .

४ जनवरी १९०६ : शाम को ६ बजे हमारी ट्रेन जोहान्सबर्ग स्टेशन पहुच गई। रामा, देवा, मणिलाल, बापू, और श्रीमती पोलक स्टेशन पर मुझे लिवाने आये थे। उनके साथ ७ बजे घर पहुचा। नहाने-धोने के बाद भोजन के लिए सब मेज पर जा बैठे। सारी अग्रेजी रीतिया देखकर अजीब लगा। मन मे अनेक विचार आये—हमारी रीति अच्छी या इनकी, यह निश्चय नही कर पाया। भोजन मे ब्रेड, शाक, दाल-भात आदि वस्तुए थी। भोजन के बाद कोको था। भोजन के आरम्भ होने से पहले 'भाई' ने गीताजी के प्रथम अध्याय के २४ से २७ श्लोक पढे और गुजराती मे उनका अर्थ पढा। दस बजे सो गया। सोने की सुविधा बडी अच्छी थी।

५ जनवरी १९०६ : ५ बजे उठकर साढे ६ बजे स्नान आदि से निवृत्त हो गया। मोहनदासकाका के कहने पर मणिलाल मेरे बूट पालिश करने के लिए ले गया। इसकी मेरे मन पर गहरी छाप पडी, जिसे लिख सकना मेरी शक्ति के बाहर है। सभी लोग बिना कुछ खाये-पिये काम के लिए निकल पडे। मै भाई के साथ उनके दफ्तर तक पैदल गया, जो करीब दो मील की दूरी पर है। रास्ते मे 'इडियन ओपीनियन' साप्ताहिक के सबध मे बातचीत हुई। ठीक साढे नौ बजे भाई ने दफ़्तर मे काम शुरू कर दिया। दफ्तर मे काम करनेवाली कन्या को देखकर मन मे कई विचार आये। दोपहर के समय भाई ने और दफ्तर के सब लोगो ने केले और मूगफली का अल्पाहार किया। उसके बाद प्रेस के खर्च का हिसाब बारीकी से जाचा गया और शाम को साढे पाच बजे भाई के साथ मै घर आया। रात को भोजन के समय अग्रेज मित्र पोलक-दम्पति का खुलकर मिलना-जुलना देखकर विचार मे पड गया।

६ जनवरी १९०६ : भोजन के समय भाई के घर श्री पोलक के विवाह के सिलसिले में कुछ सज्जनो को दावत दी गई थी। अंग्रेज, मुसलमान, हिन्दू, सब थे। भोजन के समय का विनोद मुझे अत्यधिक जान पडा।

७ जनवरी १९०६ : कल के मुकाबले आज चक्की पीसने मे थकावट कम हुई।

११ जनवरी १९०६ स्मिथ, पोलक और श्रीमती पोलक भाई के घर मे ही रहते है और बहुत आजादी का वर्ताव करते है, यह देखकर बहुत विचार आते है।

१२ जनवरी १९०६ . मैंने श्री वीन को और भाई ने श्री वेजरनाजर को 'इडियन ओपीनियन' मे तमिल और हिन्दी विभाग बन्द करने के लिए भेजा।

१४ जनवरी १९०६ : बापूजी के कई पत्र लिखे और उर्दू कायदा सीखना शुरू किया।

२० जनवरी १९०६ . ईसा हाजी शुगरकेन कालोनी की ट्रेन से आये। उनको लिवाने के लिए भाई और उमर शेठ के साथ मै भी गया। दोपहर मे सब मेहमान श्री आइजक, कैलनबैक, ईसा हाजी, उमर शेठ व हाजी हबीब हाजिर थे। पोलक हिन्दुस्तानी पोशाक पहने थे। भोजन मे मै अलग बैठा था।

२७ जनवरी १९०६ : शाम को ६ बजे की गाडी से मैं फीनिक्स से डरबन गया। कनाट के ड्यूक डरबन मे थे। रात को साढे सात बजे भाई जोहान्सबर्ग से आये। सब लोग सीधे काग्रेस-भवन मे गये। ढाई तीन सौ व्यक्तियो तक का सहभोज हुआ। मै हिन्दू मित्रो के साथ बैठा।

१६ मार्च १९०६ : . . . के पत्र से मालूम हुआ कि भाई ने प्रिटोरिया मे मुसलमानो से माफी मागी। पढकर गहरे विचार मे पड गया।

डायरी की इन पक्तियो से अनुभव होता है कि ईसाई, मुसलमान आदि के साथ एक-रूप हो जाना पिताजी के लिए आसान नही था। पर बापूजी की श्रद्धा इस प्रकार की थी कि जहा सामान्य लोग अधेरा और निराशा देखते थे वहा बापूजी को जीवन और प्रगति की झलक दिखलाई पडती थी। जहा औरो को सकट तथा विनाश नजर आता था, वहा बापूजी को सफलता और कल्याण के स्पष्ट दर्शन होते थे। ऐसा न होता तो वह अपने घर के छोटे बच्चो के साथ अन्य धर्मों के बच्चो के रात-दिन रहने की व्यवस्था क्यों करते?

हमारे घर मे जो अन्य तीन धर्मों के बालक थे, उनमे से इब्राहीम का असर मुझपर अधिक पडा। वह पढने मे जैसा चतुर था वैसा ही बोलने मे भी। उसकी स्वच्छता से रहने की आदत भी आकर्षक थी। उसका बात करने का ढग भी बडा लुभावना था।

फीनिक्स-भर मे छोटे-बडे सभी व्यक्ति इब्राहीम की होशियारी की तारीफ किया करते थे। इधर मै अपनी मूढता के लिए बदनाम-सा था और अपने बारे मे ऐसी निन्दा सुन-सुनकर मेरी भावना ऐसी बन गई थी कि जब मै किसी की तारीफ सुनता तो मुझे वह स्वर्ग से उतरा हुआ-सा प्रतीत होता था। उसकी शक्ति एव चातुर्य का मूल किस बात मे है, इसकी खोज मे मै लगा रहता था। फिर जो कुछ समझ मे आता उसकी आजमाइश भी किया करता था।

कई दिनो तक अवलोकन और मनन करते रहने के बाद इब्राहीम के चातुर्य और उसकी समझदारी का मूल मैने खोज निकाला। उसकी नाक की जड मे, जहा चश्मा रखा जाता है, एक चोट का चिह्न था। उसके कारण बात करते समय उसकी नाक की खाल खिचा करती थी और उसकी लम्बी पैनी नाक नाचती हुई दिखलाई पड़ती थी। मुझे यकीन हुआ कि उसकी विशेषता का मूल उसकी नाक का यह चिह्न है। यदि ऐसा ही चिह्न मेरी नाक पर भी हो जाय तो मै भी उसी के बराबर अक्लमन्द और शरीफ माना जाऊगा। बस मै एक कोने मे जा घुसा और वहा पर छिपे-छिपे मैने एक कटोरी की धार से अपनी नाक की खाल छीलना आरम्भ कर दिया। लगातार चार-पाच दिन तक यह उपक्रम जारी रहा। रोज शाम को थोडी-थोडी चमडी घिसकर सवेरे उठते ही शीशे मे अपना मुह देखता कि ठीक इब्राहीम का-जैसा चिह्न नाक पर बना या नही। किन्तु बदकिस्मती से वह निशान भौडा बन गया। नाक मे दर्द काफी रहा, परन्तु अपना चातुर्य बढाने के लोभ-वश मैने उसे बर्दाश्त किया। जब वह घाव भर गया तब दुबारा मैने अपनी नाक की जड छीलकर चिह्न को सुधारने की कोशिश की, पर वह चिह्न सुधरा ही नही। आखिर मैने हार मानी और मन मे सतोष कर लिया कि मेरे नसीब मे बुद्धूपन ही बदा है और इस प्रकार मन को समझा-कर मैने वह प्रयास छोड दिया।

फीनिक्स मे जो गोरे आते थे वे हम पर अपनी श्रेष्ठता की धाक जमाने का प्रयास करते हुए नही मालूम पडते थे। पोलक तथा आइज़क आदि हमारे यहा राज्यकर्त्ता की हैसियत से नही आते थे, किन्तु बापूजी-जैसे व्यक्ति ने अपने कट्टर विरोधियो को प्रेम और कष्ट-सहन के बल से

जीत लेने का जो अनुष्ठान प्रारम्भ किया था, उसको देखने और उसमे सहायता करने के लिए बापूजी के निमत्रण पर आते थे। जबतक वे हमारे साथ रहते थे, अभिन्न होकर रहते थे। बापूजी की भी यह सूचना थी कि उनका स्वागत हृदय से किया जाय, जिससे भारतवर्ष की और भारत-वासियो की प्रतिष्ठा मे वृद्धि हो। इस सूचना का अमल विशेषत: मेरे पिताजी और काका करते थे। वे उनके साथ सारा दिन बिताते थे। उनकी हर प्रकार की आवश्यकता पूरी करने की कोशिश करते थे। इस कारण भी गोरे लोगो की श्रेष्ठता मेरे मन मे बस गई थी। एक मुख्य कारण उनकी भाषा भी थी। मै देखता था कि चारो ओर अग्रेजी भाषा की ही प्रतिष्ठा है। इसलिए वे लोग मुझे अधिक सामर्थ्य वाले प्रतीत होते थे। हर जगह, हर कोने मे सारी बातचीत अग्रेजी मे ही होती थी। प्राय: सभी पुस्तके अग्रेजी मे ही मिलती थी। हम लोगो को जो सुन्दर व सचित्र बालसाहित्य मिलता था वह भी अग्रेजी मे होता था। हसी-खेल की कहानियां अग्रेजी मे ही मिलती थी। 'चिल्ड्रन्स एनसाइक्लोपीडिया' नाम का सुन्दर मासिक पत्र जब आता था और उसके चित्र, उसकी विज्ञान की बाते तथा चमत्कार-पूर्ण कथाए मगनकाका हमे सुनाते थे, तब अग्रेजी का श्रेष्ठत्व मेरी कच्ची बुद्धि को बहुत ही प्रभावित करता था। उस समय मैने अपने अनुभव से यह महसूस किया था कि जो कोई अग्रेजी समझ और बोल नही पाता, वह पूरा आदमी ही नही है। ऐसे व्यक्ति को अपने चारो ओर का वार्त्ता-लाप तथा विनोद चुपचाप मूढवत सुन लेना पडता था। मेरे मन मे गोरे लोगो के प्रति देवत्व की भावना अकुरित हो गई थी और मुझे अग्रेजी भाषा ही विद्या की साक्षात मूर्त्ति प्रतीत होती थी।

: २२ :

स्वभाषा तथा पर-भाषा

बापूजी के सबसे बडे पुत्र हरिलालकाका मुख्यत. पढाई के उद्देश्य से ही अपने पिता से निराश होकर घर से निकल भागे थे। बुद्धि, दक्षता और कष्ट-सहन मे हरिलालकाका बापू के साथियो से कम शक्तिवाले नही थे, परन्तु बापूजी स्कूल और कालेजो मे दिये जानेवाले शिक्षण के खिलाफ

थे और काका आधुनिक उच्चशिक्षण प्राप्त करना चाहते थे। इसलिए हरिलालकाका-जैसे सवेदनशील व्यक्ति का उनके पास रहना कठिन हो गया। स्वय वापूजी वैरिस्टर थे और इग्लैड जाकर ऊची शिक्षा प्राप्त कर आए थे। इतना ही नही, अपनी उस विद्वत्ता का नित्य के काम-काज मे पूरा-पूरा उपयोग भी कर लेते थे। फिर भी अपने पुत्रो को उस शिक्षा से वचित रखने का उनका दृढ आग्रह था। उस आग्रह की ऊची भूमिका को समझना आसान नही था, फलत हरिलालकाका के लिए आवश्यक हो गया कि वह अपने पिता का आसरा छोडकर अपने-आप ऐसा शिक्षण प्राप्त करे, जिससे ससार मे उनकी गिनती पढे-लिखो मे हो।

फीनिक्स की पाठशाला के श्रीगणेश की जो बाते मैने लिखी है, वे सन् १९०८-९ की है। बापूजी ने हम लोगो को पढाने का जो यह नया उपक्रम किया था, उससे पहले ही हरिलालकाका बापूजी को छोडकर जोहान्सबर्ग से भारत चले आए थे और अहमदाबाद के हाई स्कूल मे मैट्रिक की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

पिताजी के सग्रह मे बापूजी का लिखा एक पुराना लेख मिला है, जो १७ सितम्बर, १९०९ को लन्दन से लिखा गया था। उस समय राजकोट मे गुजराती साहित्य परिषद का तीसरा अधिवेशन होनेवाला था। इस निमित्त से वापूजी ने स्वभाषा के वारे मे यह निवन्ध लिखा था। उसपर से पता चलता है कि बापूजी ने फीनिक्स की पाठशाला मे अग्रेजी की पढाई पर क्यो जोर नही दिया। लेख इस प्रकार है :

"हिन्दुस्तान मे आजकल नई हवा चल रही है, किन्तु हिन्दू, मुसलमान, पारसी सभी 'मेरा देश' या 'हमारा देश' की रट लगा रहे है। इस सम्वन्ध मे हमे फिलहाल राजनैतिक दृष्टि से नही सोचना है। भाषा की दृष्टि से विचार करने पर हमारी समझ मे सीधे यह बात आती है कि 'हमारा देश' की पुकार हम अपने अन्तर से करे, इससे पहले अपनी भाषा का स्वाभिमान हमारे दिल मे पैदा होना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दुस्तान-भर मे छोटे-वडे सभी लोग अपनी-अपनी भाषा के वारे मे ध्यान देने लगे है—यह एक सन्तोष की वात है। ऐसे उद्‌गार भी सुनाई पडते है कि कुछ ऐसा होना चाहिए कि प्रत्येक भारतवासी आपस मे एक भाषा का प्रयोग कर सके। भविष्य मे यह सम्भव भी हो सकता है। यह तो सभी लोग स्वीकार करेगे कि वह भाषा हिन्द की ही होनी चाहिए। लेकिन यह कदम भविष्य मे जोर पकड सकता है। 'मै हिन्दुस्तानी हू' यह गौरव हमारे दिल मे पैदा होना चाहिए और इसी के अन्तर्गत यह गौरव भी उदित होना

चाहिए कि 'मै गुजराती हू।' अगर ऐसा न हुआ तो हम न तेरह के रहेगे, न त्रेपन के; न हम घर के रहेगे, न घाट के।

"प्रत्येक प्रान्त के अग्रणी दूसरे प्रान्तों की भाषाओ का ज्ञान प्राप्त न करे तो काम नही चलेगा। गुजराती के लिए बगाली, मराठी, तमिल, हिन्दी आदि भाषाए सीखना आसान है, कठिन नही है। जितनी माथापच्ची और जितना प्रयास गलतफहमी मे पडकर हम लोग अग्रेजी भाषा पढने मे करते है, उससे आधा प्रयास भी यदि देश की भाषाओ को सीखने के लिए करे तो देश मे नया वातावरण पैदा हो जायगा और इस तरह बड़ी मात्रा में हिन्दुस्तान का उद्धार हो सकेगा।

"हिन्दुस्तान की शिक्षा के बारे मे लार्ड मेकाले ने जो विचार प्रकट किये है, उन पर मै मोहित था। दूसरे भी बहुत से लोग उनसे मोहित है। लेकिन अब मेरा मोह टूट गया है और मै चाहता हू कि औरो का मोह भी खत्म हो जाय। परन्तु इस पर अधिक चर्चा के लिए यह स्थान नही है। यदि ऊपर की बाते सही है तो यह भी सही है कि गुजराती भाषा के लिए हम अलग विचार कर सकते है। गुजराती लोग आपस मे अग्रेजी मे बातचीत करे तो ऐसा कहे बिना रहा नही जाता कि यह निम्न स्थिति का सूचक है। अग्रेजी के मोह के कारण हमारी मातृभाषा दरिद्र हो गई है। हम स्वय उसका अपमान कर रहे है, इसलिए हम बिल्कुल ही दीन बन जाते है। जब मै अपने विचार गुजराती मे ठीक तरह से प्रकट न कर सकने और अग्रेजी मे कर सकने की स्थिति पर विचार करता हू, तब मेरा सारा शरीर काप उठता है। जिन्होने अपनी भाषा का अनादर किया है वे भला देश का क्या भला कर सकेंगे ? गुजरात की महान प्रजा किसी समय गुजराती को भूलकर दूसरी भाषा को अपनाए, यह स्वप्न मे भी सभव नही हो सकता, और यदि यह सभव नही है तो जो लोग उस भाषा को छोड देते है वे देश के अर्थात् अपनी प्रजा के द्रोही है, यह कहना अत्युक्ति नही होगा।

"यह वाक्य गलत नही है कि 'भाषा मे प्रजा का चित्र प्रतिबिम्बित होता है।' इसीलिए गुजराती, बगाली, उर्दू, मराठी परिषदे होने लगी है। यह बहुत अच्छे भविष्य का द्योतक है। जो भारतवासी स्वदेश से बाहर जाते है, उनको इस सम्बन्ध मे बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। उनपर बहुत बडा उत्तरदायित्व है। यदि वे अपनी भाषा को भूल जायगे तो पाप के भागी होगे।

"कुछ अधिक अग्रेजी पढे हुए लोगो के लेखो मे मैने पढा है और कुछ को कहते हुए सुना है कि वे स्वय गुजराती की अपेक्षा अग्रेजी ज्यादा जानते है।

यह हमारे लिए बडी शर्म की बात है। वास्तव मे जो व्यक्ति अग्रेजी मे लिखते या बोलते है, वे न तो सही अग्रेजी लिख पाते है और न बोल ही पाते है यही स्वाभाविक है। यह सच है कि कुछ विचार हम अग्रेजी मे अधिक स्पष्टता से प्रकट कर सकते है, लेकिन यह भी हमारे लिए शर्म की ही बात है। अग्रेजी व्याकरण और मुहावरे हम भलीभाति जानते है, ऐसा नही कहा जा सकता। जबकि गुजराती व्याकरण और मुहावरे कोई भी भारतीय ठीक तरह से जान सकता है। उसमे भूतकाल के बदले वर्तमान काल का प्रयोग भूलकर भी कोई नही करेगा। हमारे अग्रेजी लिखने मे अग्रेजी पढने वालो की भी ऐसी भूले बहुत ज्यादा नजर आती है। मुहावरे के दोषो का तो कोई अन्त ही नही है। गुजराती मे हम सही उच्चारण न करे, ठीक तरह से सयुक्ताक्षर न बोले, यह सम्भव है, लेकिन इस कारण हम गुजराती कम जानते है यह कहना गलत होगा। उच्चारण की भूले भी सहज दूर की जा सकती है।

"ऐसी दलीले सुनी जाती है कि जो विद्यार्थी अग्रेजी पढना चाहते है उनको अग्रेजी बोलने का अभ्यास करना ही चाहिए। क्या यह भ्रम नही है ? जब गुजराती इकट्ठे हो तब यदि वे गुजराती मे बोलेगे तो अग्रेजी के ज्ञान मे कमी नही आयेगी, बल्कि वृद्धि ही होगी; क्योकि ऐसा करने पर, हमारे सुनने मे केवल अग्रेजो की ही अग्रेजी आयगी और हमारे कानो की शक्ति तीव्र होकर गलत अग्रेजी तुरन्त पहचान लेगी।

"इंग्लैड मे आये हुए विद्यार्थी अपने अध्ययन मे इतने अधिक व्यस्त नही रहते कि वे गुजराती पुस्तक पढ ही न सके। जिसको आगे जाकर अपने देश की सेवा करनी है, सामाजिक काम करना है, उसे अपनी मातृ-भाषा के लिए समय निकालना ही होगा। यदि मातृभाषा को भुलाकर ही अग्रेजी सीखी जा सकती हो तो देश-कल्याण का मूल हेतु मारा जायगा। इससे तो बेहतर है कि अग्रेजी सीखी ही न जाय।

"फिर गुजराती भाषा कोई साधारण भाषा नही है। जिसमे नरसिह मेहता, अखा भगत और दयाराम-जैसे कवि पैदा हुए है, उस भाषा को बहुत विकसित किया जा सकता है। फिर जिस भाषा के बोलनेवाले संसार के तीन महाधर्मो—हिन्दू, इस्लाम और जरथुस्ती—के अनुयायी है वह भाषा इतनी ऊची हो सकती है, जिसकी कोई सीमा नही। एक ही विचार गुजराती भाषा द्वारा तीन तरीके से दर्शाया जा सकता है। पारसी जिसे खुदा, मुसलमान जिसे अल्लाहताला और हिन्दू जिसे ईश्वर कहेगा उसे अग्रेजी मे केवल 'गाड' के एक ही नाम से पुकारा जायगा।

"मुसलमानो के गुजराती लेखन मे अरबी और शेखसादी की फारसी

की छाया होगी। पारसी की गुजराती मे, जरथुस्त के जिन्दावेस्ता की छाया होगी, हिन्दू की गुजराती मे सस्कृत की छाया होगी। हिन्दू और मुसलमान तो हिन्दुस्तान की सभी भापाओ के लिए है, किन्तु पारसियो को मानो गुजराती के लिए ही खुदा ने ईरान से भेज दिया है। उनके उत्साही स्वभाव के कारण गुजराती भाषा को अत्यधिक लाभ पहुच सकता है। फिर गुजराती अखबार आजकल उनके हाथ मे है, इसलिए उनको पूरे उत्साह से गुजराती के भविष्य की रक्षा करनी चाहिए। उनसे एक ही विनती करनी आवश्यक है कि अब जब कि गुजराती आपकी मातृभाषा हो गई है और उसको आप छोड नही सकते तो उसका खून न करे। पारसी लेखक अच्छे विचार सरल गुजराती में पेश करते है, किन्तु भाषा के उच्चारण और हिज्जे के तो मानो दुश्मन ही है।

"सब गुजरातियो के लिए यह सोचने की बात है। हिन्दू, मुसलमान और पारसी, तीनो अपने अलग-अलग चौके मे डटे हुए जान पड़ते है। मुसलमान अभी तक शिक्षण-क्षेत्र मे गहराई तक नही गए है, इसलिए गुजराती पर उनका स्पष्ट असर नही दीखता। किन्तु अब वे पढने लगे है। इस दिशा मे हिन्दुओ और पारसियो को उन्हे आगे बढाने का यत्न करना चाहिए।

"राजकोट मे होनेवाली परिषद से मेरा नम्र निवेदन है कि उसके नेता गुजराती भाषा के जानकार हिन्दू, मुसलमान और पारसियो की एक स्थायी समिति का निर्माण करे। वह समिति गुजराती भाषा मे तीनो कौमो द्वारा लिखे जानेवाले साहित्य पर निगरानी रखे और लेखकों को सलाह-मशविरा दे। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि विचारशील लेखक अपने लेखों को ऐसी समिति से बिना कुछ पैसे दिए सुधरवा सके।

"अन्त मे विलायत जाने वाले भारतीयो से मै कहूगा कि अग्रेजो का उदाहरण लेकर उन्हे आपस मे अपनी मातृभाषा का ही प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करने से भारत की उन्नति होगी और उसका एक कर्तव्य पूर्ण माना जायगा। ऐसा करना कुछ कठिन नही है।"

बापूजी के इन विचारो का अमल हमारे घर मे निष्ठतापूर्वक और समझकर किया गया। मेरे पिताजी और मगनलालकाका को घर मे अग्रेजी बोलने की जरा भी आदत नही थी। मुझे याद है कि मै यदि भूलकर गुजराती बातचीत मे अग्रेजी शब्द मिला देता था—जैसे कुरसी के लिए 'चेयर', चम्मच के लिए 'स्पून' और द्राक्ष के लिए 'ग्रेप्स' शब्द का प्रयोग करता था तो मगनकाका तुरन्त पूछते थे कि वह शब्द गुजराती है या अग्रेजी, और फिर अग्रेजी आमफहम शब्दो के लिए भी वह गुजराती शब्द सिखाते थे।

पिताजी मेरे योग्य सरल गुजराती साहित्य का सग्रह करते रहते थे और बार-बार उन पुस्तको को दोहराने के लिए मुझे प्रोत्साहित करते थे। गुजराती के बाद उन्होने मेरे हाथ मे छोटी तथा सुन्दर हिन्दी पुस्तके दे रखी थी और बगाली वर्णमाला सीखने का श्रीगणेश भी कराया था, परन्तु तब मेरा ध्यान गुजराती को छोडकर और किसी भाषा पर लगता नही था।

हरिलालकाका बापूजी की इच्छा के विरुद्ध अहमदाबाद के हाई स्कूल मे पढने गये थे। मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा मे वह प्रथम बार उत्तीर्ण रहे थे। उन्होने फ्रेंच भाषा ली थी। दुबारा भी वह फ्रेंच ही सीख रहे थे। इस सम्बन्ध मे बापूजी ने यह पत्र लिखा था ·

श्रावण विदी नवमी,
सवत् १९६७ (सन् १९११)

चि० हरिलाल,

..फ्रेंच पर तुम बेकार समय और पैसे नष्ट कर रहे हो, ऐसा मै मानता हू। ऐसा अमूल्य समय यदि सस्कृत के लिए तुम देते तो कितना कल्याण होता, इस बात का अनुमान मै तुम्हे कैसे कराऊ? आजकल जिस वातावरण मे तुम घूम-फिर रहे हो वह वातावरण भ्रष्ट है, इसलिए तुमको फ्रेंच की सूझी। शायद एक वर्ष देर से तुम पास होते, परन्तु सस्कृत सीख लेते तो कितना अच्छा रहता! सस्कृत के ज्ञान से हिन्दुस्तान की सभी भाषाओ के द्वार खुल जाते है। तुमने अपने हाथ से उन्हे बन्द कर दिया। दुबारा तुमने फ्रेंच का विषय लिया है, इसलिए यह लिख रहा हू। अब भी तुम विचार करो और एक वर्ष परीक्षा को छोडकर भी सस्कृत आरम्भ करो। ऐसा करने के लिए यदि तुमको घर के अध्ययन के लिए सात रुपयो के बदले आठ देने पडे तो भी मुझे अधिक सन्तोष होगा।

फिर भी तुम अपने मन की बात ही करना। तुम्हारे मार्ग मे मै विघ्न डालना नही चाहता। मेरी सलाह एक मित्र की सलाह है, यही समझना।

—बापू के आशीर्वाद

: २३ :

असली शिक्षा

बापूजी के जीवन मे परस्पर-विरोधी बातो का आश्चर्यजनक योग था। एक ओर तो वह अग्रेजी भाषा और अग्रेजियत से अपने देशवालो को दूर रखने का प्रयत्न करते थे, दूसरी ओर अग्रेजो की अच्छी बाते सीखने की प्रेरणा करते थे। फीनिक्स के जीवन मे ऊपरी सजधज से वह गोरो को मुग्ध कर देना चाहते थे; किन्तु भारतवासी परिवार भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि-मुनियो के अकिंचन रहन-सहन मे भी पीछे न रहे, यह भी उनकी अभिलाषा थी। खेती मे, रसोई मे और दूसरे काम-काज मे वह हमे आधुनिक विज्ञान का पूरा लाभ दिलवाना चाहते थे और साथ ही गरीब-से-गरीब जीवन के आदर्श को अपनाना चाहते थे। मगनकाका और पिताजी, बापूजी की इस विचार-परम्परा के भक्त थे और गरीबी को अपनाने के सबध मे बापूजी बार-बार इन्हे परामर्श दिया करते थे। इन दोनो भाइयो के नाम लिखा हुआ बापूजी का निम्न पत्र विशेष उल्लेख योग्य है:

सन् १९०९

चि० छगनलाल और मगनलाल,

मुझे दुबारा वकालत का पेशा न करना पड़े, इसमे ही भलाई है। मेरे मन की यह गहरी इच्छा है। जबतक मै जीवित हू, फीनिक्स मे हम लोग सपूर्ण गरीबी का अनुभव करें, ऐसा मै चाहता हू। ईश्वर से ऐसा हर समय मागता हू, लेकिन इसके विपरीत ही लक्षण देखता हू। हम लोग सच्ची गरीबी भोगने लगे, ऐसा समय पूर्णरूप से आये यह मुश्किल दीखता है। डाक्टर मेहता की सहायता इसमे विघ्नरूप दीखती है। जबतक वह सहायता आती रहे तबतक "कल के लिए धेला भी पास नही है! क्या होगा?"—ऐसा अनमोल लाभ हमको नही मिलेगा, यह सन्देह मन मे रहता है। उस स्थिति को मै अनमोल लाभ गिनता हू, क्योकि ससार मे प्रधानतया ऐसी स्थिति मौजूद है।

बुद्ध आदि की भी यही स्थिति थी और आगे के लिए भी उन-जैसो की ऐसी स्थिति रहेगी। इसके बिना आत्माराम को नही जाना जा सकता, यह मन मे जच गया है। नरसिंह मेहता ने और सुदामाजी ने यह ज्ञान सही-सही सिखाया, ऐसा दृढ़ विश्वास मुझे बैठ रहा है।

इद्रियो का भोग भोगते हुए यह कहना कि मै उससे परे हू, इद्रिया अपना काम करती है, गलत है। हममे से एक भी व्यक्ति इस वाक्य का उच्चारण करने की योग्यता नही रखता और जबतक हम सच्ची गरीबी को नही अपनायगे तबतक कोई भी यह वाक्य नही कह सकता। राजा आदि पुण्य के प्रताप से राजा बनते है, ऐसा मानना निराधार है। अपने कर्म के प्रताप से वे राजा बने है—ऐसा चाहे तो कह सकते है। लेकिन उसे पुण्यकर्म कहना तो आत्मा के गुणो की छानबीन करने पर गलत मालूम होता है।

—मोहनदास के आशीर्वाद

बापूजी बहुत ऊची कसौटी के लिए अपने को तैयार कर रहे थे और अपने साथ के कार्यकर्त्ताओ को भी अकिंचन जीवन के आदर्श को अपनाने के लिए प्रेरित कर रहे थे।

बापूजी गरीबी का जितना स्तवन करते थे उतना ही महत्व जीवन को श्रेष्ठ और सुन्दर बनाने को देते थे। जीवन की स्थूल आवश्यकताओ मे कमी करके नैतिक समृद्धि बढाने पर जोर देते थे। यह कदापि उन्होने पसन्द नही किया कि अपने सगी-साथी और देशवासी दीन-हीन और दरिद्र जीवन को स्वीकार कर ले। अपने घर के और अपनी सस्था के बालक और विद्यार्थी बडे होने पर कमजोरी की और मायूसी की जिंदगी बिताने के लिए मजबूर न हो, लेकिन बडी आयु के होने पर सब बच्चे ससार मे शान के साथ रह सके, इस दृष्टि से बालको को सिखाने-पढाने पर बापूजी बहुत शुरू से जोर देते थे। इस सम्बन्ध मे बापूजी के कुछ महत्वपूर्ण पत्रो से यह स्पष्ट हो जायगा:

— १ —

चि० छगनलाल, ता० २३-१-०२

तुम्हारी चिट्ठी मिली। पढकर खुशी हुई। अग्रेजी मे ही लिखते रहना। मुशी का वेतन चुका देना। अपनी काकी (कस्तूरबा) के पास से पैसे ले लेना।

चि० गोकलदास और हरिलाल को 'काव्यदोहन' (गुजरात के प्राचीन कवियो द्वारा रचित महाभारत तथा भागवत आदि की कहानियो का सग्रह) से कहानिया सुनाना अच्छा होगा। 'काव्यदोहन' के सभी भाग मेरी पुस्तको मे है। उसमे से सुदामाचरित्र, नलाख्यान, अगदविष्टि आदि आख्यानो को अर्थ के साथ सुनाओगे, तो अच्छा होगा। हरिश्चन्द्र का आख्यान मौखिक या पुस्तक से सुनाना। अंग्रेजी कवियो के नाटक सुनाना फिलहाल आवश्यक नही है। उनमे रस भी नही आयगा। और, हमारे प्राचीन

आख्यानो से जितना सार ग्रहण करना है उतना अग्रेजी कवियो से मिलने वाला नही है। लडको का वर्ताव वर्ग मे सही रहे, इसके लिए सतर्क रहना। तुम और किसे पढाने जाते हो, लिखना।

एक भी लडके मे कोई वुरी आदत पैदा न हो, इस वात की चौकसी रखना। यह भी ध्यान रखना कि सत्य के प्रति उनका रुख नित्य ही भक्ति-भाव का वना रहे।

पढने के साथ-साथ व्यायाम भी पूरी तरह करवाना।

आदरणीय खुशालभाई और देव भाभी से दडवत् कहना।

शुभेच्छुक
मोहनदास के आशीर्वाद

–२–

जोहान्सवर्ग
ता० ५-२-०३

चि० छगनलाल,

मेरा वहुत अनिश्चित है। भरसक कोशिश करने पर भी तुमको सतोष देने वाले समाचार मै नही दे सकता। यदि यहा रहने की वात न हुई तो मार्च मे यहा से चल सकने की सभावना है। यदि यही रहना होगा तो छ. महीने वाद कस्तूरवा आदि को वुला पाऊगा। तुरन्त वुला लेने का मौका नही है। फिर भी यदि कर्तव्य से चूकने की स्थिति न होगी तो भरसक प्रयत्न करके मै वही आऊगा। यहा पर कोई रेशम की शय्या नही है। इससे अधिक निश्चित समाचार मै अभी नही दे सकता।

चि० मणिलाल की पढाई के निमित्त होन वाले वेतन-खर्च की चिन्ता मत करो। उसे वाद्य सीखने के लिए अवश्य भेजो। वहा जाने से उसे रोक लिया, यह ठीक नही किया। इसमे तुम्हारा दोप नही है, तुम्हारी काकी का है।

शुभेच्छुक
मोहनदास के आशीर्वाद

उक्त दोनो पत्र वापूजी ने दक्षिण अफ्रीका से मेरे पिताजी के नाम ववई भेजे थे। इससे पता चलता है कि जब फीनिक्स आश्रम की कल्पना भी नही थी और रस्किन की पुस्तक को वापूजी ने देखा भी नही था, उस समय भी शिक्षण के सवध मे उनके विचार अस्पष्ट न थे, अपितु शिक्षा का आदर्श उनके चित्त मे सुस्पष्ट ही था।

परन्तु जब ऊपर के पत्र लिखे तब बापूजी के समक्ष किसी विद्या सस्था या आश्रम को चलाकर बालको को शिक्षा देने का प्रश्न नही था। यह प्रश्न फीनिक्स की स्थापना होने पर उनके सामने आया। फीनिक्स के आरभ मे मै, देवदासकाका आदि छोटे बच्चे थे। मणिलालकाका बडे थे। फीनिक्स के सभी बालको मे वह प्रथम विद्यार्थी थे। उनके नाम लिखे गए बापूजी के पत्र मे उनकी शिक्षा-विधि अधिक मूर्त्त दीखती है।

— ३ —

प्रिटोरिया का कैदखाना

२५-३-०६

चि० मणिलाल,

जेल मे अब मैने बहुत सारा पढ डाला है। मै इमर्सन, रस्किन, मैजिनी की कृतिया पढता हू। उपनिषद भी पढता रहा हू। शिक्षण का अर्थ ज्ञान नही है, किन्तु चारित्र्य के विकास या धर्म की भावना की जाग्रति है। इस सबध मे मेरा जो मत है वह इस प्रकार की पढाई से दृढ हो रहा है। अपनी गुजराती मे उसे हम 'केलवणी' के नाम से जानते है। यदि 'केलवणी' (शिक्षण) का उद्देश्य यही है—और मेरी समझ मे उसका यही सही उद्देश्य है तो मै कहूगा कि तुम उत्तम प्रकार की 'केलवणी' ले रहे हो।

बा की सेवा करके उसके उलहनो को सहन कर लेना, चि० हरिलाल की अनुपस्थिति मे चि० चची (श्रीमती हरिलाल) का दिल दुखे नही, इस प्रकार उसकी आवश्यकताओ को अनुमान से समझकर देखभाल करना और रामदास तथा देवदास की सभाल रखना—इस सबसे बढकर शिक्षण क्या हो सकता है? इस काम मे यदि तुम पार उतरोगे तो तुमने आधी से अधिक 'केलवणी' प्राप्त करली, ऐसा मान लेने मे मुझे क्या हर्ज हो सकता है?

उपनिषद पर नाथूराम शर्मा की प्रस्तावना के एक वाक्य का मेरे मन पर बडा प्रभाव पडा है। उन्होने बताया है कि ब्रह्मचर्य की प्रथम अवस्था सन्यस्त की अतिम अवस्था के समान ही है।

यह बात सर्वथा सही है कि निर्दोष अवस्था मे, यानी केवल बारह वर्ष की आयु होने तक ही, मौज की जा सकती है। लडका जब प्रौढ बनता है तब तुरत ही उसे अपना उत्तरदायित्व समझना-सीखना चाहिए। इस वय के बाद प्रत्येक व्यक्ति को आचार-विचार, सत्य और अहिसा मे सयम की ओर बढना चाहिए। यह काम इस तरह से नही करना चाहिए कि चित्त

को थकावट और उकताहट हो, बल्कि स्वाभाविक विनोद से करना चाहिए। मुझे याद है कि जब मै तुम्हारी आज की आयु से छोटा था तब अपने पिताजी की सेवा-शुश्रूषा करने मे मुझे सच्चा आनन्द मिलता था। बारहवे वर्ष के बाद मैने मौज-शौक की छाया तक नही देखी थी। यदि तुम वास्तविक सद्गुणो का अनुसरण करोगे, अपने जीवन को गुणमय बनाओगे, तो मै मानूगा कि तुमने मेरा 'केलवणी' का आदर्श पूरा किया है। इन गुणो से सुसज्ज होकर तुम ससार के किसी भी कोने मे चले जाओगे तो अपना गुजारा प्राप्त कर सकोगे और आत्मज्ञ न—ईश्वर ज्ञान—की प्राप्ति की ओर मुड सकोगे। इसका यह अर्थ नह है कि तुम्हे अक्षरज्ञान नही लेना चाहिए, लेकिन उसे प्र.प्त करने के पीछे तुम्हे बेचैन नह होना चाहिए। उसके लिए काफी मौका रहेगा। फिर भी शिक्षण लेने का हेतु भी यही तो है कि वह सेवा-कार्य मे सहायक बने।

यह मत भूलना कि भविष्य मे हमारे लिए गरीबी रहेगी। ससार के बारे मे मै जितना अधिक सोचता हू यही समझ मे आता है कि धनी होने के मुकाबले गरीब रहने मे चित्त को अधिक समाधान मिलेगा। लक्ष्मीनन्दन बनने से, धनकुबेर बनने से, गरीब रहने मे सार है। गरीबी के फल अधिक सुन्दर और मीठे होते है।

मै मानता हू कि जिन्होने कई युगो के पहले यज्ञोपवीत का त्याग किया है उनका उसे पुन स्वीकार करना गलत होगा। शूद्र और अन्य सब वर्णो मे जाति-भेद कम नही है। इस समय तो यज्ञोपवीत उलटी बाधा डाल रहा है। इस विषय पर भविष्य मे विस्तार से चर्चा करूगा।

—बापू के आशीर्वाद

—४—

चि० मणिलाल,

तुमको क्या करना है—इस सवाल से तुम मायूस हो गए। अगर तुम्हारे लिए मै जवाब दू तो कहूगा कि तुम अपना फर्ज अदा करने वाले हो। फिलहाल तुम्हारा काम अपने माता-पिता की सेवा करना है। इससे आगे तुम्हे चितित नही रहना। आगे की चिता तुम्हारे मा-बाप को है। जब वे चल बसेगे तब वह चिता तुम पर आयगी। इतना निश्चय तो होना ही चाहिए कि तुम्हे बैरिस्टरी का या डाक्टरी का पेशा नही करना है। हम गरीब है और गरीब रहना चाहते है। पैसे की आवश्यकता केवल भरण-पोषण के लिए होती है। फीनिक्स को उन्नत करना हमारा काम है, क्योकि

उसके जरिए हम आत्मा को खोज सकते हैं और देश-सेवा कर सकते है। इतना यकीन रखना कि मै निरन्तर तुम्हारे लिए चिन्ता करता हू।

मनुष्य का असली पेशा यही है कि वह अपने चारित्र्य को ठोस बनाये। धन कमाने के लिए कुछ खास सीखना पडे, ऐसा नही है। जो आदमी नीति का रास्ता कभी नहो छोडता, वह भूखों नही मरता। और यदि वैसा समय आता है तो वह डरता नही है।

तुम निश्चित रहकर जो अभ्यास वहा हो सके उसे करते रहो। यह लिखते हुए तुमसे मिलकर अपने सीने से लगाने को जी करता है। ऐसा नही हो पाता, इसलिए आख मे पानी आ जाता है। यह निश्चय रखो कि तुम पर बापू कभी निर्दयता का बर्ताव नही करेगे। मै जो कुछ करता हू, तुम्हारा भला समझ करके करता हू। तुम जब दूसरो की सेवा कर रहे हो तो तुम्हे कभी मारा-मारा नही फिरना पडेगा, यह विश्वास रखो।

—बापू के आशीर्वाद

— ५ —

१२-१०-०६

चि० मणिलाल,

तुम किस श्रेणी मे हो—इसका उत्तर नही दे सकते? अब बताना कि बापू की श्रेणी मे हू। पढने का विचार तुम्हे क्यो आया करता है? अगर कमाने के लिए आता है तो ठीक नही है, क्योकि ईश्वर सबके लिए चारा-दाना दे ही देता है। तुम मजदूरी करके पेट भर सकते हो। फिर हम को तो फीनिक्स मे अथवा ऐसे काम मे मरना है, जहा पर कमाई की बात की गुजाइश ही कहा? अगर तुम्हे देश की खातिर पढना है तो वह तो तुम इस समय भी कर रहे हो। यदि आत्मा को पहचानने के लिए पढना है तो उसके लिए अच्छा बनना सीखना चाहिए। तुम अच्छे हो, ऐसा सब कोई कहते हैं। अब रही बात अधिक काम करने के लिए तुम्हारे पढने की। इसके लिए जल्दबाजी की जरूरत नही है। फीनिक्स मे जो हो सके वह करते रहो। फिर देख लिया जायगा। तुम्हारे लिए मै चिता करता हू यह विश्वास हो तो तुम स्वय चिता छोड देना।

—बापू के आशीर्वाद

— ६ —

जोहान्सबर्ग
कार्तिक बिदी पचमी १९६६
(सन् १९०९ का अन्त)

चि० मणिलाल,

जबतक नीति को दृढ रखोगे और अपने कर्तव्य को पूरा करते रहोगे तबतक मै तुम्हारे अक्षर-ज्ञान के बारे मे निश्चिंत रहूगा। शास्त्र मे जिन यमनियमो को बताया गया है, उनको कायम रखो तो बस है। अपने शौक के लिए अथवा अपने को अधिक लायक बनाने के लिए अक्षर-ज्ञान बढाओगे तो मै उसमे सहायक बनूगा। यदि नही बढाते तो उलहना कभी न दूगा। फिर भी यदि मन मे कुछ निश्चय कर लो तो उस निश्चय पर स्थिर रहने का प्रयत्न करना। आजकल तुम प्रेस मे क्या कर रहे हो, कब उठते हो, खेती मे क्या कर रहे हो, यह लिखना।

—बापू के आशीर्वाद

मणिलालकाका की ही आयु के मेरे छोटे काका श्री जमनादास गाधी फीनिक्स आने से पहले भारत की सरकारी पाठशालाओ के ढग के एक हाई स्कूल मे राजकोट मे पढ़ते थे। उनके नाम लिखे गए बापूजी के पत्रो मे से कुछ वाक्य उद्धृत करने योग्य है:

"मै स्कूली पढाई के विरुद्ध नही हू, लेकिन उसकी मोहर के विरुद्ध हू। आजकल के स्कूलो मे पहली बाधा यह है कि शिक्षक नीतिवान नही होते। दूसरी यह कि बच्चे शिक्षको से अलग-से रहते है। कुछ विषयो के पढने मे बेकार समय नष्ट होता है, यह तीसरी और पाठशालाए अक्सर हमारी हथकडी के चिह्नरूप होती है, यह चौथी बाधा है।"

दूसरे एक पत्र मे बापू ने लिखा है:

"मै अच्छे स्कूल के विरुद्ध नही हू। लेकिन मेरा विश्वास है कि बहुत सारे लडको वाला स्कूल अच्छा हो नही सकता। फिर पाठशाला तो वास्तव मे वही होती है, जहा पर लडके चौबीसो घटे रहते है। ऐसा न हो तो शिक्षण दो प्रकार का हो जाता है।"

इन पत्रो मे बापूजी ने जो विचार व्यक्त किये है उन्ही की परिपाटी वह फीनिक्स की पाठशाला मे कायम करने के इच्छुक थे। एक प्रकार से फीनिक्स का वातावरण उसके लिए विशेष अनुकूल था, क्योकि वह जगल मे एकान्त बस्ती थी। भारत के देहातो मे जो सामाजिक कुरीतिया नजर आती है उनकी वहा छाया तक नही थी।

: २४ :

मेरी कमजोरी

ऐसे श्रेष्ठ वातावरण मे मुझ-जैसे बालक को प्रगति के पथ पर अहर्निश अग्रसर होना चाहिए था; परन्तु गंहू के खेतो मे बथुआ की भाति मेरे चित्तक्षेत्र मे कुठित मनोवृत्ति के अकुर क्यो जमे, यह समझ मे न आने वाली समस्या है। लेकिन यह तथ्य है कि वहा के पुनीत वातावरण मे भी अनेक कमजोरियो ने मुझे दबा लिया।

हमारी पाठशाला मे मध्याह्न के समय जब छुट्टी होती और मेरी माताजी झरने पर कपडे धोने के लिए जाती तब मै भटकता न रहू और पढने मे चित्त लगाऊ, इस दृष्टि से वह लम्बे लम्बे जोड-गुणा मुझे करने को दिया करती थी। जब घर मे कोई न रहता तब ये सवाल करते बैठना मेरे लिए कारावास-सा हो जाता था। मेरा जी जल उठता था और मै स्लेट-पैसिल को अपना जानी दुश्मन समझता था। जो सवाल पद्रह-बीस मिनट का होता, वह मेरे लिए घटो का बन जाता था। नज़र अको पर गडी रहती, पर सही जवाब क्या है, इसकी सूझ नही होती थी। इस पर जब मा लौटकर आती और सवाल अधूरे देखती तब उनको सन्देह हो जाता कि मैने सवाल किये ही नही, खेलता ही रहा हू। जो किये होते उनमे भी उनको गलती मिलती और प्रत्येक भूल पर मुझको डाट-फटकार सहनी पडती। कुछ दिन बाद मेरे बाल-साथी देवदासकाका और रामदासकाका ने मुझ पर हमदर्दी दिखाई। वे घूमते-घामते मेरे घर की ओर आ निकलते और गणित मे मुझे उलझा हुआ देखकर जल्दी-जल्दी सवालों को हल कर के मुझे जवाब बता देते और मै स्लेट पर उत्तर लिखकर उनके साथ खेलने निकल जाता। जब माताजी लौटकर आती और सही उत्तर देखती तो प्रसन्न हो उठती और मुस्कराती निगाह से मुझे देखती। परन्तु उन्हे क्या पता था कि बेटे ने प्रगति नही, अधोगति प्राप्त की है।

यह छोटी भूल हो या बडी, इसने जीवन-भर के लिए गणित के क्षेत्र मे मुझे कमजोर बना दिया। यही नही, गणित की चुस्ती खो देने के कारण मै जीवन की अनेक दूसरी बातो मे भी ढीला रह गया।

श्रुतलेख मे भी मेरा कच्चापन कभी मिटा नही। पिताजी का लेखन बहुत सुन्दर था। मेरे अक्षर खराब न हो, इसके लिए उन्होने शुरू से ही बहुत ध्यान दिया था, लेकिन पिताजी की वह विरासत मै नही अपना सका।

मेरे लिए अक्षर से भी अधिक मुसीबत श्रुतलेख मे तथा नकल करने मे होनेवाली भूलो की थी। वैसे तो गुजराती भाषा मे ह्रस्व-दीर्घ के बारे में शुरू से ही जैसी अराजकता फैली हुई थी वैसी शायद ही किसी अन्य भारतीय भाषा मे रही हो। किन्तु मेरी भूले केवल ह्रस्व-दीर्घ की या युक्ताक्षर की ही नही होती थी। 'आ' और 'ए' की मात्रा की गलतिया भी बहुत होती थी। लेखन को दो-तीन बार दोहराने पर भी छूटी हुई मात्राए मेरी नजर मे नही आती थी।

गेद के खेल मे भी मै कच्चा था। फीनिक्स मे क्रिकेट का खेल बाकायदा बहुत कम होता था, परन्तु उसका छोटा-सा अनुकरण हम लोग किया करते थे। गेद के भारतीय खेल भी हम खेलते थे और कई बार मगनकाका भी हमारे खेल मे शामिल होते थे। मेरे लिए गेद का हरएक खेल अक्सर आसू बहाने का निमित्त बनता था। निशाना लगाने और गेद पकडने के लिए मै कम फुर्ती से नही दौडता था। गेद को ध्यान से देखता था, परन्तु जैसे रेल का प्रवासी भागते-भागते, हाफते-हाफते स्टेशन के प्लेटफार्म पर पहुच जाय और उसी समय सीटी बजाती हुई गाडी प्लेटफार्म छोड दे, वैसा ही अन्तर मेरे फैले हुए हाथो और गेद मे रह जाया करता था। मेरी टोलीवालो की नाराजी, मगनकाका का गुस्सा और मेरे मन की निराशा—तीनो के मिश्रित प्रभाव से समझ नही पडता था कि कहा भाग जाऊ, कहा छिप जाऊ।

श्रुतलेख मे और गेद पकडने मे जो कमी छोटी आयु से ही मुझमे थी उसका कारण मुझे अपनी बीस-बाईस वर्ष की आयु मे अकस्मात् मालूम हुआ, जबकि डाक्टर ने मेरी आखो के लिए ठीक नम्बर का चश्मा दिया। मैने देखा कि चन्द्रमा को बिना चश्मे के जिस स्थान पर देख पाता था, चश्मा चढाने पर वह अधिक दाईं ओर दीख पडता था और तब मेरी समझ मे आया कि वह मेरा दृष्टिदोष था। मै जिस जगह पर गेद समझकर हाथ फैलाता था, वहा से वह चार-पाच इच दाईं ओर होकर निकल जाती थी। लेकिन उस समय मगनकाका भी मेरी उस शारीरिक त्रुटि को समझ नही पाये थे।

छोटे बच्चे की आख के जन्म-जात दोष को सुधारने का प्रयत्न, विशेष रूप से भारत मे साधारण स्थिति के माता-पिता के घर करना सम्भव नही था। परन्तु फीनिक्स के बालको की शारीरिक, बौद्धिक आदि शक्तियो का विकास करने के लिए जाग्रत प्रयत्न करने की आकाक्षा पिता-काका के दिलो मे पैदा हो गई थी।

बात यह थी कि बचपन मे मेरी दाईं आख की पुतली नाक की ओर के कोने मे दबी हुई थी और वहा से हटकर घूम नही सकती थी। इस

पर मगनकाका ने मुझे डरबन लेजाकर डाक्टर से एक प्रकार का हरा पट्टा दिलवाया था। अपनी बाई आख पर वह मुझे बाधना पडता था। इस तरह सही काम करनेवाली आख को बन्द कर देना मुझे बहुत बुरा लगता था और मौका मिलते ही बाई आख पर का वह पट्टा आख से उतार फेकता था; परन्तु मगनकाका बडी सतर्कता से मुझे ऐसा करने से रोकते थे। इस कठिन अभ्यास का सुफल मुझे यह मिला कि कोने मे दबी हुई मेरी दाई पुतली बाहर निकली और बहुत कुछ स्वाभाविक रूप से काम करने लगी।

यदि फीनिक्स के हमारे शिक्षक अपनी साधना और अन्य व्यवसायो से अधिक समय बचा कर शिक्षण-कार्य के लिए दे सकते तो बहुत सभव है कि मुझ-जैसे बालक की कई कमजोरिया निर्मूल हो सकती। फिर भी इसमे कोई सदेह नही कि नैतिक शिक्षण का जो आग्रह वहा पर बापूजी ने सबके सामने रखा था और गरीबी की जो आराधना की थी उसके कारण शिक्षको द्वारा पढाई के लिए बहुत कम समय दिये जा सकने पर भी, हम विद्यार्थियो ने वहा पर अच्छे सस्कार के बीज अनायास ही कुछ-न-कुछ अवश्य ग्रहण किये।

: २५ :

निर्भयता की शिक्षा और अभ्यास

छुटपन मे बच्चो को भूत-प्रेत और चूहे-बिल्ली के आतक की कहानिया सुना-सुना कर उनमे भय के सस्कारो की जड जमा दी जाती है। ऐसे सस्कारो के कारण उनके भावी जीवन मे आत्मबल और निर्भयता-जैसे उन्नत सस्कारो का सर्वथा अभाव हो जाता है। स्वय बापूजी बचपन मे कितने डरते थे, इसका उल्लेख उन्होने 'आत्मकथा' मे विस्तार से किया है। लेकिन वही बापूजी फीनिक्स मे छोटे-बडे सभी आश्रमवासियो को आत्मबल और निर्भयता की किस प्रकार शिक्षा देते थे, उसका विवरण यहा अप्रासगिक नही होगा

फीनिक्स मे आश्रम-स्थापना के प्रारभिक दिनो की बात है। बापूजी इस भयानक जगल के खुले मैदान मे सोया करते थे। उन दिनो उनका विरोधी दल उग्र बना हुआ था और उन पर खतरा मडरा रहा था। फलत उनकी रक्षा के लिए दो-एक बलिष्ट नौजवान रतजगा किया करते थे।

जब बापूजी को पता चला कि उनकी रक्षा के लिए पहरा दिया जाता है तो उन्होने उन सेवा-भावी युवको को पहरा देने से रोक दिया।

जोहान्सबर्ग की बात है। गाधीजी के एक जर्मन मित्र श्री कैलनबैक उनकी रक्षा के लिए उनके पीछे-पीछे चला करते थे। एक दिन अपने दफ्तर मे बाहर जाने के लिए बापूजी ने खूटी पर से अपना कोट उठाया। बगल की खूटी पर कैलनबैक का कोट टगा था। उसकी जेब मे रिवाल्वर-सा कुछ दीख पडा। गाधीजी ने जेब मे देखा तो वह सचमुच ही रिवाल्वर था। उन्होने कैलनबैक को बुलाया और पूछा, "जेब मे यह रिवाल्वर क्यो रखते हो?" कुछ झिझकते हुए कैलनबैक ने कहा, "कुछ नही, योही रखा है।"

गाधीजी ने मुस्कराकर पूछा, "रस्किन और टाल्स्टाय के ग्रथो मे कही ऐसा भी लिखा है कि बेमतलब ही जेब मे रिवाल्वर रखा जाय?"

इस व्यग्य से कैलनबैक की झिझक और भी बढ गई। बोले, "मुझे पता लगा था कि कुछ गुडे आप पर हमला करने वाले थे।"

"और आप उनसे मेरी रक्षा करना चाहते है?" गाधीजी ने गभीरता से कहा।

"जी।"

कैलनबैग का उत्तर सुनकर गाधीजी खिलखिलाकर हस पडे। बोले, "चलो, अब तो मै पूरा निश्चिंत हो गया। मेरी रक्षा का सारा बोझ परमेश्वर से आपने ले लिया। जबतक आप मौजूद है मुझे अपने को सुरक्षित मानना चाहिए।"

कैलनबैक इस व्यग्य को सुन कर चुप खडे थे। कुछ रुक कर गाधीजी ने फिर कहा, "क्या सोचते हो? भगवान पर श्रद्धा रखने का यह लक्षण नही है। सर्वशक्तिमान प्रभु सबकी रक्षा के लिए सर्वत्र है। इस रिवाल्वर से मेरी रक्षा करने की चेष्टा छोड दो।"

"भूल हो गई। अब मै आपकी रक्षा की चिता नही करूगा," कैलनबैक ने नम्रता से कहा। और उन्होने रिवाल्वर को वहा से अलग कर दिया।

इस घटना के बाद बापूजी के प्रति इतना वैमनस्य बढ गया कि स्वय बापू को भी प्राणघातक हमला होने की आशका जान पडी। उन्होने मगन काका के नाम लिखे निम्न पत्र मे इसका उल्लेख भी किया है:

जोहान्सबर्ग
२१-५-१९०८

चि. मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरे लिए चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। मैं मानता हूं कि मुझे अपनी बलि चढ़ानी ही पड़ेगी। स्मट्स आखिर तक धोखा दे सकेगा, ऐसा मैं नहीं मानता। लोग अधीर हो उठे हैं। वे मेरे जीवन पर प्रहार करने को तुले बैठे हैं। उनको मौका मिल जाय, और यदि ऐसा हो तो संतोष मानना। जिस बात को मैं कल्पनामय समझता हूं उस बात के लिए जिंदगी की बलि चढ़ानी पड़े तो उससे अधिक सुखद-मृत्यु और कौन-सी हो सकती है!

—मोहनदास के आशीर्वाद

इस पत्र के कुछ ही दिन बाद जोहान्सबर्ग के राजमार्ग पर मीर आलम नामक पठान ने लोहे की सलाख से बापूजी पर घातक प्रहार किया था। यह दुर्घटना सर्वविदित है, लेकिन मीर आलम के प्रति गांधीजी ने जो व्यवहार किया, उससे न केवल वह अपनी करतूत के लिए लज्जित ही हुआ, प्रत्युत उन्हें अपना मार्ग-दर्शक मानने लगा।

अपने हाथ की दसों अंगुलियों की छाप न देने के कारण जब उसे देश-निकाला मिला तो बंबई पहुंचने पर उसने अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजी में बापू के नाम एक पत्र भेजा, जिसका सार यहां देता हूं:

"मैं बंबई पहुंच गया हूं। आप कुशलतापूर्वक होंगे। ट्रांसवाल के सारे समाचार मैंने गुजराती अखबार में निकलवा दिये हैं। पंजाब पहुंचने पर वहां के अखबारों में भी निकलवाऊंगा। . . लाहौर में अंजुमन इस्लाम की बैठक में मैं हाजिर रहूंगा और ट्रांसवाल की सारी खबर सुनाऊंगा। लाहौर जाकर लाला लाजपतराय से मिलूंगा और उनकी राय लूंगा। . . .सीमा-प्रांत पहुंचने पर सब मित्रों से चर्चा करूंगा और जो बन पड़ेगा, करूंगा।. . . अफगानिस्तान में भी सबको वहां की स्थिति का परिचय दूंगा। श्री काछलिया, उमरजी सेठ, दाऊद मोहम्मद, रुस्तमजी पारसी और सोसाइटी के सब भाइयों से मेरा सलाम कहिएगा और मेरा पत्र मीटिंग में रखिएगा।". .

इससे प्रकट होता है कि एक जानी दुश्मन भी गांधीजी के आत्मबल का लोहा मान गया और उनका अनुयायी बन गया।

यही नहीं कि गांधीजी प्रवासियों को ही इन गुणों के लिए तैयार कर रहे थे, बल्कि इन भावों के पत्र भारत के नौजवानों को भी लिखते रहते थे। मगनकाका से छोटे नारायणदासकाका उन दिनों बंबई में नौकरी करते थे। बापू पत्रों द्वारा अपने आदर्शों का प्रचार किस प्रकार करते थे, इसका पता

निम्न दो पत्रो से चलता है ·

लन्दन
७-८-१९०९

चि. नारायणदास,

तुम्हारा पत्र पढकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। यह मै जानता हू कि हिन्दुस्तान के कुछ विद्वान लोग लडाई (दक्षिण अफ्रीका मे की जाने वाली सत्याग्रह की लडाई) का रहस्य समझते नही है। यह इस बात का सूचक है कि हमारे मूल पूर्वजो ने आत्मबल का जो ज्ञान प्राप्त किया था वह अब दब गया है। उसे फिर से प्रकाश मे लाने के लिए धैर्य की आवश्यकता होगी। समय तो जायगा, पर ज्यो-ज्यो समझदारी पैदा होगी त्यो-त्यो आत्मबल की कसौटी चमक उठेगी। मै जिस आत्मबल के बारे मे लिख रहा हू वह मदिर आदि मे जाने के बाह्योपचार मे निहित नही है। कभी-कभी तो ऐसे बाह्योपचार उस बल के विरोधी साबित होते है। यदि तुम 'इडियन ओपीनियन' सावधानी से पढते होगे तो यह कथन कुछ अश मे तुम्हारी समझ मे आया ही होगा। वहा बैठे-बैठे भी तुम इस बल का प्रयोग कर सकते हो। सत्य और अभय का विकास उसका प्रथम पाठ है।

—मोहनदास के आशीर्वाद

जोहान्सबर्ग,
फागुन बिदी ४, सवत् १९६६
(सन् १९१० का प्रारभ)

चि. नारायणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। वहां रहकर भी तुम यहा के उद्देश्यो मे सहायक बन सकते हो। मै देख रहा हू कि वहा पर भी हमे बहुत सघर्ष करना पडेगा। ऐसा करने के लिए तुम्हे अपना चारित्र्य सुदृढ करना चाहिए। तुमने हमारे धर्म के मूल तत्वो को जान लिया है ? यदि तुम कहो कि मै तो सारी गीता मुखपाठ कर चुका हू, उसका अर्थ भी मुझे आता है, धर्म का मतलब जानता हू, तो फिर इस प्रश्न को स्थान ही कहा रहता है ? लेकिन मूलतत्व जानने से मेरा मतलब है उसके अनुसार आचरण करना।

"दैवी सम्पत्ति मे प्रथम गुण अभय है"—यह श्लोक तुमको याद होगा। तुमने अभयदान को थोडे अश मे भी पा लिया है ? जो करना उचित समझो, उसे करने के लिए निडरतापूर्वक देह पडने तक भी प्रयत्न करोगे ? जब तक इस अश तक अभय पद को प्राप्त न कर लो, तबतक उसका सेवन करते हुए उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहना। इतना करोगे तो तुम बहुत कुछ कर सकोगे। इस सम्बन्ध मे प्रह्लाद, सुधन्वा आदि के दृष्टातो को

तुम्हे याद करना चाहिए। ये सब दन्तकथाए है, ऐसा मत मानना। हिंद के पुत्र ऐसे काम करने वाले हो गए है। इसीलिए उन आख्यानो को आज हम कठस्थ करते है। आज भी प्रह्लाद और सुधन्वा, हरिश्चन्द्र और श्रवण भारत मे नही है, ऐसा मत समझना। जब हम उस योग्य बनेगे तब उनसे हमारी भेट हो जायगी। वे बम्बई की अट्टालिकाओ मे कभी नही आयगे। पत्थर की जमीन मे गेहू की पैदावार की आशा करना व्यर्थ है। बम्बई मे रहना हो तो यह बात मन के साथ दृढ कर लेनी चाहिए कि बम्बई नरक की खान है। वहा रहने मे कोई सार नही है।

—मोहनदास के आशीर्वाद

इसके अलावा, आश्रमवासी बच्चो को निर्भयता की शिक्षा देने एव अभ्यास कराने का वर्णन भी रोचक है। जब मै मुश्किल से सात-आठ बरस का था, तब उस सूने जगल मे रात के समय घर के बडे लोग मुझे अकेला छोडकर चले जाते थे और बापूजी के घर से पहर भर रात बीते लौटते थे। इस बीच मै अधेरे घर मे निर्भय होकर सोया रहता। इसी प्रकार मुझे सर्वथा निडर बनाने के लिए मगनकाका ने भी विशेष यत्न किये। वह मुझे गहरे अधेरे मे करीब आधा फर्लांग की दूरी पर देवदासकाका के यहा सदेश देने भेज देते और जब मै निडरतापूर्वक सदेश देकर लौट आता तो मेरी पीठ थपथपाते।

धीरे-धीरे यह क्रम रात मे ढाई मील की दूरी तक जाने का हो गया और इस प्रकार बचपन मे ही निर्भयता के सस्कार मुझमे पनप गए।

इन्ही दिनो की एक अन्य घटना है, जिसके कारण मेरे बाल-हृदय पर पिताजी के साहस का गहरा प्रभाव पडा था। एक दिन रात को दो-ढाई बजे वह डरबन से प्राय १६ मील की लबी यात्रा करके बीहड और सुनसान जगल से होकर साइकल द्वारा पहाडी के ऊबड-खाबड रास्ते से घर आये थे। बापूजी ने उनको आधी रात मे डरबन से फीनिक्स जाने की आज्ञा दी थी। अगले दिन सवेरे ३०-४० अतिथियो को लेकर बापूजी फीनिक्स पहुचने वाले थे। पिताजी के फीनिक्स पहुचने पर बापूजी के आदेशानुसार मेहमानो के लिए तत्काल रसोई करने का काम कस्तूरबा मेरी माताजी और दूसरो ने शुरू कर दिया।

दिन निकलते ही बापूजी अपने मेहमानो के साथ फीनिक्स आ पहुचे और समय पर सब को भोजन मिल गया।

: २६ :

दुराग्रह की हद

फीनिक्स के जिस वातावरण मे मेरा बचपन बीता उसमे झूठ बोलने का सस्कार ग्रहण करने की बात थी ही नही। वहा जो लोग थे उनका व्यवहार सरल था। कोई किसी से छल-कपट नही करता था। माता, पिता, काका आदि घर के बडे, अपने-अपने नित्य के जीवन मे सदाचारी और धर्मभीरु थे। फिर बापूजी का प्रभाव सारे फीनिक्स पर और हमारे घरवालो पर इतना अधिक था कि प्रतिदिन सत्यनिष्ठा और जीवन की पवित्रता को बढाने का आग्रह प्रत्येक व्यक्ति के मन मे गहरी जड पकडता जा रहा था।

ऐसे पुनीत वातावरण मे सच को छोडकर झूठ को पकडने की मेरी वृत्ति न जाने कैसे पनप रही थी। छोटी-छोटी बातों मे मैं झूठ बोल देता और घर मे बडो के लिए यह बडी समस्या बन गई थी कि मुझ से झूठ बोलना कैसे छुडाया जाय ?

एक बार झूठ बोलकर मैंने मगनकाका के प्रकोप को अत्यत बढा दिया। घटना यो हुई· फीनिक्स मे हमारा रसोईघर छोटा था, परन्तु वह बहुत स्वच्छ रहता था। अन्न-भडार, बरतन मलने और हाथ-मुह धोने की व्यवस्था इत्यादि भी उसी चौकोर कमरे मे थी। एक दिन दोपहर के समय मेरी माताजी और काकी फीनिक्सवासी अन्य परिवारो मे मिलने-जुलने के लिए गई हुई थी और घर मे मैं अकेला इधर-उधर उलट-पुलट कर रहा था। तभी घूमते-घामते देवदासकाका, रामदासकाका आदि दो-तीन लडको की मडली हमारे यहां आ पहुची। इन सबको चमत्कृत करने के लिए न जाने क्यो एकाएक मुझे एक नई बात सूझी। मैंने उनसे कहा, "चलो, एक खेल करे।" मैं आगे बढा और सब मेरे पीछे-पीछे रसोईघर मे आये। रसोईघर मे घुस कर मैं एक मेज पर चढ गया और काफी ऊचाई पर अपना हाथ पहुचा कर मैंने टाड से लाल दवाई की एक बडी-सी पुडिया निकाली। पुडिया लेकर मैं मेज से उतरा और रसोईघर के कोने मे रखे हुए पानी के पीपे के पास गया। उसमे हाथ-मुह धोने का पानी रहता था और उसमे पीतल की टोटी लगी हुई थी। पीपे का ढक्कन उठाकर मैंने अपने पास की लाल दवा—परमेगनेट पोटाश—की पुडिया से आधी दवा पानी मे डाल दी। करीब तीन-चार बडी चम्मच के बराबर दवा उस दो-चार बाल्टी पानी मे डालकर मैंने उसे कडछुल से हिला दिया। उसके बाद टोटी खोल दी। लाल पानी

की जलधारा उसमे से बह चली। उसमे अपने हाथ भिगोने के लिए मैने सबको आमन्त्रित किया। सभी लडके बडी प्रसन्नता से देर तक यह तमाशा देखते रहे। आधे से ज्यादा पीपा खाली हो गया तब नल बद करके और रसोई बन्द करके हम लोग बगीचो मे खेलने को चल दिए।

मगनकाका रोज के नियम के अनुसार, काम से लौटने पर रसोईघर के उस पीपे के पास, हाथ-मुह धोने के लिए आये। उनको वहा देखकर मै सहम गया और उनकी निगाह बचाकर दूसरे कमरे मे चला गया। मिनट-दो-मिनट ही बीते होगे कि मगनकाका की आवाज सुनाई दी, "किसने यह पानी बिगाडा है ?" मेरी काकी और मेरी माता दोनो अपने-अपने काम मे लगी थी। पीपे के पानी के लाल होने की बात का उन्हे पता भी नही था।

मगनकाका ने मुझे बुलाकर पीपे का वह पानी दिखाया और पूछा, "यह किसने बिगाडा है ?"

"मुझे पता नही," मैने साहस के साथ जवाब दिया।

"पता तो तुझे होना चाहिए ; घर मे तेरे अलावा और कौन है जो ऐसा करता ?" काका ने कहा।

"हम सब यही खेलते थे। पर इसका मुझे पता नही।"

"तो क्या अपने-आप यह पानी रग गया ? तुममे से ही किसी ने इसमे रग डाला होगा।"

"मुझे पता नही।"

काका ने और बहुत से सवाल किये, पर मै अपनी बात पर डटा रहा।

तब उन्होने डाट-डपट की, मेरे कान ऐठे और चपते लगाई। परन्तु मै अपने निश्चित उत्तर से जरा भी नही हटा। मैने सोचा कि मार तो हर हालत मे पडेगी ही। अपने मुह अपने-आपको झूठा क्यो स्वीकार करू ? झूठ दोहराता रहूगा तो वह सच मान लिया जायगा।

इधर मेरी जिद का जोर बढता गया, उधर मगनकाका का चित्त मुझे सुधारने के लिए जोर पकडता गया। झूठ बोलने की मेरी यह बुराई कैसे मिटाई जाय, इस चिता ने उनके हृदय को दुखी बना दिया। थप्पडो से जब मै बाज नही आया तब वह मुझे घर से बाहर ले गए और बगीचे मे बनी एक टट्टी मे बद कर दिया। मै डरा नही और न सच बोलने की अक्ल ही मुझमे आई। थोडी देर बाद काका ने मुझे बाहर निकाला और सच कहलवाने के लिए बडी मीठी आवाज से उलट-पुलट कर प्रश्न किये। परन्तु मै उनकी सारी बाते पी गया। फिर सजा मिली, पर मै अपनी बात पर अडिग बना रहा। काका बहुत दुखी हुए।

काका-भतीजे के बीच का यह द्वन्द्व कोई डेढ-दो घटे चलता रहा। तब मेरी माताजी आई और आखो मे आसू भरकर बोली, "बालक को कही ऐसी सजा दी जाती है!" इतना कहकर वह मुझे हाथ पकडकर ले गई।

अपने दुराग्रह मे मैं उस समय भले ही अपनी बात पर अडा रहा, पर मैं आज अनुभव करता हू कि वह मेरी भयकर भूल थी और मगनकाका ने जो किया वह बिल्कुल ठीक था। सत्य-पालन पर बिना इतना आग्रह रखे आश्रम की नीव पक्की नही हो सकती थी। मैंने झूठ बोला और मगनकाका आदि को इतना दुखी किया, इसका आज भी मुझे पछतावा है।

यह मगनकाका की महानता थी कि उस दिन के बाद उन्होने कभी मेरे शरीर को हाथ नही लगाया। शायद उन्होने यह भी निश्चय-कर लिया कि आगे किसी भी बालक को न पीटा जाय।

इस प्रसग के बाद मेरे मन को भी कुछ नया प्रकाश मिला। मेरे मन मे यह भावना पैदा हुई कि घरवालो को कितना अधिक दुखी कर रहा हू। उस दिन से पहले मेरे मन मे भावना थी कि मैं सबकी डाट-फटकार के ही योग्य हू और सबका अप्रिय हू, परन्तु अब यह बात ध्यान मे आई कि घर मे मेरा स्थान कम नही है। माता के वात्सल्य ने और मगनकाका की क्षमा ने मेरे कठोर मन को पिघला दिया।

: २७ :

स्वदेशी की उपासना

बापू ने जब सर्वोदय के सिद्धात लोगो के सामने रखे तब श्रम और त्याग को उन्होने बहुत महत्व दिया। परन्तु घर मे या सस्था मे स्वदेशी यानी भारत की बनी चीजे बरतने की बात पर उन्होने ध्यान नही दिया था। यही नही, अग्रेजी वेशभूषा के बारे मे वह काफी सावधान थे। आगे चलकर जब उन्होने स्वावलम्बन और सादगी पर ध्यान दिया तो स्वदेशी का मार्ग खुल जाना स्वाभाविक था।

आश्रम के नित्य के जीवन मे स्वदेशी का पालन विधिवत रूप से अहमदाबाद मे आश्रम की स्थापना होने पर शुरू हुआ। लेकिन जिस प्रकार

किसी वृक्ष के भूमि की सतह के ऊपर फलने-फूलने से पहले उसकी तैयारी होती है, उसी प्रकार स्वदेशी के लिए अभी से तैयारी हो रही थी।

एक दिन हमारे घर मे कुछ नया सामान आया। पिताजी, मगनकाका मणिलालकाका और दो-एक अन्य फीनिक्सवासी उस नये सामान को उलट-पुलट कर बडे ध्यान से देखते रहे। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि उस सामान मे कपडे के दो-चार थान और अगरबत्ती, आदि छोटी-मोटी चीजे थी। एक-एक चीज देखने के साथ-साथ उस पर चर्चा भी होती।

इसी बातचीत के सिलसिले मे प्रथम बार मैने बगाल और पजाब का नाम सुना। यह भी सुना की बगाल मे स्वदेशी कपडे ही पहनने का प्रचार अधिक है। अब स्वदेशी माल खरीदने की चर्चा हमारे घर मे होने लगी। मुख्यत. मणिलालकाका और मगनलालकाका ने उन स्वदेशी वस्तुओ की विशेष प्रशसा की और दक्षिण अफ्रीका मे रहते हुए भी अपने भारत देश का बना माल भविष्य मे खरीदने का उत्साह प्रदर्शित किया।

कपडे के जो थान आये थे उनमे खाकी जीन और मद्रासी कपडे को अधिक पसन्द किया गया। इन दोनो कपडो का रग फीका और मटमैला था। विलायत के बने जो कपडे हम घर मे बरतते थे उनकी तुलना मे इन कपडो का रग और चमक बहुत घटिया थी। फिर भी अपने देश की बनी इन स्वदेशी चीजो का मेरे चित्त पर गहरा प्रभाव पडा।

फीनिक्स के वातावरण मे उस समय अपने देश के प्रति श्रद्धा-भक्ति की लहर जोरो पर थी। जहा तक मुझे याद है. बापूजी और हरिलालकाका तब ट्रासवाल मे जेल काट रहे थे। हरिलालकाका की पत्नी, जिनको मै अपने मातृपक्ष की अत्यधिक निकटता के सम्बन्ध के कारण गुलाब मौसी कहता था, उन्होने तथा मेरी माता ने मिलकर एक छोटा-सा गीत लिखा। उसका भाव था: देश-हित के लिए दौडो। तन-मन-धन को अर्पण कर जेल-महल मे जाकर आनन्द करो। पू० कस्तूरबा और फीनिक्स की अन्य माताए दोपहर बाद इकट्ठी बैठकर इस गीत को बडे मधुर और गद्गद कठ से गाती थी। मै बडी श्रद्धा से उसे सुनता था और खेल-कूद के समय उसे गुनगुनाया करता था। इस भजन के सरल शब्दो का मेरे मन पर जैसा गम्भीर प्रभाव पडा, वैसा ही गम्भीर प्रभाव पिताजी और काका की उस एक ही दिन की स्वदेशी वस्तुओ के सम्बन्ध की बातचीत का भी पडा। स्वदेशी के प्रति अपनेपन की भावना तभी से मेरे मन पर गहरी अकित हो गई और तब बढिया-से-बढिया और चमकीला विलायती माल भी मेरे लिए इतना चित्ताकर्षक नही रह गया, जितना पहले था।

एक बात हमारे घर मे अच्छी थी और वह यह कि जो कुछ नया परिवर्तन घर में करने का विचार अपनाया जाता था उसमे दो राये क्वचित् ही होती थी। पिताजी और काका दोनो ही नये परिवर्तन को लाने मे सहयोग से काम करते थे और मेरी माताजी व काकी भी नई बात को अपनाने मे पूरा मन लगाती थी। इन सबमे मगनकाका सबसे आगे रहते थे और उनका सुझाव सब स्वीकार कर लेते थे। 'स्वदेशी' की ओर मुडते ही घर के लिए खरीदी जाने वाली चीजो पर मगनकाका ने कडी छानबीन शुरू कर दी। कपडे का रगढग बदल दिया गया। मेरे लिए गहरे नीले रग का मखमल का बना हुआ चमकीला 'सेलर्स सूट' (नाविक के पहनने के नमूने का कोट-पतलून) सिलवा दिया था, वह अलग कर दिया गया। खाकी कपडे का जो स्वदेशी थान आया था, उसके मेरे लिए कोट और नेकर घर मे ही बनवाये गए। उस कपडे को काटकर सीने के लिए कई दिन तक सध्या के समय स्वय मगनकाका, मेरी माताजी और काकी का सम्मिलित प्रयत्न चलता रहा। तीनो ने एक-दूसरे को सीना-काटना सिखाया और एक अच्छी-खासी कपडे की जोड मेरे लिए तैयार हो गई। सेलर्स सूट मुझे बहुत प्रिय था, परन्तु जब घर का बना हुआ यह सादा कोट-नेकर तैयार हो गया तब उसे पहनकर मुझे ऐसा लगने लगा कि अब मै छोटे लडके से बडा आदमी बन गया हू। कुछ दिन बाद जब हम लोग डरबन गये तब वहा के जान-पहचान वाले गुजराती मित्र और व्यापारियो ने मगनकाका के कौशल और साहस की बडी प्रशसा की। वैसे डरबन नगर मे जहा बच्चा-बच्चा भी इग्लैड के बने श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ सूट-बूट मे बनठनकर घर से बाहर कदम रखता था, मेरी घर की सिली हुई खाकी व मोटी खुरदरी पोशाक कुछ विचित्र-सी दीख पडती थी परन्तु स्वदेश-प्रेम, स्वदेशी की धुन और अपने पुरुषार्थ से अपनी चीज तैयार करने की निष्ठा को देखकर सभी भारतीय मित्रो मे फीनिक्स के इस काम का स्वागत ही हुआ।

छोटे नाप के मेरे कपडे बनाने मे सफलता मिल जाने पर मगनकाका ने बडी कमीजे और कोट-पतलून बनाने का प्रयोग किया। बाजार से तैयार सिलेसिलाये कपडे लाना प्राय. बन्द ही हो गया। कपडो के सम्बन्ध मे आग्रह रखा गया कि वह अहमदाबादी मिल का ही हो। यहा तक कि इग्लैंड की बनी नेकटाई पहनना भी मगनकाका ने त्याग दिया। विलायती नेकटाई के बदले रगीन धागे से मेरी काकी द्वारा जालीदार नेकटाई तैयार करवाई और जबतक सूट-बूट रहा, डरबन जाते समय वही नेकटाई लगाते रहे।

कपड़ो की तरह और भी चीजो के प्रयोग के सम्बन्ध मे देसी ही

खरीदने और बरतने का प्रयास बढता गया। उसके बदले घर मे ही मगन-काका ने बढई के औजार बनाये और छोटी अलमारी, मेज, चौकी आदि चीजे अपने हाथ से बनाने लगे।

: २८ :

प्रतिज्ञा का बल

प्रतिज्ञा-पालन के सम्बन्ध मे बापूजी बहुत ही कट्टर थे। जिस प्रकार भरत की प्रार्थना, विनती, तर्क आदि सबकुछ रामचन्द्र के सामने व्यर्थ सिद्ध हुए उसी प्रकार प्रतिज्ञा-पालन के सम्बन्ध मे बापूजी के आगे उनके साथी-सम्बन्धी और अनुयायियो की सारी दलीले और अपनी कमजोरी की स्वीकृतिया बिल्कुल बेकार साबित होती थी। अपने निकट का कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कोई भी क्यो न हो, प्रतिज्ञा की मर्यादा का उल्लघन करने की कोशिश करता तो बापूजी अत्यन्त दुखी होते।

बापूजी शुरू से ही अपनी सस्थाओ के कर्मचारियों को छोटी-मोटी प्रतिज्ञाए लेने के लिए लगातार प्रोत्साहन दिया करते थे और फिर प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए उन्हे विवश कर देते थे। 'सादा जीवन और ऊचे विचार' के ध्येय को अमल मे लाने की निष्ठा से, जिन व्यक्तियो ने फीनिक्स मे बसने का, बापूजी का आमन्त्रण स्वीकार किया था, उनमे से सभी लोग बहुत दिनो तक फीनिक्स मे नही टिक पाये।

जिन व्यक्तियो ने बापूजी के साथ रहकर प्रतिज्ञाए लेने तथा उनका पालन करने का अभ्यास डाला, वे ही लोग धीरे-धीरे बापूजी के आश्रम-वासी बन गए। बापूजी का विश्वास था कि "जो मनुष्य व्रतबद्ध नही रहता वह किसी भरोसे का नही होता।" अपने सहकारियो और विद्या-र्थियो को बापूजी इसी पैमाने से नापते थे।

वास्तव मे बापूजी के पास सस्था-सचालन के लिए प्रतिज्ञा-पालन ही सबसे बडी निधि थी। वर्षा ऋतु के बादलो की तरह जब भावनाओ का जोर बढ जाता है तब किसी भी सस्था की स्थापना सहज मे हो जाती है, परन्तु थोडा समय बीत जाने पर लोगो का जोश ठडा पड जाता है। एक ओर कार्य-भार बढता जाता है, दूसरी ओर कार्यकर्ताओ का आपस में मेलजोल

घटने लगता है और तीसरी ओर आर्थिक कठिनाइया बढ जाती है। फीनिक्स की सस्था के सचालन मे भी बापूजी को इन कठिनाइयो का सामना कम नही करना पडा। इस पर एक विशेष कठिनाई बापूजी के लिए यह थी कि फीनिक्स से तीन-चार सौ मील दूर ट्रान्सवाल मे राजनैतिक सघर्ष मे उन्हे अपना अधिकतर समय लगाना पड रहा था। इस मुसीबत मे भी बापूजी ने फीनिक्स के ध्येय की ओर सस्था की प्रगति को शिथिल नही होने दिया। एक बार जिस ऊचे विचार को अपना लिया उस विचार पर प्रतिज्ञापूर्वक डटे रहने की बापूजी की निष्ठा ने 'फीनिक्स' के विकास के मूल-स्रोत का काम दिया।

अपने नित्य जीवन मे छोटी और बडी बातो पर प्रतिज्ञा-बद्ध रहने की बापूजी की लीक पर चलने का सफल प्रयत्न करने वालो मे उस समय श्री कैलनबैक और मगनकाका मुख्य थे। इन दोनो ने बापूजी का विश्वास अधिक सम्पादन किया था। श्री कैलनबैक ट्रान्सवाल मे अहर्निश बापूजी के साथ रहते थे और बापूजी के प्रत्येक काम को पूरा करने मे सहयोग देते थे। मगनकाका फीनिक्स मे रहकर अपनी सूझ-बूझ से बापूजी के निर्देश का भरसक पालन करते थे। इसलिए दोनो को क्रमश बापू के हनुमान और लक्ष्मण का उपनाम विनोद मे दिया जाता था। मगनकाका के नाम बापूजी का लिखा हुआ एक पुराना पत्र नीचे दिया जाता है। उस पर चैत्र सुदी सप्तमी की तिथि है, पर वर्ष नही है। सदर्भ से वह सन् १९०९ मे लिखा प्रतीत होता है।

चैत्र सुदी ७

चि. मगनलाल,

तुम्हारे हिसाब से आज सप्तमी होनी चाहिए। छगनलाल के पत्र पर पडी हुई तिथि से मालूम होता है कि तुम्हारी व मेरी तिथि एक ही है। साथ वाले दोनो पत्र कल लिखे गए थे। तुम्हारा पत्र आज मिला। ठीक किया जो तुमने लिखा। मेरे पत्रो के मिलने के बाद भी तुम ऐसा ही पत्र लिखते। तुम लक्ष्मण तो हो ही, लेकिन ऐसा सुदृढ पत्र लिखकर तुमने भरत का काम किया है। जैसे-जैसे मै विचार करता हू, मुझे. . .की इस दीनता को देखकर रोने का जी होता है। एक बार. . . .ने मुझे निराश किया था, मै रोया था।. ने चोरी करके मुझे धोखा दिया तब रोया था। आज फिर मेरी ऐसी स्थिति. . .ने की है। उनके ऊपर मेरी इतनी श्रद्धा और प्यार है कि उन्होने जो अनुचित किया वह खुद मैने किया हो, ऐसा मुझे महसूस हो रहा है। सवेरे भजन करने के बदले मन उसी विचार मे उलझ गया। . . .को फीनिक्स छोडना था तो ठीक तरह से छोडा जा सकता था। इस समय तो वह साधारण नीति मे भी चूक गए है। हद हो गई है।

इससे समझना चाहिए कि अभी और कितनी साधना करना बाकी है। इससे यह भी सूचित होता है कि मनुष्य को प्रतिज्ञा लेने की आवश्यकता है। जो करना हो उसके लिए मन को दे डालने का नाम है प्रतिज्ञा। मन को मुक्त रखने से सैकडो विघ्न आते है। प्रतिज्ञा प्रगति की कुजी है। "मुझ से बन पडेगा तबतक मै मास नही खाऊगा," ऐसा दरिद्र वचन मुझे मास खिलाकर छोडेगा। "देह के गिरने पर भी मै मास नही खाऊगा," ऐसा दृढ वचन मुझे बचायगा और ऊचे ले जायगा। जिन तीन प्रतिज्ञाओ को विलायत जाते समय मैने लिया था उन्होने मुझे बचाया है। . ने ऐसी सुदृढ प्रतिज्ञा नही ली है। फीनिक्स मे रहने के बारे मे यद्यपि. . ने मुझे जताया तो यह कि उन्होने प्रतिज्ञा ली है, किन्तु उन्होंने अपने मन से प्रतिज्ञा नही ली दीखती, अन्यथा आज उनकी यह हालत न होती।

यदि चाहो तो इस पत्र को और साथ के दूसरे दोनो पत्रो को भी... के पास भेज सकते हो।

—मोहनदास के आशीर्वाद

: २६ :

सेवा सर्वोपरि

'स्वदेशी' की उपासना शुरू होने के कुछ महीने बाद पिताजी के साथ हमारे स्वदेश आने की बातचीत चली, परन्तु मि. वेस्ट के बीमार पड जाने के कारण आठ-नौ महीने हमे रुक जाना पडा। पिताजी और मि. वेस्ट दोनो 'इन्डियन-ओपीनियन' के सयुक्त व्यवस्थापक थे और दोनो एक साथ छुट्टी पर नही जा सकते थे। फिर मि. वेस्ट की बीमारी इतनी बढ गई थी कि उनकी तीमारदारी के लिए हर घर से बारी-बारी एक फीनिक्स-वासी को उनके बिस्तर के पास उपस्थित रहना आवश्यक था। फीनिक्स मे डाक्टर-वैद्य की सुविधा नही थी, परन्तु बीमार की परिचर्या और शुश्रूषा मे प्रमाद न हो, इसकी सावधानी बापूजी पूरे आग्रह से रखवाते थे। बापूजी ने मणिलालकाका के नाम जो दो पत्र लिखे है, उनसे इस सबध मे उनकी सजगता का अच्छा परिचय मिलता है।

१७-९-०९

चि. मणिलाल,

परोपकार करना, दूसरो की सेवा करना और ऐसा करने मे अपने को रत्ती-भर भी बड़ा न मानना यही सच्ची शिक्षा है। यह बात अपनी आयु के बढने के साथ तुम अनुभव करोगे। बीमार आदमी की सेवा करने के बराबर दूसरा उत्तम मार्ग क्या हो सकता है ? धर्म का बहुत-सा अश इस मार्ग मे आ जाता है।

मि. वेस्ट को मुर्गी का शोरवा आदि हमने दिया, उसका विचार निष्पक्ष बुद्धि से करना आवश्यक है। बा को ऐसा शोरवा दिये विना यदि उसके शरीर का अन्त हो जाता तो वह मुझे मजूर था। परन्तु बा की स्वीकृति के विना उसे मै कदापि नही देने देता। देखो, देह को आत्मा से बढकर प्यारा नही होने देना चाहिए। देह से आत्मा को जो अलग पहचानता है वह देह की हिंसक रक्षा नही करेगा। यह सब अति कठिन बात है, किन्तु जिसके सस्कार अत्यंत पवित्र है वह उसे सहज बुद्धि से समझता है और इसका आचरण करता है। देह मे रहकर ही आत्मा भला या बुरा कर सकती है, यह धारणा बहुत ही गलत है। इस धारणा से ससार मे घोर पाप हुए है और हो रहे है। देह तो दमन करने के लिए हमे मिली है।

—बापू के आशीर्वाद

१२-१०-०९

चि. मणिलाल,

तुम मि. वेस्ट और दूसरो की सेवा करते हो यह तुम्हारी सर्वोत्तम पढाई है। जो आदमी अपने कर्त्तव्य का पालन करता है वह निरन्तर पढता ही है। तुम जैसा लिख रहे हो, अध्ययन को तुम्हे छुट्टी देनी पड़ रही है, यह सही नही है। तीमारदारी करने मे तुम अध्ययन ही कर रहे हो।

अक्षरज्ञान को छोडना पड रहा है, यह सही बात है, पर सेवा का अवसर बार-बार नही मिलता। अक्षरज्ञान बाद मे लिया जा सकता है। मन मे यह विश्वास रखो कि जब तुम्हारा मन स्वच्छ है तो बीमार की सेवा के कारण तुम बीमार नही पडोगे। यदि बीमार हो भी गए तो मै चिन्तित नही होऊगा। अपना रहन-सहन सुधारना, यही अध्ययन है, दूसरा सब मिथ्या है।

बापू के आशीर्वाद

इन पत्रो से प्रकट होता है कि ट्रान्सवाल मे अत्यधिक व्यस्त होते हुए भी फीनिक्स की छोटी-मोटी बातो से बापूजी पूरे जानकार रहते थे। अपने

लिए, अपने पुत्र के लिए और मगनकाका-जैसे अपने परिवार के युवको के जीवन मे त्याग और सेवा का आग्रह बढाते जाते थे। स्वय अहिसा के कट्टर उपासक थे, फिर भी बीमार अग्रेज मित्र को मासाहार पहुचाने की व्यवस्था करने की महान उदारता बापूजी के हृदय मे थी।

मि. वेस्ट की बीमारी साधारण नही थी। मेरा ख्याल है कि गम्भीर प्रकार के 'टाइफाइड' के रोग से वह पीडित थे। सोलह-सत्रह वर्ष की आयु के अपने होनहार पुत्र को उनकी सेवा मे लगाए रखने का महान साहस बापूजी-जैसे असाधारण पिता ही कर सकते है। यह भी बापूजी की छत्रछाया का प्रताप था कि पूरा भारतवासी परिवार एक अग्रेज साथी की पूरी आत्मीयता से परिचर्या करे।

जबतक मि. वेस्ट अपनी लम्बी बीमारी से उठे नही तबतक तो पिताजी का फीनिक्स से बाहर निकलना शक्य नही रहा। बाद मे फीनिक्स से चलने की तैयारी हो ही रही थी कि अकस्मात् मेरा छोटा भाई जल गया। एक दिन मध्याह्न के समय हम सब भोजन करने के लिए रसोईघर के साथ वाले बरामदे मे बैठे थे। रसोईघर के सभी बरतन फर्श पर कायदे से रखकर पिताजी ने हम बच्चो को अपनी-अपनी थाली पर अर्ध गोलाकार ढग से बिठाया और परोसने लगे। रोटी मिल जाने पर 'दाल-दाल' कहता हुआ कृष्णदास दाल की पतीली पर लपका और अपने-आप ढक्कन खोलने लगा। तीन वर्ष का बच्चा तो वह था ही। ढक्कन खोलने के झटके से वह जमीन पर गिर पडा और पतीली भी उलट गई। गरम-गरम दाल उसके कपडे पर गिरी। पिताजी ने बडी शीघ्रता से कृष्णदास को उठा लिया और उसका कपडा उतार दिया, परन्तु कपडा उतारने में कृष्णदास के कधा, गाल, कान आदि बुरी तरह से झुलस गए।

हाथ-के-हाथ घर मे जो बना इलाज किया गया। जल जाने का विशेष उपाय वहा कोई नही जानता था। मगनकाका डरबन गये और दवाई ले आये। उन्होने बताया कि चूना और तैल का मिश्रण है। जलने की जगह पर इस तेल की पट्टी बाधी गई। इतनी भारी पीडा रोये-कराहे बिना चुपचाप कृष्णदास सहता रहा। चार-पाच दिन तक घर मे सब बहुत चिन्तित रहे। बाहर बडी तेज हवा चल रही थी और कृष्णदास के जलने के घावो को हवा से बचाना बहुत आवश्यक था। प्राय: सात-आठ दिन तक सुबह से शाम तक मुझे उसकी खाट के पास रहना पडा। उसकी पीडा को देखकर क्षण-भर भी वहा से हटने की इच्छा मुझे नही होती थी। खेल-कूद सब भूल गया। बीमार की सेवा का यह प्रथम अनुभव मुझे सदा याद रहेगा।

एक वार आश्रम की प्रार्थना मे प्रवचन करते हुए वापूजी ने कहा था, "जब हम किसी बीमार की सेवा करे तब हमारे मन मे इस प्रकार की भावना पैदा होनी चाहिए कि ईश्वर करे उस रोगी की सारी पीडा मुझे मिल जाय और उसकी वेदना दूर हो जाय।" वापू का यह आदर्श वचन वताता है कि दूसरो के सुख-दु ख को उन्होने कितना आत्मसात् कर लिया था।

: ३० :

फीनिक्स आश्रम की समस्याएं

राजनैतिक सघर्ष मे अत्यधिक व्यस्त होने पर भी वापू का ध्यान वरावर फीनिक्स आश्रम की ओर वना रहता था। वहा की समस्याओ के वारे मे वह वरावर सोचते और आवश्यक आदेश देते रहते थे।

यहा मै उनके दो-तीन पत्रो के कुछ अश एक पुराने पत्र-सग्रह से दे रहा हू। इन पत्रो पर तिथि या हस्ताक्षर नही है, फिर भी उन्हे पढने से प्रतीत होता है कि वापू ने उन्हे फीनिक्स सस्था के सचालन के सवध मे लिखा था। मेरा अनुमान है कि ये पत्र मगनकाका के नाम ही लिखे गए होगे :

— १ —

अपने प्रति असतोष या मर्म वचनो के कारण यदि तुम हटना चाहो तो इसमे भेद-बुद्धि समझी जायगी और उन लोगो के लिए एव तुम्हारे लिए मेरा जो कर्त्तव्य होगा उसमे मुझे वाधा आवेगी।....तुम हटने का रास्ता लो, इसमे उनका अकल्याण ही होगा। हम महाप्रयास मे पडे है। तत्वज्ञान की खोज कर रहे है।

— २ —

तुम जरा-सा विचार करो तो देख सकोगे कि कौन किसको निकाले, यह सवाल पैदा होता ही नही है। जव फीनिक्स की स्थिति कमजोर पडेगी तव निकालने-रखने की वात नही रहेगी। लेकिन जिसे खरा रग लगा होगा वही रहेगा। उस समय तो यह प्रश्न आयगा कि कौन रुकेगा। आज हम वेतन नही दे रहे है, लेकिन खाना-भर दे रहे है। इसमे कमी करके कष्ट उठाकर सूखी रोटी खाकर कौन रहेगा, यही सवाल है।...

तक पहुचा ? सभी छात्रो के खर्च मे कुछ बढती करने की आवश्यकता है। उनके माता-पिता से मिलकर छगनलाल उन्हे समझाए।

स्वामी शकरानद के रुक जाने से मुझे खुशी हुई। हिंदू और मुसलमान कौमो के बीच जो सद्भाव है, उसको अधिक पुष्ट करने की कोशिश वे करेंगे ऐसी मुझे आशा है।....वेस्ट से कहना कि प्रत्येक रविवार को सबको एकत्र करके प्रार्थना करने का जो प्रारभ किया है उसे किसी भी हालत मे छोडना नही। श्रीमती वेस्ट की बीमारी के समय प्रार्थना-स्थल बदल देना अधिक उपयुक्त होगा। पर प्रार्थना वन्द रहनी ही नही चाहिए। मेरे पत्र की फीनिक्स से सबधित बातो को वेस्ट के पास लिख भेजना। मैने जो उत्तर मागे है, छगनलाल ब्यौरे से लिख भेजे। मै उम्मीद रखता हू कि सात मई तक छगनलाल का पत्र मुझे मिल जायगा। —मो० क० गाँधी

जेल मे बैठे-बैठे सत्याग्रह आदोलन की गति-विधि के बारे मे बापूजी जितने उत्सुक रहते थे, उससे कही अधिक फीनिक्स सस्था की प्रगति और फीनिक्स मे काम करने वालो की विचार-शुद्धि तथा जीवन-शुद्धि के लिए वह उत्सुक रहते थे। क्योकि अपने और अपने साथियो का जीवन ऊचा उठता रहे तो सत्य की लडाई मे सफलता देर-सवेर मिल ही जायगी, इसमे बापूजी को लेशमात्र भी शका नही थी।

: ३१ :

हमारी स्वदेश वापसी

दो-एक महीने बाद जब कृष्णदास बिल्कुल ठीक हो गया तो हम लोग फीनिक्स से हिन्दुस्तान आने के लिए चले। छ. वर्ष समुद्रपार रहने के बाद पिताजी राजकोट लौट रहे थे। मुझे भी अपने दादा और दादीजी के दर्शनों की बडी उत्सुकता थी। मगनकाका ने अपने पुत्र केशु को भी हमारे साथ भेजने का निश्चय किया। फीनिक्स से जब हम चले तब हमारी सख्या बाल-बच्चो सहित छ थी। माताजी, पिताजी, केशु, कृष्ण, मेरी छोटी बहन नर्मदा और मै। फीनिक्स के घर मे रुकने वालो मे तीन जने थे—मगनकाका, काकी और केशु की छोटी बहन राधा। भारत की यात्रा पूरी करके डेढ़ वर्ष बाद जब हम फीनिक्स लौटे तब मेरी बहन नर्मदा नही रही थी।

तो बोलेगे नही, पर इससे दोनो को नुकसान है। मित्र की स्थिति विकट हो जाती है। हद से ज्यादा बोझ छगनलाल को नही उठाना चाहिए। उनकी मा ने मुझसे कहा था कि छगनलाल की आदत हरे-भरे पेड़ के नीचे सूखने की है। यह सही है। फीनिक्स के दूसरे परिवारवालो को भी, जिनके यहा ज्यादा बच्चे है, अतिथि का बोझ अपने ऊपर नही लेना चाहिए, बल्कि पुरुषो को चाहिए कि वे अपनी पत्नी का बोझ हल्का करे।

मै चाहता हू कि सब फीनिक्सवासी टाल्सटाय की जीवनी और उनके प्रायश्चित्त-पत्र अवश्य पढे। दो दिन मे पढे जा सकेगे। गुजरातियो को चाहिए कि वे कवि राजचन्द की उन दोनो पुस्तको को पढ ले जो मेरे सग्रह मे वहा पडी है। सध्या की प्रार्थना के समय प्रतिदिन दस मिनट उसे पढा जा सकता है। राजचन्द के बारे मे जितना अधिक मनन करता हू मेरी राय दृढ होती जा रही है कि अपने समय के वह सर्वश्रेष्ठ भारतीय थे। उस पुस्तक को पढने से मुझे बडी शान्ति मिली है। बार-बार पढने योग्य पुस्तक है। अग्रेजी साहित्य मे इसकी तुलना मे आ सके ऐसी विचारो की शुद्धि से पूर्ण पुस्तक टाल्स्टाय की पुस्तक के अतिरिक्त मुझे नही दीखती। कवि राजचन्द और टाल्स्टाय दोनो ने जैसा उपदेश दिया है वैसा अपने जीवन मे भी आचरण किया है। उसमे गहरा अनुभव है।

मणिलाल को अपने अध्ययन के बारे मे कुछ असतोष है। इसको मै समझ सकता हू, वह रहेगा। हम सब भिन्न-भिन्न अनुभव ले रहे है। इस अनुभव मे प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियो की बलि दी जा रही है। उनको चाहिए कि वे जो-कुछ सिखाया जा रहा है वह भली-भाति सीख ले। मुझे उम्मीद तो है कि उसकी परीक्षा मै स्वय ले सकू, ऐसा दिन मुझे मिल जायगा। मेरी अपेक्षा है कि मै स्वयं उसे पढाऊगा। वह रेखागणित मे कच्चा है यह मै जानता हूं। इस समय परिश्रम करने और नियमित जीवन बिताने की वह आदत डाले। इससे उसे काफी लाभ होगा। बाग-काम मे भी वह समय देता है यह अच्छा है। फिर उसे निश्चित होकर आनन्द से अपने काम मे एकाग्र होना चाहिए।

फीनिक्स मे सभी लडके माणिकम् से तमिल सीखना शुरू कर दे। मगनलाल से कहना कि जिस प्रकार उसने अग्रेजी काव्य याद कर लिये उसी प्रकार तमिल भी याद कर ले।

हरिलाल की पत्नी वियोग के कारण चिंता मे रहती है या प्रसन्न रहती है? वा घर का काम अब कुछ कर सकती है? . . .स्कूल का मकान कहा

तक पहुचा ? सभी छात्रो के खर्च मे कुछ बढती करने की आवश्यकता है। उनके माता-पिता से मिलकर छगनलाल उन्हे समझाए।

स्वामी शकरानद के रुक जाने से मुझे खुशी हुई। हिंदू और मुसलमान कौमो के बीच जो सद्भाव है, उसको अधिक पुष्ट करने की कोशिश वे करेंगे ऐसी मुझे आशा है।. . . .वेस्ट से कहना कि प्रत्येक रविवार को सबको एकत्र करके प्रार्थना करने का जो प्रारभ किया है उसे किसी भी हालत मे छोडना नही। श्रीमती वेस्ट की बीमारी के समय प्रार्थना-स्थल बदल देना अधिक उपयुक्त होगा। पर प्रार्थना बन्द रहनी ही नही चाहिए। मेरे पत्र की फीनिक्स से सबधित बातो को वेस्ट के पास लिख भेजना। मैने जो उत्तर मागे है, छगनलाल ब्यौरे से लिख भेजे। मै उम्मीद रखता हू कि सात मई तक छगनलाल का पत्र मुझे मिल जायगा। —मो० क० गाँधी

जेल मे बैठे-बैठे सत्याग्रह आदोलन की गति-विधि के बारे मे बापूजी जितने उत्सुक रहते थे, उससे कही अधिक फीनिक्स सस्था की प्रगति और फीनिक्स मे काम करने वालो की विचार-शुद्धि तथा जीवन-शुद्धि के लिए वह उत्सुक रहते थे। क्योकि अपने और अपने साथियो का जीवन ऊचा उठता रहे तो सत्य की लडाई मे सफलता देर-सवेर मिल ही जायगी, इसमे बापूजी को लेशमात्र भी शका नही थी।

: ३१ :

हमारी स्वदेश वापसी

दो-एक महीने बाद जब कृष्णदास बिल्कुल ठीक हो गया तो हम लोग फीनिक्स से हिन्दुस्तान आने के लिए चले। छः वर्ष समुद्रपार रहने के बाद पिताजी राजकोट लौट रहे थे। मुझे भी अपने दादा और दादीजी के दर्शनों की बडी उत्सुकता थी। मगनकाका ने अपने पुत्र केशु को भी हमारे साथ भेजने का निश्चय किया। फीनिक्स से जब हम चले तब हमारी सख्या बाल-बच्चो सहित छ थी। माताजी, पिताजी, केशु, कृष्ण, मेरी छोटी बहन नर्मदा और मै। फीनिक्स के घर मे रुकने वालो मे तीन जने थे—मगनकाका, काकी और केशु की छोटी बहन राधा। भारत की यात्रा पूरी करके वर्ष बाद जब हम फीनिक्स लौटे तब मेरी बहन नर्मदा नही रही

डरबन से हमारे स्टीमर को पोरबन्दर पहुचने में ४१ दिन लगे। आजकल बम्बई से डरबन पहुंचने मे १४ या १६ दिन लगते हैं। पिताजी ने मेल स्टीमर छोडकर साधारण स्टीमर पसन्द किया। इससे लाभ यह हुआ कि उस छोटी आयु मे ही मै अफ्रीका के पूर्वी किनारे के महत्वपूर्ण बदरगाहो का अवलोकन कर सका। डरबन से हम 'केजर' नाम के स्टीमर मे चले, जो जर्मन कम्पनी का था। उसका भोपू ब्रिटिश स्टीमरों की तरह काला और मनहूस नही था। बहुत सुदर लाल-पीले रग के पट्टे उस पर थे। वह बहुत बडा और इतना पुराना था कि उसको हिन्द महासागर पार करने की इजाजत नही थी।

जजीबार के बाद 'सोमाली' नाम के एक नए और छोटे जर्मन स्टीमर मे हम लोग हिन्द महासागर पार करके भारत पहुचे। लौटते समय भी हम उसी स्टीमर मे गये, क्योंकि हमारा टिकट वापसी था, जिसकी मियाद डेढ साल की थी।

जब पोरबदर पहुचे तो बदरगाह पर स्वागत के लिए आई हुई भीड के बीच मेरी माता ने मुझे नारायणदासकाका का परिचय दिया। नारायणदास काका सबसे पहले हमे बापूजी के बडे भाई के यहा ले गए। उनका पूरा नाम था लक्ष्मीदास करमचद गाधी। मोहनदासकाका के सगे बडे भाई कोई बहुत बडे आदमी होगे, इस कल्पना से मै उनके घर पहुचा। गुजरात-सौराष्ट्र मे बैठने के लिए जैसे झूले होते हैं वैसे झूले पर वह बैठे थे। हम सबने उनके चरण छुए। उनका भाल-प्रदेश बहुत विशाल था। पूरे घर मे बडी गम्भीरता फैली हुई थी। वह विनोद, बातो की वह भरमार, जो फीनिक्स मे बापूजी के आने पर रहती थी, उनके यहा मैंने नही देखा। थोडी देर पिताजी से उनकी कुछ बाते हुई और हम उनके घर से लौटकर राजकोट के लिए चल पडे।

राजकोट मे दादाजी और दादीजी हमारी प्रतीक्षा मे थे। हमारे स्टीमर को सवा महीने से अधिक बीत गया, इससे वह चितित हो रहे थे। जब हम पहुचे, दोनो बुआ और दादीजी दौडकर स्वागत के लिए आईं। घर के प्रवेश-द्वार पर ही जोशीजी महाराज पिताजी की जन्मकुडली फैलाये हिसाब लगाने बैठे थे कि हमारी यात्रा मे कोई विघ्न तो नहीं आ उपस्थित हुआ? जोशीजी का गणित पूरा होने से पहले ही हम लोग पहुच गए।

राजकोट पहुचकर मुश्किल से आठ-दस दिन पिताजी घर रह पाये। उनको मि. पोलक के साथ सारे भारत के प्रवास मे जाना जरूरी हो गया, क्योंकि दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रह के आन्दोलन मे एक नया अध्याय शुरू हो गया था।

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास मे उस समय की राजनीतिक परिस्थिति के सबध मे बापू ने लिखा है :

"दोनो ओर कुछ शिथिलता आई थी। सरकार ने देख लिया था कि जेलखाने भरने से चुस्त सत्याग्रही हारने वाला नही है। . . .हिन्दी लोग भी उग्र मुकावला करने को तैयार नही थे। कडा मुकावला किया जा सके इतनी सख्या मे सत्याग्रही रहे ही नही थे। कुछ कायर बन गए थे, कुछ बिल्कुल पराजित मनोवृत्ति के हो गए थे और चुस्त बने रहने वाले सत्याग्रहियो को मूर्ख समझते थे। इधर मूर्ख लोग अपनेको समझदार मानते थे और ईश्वर पर, सत्याग्रह के सघर्ष पर तथा अपने साधन की सत्यता पर पूर्ण विश्वास रखकर जमे हुए थे। उन्हे भरोसा था कि अन्त मे विजय सत्य की ही होगी।"

घनघोर अधेरे मे भी बापूजी का दमकता हुआ श्रद्धाबल ऐसा था कि निराशा उन्हे छू तक नही सकती थी। जल्दी ही ऐसा समय आया कि जेल के बाहर निकलकर राज्यकर्त्ताओ से चर्चा करने के लिए जाने का उनको अवसर मिला। पिछले प्रकरण मे मि. पोलक के नाम प्रिटोरिया जेल से लिखा हुआ बापूजी का जो पत्र दिया गया है उसमे लिखने की तारीख २६ अप्रैल सन् १६०६ की है। तीन महीने की सजा काटकर बापूजी मई के मध्य मे रिहा हुए और तुरन्त ही फिर से सत्याग्रह करके वह जेल गये तथा २४ मई को उनको तीसरी बार तीन महीने की सजा मिली। इसके तीन सप्ताह बाद ही, १६ जून १६०६ को ट्रान्सवाल की भारतीय जनता उठ खडी हुई। जोहान्सबर्ग मे आमसभा की गई और बापूजी को तथा श्री पोलक को क्रमश: इग्लैड और भारत मे प्रतिनिधि-मण्डल ले जाने के लिए नेता चुना गया। इधर बापूजी ने अपना मन जेल-महल मे कष्टो की उपासन करने मे लगाया था और अपनी सस्था के विकास करने तथा रचनात्मक कार्य मे अपना सबकुछ होम देने का सकल्प किया था। लेकिन जनता ने उन्हे राजकीय समझौते के लिए प्रयत्न करने को विवश कर दिया। बापूजी ब्रिटिश पार्लमेट के सदस्यो के पास दक्षिण अफ्रीका के भारतीयो की बात रखने के लिए ता २३ जून को केपटाऊन से रवाना हुए और १० जुलाई १६०६ को लदन पहुचे।

इधर भारत मे श्री पोलक अकेले ही आये, क्योकि उनके साथ भेजने के लिए ट्रासवाल के भारतीयो ने जिन प्रतिनिधियो को चुना था उन सभी को वहा की सरकार ने जेलो मे डाल दिया था।

यहा आकर श्री पोलक ने बंबई, कलकत्ता, मद्रास, इलाहाबाद आदि

कई शहरो मे जाकर भारत के उस समय के राजकीय नेताओ को और अखबार वालो को ट्रान्सवालके सत्याग्रह की जानकारी दी। पिताजी ने भी उन के साथ दो-एक मास तक देश-भर मे प्रवास किया और उनके काम मे यथाशक्ति सहयोग दिया।

इस प्रवास से राजकोट लौटने के बाद तुरन्त पिताजी को बापूजी की सूचना मिली कि वह बैरिस्टरी पढने के लिए विलायत जाय।

: ३२ :

बैरिस्टरी किस लिए ?

भारतीय प्रवासियो पर दक्षिण अफ्रीका मे कानून के बल पर और सरकारी अफसरो की जोर-जबरदस्ती से जो अशोभनीय अन्याय दिन-प्रति-दिन होते रहते थे, उनका निवारण करने मे बापूजी अपनी बैरिस्टरी की विद्या का भरपूर प्रयोग कर रहे थे। ट्रान्सवाल के जोहान्सबर्ग नगर में वकालत का काम करने के लिए बापूजी ने अपना कार्यालय खोल रखा था। उसमे बापूजी के साथ काम करने वाले अनेक सहायक थे, जिनमे मि. रिच, मि. पोलक-जैसे विद्वान अग्रेज भी थे। अदालत मे अपना मुकदमा लडने के लिए भोले और प्राय: अनपढ भारतवासियो को सद्‌बुद्धि वाले नि स्वार्थ और चतुर वकील की सहायता दक्षिण अफ्रीका मे हर समय मिलती रहना जरूरी थी। अगर भारतीय और एशियाई लोगो के पक्ष मे काम करने वाला कोई भी समर्थ वकील या बैरिस्टर न होता तो दक्षिण अफ्रीका से भारतीय व एशियाई लोगो की जड बडी जल्दी उखाड दी जाती।

दक्षिण अफ्रीका मे जो सत्याग्रह-आन्दोलन चलाया जा रहा था उस आन्दोलन की नीव मे असहयोग का उद्देश्य नही था। अग्रेजी सरकार और अग्रेजी अदालते न्याय के पथ पर चलने की निष्ठा रखती है, यह भरोसा तब बापूजी के मन मे था। इस कारण जब एक ओर वर्ण-विद्वेष वाले कानून का भग करके वीर सत्याग्रही जेल जा रहे थे तब दूसरी ओर ट्रान्सवाल के हिन्दी व्यापारियो आदि के छोटे-मोटे मुकदमो की पैरवी करने का काम बापूजी के वकालत के कार्यालय द्वारा चलाया जा रहा था। बापूजी वकालत का यह सारा काम कर्त्तव्यबुद्धि से तथा निश्चित और स्वल्प मेहनताने से करते

थे। जब सत्याग्रह, जेल-यात्रा, फीनिक्स की सस्था आदि का काम बढता गया और बापूजी के पास समय कम रहने लगा तब वकालत के काम का सिलसिला कायम रखने के लिए और व्यक्तियो को तैयार करना बापूजी ने आवश्यक समझा। फिर बापूजी का इरादा ट्रान्सवाल और दक्षिण अफ्रीका के काम से जल्दी-से-जल्दी छुट्टी पाकर भारत लौटने का था। इसलिए भी अपने पीछे काम सभाल सके, ऐसे दो-चार नवयुवको को बैरिस्टरी सिखाने की बात बापूजी ने अपने मन मे पक्की की। इस दृष्टि से एक तो मि. पोलक से सोलिसिटर का अभ्यास-क्रम पूरा करने के लिए बापूजी ने आग्रह किया। दूसरे श्री सोराबजी शाहपुरजी अडाजनिया को, जो होनहार पारसी युवक थे, बैरिस्टर बनने के लिए बापूजी ने लदन भेजा। वह बैरिस्टर होकर दक्षिण अफ्रीका लौट आये और सेवा का काम भी उन्होने आदर्श रूप से शुरू कर दिया। परन्तु ऐसे भले और श्रेष्ठ व्यक्ति का बुलावा ईश्वर के दरबार से बडी जल्दी आ गया और दक्षिण अफ्रीका की भारतीय जनता शोकमग्न होकर उनका स्मरण ही करती रह गई।

बापूजी ने लन्दन जाकर बैरिस्टर हो आने के लिए मेरे पिताजी से भी कहा। मेरे पिताजी भारत मे मैट्रिक पास थे और फीनिक्स मे 'इन्डियन ओपीनियन' के सपादन का काम वर्षों तक करने से उनके अग्रेजी-ज्ञान मे काफी वृद्धि हुई थी। इसलिए लन्दन मे पढना उनके लिए आसान था। परन्तु सामान्य बुद्धि के व्यक्ति को बापू का यह तरीका समझ मे आना कठिन था। अपने ही पुत्र, हरिलाल गाधी और मणिलाल गाधी स्कूल-कालेज मे पढने के लिए और यूनिवर्सिटी मे जाकर बैरिस्टरी-जैसी उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिए व्याकुल थे। तब बापूजी उस शिक्षा को निरर्थक एव हानिप्रद बताकर उन्हे ऐसा करने से रोकते थे। लेकिन उन्ही दिनो मे सोराबजी, मेरे पिताजी आदि को विलायत पढ़ने के लिए भेजने की सारी व्यवस्था बापूजी ने स्वय की।

बापूजी के स्वभाव की यह मौलिक विशेषता थी। रेलवे-मोटर आदि यन्त्रो के चक्कर मे न पडने के लिए बापूजी सबसे बारम्बार आग्रह करते थे, परन्तु देश-सेवा का काम पूरा करने के लिए उन साधनो का वह उपयोग भी कर लेते थे। इसी प्रकार प्रचलित यूनिवर्सिटियो की शिक्षा के विरुद्ध होते हुए भी बापूजी ने दक्षिण अफ्रीका का सेवा-कार्य पूरा करने के इरादे से मेरे पिताजी को विलायत भेजा। उनकी लदन की पढाई का खर्च बापूजी के परममित्र डा. प्राणजीवन मेहता ने दिया।

बैरिस्टरी की परीक्षा देकर पिताजी के लौटने मे जब कुछ महीने बाकी

रहे तब राजकोट मे हमारे घर के वातावरण मे उत्साह बढ गया। मेरे छोटे चाचा जमनादास गाधी, जो उस समय हाई स्कूल मे पढते थे, बैरिस्टर के बडप्पन की नई-नई बाते घर मे सुनाते थे। जब बैरिस्टर बनकर पिताजी लौटेगे तब घर मे यह शोभा नही देगा, वह नही जचेगा, आदि। बैरिस्टर के बेटे को इस तरह कपडा पहनना होगा, इस प्रकार शान से बातचीत करनी होगी, इत्यादि बाते सुन-सुनकर मुझे भी आभास होने लगा कि चार-छ महीनो के बाद सचमुच मै भी बडा हो जाऊगा और राजकोट की पाठशाला के लडके मेरी ओर आश्चर्यचकित होकर देखेगे।

परतु अंग्रेजों-जैसा साहब बनने की इस धुन का कुप्रभाव मुझ-जैसे कोमल बुद्धि वाले पर बढे, इससे पहले ही ईश्वर ने हमारी रक्षा की। पिताजी को अकस्मात् इग्लैड से लौटना पडा। वहा की कडी सर्दी से वह बीमार पड गए। वहा के डाक्टरो ने उन्हे तीन-चार सप्ताह आराम के लिए इटली भेजा। परतु वहा से लदन लौटने पर दुबारा उनकी बीमारी बढ गई। इसलिए डाक्टरो ने उन्हे बिना परीक्षा दिये ही तुरन्त स्वदेश लौट जाने के लिए विवश किया।

इग्लैड से पिताजी लौटकर राजकोट आ गए। उसके आठ-दस दिन बाद बापूजी का तार आया। उसी समय फीनिक्स के लिए प्रस्थान की तैयारी शुरू हो गई।

: ३३ :

फिर फीनिक्स : बापू के प्रेरक पत्र

कई नगरो की झाकी देखते हुए हम बम्बई पहुचे। शीघ्र ही स्टीमर पर जाने की व्यवस्था हो गई और दुबारा अपने जाने-पहचाने 'सोमाली' स्टीमर मे पहुचकर मेरा जी खिल उठा। समुद्र-यात्रा की जो तैयारिया की गई उनमे बबूल के दातुनो की एक बडी गड्डी, बिस्कुट के डिब्बे, चावल व आलू की बोरी और मेरे लिए बम्बई के बनियो की-सी काली गोल टोपी आदि चीजे थी।

'सोमाली' जर्मन स्टीमर के लिए हम लोगो का वापसी टिकट दूसरे दरजे का था, परन्तु हमारे-जैसे बडे परिवार के लिए आवश्यक बडे कमरे

की दूसरे दरजे मे कमी थी, इसलिए इस बार हमारी यात्रा पहले दरजे में हुई। जमनादासकाका के लिए, जो हमारे साथ जा रहे थे, टिकट तीसरे दरजे का लिया गया, क्योंकि वह नया लिया जाना था, इसलिए खर्च मे बचत की जा सकी। उन्होने आरामकुर्सी साथ मे ले ली थी और उसी पर खुले डेक मे उन्होंने सारी यात्रा तय की। मुझे पहले दरजे के उन सजे-सजाये कमरो के मुकाबले खुले समुद्र की लहरों को देखने और यात्रियो की चहल-पहल मे अधिक आनन्द आता था। पिताजी के बदले छोटे काका के पास ही मै अधिक समय बिताता था। छोटे काका रामायण और दूसरी पुस्तकें पढने में दिन बिताते थे। मै नाविको की दिनचर्या देखने और स्टीमर की मशीनो की गतिविधि जाचने मे उलझा रहता था। प्राय. तीन सप्ताह बाद एक दिन ब्राह्म मुहूर्त्त मे हमारे जहाज ने डरबन के बन्दरगाह मे प्रवेश किया। बिल्कुल तट पर लगने से पहले सूर्योदय होने की प्रतीक्षा की गई। जब हम पहुचे तब मगनलालकाका और काकी को हमने एक दूसरे बडे जहाज पर देखा। वे खडे हुए मुस्करा रहे थे।

मगनकाका को प्रसन्न देखकर मुझे तसल्ली हुई, क्योकि मुझे डर था कि उनसे मैने जो चिट्ठी लिखनेका वादा किया था, वह पूरा न होने की वजह से वह नाराज होगे। किन्तु उन्होने एक शब्द भी मुझे नही कहा। मै उतावला हो रहा था कि फीनिक्स की सारी बाते उनसे यही पूछ लू। किन्तुदो-चार मिनट के बाद ही कुछ अग्रेज अफसर हमारे बीच आ धमके और मगनकाका व पिताजी उनसे बातचीत मे उलझ गए। अगर हम लोग गोरी चमडी के होते तो आध घंटे मे ही स्टीमर से उतरकर शहर मे पहुच सकते थे, पर हम तो थे हिन्दुस्तानी। हम-जैसो के लिए डरबन के दरवाजो मे सरलता से घुसने की गुजाइश नही थी।

गोरे अफसर और पिताजी के बीच बहुत देर तक बातचीत हुई। इसके बाद उसने जमनादासकाका को अग्रेजी मे बडा कागज भरकर कुछ लिखवाया। उसे यकीन हो गया कि जमनादासकाका पढे-लिखे व्यक्ति है। पिताजी के पास अपना, मेरी माताजी का और सभी बच्चों का वापसी टिकट था और नेटाल मे प्रवेश पाने का परमिट भी था। इसलिए अन्य भारतीयो के मुकाबले चुगी के अधिकारी के चगुल से हमारा छुटकारा जल्दी हो गया और दक्षिण अफ्रीका की धरती पर हम उसी दिन मध्याह्न से पहले पैर रख सके। लेकिन कुछ लोगो का स्टीमर से नीचे उतारना मुश्किल हो गया। उनकी सहायता के लिए पिताजी को बहुत देर तक अफसर के साथ बातचीत करनी पडी। दो आदमी तो बहुत ही परेशान हो गए। वे पिताजी के पास गिडगिडा रहे थे। उनके लिए पिताजी ने भरसक कोशिश की,

परन्तु वह अधिकारी रत्ती-भर भी नही पसीजा। उसे शायद यह शक हो गया था कि उनके पास अपने नही, किसी और के परमिट है। इसलिए उनकी कानूनी जाच करने पर वह तुल गया।

चुगी से पार होने के बाद हम सीधे रुस्तमजी सेठ के घर पहुचे, जो हम सब फीनिक्सवासियो के कुटुम्बीजन-से थे। वहा कुछ देर ठहरकर हम लोग स्टेशन पर गये और फीनिक्स के लिए रवाना हो गए। घटे-भर का रेल का सफर और ढाई मील की पैदल यात्रा पूरी करने तक सारे मार्ग मे मगनकाका से मैने बहुत-सी बाते सुनी। हमारी अनुपस्थिति मे फीनिक्स मे कई परिवर्त्तन हो चुके थे। बापूजी ने ट्रासवाल में अपनी दिनचर्या में भोजन मे कठिन प्रयोग शुरू किये थे। यह सब सुनकर मै चकित रह गया। ऐसा प्रतीत हुआ कि मै किसी नई दुनिया मे पहुच गया हू।

हम लोग जब फीनिक्स पहुचे, रात हो गई थी। दूसरे दिन सवेरे मै फीनिक्स मे चक्कर काटने को निकल पडा। हमारे घर का चौडा बगीचा बहुत सुन्दर हो गया था। सतरे, केले, लुकाट, नीबू, सबकुछ फलने लगे थे। एक सुन्दर नया मकान पुस्तकालय के लिए बन गया था। किन्तु हमारे घर के पडोस मे जो दूसरे मकान थे, वे सुनसान हो गए थे। बापूजी का बडा घर भी सूना पडा था और हमारी कोर्डिस-शाला उजड गई थी। साथ ही, जब मुझे पता चला कि महीनो तक बापूजी के फीनिक्स आने की सभावना नही है और देवदासकाका भी बापूजी के पास ही रहने वाले है तो मै उदास हो गया।

किसी दिन बापूजी का पत्र, किसी दिन बापूजी द्वारा सूचित की गई पुस्तक, किसी दिन टाल्स्टाय की कहानिया और उनके उपदेश आदि पर चर्चा होती थी। मेरी समझ मे कुछ अधिक नही आ पाता था, परन्तु मगन काका की एक बात मेरी समझ मे आ गई। वह यह कि "जो पसीना न बहावे, उसे भोजन करने का अधिकार नही है; हाथ मे कुदाल या कुल्हाडी के निशान न पडे हो उसको भोजनालय मे प्रवेश मिलना ही नही चाहिए।" उन चर्चाओ से दूसरी बात मेरी समझ मे यह आई कि साहब बन कर रहना अच्छा नही। बापूजी बडप्पन छोडकर मजूर-किसान का जीवन अपनाने का जो आग्रह करते है वह ठीक है। सूट-बूट की शान के चक्कर मे हमे नही पडना चाहिए।

मै बता चुका हू कि जब मेरे पिताजी लन्दन बैरिस्टरी पढने के लिए गये थे तब राजकोट मे अपने छोटे काका की प्रेरणा से अग्रेज साहबो का-सा जीवन प्राप्त करने के लिए मै कैसे दिवास्वप्न देखने लगा था और बैरिस्टर का बेटा बनकर राजकोट के स्कूल के लड़को के बीच ऊचा सिर

रखकर घूमने-फिरने की कैसी उम्मीद रखता था। फीनिक्स लौटने के कुछ ही दिन बाद जमनादासकाका मगनकाका के प्रभाव मे आ गए और साहब बनने की उमग छोडकर बापूजी की बात को समझने और करने की आकाक्षा हमारे दिल मे पैदा हुई। मै यह नही कह सकता कि जमनादास-काका के मन मे क्या-क्या बाते उठती थी, परन्तु अपने बारे मे बता सकता हू कि जब मैने मगनकाका के मुह से सुना कि बापूजी ने बूट और मोजे पहनना छोड दिया है तब उनके इस त्याग का मुझ पर गहरा प्रभाव पडा। तब-तक मै यह समझता था कि हमारे घर मे जिस प्रकार पिता, काका आदि है उसी प्रकार हमारे घर के, हमारे परिवार के, बडे और श्रेष्ठ व्यक्ति बापूजी है। परन्तु अब मेरे छोटे-से दिमाग मे यह भावना पैदा हुई कि बापूजी हमारे घर के बडे है। मामूली आदमी की तरह शान और शोभा के पीछे वह पडनेवाले नही है। अच्छी-से-अच्छी बात को खोजकर वह सबको सिखाने वाले तथा सबसे अच्छे पुरुष है।

यह सही है कि उस समय अपने मन के इन भावो को मै इस प्रकार की भाषा में व्यक्त नही कर पाता था, परन्तु इसमे कोई शक नही कि बापूजी की महानता ने उस समय मेरे हृदय मे गहराई तक अपना स्थान जमा लिया।

अचानक एक दिन जमनादासकाका फीनिक्स से जोहान्सबर्ग चले गए। मुझे बाद मे पता चला कि बापूजी ने उनको अपने पास टाल्स्टाय फार्म पर बुलाया है। इससे फीनिक्स मे मेरा अकेलापन और भी बढ गया। स्वदेश से लौटने के बाद दूसरे बाल-मित्रो के अभाव मे जमनादासकाका के साथ दिन बिताकर मै अपना मन बहलाता था। डेढ-दो महीने के बाद वह साथ भी मुझसे छिन गया और मेरी कठिनाई बढ गई। जब जमना दासकाका फीनिक्स से जा रहे थे तब मैने भी उनके साथ जाने की माग की, परन्तु ट्रासवाल जाने के लिए मेरे नाम का परमिट बनवाने की दिक्कत सामने आई और इससे भी ज्यादा बाधा देनेवाली बात यह हुई कि मै अभी बच्चा था। बापूजी के पास अनेक छोटे-छोटे लडके इकट्ठे हुए थे। उनके बीच मुझे अकेला भेजने के लिए मेरे पिताजी सहमत नही थे। इस प्रकार राजकोट से फीनिक्स तक की यात्रा के बाद भी बापूजी से मै दूर-का-दूर ही रहा।

यदि बापूजी जोहान्सबर्ग ही रहते तो शायद उनके पास जाने का मेरा इतना मन न होता, परन्तु अब तो उन्होने जोहान्सबर्ग से इक्कीस मील दूर लोली स्टेशन पर फीनिक्स से भी बढिया आश्रम खोला था। वहा उनके पास रामदासकाका, देवदासकाका और मणिलालकाका थे और फीनिक्स से हिन्दुस्तान आने के पहले के मेरे कई बाल-मित्र वहा थे। उस नए आश्रम

को न देख सकने के कारण उन दिनो मेरा मन बहुत बेचैन रहने लगा। यहा बापू के कुछ पत्रो को देना अप्रासगिक न होगा जो उन्होने उन दिनो मगन-काका को लिखे थे और जिनके द्वारा जीवन का सही मार्ग अपनाने की उन्होने प्रेरणा दी थी।

शुक्रवार की रात

चि. मगनलाल,

सत्य का सेवन करने के लिए बहुत कष्ट उठाना पडता है। सत्य का सेवन करने वालो को शारीरिक दुःख न उठाना पडा हो, ऐसा उदाहरण मुश्किल से मिल पायगा। विश्वास बैठे तो शारीरिक दुःख ही सुख है। जो भी हो, यह विचार अपनाने-जैसा है। 'सत्य की जय' इस वाक्य का काफी अनर्थ किया गया है; परन्तु उससे हमे अछूता रहना आवश्यक है।

—मोहनदास के आशीर्वाद

बापूजी के इस सक्षिप्त पत्र के संदर्भ का पता नही चलता। सत्य की दुहाई देकर कौन-से अनर्थ किये जाते है, इसका स्पष्टीकरण बापूजी के इस पत्र से नही मिलता। परन्तु पत्र की ध्वनि से उसका सार निकाला जा सकता है कि सत्य के पुजारी को इहलोक मे ऋद्धि-सिद्धि, सुख-चैन आदि प्राप्त करने मे विजय मिलती है, यह कल्पना जड-मूल से गलत है और ऐसी लालसा से हमे सर्वथा अछूता रहना चाहिए।

हमे अपना रास्ता सोच-समझकर निश्चित करना चाहिए। इसी को लक्ष्य मे रखकर एक दूसरे पत्र मे बापूजी ने लिखा :

माघ सुदी १०

चि. नारायणदास,

यह ऐसा विकट समय आ गया है कि कुछ प्रश्नो मे और कुछ लोगो के लिए अपने बुजुर्गों की आज्ञा का पालन करने के विषय मे विचार करने की आवश्यकता रहती है। मुझे तो लगता है कि माता-पिता का प्रेम इतना गूढ होता है कि बहुत सबल कारण न हो तो उनके दिल को चोट पहुचानी उचित नही। परन्तु अन्य बुजुर्गों के बारे मे मन ऐसा स्वीकार नही करता। नीति के प्रश्न मे जहा पर हमें थोडा-सा भी सशय हो वहा पर भी कम दरजे के बुजुर्गों की बात का उल्लघन किया जा सकता है—करना कर्त्तव्य हो सकता है। जहा पर नीति के बारे मे सशय ही न हो वहा पर माता-पिता की आज्ञा का भी उल्लघन किया जा सकता है—करना यह कर्त्तव्य होता है। यदि मुझे मेरे पिता चोरी करने के लिए कहे तो मुझे वह नही करनी चाहिए। मेरा विचार ब्रह्मचर्य के पालन का हो और माता-पिता दूसरे प्रकार की आज्ञा दे तो उनकी आज्ञा का विनयपूर्वक मुझे उल्लघन करना चाहिए। जबतक

मणिलाल और रामदास सयाने और दक्ष न हो तब तक उनकी सगाई करनी ही नही, यह मै अपना धर्म समझता हू । यदि मेरे माता-पिता जीवित होते और उनका विचार मेरे विचार से विपरीत होता तो मै विनयपूर्वक उनका विरोध करता और मै मानता हू कि वे मेरी बात स्वीकार कर लेते।

इतना लिखना काफी है। अधिक शका उठे तो लिखना। तुम सद्वृत्ति-वाले हो और मेरी बात का अनर्थ नही करोगे ऐसा समझकर मैने यह लिखा है। पाखडी व्यक्ति मेरे कथन को उद्दडता बतायगा अथवा मेरे वचन पर मूढ विश्वास रखकर उसका अनर्थ करेगा और गलत बात मे बुजुर्गों की आज्ञा का उल्लघन करेगा।...शायद यह भी अर्थ निकालेगा कि बुजुर्गों को मजूर न हो तो भी खतरनाक बीमारी से बचने के लिए मद्य-मास का सेवन करना कर्त्तव्य है।

—मोहनदास के आशीर्वाद

उस समय स्वतत्र विचार करने के लिए बापूजी कितने आग्रही थे इसका पता नीचे के पत्र से चलता है :

शनिवार, रात को ६ बजे

चि. मगनलाल,

एक के बाद दूसरी पुस्तक पढते-पढते अन्त मे तुम अन्तर-विचार कर सकोगे। प्रत्येक पुस्तक मे कुछ-न-कुछ त्रुटि होती है, होनी ही चाहिए। लिखने वाले के चारित्र्य की छाप उसके लेख मे अनिवार्य रूप से पडेगी ही। इसलिए मनुष्य-मात्र के लिखने मे त्रुटि का होना अवश्यम्भावी है। मूग मे से जिस प्रकार हम करडु (न सीजने वाले मूग) अलग कर देते है, इसी प्रकार पढाई मे भी करना। जब इस प्रकार अन्तर-विचार की आदत हो जायगी तब ऐसा विवेक शक्य होगा।

—मोहनदास के आशीर्वाद

रविवार

चि. मगनलाल,

आत्मा के अतिरिक्त सबकुछ क्षणभगुर है, इस विचार को हर समय दोहराते रहना आवश्यक है। यही नही, उससे सबधित कार्य मे सतत सलग्न रहना चाहिए। ज्यो-ज्यो विचार करता हू, सत्य और ब्रह्मचर्य की महिमा की कल्पना से मन प्रफुल्लित हो जाता है। ब्रह्मचर्य का और अन्य सभी नीतिमत्ता का समावेश सत्य के अन्दर हो जाता है। फिर भी ब्रह्मचर्य का महत्व इतना भारी है कि उसका आसन सत्य की बराबरी का समझना चाहिए, यह विचार मुझे आया करता है। मुझे दृढ विश्वास है कि इन

दोनो के द्वारा किसी भी प्रकार की बाधा को दूर किया जा सकता है। वास्तविक बाधा तो हमारा अपना मनोविकार ही है। यदि बाह्य सबधो पर सुख का लेशमात्र भी आधार हम न रखे तो लोग क्या कहते है, यह न सोचकर हमे क्या करना चाहिए, यही हम सोचेगे।

—मोहनदास के आशीर्वाद

"इस समय तो यह बात है। मैने जो बताया है उसके विरुद्ध यदि सारी दुनिया हो तो भी मुझे निराशा होने वाली नही है। यह कोई घमड से भरा वचन नही है, परन्तु सत्य वचन है। हिन्दुस्तान के लिए करने का हमारा मनोरथ है यह बात नही, अपितु स्वय अच्छे बने यह मनोरथ है। यही मनोरथ होना चाहिए। बाकी सब गलत है। जिसने आत्मा को जाना नही उसने कुछ नही जाना। . . रावण के उत्साह का अनुकरण करके हम आत्मा की ओर मुडे।"

—मोहनदास के आशीर्वाद

: ३४ :

स्मट्स सरकार की क्रूरता : बापू की दृढ़ता

सन् १९०९-१० के वर्ष में जब दक्षिण अफ्रीका के चार प्रान्त मिलकर एक यूनियन कायम हुआ और गोरो का सगठन मजबूत हुआ तब सत्याग्रहियो का कांटा अपने मार्ग से हटाने के लिए स्मट्स-सरकार तुल गई। सरकारी कानून से और जहा आवश्यक प्रतीत हो वहा कानून को ताक पर रखकर भी उसने अन्याय करने पर अपनी ताकत लगा दी। ट्रान्सवाल मे कडाके की ठड पडती थी। रात-भर पाला गिरता था। ऐसी हालत मे भी सत्याग्रही कैदियो को बहुत हलके केवल दो कम्बल ओढने-बिछाने को मिलते थे। प्रात.काल से ही जब हाथ-पैर की अगुलिया सुन्न हो गई हो, उनसे पत्थर तोडने का और तालाब खोदने का काम लिया जाता था। खाने के लिए नि सत्व और रद्दी भोजन दिया जाता था और जेल के दारोगा का व्यवहार अपमानजनक रहता था। जेल के ऐसे बेहद कष्टो के होते हुए भी जब वीर सत्याग्रही प्रसन्न-वदन जेल काटते थे और एक बार जेल से छूटते ही दुबारा कानून भंग कर जेल मे जा बैठते थे तब ट्रान्सवाल की सरकार आपे से बाहर हो गई। जेल के लिखित-अलिखित नियमो के द्वारा

जो उत्पीडन हो रहा था उससे उसको तसल्ली नही हुई तो उसने सत्याग्रहियो को देश-निकाला देने का तरीका अपनाया। एक स्टीमर मे प्राय. पचहत्तर सत्याग्रहियो को जबरदस्ती समुद्रपार भारत में भेज दिया। सत्याग्रहियो को यह यात्रा कैदी की हालत मे कराई गई। स्टीमर मे कपडे-लत्ते और खाने-पीने की भारी दुर्व्यवस्था रही। कई के परिवार, जमीन और चल-अचल सम्पत्ति दक्षिण अफ्रीका मे छूट गई और स्टीमर मे जो दु ख उन्हे भोगना पडा, उसके फलस्वरूप नारायणस्वामी नामक एक तरुण को यात्रा मे ही अपने जीवन से हाथ धोना पडा। इधर ट्रान्सवाल मे जेल के कष्ट से उत्पीडित होकर एक दूसरे तरुण नागापन के प्राण-पखेरू उड़ गए। दोनो ही सत्याग्रह के इतिहास मे प्रथम शहीद बन गए।

'इन्डियन ओपीनियन' के २६ जून १६०६ के अको मे बापूजी ने ट्रान्सवाल के रहने वाले हिन्दियो के नाम एक अपील निकाली :

"जो शिष्टमडल विलायत जा रहा है उसके साथ मै भी जा रहा हू। हम चार थे। उनमे से दो प्रतिनिधि तो गिरफ्तार हो गए है और इस समय जेल मे विराजमान है। दूसरे भी हिन्दवासी, जो बहुत बार आहत हुए है, उन्हे फिर से गिरफ्तार किया गया है। ऐसे अवसर पर विलायत जाना मुझे बिल्कुल सुहाता नही है। फिर भी यूरोपवासी मित्रो मे सभी का मत है कि मुझे विलायत जाना चाहिए। इसलिए मि. हाजी हबीब के साथ मै जा रहा हू। लेकिन जो माग हम लोग कर रहे है और जिसके न मिलने के सबब सैकडो हिन्दी जेल जा चुके है वह माग विलायत जाने से प्राप्त हो जायगी ही, ऐसा निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता।

"ऐसा भी हो सकता है कि लार्ड क्रू डेप्यूटेशन से मिलने से ही इन्कार कर दे और कहे कि जो लोग कानून के खिलाफ हो रहे है वह उनसे नही मिल सकते। शिष्टमडल भेजनेवालो को यह समझ लेना आवश्यक है कि इस समय जब कि दक्षिण अफ्रीका के सभी हाकिम लोग विलायत मे एकत्र हो रहे है तब शिष्टमडल भेजकर हम लोग केवल एक प्रयोग-मात्र कर रहे है, ताकि बाद मे जाकर पछताना न पडे। शिष्टमडल के सबध मे आशा का महल खड़ा करना व्यर्थ है।

"जडी-बूटी—अक्सीर दवाई—तो केवल जेल ही है। चन्द हिन्दी भी बार-बार जेल जाते रहेगे तो अत मे हमारी माग पूरी होगी ही। ऐसा एक भी हिन्दी अत तक लडता रहेगा तो भी माग पूरी होगी। यह लडाई 'सच-झूठ' की है। सच हिन्दी कौम के पक्ष मे है।

"कौम मे फूट डालने वाले हिन्दी मौजूद है। सरकार के पास हिन्दी

जासूस है। उन लोगो के मारफत कौम को गलत रास्ते पर ले जाने की पैरवी होती रहती है।

"शिष्टमडल जब विलायत मे होगा तब इस प्रकार की पैरविया और भी अधिक की जायगी। प्रत्येक हिन्दवासी का कर्त्तव्य है कि वह इन सब प्रयासो का विरोध करे। जो लोग जेल नही जा सकते वे अपने-अपने घर मे स्वस्थता से बैठे रहे। कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार के कागज पर हस्ताक्षर लेने आये तो पूरी-पूरी जाच-पडताल करने से पहले उस कागज पर अपने हस्ताक्षर हरगिज न दिए जाय, यह आवश्यक है। शिष्टमंडल को सहायता देने के लिए स्थान-स्थान पर सभाएँ करने की आवश्यकता है। ये सभाए केवल ट्रान्सवाल मे ही नही, सारे दक्षिण अफ्रीका मे की जानी चाहिए। यह भी याद रखा जाय कि यह शिष्टमडल सत्याग्रहियो के वास्ते नही जा रहा है। सत्याग्रहियो का भरोसा तो सत्य के ऊपर ही है। सत्य का पालन करना, यही उनकी विजय है। किन्तु जो इस मार्ग पर अत तक टिक नही पाये है, उनके मन की भावनाओ को सतोष दिलाने के लिए तथा सम्भव हो तो सत्याग्रहियो पर पडने वाले बोझ को कुछ हल्का करने के लिए यह शिष्टमडल जा रहा है। अर्थात् सत्याग्रहियो को तो शिष्टमडल पर जरा भी आकाक्षा की दृष्टि नही रखनी है। जब उनके सत्य का बल ट्रान्सवाल की सरकार के असत्य के बल से अधिक हो जायगा तब अपने-आप सत्याग्रहियो के दु:ख दूर हो जायगे, यह बात याद रखकर सत्याग्रही को जेल जाने का अवसर ढूढते ही रहना है।"

—मोहनदास करमचन्द गान्धी

भय और सकट के ऐसे तांडव के कारण कई सत्याग्रहियो का आगे बढने का उत्साह ठण्डा पड गया। पहले ही उनकी सख्या थोडी थी। वह और भी सीमित हो गई। देशनिकाला और सपत्ति का छीना जाना बहुत लोग बर्दाश्त नही कर पाये। परन्तु जो कुछ सत्याग्रही आगे बढे वे कुन्दन-जैसे निखरे हुए साबित हुए। उनका जोश दुगना हो गया। अन्यायी के अन्याय को उन्होने बढ-बढकर अपने सिर पर ओढ लिया। नतीजा यह हुआ कि ससार मे दक्षिण अफ्रीका की सरकार के अन्याय के विरुद्ध आवाज उठने लगी। ट्रान्सवाल के भारतीयो के प्रतिनिधिमडल के नेता के रूप मे इग्लैंड मे जो आवाज उठाई उस पर भले-भले अग्रेजो ने ध्यान दिया और भारत मे मि. पोलक की सहायता माननीय गोखले ने अपनी सारी शक्ति लगाकर की। भारत-सेवक-समिति ने भारत का लोकमत जगाने का काम उठा लिया। गोखले ने देश में जगह-जगह सभाओ मे मि. पोलक के व्याख्यानो की व्यवस्था की तथा उस समय कलकत्ते में जो केंद्रीय धारा-सभा थी उसमें कानून बनवाकर और

अधिक गिरमिटियो का दक्षिण अफ्रीका भेजा जाना रोक दिया।

सन् १९१० की फरवरी की पच्चीस तारीख को गोखले द्वारा रखा गया यह कानून भारत की धारा सभा ने स्वीकार कर लिया। इससे पहले उस समय के महान दाता सर रतन ताता ने पच्चीस हजार रुपए की रकम दक्षिण अफ्रीका भेजकर सत्याग्रहियो को सहायता पहुचाई। लोकमत के प्रचड विरोध के फलस्वरूप सत्याग्रहियो को दक्षिण अफ्रीका से देशनिकाला देने की प्रवृत्ति पर रोक लग गई तथा भारत भेजे गए पचहत्तर सत्याग्रहियो के जत्थे को दक्षिण अफ्रीका बुला लिया गया।

मि पोलक को भारत मे जो सफलता मिली उसकी तुलना मे बापूजी को इग्लैड जाने मे कुछ भी सफलता नही मिली, ऐसा कहा जा सकता है। वहा तो ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश मत्री लार्ड क्रू ने उनको धमकी दी और दक्षिण अफ्रीका के भारतीय शिष्टमडल मे फूट डालने का भी प्रयास किया। परन्तु बापूजी की निष्ठा और सद्वृत्ति के सामने कुटिल राजनीति का बस नही चला। बापूजी को इग्लैड से खाली हाथ ही लौटना पडा। लदन मे होने वाली बातचीत के दौरान मे भारतीयो के लिए दक्षिण अफ्रीका के मन्धाताओ ने तो यह चुनौती दे दी थी कि "दक्षिण अफ्रीका के कानून मे गोरे-काले का भेद बना ही रहेगा और यदि भारतीय लोग ज्यादा विरोध करेंगे तो उन्हे और भी परेशानिया उठानी पडेगी।" उस चुनौती को दृढता और शान्तिपूर्वक बापूजी ने सुन लिया था। सत्याग्रह का सघर्ष बहुत दिन तक चलाने की आवश्यकता उनको प्रतीत हो रही थी। इस सबध मे 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' मे बापूजी ने लिखा है :

"इस बार इग्लैड से लौटने वाला हमारा डेपुटेशन कोई अच्छी खबर नही ला सका। लार्ड एम्पटील की कही हुई बातो का असर भारतीय लोगो पर क्या होगा, इसकी मुझे चिन्ता नही थी। अन्त तक मेरे साथ कन्धे-से-कन्धा भिडाकर कौन-कौन जूझनेवाले है, यह मै जानता था। सत्याग्रह के बारे में मेरे विचार और भी परिपक्व हुए थे। उसकी व्यापकता और अलौकिकता को मैने अधिक समझ लिया था। इसलिए मै शान्त था। विलायत से लौटते समय मैने स्टीमर मे ही 'हिन्द स्वराज' लिखी थी। उसका हेतु केवल सत्याग्रह की भावना बताने का था। वह पुस्तक मेरी श्रद्धा का मानदड है। इसलिए मेरे सामने यह प्रश्न ही नही था कि अब आगे की लडाई मे मेरे साथ सख्या की दृष्टि मे कितने सत्याग्रही होगे।

"किन्तु पैसे के लिए मुझे चिंता थी। बहुत लम्बे समय तक सत्याग्रह का युद्ध चलाना आवश्यक दीखता था और हमारे पास पैसे नही थे, यह

भारी दुःख प्रतीत हो रहा था। उस समय मै आज की तरह स्पष्ट रूप से नही समझता था कि पैसे के बिना ऐसी लडाई लडी जा सकती है, और पैसे के कारण कई बार लडाई दूषित हो जाती है। परन्तु मै आस्तिक हू। ईश्वर ने मेरा उस समय भी साथ दिया। मेरी भीड को उसने सम्हाला। एक ओर दक्षिण अफ्रीका की भूमि पर कदम रखते ही मुझे लोगो को हमारे शिष्टमडल की असफलता की खबर देनी थी तो दूसरी ओर प्रभु ने पैसे की कठिनाई से मुझे मुक्त किया। केपटाऊन उतरते ही इग्लैड से तार आया कि सर रतन ताता ने पच्चीस हजार रुपए दिये है। उस समय के लिए इतनी रकम पर्याप्त थी। हमारा काम चल गया।"

बापूजी ने इग्लैड से चलते समय लार्ड एम्पटील को जो उत्तर दिया था उसे भी यहा देना अप्रासगिक न होगा·

"मै जिनकी ओर से बोल रहा हू वे लोग गरीब है और सख्या मे थोडे है। लेकिन वे सब ऐसे है, कि अपनी मौत को हथेली पर लिए हुए है। उनकी लडाई व्यवहार और सिद्धात दोनो के लिए है। यदि दो मे से एक को छोडना पडेगा तो वे व्यवहार को छोडकर सिद्धात के लिए जूझेगे। जनरल बोथा की शक्ति और सत्ता का हमे अनुमान है, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा को उसकी तुलना मे हम अधिक वजनदार मानते है। इसलिए प्रतिज्ञा के पालने के अतिरिक्त हम लोग बरबाद हो जाने के लिए तत्पर है। हम अपने धैर्य को बनाए रखेगे। हमारा विश्वास है कि अपने निश्चय पर हम डटे रहेगे तो जिस ईश्वर के नाम से हमने प्रतिज्ञा ली है वह उस प्रतिज्ञा को पार लगायगा। हा, जो थोडे से लोग है वे प्रतिज्ञा का पालन करेगे ही और आशा बनाए रखेगे कि कष्टसहन करने की हमारी शक्ति अन्त मे जाकर उनके हृदय को भेदेगी और वे 'एशियाटिक एक्ट' (एशिया वालो पर अर्थात् काली-पीली चमडी वालो पर रोक-थाम लगाने के लिए बनाया गया कानून) हटा देगे।"

इस प्रकार सघर्ष की तुमुल रणभेरी को सुनकर और सुनाकर जब बापूजी लदन से दक्षिण अफ्रीका लौटे तब समुद्र-यात्रा मे उनको थोडा समय मिल गया। ट्रान्सवाल पहुचकर तो उन्हे धधकते हुए दावानल मे दुबारा जूझना ही था। पर यात्रा मे मिलने वाले इस थोडे से समय का उपयोग भी उन्होने अपनी थकावट दूर करने मे नही किया, न उन्होने अपने मन का बोझ हलका करने के लिए समुद्र-यात्रा के आमोद-प्रमोद का लाभ लिया। उन्होने अपनी सारी शक्ति जनता के लिए साहित्य-सृजन मे लगा दी। बापूजी के स्वभाव की यह विशेपता थी कि जब चारो ओर घना अन्धकार छा जाता था और उनके साथी तथा दूसरे लोग निपट निराशा के सागर मे डूबने लगते

थे तब बापूजी अपने चित्त को स्वस्थ रखकर अपने हृदय के गह्वर मे बहुत ही गहराई तक चले जाते थे और अपने परिशुद्ध और सस्कारी हृदय मे से बहुत ऊचे प्रकार के आशा-मोती बीन लाते थे तथा इस प्रकार असख्य भग्न-हृदय लोगो मे आशा का सचार करके उन्हे प्रसन्नवदन बना देते थे।

ऐसा एक उच्च से उच्चतर मोती, या चिन्तामणि की तुलना मे आ सके, ऐसा श्रेष्ठ रत्न बापूजी ने उस समुद्र यात्रा के समय अपने हृदय-तल से लाकर ससार के चरणो मे धर दिया। बापूजी ने उस पुस्तक का नाम 'हिन्द-स्वराज्य' रखा। इसके बाद बरसो तक बापूजी के मौलिक साहित्य का प्रवाह चालू रहा, फिर भी 'हिन्द-स्वराज्य' का स्थान बापूजी की अनेक कृतियो मे चोटी का रहा है। उसमे बापूजी ने अपने सारे जीवन की रूप-रेखा अकित कर दी है। सत्याग्रह के सिद्धात का मूल रहस्य उसमे स्पष्ट कर दिया गया है और बता दिया है कि एक मजदूर और सुसस्कारी व्यक्ति अकेला हो और साधनहीन हो, तो भी वह उन मनुष्यो का मुकाबला सफलता-पूर्वक कर सकता है जो सख्या मे कई गुने अधिक हो या लोभी, स्वार्थी और सैकडो हथियारो से सुसज्जित हो। उसमे यह भी प्रतिपादित किया गया है कि उच्च-से-उच्च बल और सादे-से-सादे जीवन को छोड़कर सच्ची विजय के लिए और कोई शक्ति ससार मे नही है।

'हिन्द-स्वराज्य' लिखने के साथ-साथ लेखक ने अपना जीवन उसी राह पर ढालने के लिए कैसा पक्का सकल्प कर लिया था, इसका प्रमाण हमे उनके उस समय के पत्रो से मिलता है :

यूनियन केसल लाईन
आर. एम. एस. 'किल्डोनन केसल'
२४–११–०९

चि मगनलाल,

हम कब मिल सकेगे, पता नही। इसलिए सब बातो का उत्तर यही से लिख रहा हू। इस बार स्टीमर मे मैने जो काम किया है उसकी कोई हद नही है। मि वेस्ट आदि को जो मैने पत्र और लेख भेजे है उसके द्वारा तुम्हे उस श्रम का पता चलेगा। मुझे बहुत कुछ कहना है, पर यह तो तभी हो सकता है जब हम मिल सके। इस समय तो आवश्यक बात ही लिखूगा।

चि. सतोक की स्थिति के बारे मे पढकर सन्तोष हुआ।

फीनिक्स का नाम सिवा फीनिक्स के और कुछ न रखना ही उचित है। मै चाहता हू कि मेरा नाम भुला दिया जाय और यह चाहता हू कि मेरा काम रहे। जब नाम भुला दिया जायगा तभी काम रहेगा। नाम आदि रखने-

करने की झझट मे फसने का समय नही है। हम प्रयोग कर रहे है। ऐसी स्थिति में नाम के पीछे क्यो पडे ? और जब नाम की बात आ जायगी तब हमे मध्यम शब्द खोजना पडेगा। ऐसा शब्द, जिसमे हिन्दू-मुसलमान का प्रश्न उठे ही नही। 'फीनिक्स' शब्द अनायास ही मिल गया है; और वह उत्तम है। पहले तो वह अग्रेजी शब्द है, इसलिए जिनके प्रदेश मे हम रह रहे है, उनका भी आदर होता है, फिर वह तटस्थ शब्द है। उसका अर्थ तो यह है कि फीनिक्स पक्षी अपनी राख मे से ही फिर से पैदा होता है अर्थात् वह मरता नही है, ऐसी यह कथा है। सार यह कि फीनिक्स की भाति हम लोग भी राख हो जायगे तो भी हम मरने वाले नही है, ऐसा हमारा विश्वास है। इसलिए फिलहाल तो फीनिक्स नाम ही पर्याप्त है। भविष्य मे फिर देख लिया जायगा। इस समय तो हमारी राह और हमारी शक्ल फीनिक्स के जैसी ही है।

भाई ठक्कर को जो पत्र लिखा है वह पढना।

—मोहनदास के आशीर्वाद

यूनियन केसल लाइन
२७–११–०९

चि. मगनलाल,

पैसे की स्थिति के बारे मे मि. मेकीनमार का पत्र पढने के बाद और मि. वेस्ट को पत्र लिखने के बाद मन मे जो विचार उमड रहे है वे तुमको लिखना चाहता हू। यह पत्र पुरुषोत्तमदास को पढने के लिए देना।

फीनिक्स की कसौटी अब होने वाली है। जोहान्सबर्ग से अब पैसे नही मिलेगे। हमारी प्रतिज्ञा है कि जबतक फीनिक्स मे एक भी व्यक्ति मौजूद रहेगा तबतक कुछ नही तो अखबार का एक पृष्ट ही प्रकाशित करेगे और लोगो मे पहुचायेगे। वहा पर कुछ भी खटपट मत होने देना। कोई कुछ बोले, बर्दाश्त कर लेना। डरबन का आफिस बन्द करना पडे तो हर्ज नही। यह याद रखना कि सदैव मुख्य बात को पकडना। इसके लिए और जो कुछ गौण करना पडे, छोडना पडे, छोड देना। मूल बात तो यही है कि चाहे कुछ भी हो, फीनिक्स छोडना नही है और अखबार अवश्य प्रकाशित करना है। इस बात को कायम रखने की खातिर यदि कुछ खोना पडे तो भले। अखबार को मूर्त्ति बनाकर हम उसकी पूजा करना नही चाहते, किन्तु हम अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहते है। अखबार मे जय नही है, जय प्रतिज्ञा मे है। ट्रान्सवाल का कानून हटाने मे कोई विशेषता नही है। प्रतिज्ञा के पालन मे सर्वस्व है। ऐसा करने पर आत्मा का विकास होता है और हमारी सारी प्रवृत्ति का भेद यही है, वही होना चाहिए। तुम यह सूचित करो कि वेस्ट डरबन जाय, पर आफिस रहे। अथवा चाहो तो मणिलाल को भेजना।

मै तुम दो ही व्यक्तियो को बतला रहा हू कि यदि मणिलाल की इच्छा होगी, और बा की इजाजत होगी तो अब मणिलाल को सत्याग्रह-युद्ध मे बलि चढाना है। ऐसा करने पर उसका अस्थिर चित्त शान्त होगा। उसने मेरे पास ऐसी माग भी की है। यदि ऐसा हो ही नही पायगा तो वह डरबन चला जाय, यही ठीक है, और तुम फीनिक्स रह सकोगे। यदि आवश्यक हो तभी ऐसा करना। मन मे यह निश्चय कर लेना कि और कही से पैसे न भी मिले तो तुम व्याकुल या विचलित न होओगे। यदि पैसे नही आयगे तो और प्रकार से आमदनी करके भी तुम फीनिक्स का काम पूरा करोगे। यदि और कोई फीनिक्स मे न रहे तो भी तुम फीनिक्स मे मरते दम तक रहोगे ऐसा उद्देश्य घोषित करना। तुम्हारा शौर्य और लोग भी अपनायगे, बशर्ते कि उसमे अविनय न हो; पर यह आत्म-स्थिरता का शौर्य हो। ऐसा शौर्य सच्चा होना चाहिए, दिखावे का नही। वह मुख का शौर्य (वाचिवीर्य) नही होना चाहिए। ऐसे ठोस शौर्य की प्रतिध्वनि उठे बिना हरगिज न रहेगी, यह निश्चयपूर्वक समझना।

और जो परिवर्त्तन आवश्यक हो करना। कुछ परिवर्त्तन यदि अनुचित जचे तो भी उसे होने देना। हानि-लाभ के पचडे मे पडकर अपने आग्रह को धरे रहना व्यर्थ है। अज्ञानवश हम यह मानते है कि अपने परिश्रम से हम रोटी पाते है। जिसने दात दिये है वह दाना देता ही है, यह बात यदि ठीक समझ मे आजाय तो उत्तम है।

—मोहनदास के आशीर्वाद

मगनकाका के नाम बापूजी ने जो गहरी बाते लिखी है उन्ही के साथ-साथ रामदासकाका के लिए भी एक छोटा-सा पत्र लिखा है। इससे पता चलेगा कि अपने घर के जीवन मे परिवर्त्तन करने के लिए बापूजी कितने तत्पर हो गए थे।

किल्डोनन केसल,
बुधवार,

चि. रामदास,

तुम्हारे लिए कुछ भी नही लाया हू, इसलिए बापू पर गुस्सा मत करना। मुझे कोई वस्तु पसन्द ही नही आई। यूरोप की वस्तु पसन्द न आये, उसमे मै क्या करता? मुझे तो हिन्दुस्तान का सबकुछ पसन्द है। यूरोप के लोग ठीक है, उनका रहन-सहन ठीक नही है।

—बापू के आशीर्वाद

: ३५ :

बापूजी का अद्भुत अनुष्ठान

डर तो यह था कि दक्षिण अफ्रीका पहुचते ही बापूजी की गिरफ्तारी हो जायगी। 'किलडोनन केसल' स्टीमर से बापूजी ने जो पत्र लिखे उनमें बापू ने स्वय यह सभावना प्रदर्शित की थी। मणिलालकाका को निम्न पत्र उन्होंने लिखा था :

किलडोनन केसल
ता. २४-११-०९

चि. मणिलाल,

अब रात के ९॥ बजे है। केपटाऊन तक अब पाच दिन की मजिल बाकी है। दाहिने हाथ से लिखते-लिखते मै थक गया हू इसलिए तुम्हे यह पत्र अब बाये हाथ से लिख रहा हू। मुझे सीधा ही जेल जाना होगा, यह सभव है इसलिए यह पत्र लिख रहा हू।

मेरे जेल जाने पर तुम प्रसन्न ही होओगे यह मै मान लेता हू, क्योकि तुम समझदार हो। इस लड़ाई का भेद यह है कि जेल जाकर हम लोग खुश हो और खुश रहे।

फीनिक्स के बारे मे तुमने प्रश्न किया, यह ठीक किया। हम आत्मा को किस प्रकार खोज सके, और किस प्रकार देश-सेवा कर सके, इसका पहले विचार करना होगा। इसके बाद ही फीनिक्स क्या है, यह समझाया जा सकेगा। आत्मा को खोजने के लिए सबसे पहले नीति को दृढ बनाना चाहिए। नीति का अर्थ है सत्य, ब्रह्मचर्य आदि गुणो का सपादन करना। ऐसा करने पर अपने-आप देशसेवा हो जायगी।

ऐसा करने मे फीनिक्स बहुत सहायक है। मै समझता हू कि शहरो मे, जहा पर मनुष्य बहुत ही गिचपिच रहते है, जहा बहुत सारा लालच मौजूद रहता है, वहा पर नीति प्राप्त होना बडा कठिन है। ज्ञानी पुरुषो ने फीनिक्स-जैसा एकात स्थल दरशाया है। सही पाठशाला अनुभव है। जो अनुभव तुमने फीनिक्स मे पाया वह और जगह नही दिया जा सकता।

—बापू के आशीर्वाद

जनता की धारणा और बापूजी की आशका के विपरीत इस बार स्मट्स सरकार ने सत्याग्रहियो के प्रति अपनी नीति बदल दी।

उस समय सत्याग्रह-आन्दोलन की परिस्थिति बहुत नाजुक हो गई थी। १२ जुलाई १९०८ से—अर्थात् ट्रान्सवाल मे रहने के अनुमति-पत्रो की हजारो की सख्या मे होली जला देने के दिन से—जेल जाने का जो ताता बधा था उसे अब डेढ वर्ष बीत चुका था। जो सत्याग्रही जेल की सजा पूरी करके छूटता था वह मुश्किल से दो-तीन सप्ताह का विराम लेकर दुबारा जेल चला जाता था। ट्रान्सवाल मे भारतीयो की कुल आबादी का प्राय एक-तिहाई हिस्सा जेल या देशनिकाले की सजा भुगत चुका था। ट्रान्सवाल मे रहने वाले आठ हजार भारतीयो मे से दो हजार तो तग आकर ट्रान्सवाल छोड गए थे। दूसरी ओर स्मट्स सरकार के न्यायालयो द्वारा सत्याग्रहियो को दी गई सजाओ का क्रमाक ढाई हजार के ऊपर पहुच चुका था। दक्षिण अफ्रीका के अन्य प्रातो के कुछ सत्याग्रही ट्रान्सवाल मे अपने भारतीय बन्धुओ की सहायता के लिए जाते थे सही, परन्तु नब्वे या पचानवे प्रतिशत सत्याग्रही ट्रान्सवाल के ही थे। बार-बार जेल जाते रहने के बाद उनका उत्साह ठडा हो जाना स्वाभाविक ही था। वे किसी आध्यात्मिक साधना के लिए नही, अपना पेट पालने के लिए दक्षिण अफ्रीका आये थे और साग-सब्जी की फेरी या दूसरे छोटे-मोटे रोजगार करके अपना और परिवार का गुजारा करते थे। ऐसी हालत मे यह स्वाभाविक ही था कि जेल जाने वालो की सख्या इतने लबे समय के बाद कुछ हजार से घटकर कुछ सौ तक ही सीमित हो जाती। स्मट्स-सरकार राजनीति मे कच्ची नही थी। उसने अनुमान लगाया कि कानून भग करके जेल जाने वालो की बाढ जिस प्रकार कम हो गई है उसी प्रकार बचे-खुचे मुट्ठी-भर सत्याग्रही भी जेल की यातनाओ से थक जायगे और सत्याग्रह की यह जिद अपने-आप बिल्कुल ठडी पड जायगी। इसलिए बापूजीको गिरफ्तार करके नया बवडर खडा करने से स्मट्स सरकार बचती रही। बापूजी लदन से लौटने के बाद अनेक बार बिना अनुमति-पत्र के ट्रान्सवाल गये और उन्होने स्मट्स की सरकार को पत्र लिखकर सूचित भी किया कि गरीब फेरी वालों को जब जेल मे ठूस दिया जाता है तब मेरे-जैसे अगुवा को, जो आपके कानून की दृष्टि से अधिक अपराधी है, जेल न भेजना अन्याय है। फिर भी स्मट्स-सरकार ने उन्हे गिरफ्तार नही किया।

बापूजी का बल, प्रतिष्ठा और प्रभाव बढने न देने की दृष्टि से जब सरकार ने उनको गिरफ्तार नही किया तब उन्होने स्वय कारावास के कठिन-से-कठिन जीवन को अपनाया। अपने वचन पर जेल जाने वाले साथियो का साथ देने के लिए बापूजी ने टाल्स्टाय-बाडी मे महान अनुष्ठान शुरू कर दिया।

इग्लैड से लौटकर बापूजी ने अपना गृहस्थाश्रम पूर्ण रूप से समेट लिया।

देश-सेवा का काम करने के साथ-साथ अबतक जो वकालत चल रही थी वह सदा के लिए बद कर दी। उस समय जब वकालत का सिलसिला चालू रहता था तब बापूजी की मासिक आमदनी औसत आठ-दस हजार रुपये थी। बापूजी ने इस आय का मोह बिल्कुल छोड दिया। यह बात नही कि उन्होने बैंक मे कोई रकम जमा कर ली थी और उसके सूद से उनके और उनके परिवार का पेट पालने की गुजाइश हो गई थी; यह भी नही कि 'इडियन-ओपीनियन' अखबार के लेखक के नाते उनको कुछ मेहनताना मिलता था अथवा सत्याग्रह के सचालन के लिए प्राप्त चदे से ही खर्च निकालने की कोई व्यवस्था हो गई थी। बापूजी ने अपने को और अपने बच्चो को केवल समाज के भरोसे छोड दिया था। उन्हे विश्वास था कि जब तक समाज की सेवा का काम अपनी शक्ति से किया जायगा, तबतक सेवक की रोटी की व्यवस्था कर देने की सद्बुद्धि भगवान समाज को देगा ही, और उनके विश्वास के अनुसार एक-न-एक मित्र उनका निजी खर्च बिना किसी शोहरत के उठाता रहा।

जब बापूजी ने देखा कि जेल जाने वाले सत्याग्रहियों के बाल-बच्चो की परवरिश का सवाल कठिन होता जा रहा है तब उन्होने उन सारे परिवार वालो को किसी एक जगह एकत्र करने का विचार किया। अलग-अलग रहने में मकानो का किराया ही इतना चुकाना पडता था, जिससे पच्चीस-तीस परिवारो की गुजर हो सकती थी।

फीनिक्स से जोहान्सबर्ग ३०० मील से भी अधिक दूर था और वह प्रात भी दूसरा था। इसलिए ट्रासवाल में ही कही शहर से बाहर जगह ढूढना आवश्यक था। मि. कैलनबैक ने लोली स्टेशन के पास ११०० एकड जमीन खरीदी। ४ जून १९१० को वह खरीदी गई और दो दिन बाद ही कई लोगो के साथ बापूजी वहा रहने के लिए पहुच गए। इस प्रकार 'हिन्द-स्वराज्य' लिखने के ७ महीने पूरे होने से पहले ही बापूजी ने उस पुस्तक के आदर्श पर एक बडी मजिल तय की।

उस समय बापूजी की आयु चालीस साल की थी। एक बैरिस्टर के लिए कमाई करने का यह मध्याह्न समझना चाहिए। फिर जोहान्सबर्ग जैसी सुवर्णनगरी मे बापूजी का काम तो जमा-जमाया था। बीच बाजार मे उनका आफिस था, गोरे सोलिसिटर, गोरे स्टेनोग्राफर, गोरे क्लर्क आदि का पूरा समाज था। प्रतिष्ठा की कोई कमी नही थी। बापूजी चाहते तो खूब कमाते और खूब दान भी देते। परन्तु दाता कहलाने का भी उनको मोह नही रहा था। एक बार की बात है कि एक व्यक्ति को मुसीबत के समय बापूजी ने तीस पौंड उधार दे दिये। उसे बडी जरूरत थी। बापूजी के पास कुछ रकम तो जमा रहती नही थी, उनकी कमाई का प्रायः सारा

धन हाथ-के-हाथ फीनिक्स आश्रम और वहा का साप्ताहिक पत्र चलाने मे खर्च हो जाता था। इसलिए उन्होने अपने पास धरोहर रखे हुए चदे के पैसे से उस व्यक्ति को सहायता दे दी। लेकिन देने के बाद रात को उन्हे नीद नही आई। इस प्रसग की चर्चा करते हुए बापूजी ने फीनिक्स के आश्रम-वासी मित्र रावजी भाई से कहा था "सोने गया तो नीद नही आई। दिल मे आया कि मुझसे ऐसा पाप क्यो हुआ? उस भाई के साथ मोहब्बत रखने के लिए चदे का पैसा देने का मुझे क्या अधिकार था? यदि वे पैसे जल्दी नही मिले, और ऐसी दशा मे अकस्मात् मेरी मृत्यु हो जाय तो मै उस ऋण को कैसे अदा करूगा? इन विचारो से मेरे हृदय की वेदना वेहद वढ गई। ईश्वर का स्मरण किया और हृदय मे दृढ सकल्प किया कि भविष्य मे आम चदे का उपयोग कदापि किसी व्यक्ति के काम के लिए नही करूगा। उस रकम को शीघ्र-से-शीघ्र जमा कर देने का निश्चय किया, तव कही नीद आई।"

दूसरे दिन सवेरे अपने दफ्तर मे जाते ही बापूजी को एक तार मिला, जिसमे नव्वे भारतवासियो पर ट्रासवाल की सरहद मे गैरकानूनी ढग से दाखिल होने के इल्जाम मे मुकदमा चलाने की बात थी। उसी क्षण बापूजी ट्रेन मे सवार होकर उस गाव मे पहुच गए। सारे किस्से की पक्की तरह जाच कर ली और वह मुकदमा अपने हाथ मे लेने से पहले ही अपने नियम के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति से वकालत के शुल्क की तीन-तीन गिन्निया प्राप्त की, साथ ही एक गिन्नी चदे के रूप मे भी माग ली और मैजिस्ट्रेट के सामने बहस करके उन भारतीयो को निरपराध सावित किया।

वापूजी के लिए एक ही दिन मे हजार-दो हजार रुपये कमा लेना वाये हाथ का खेल था, फिर भी उन्होने धन का ढेर लगाने मे अपनी सामर्थ्य की वृद्धि नही देखी। जीवन की शुद्धि और महात्मा टाल्स्टाय की तरह किसान का श्रमपूर्ण और सादा जीवन अपनाने मे अपनी सामर्थ्य और शक्ति का अखड स्रोत उनकी दृष्टि मे आया।

जव वापूजी जोहान्सवर्ग को छोडकर टाल्स्टाय-वाडी के चौडे मैदान मे जाकर वसे, तव वहा रात को सिर छिपाने के लिए एक छप्पर तक नही थी। लोटा-भर पानी के लिए आध मील से कम नही चलना पडता था। वाजार इक्कीस मील दूर जोहान्सवर्ग मे था और नित्य की आवश्यकताओ के लिए इतनी दूर से अन्न आदि सामान ढोकर लाना पडता था।

परन्तु वापूजी का व्यक्तित्व इतना शीतल, मधुर और उत्साहप्रद था कि उनके साथ अनेक व्यक्ति टाल्स्टाय फार्म मे रहने के लिए लालायित हो उठे। तामिल, आध्रवासी, गुजराती, विहारी और हिन्दू, मुसलमान, पारसी,

ईसाई सभी प्रकार के लोगो का वहा पर समाज जुड गया। जेल जाने वाले सत्याग्रहियो के परिवारो की महिलाए—बच्चे तो थे ही—और हट्ट-कट्टे नौजवान तथा ढलती आयु वाले भी वहा जाकर बापूजी के पास अपना जीवन बिताने मे अपना सौभाग्य समझते थे। उस समय टाल्स्टाय-वाडी का सक्षिप्त नाम 'फार्म' प्रचलित हो गया था। दो वर्ष तक बापू इस फार्म पर रहे और इसके सस्कार और चारित्र्य का विकास और सगठन करने मे अपनी सारी शक्ति लगा दी। इतने थोडे समय मे 'फार्म' की ख्याति सारे दक्षिण अफ्रीका मे फैल गई। फीनिक्स का प्रभाव वहा के सत्याग्रहियो पर कम नही था, परन्तु 'फार्म' के सामने फीनिक्सवासियो के लिए और कई भारतवासियो के लिए भी फार्म अथवा लोली के नाम का उच्चारण स्वर्ग या अमरपुरी के नाम-जैसा कर्णप्रिय, सुखद और उत्साहवर्द्धक बन गया था। लोली वह रेलवे स्टेशन था जहा से टाल्स्टाय फार्म मील-भर दूर था। फीनिक्सवासियो के तो प्राण मानो फार्म मे ही बसे हुए थे। पग-पग पर फार्म की चर्चा होती रहती थी।

एक दिन मैने सुना कि बापूजी ने चाय का परित्याग कर दिया है और चाय की जगह गेहू को भूनकर उसका चूरा प्रयोग मे ला रहे है। एक बात और सुनी कि सवेरे से लेकर दोपहर तक बापूजी और श्री कैलनबैक हब्शी मजदूरो के साथ खेतो मे मजदूरी करते है, वहा की सख्त जमीन मे फल के पौधे लगाने के लिए दो-दो फुट गहरे खोदने का काम चल रहा है। जिसे खोदने मे हब्शी तक थक जाते है उसको बापूजी उनकी-जैसी फुर्ती से खोदकर तैयार कर देते है। दूसरी ओर उनके आहार-प्रयोग चल रहे है, इस कारण उनके शरीर मे कमजोरी आ गई है। कभी-कभी तो चक्कर खाकर गिर पडने की नौबत आ जाती है। फिर भी वह अपना काम छोडते नही है। इतना ही नही, बापूजी हब्शी-मजदूर के जितना ही काम करने का आग्रह रखते है। कैलनबैक इस काम मे बापूजी से भी बढ जाते है। उनकी बराबरी कोई नही कर सकता है।

जमनादासकाका जब फार्म पर पहुचे तो उनके नियमित पत्र फीनिक्स आने लगे। उन पत्रो मे विशेषत अलोने भोजन और बिना चीनी के पेय की बाते रहती थी। दूसरे कई लोग भी अलोना भोजन करते थे और चीनी छोड देते थे। किस-किसने अलोना आरभ किया, किसने उसे कायम रखा, कौन थक गए, अलोना करने वाले क्या खाते है, बापू स्वय क्या लेते है, इन चर्चाओ से जमनादासकाका के पत्र भरे रहते थे। उन पत्रो के कारण, भोजन के समय हमारे घर मे इस बात की बहस रहती थी कि अपनी रसोई मे क्या-क्या परिवर्तन किया जाय। फलत थोडे ही महीनो मे हमारे घर की रसोई

में काफी परिवर्तन हो गया। कभी-कभी मगनकाका, जिनको बहुत तेज मिर्च-मसाले के बिना खाना भाता ही नही था, नमक बिल्कुल छोड देते थे। हमारे भोजन की सादगी और सात्विकता दिनोदिन बढती जाती थी।

जमनादासकाका के पत्र मे एक बार खबर आई कि यहा आजकल लकडी चीरने का काम चल रहा है। बापूजी और श्री कैलनबैक के साथ फार्म के दूसरे जवान लोग भी अपनी कुल्हाडिया लेकर मध्याह्न तक लकडी चीरते है। सभी लोग मुलायम और आसानी से फटने वाली लकडिया चुनकर चीरते है और गठीली लकडिया छोडकर चले जाते है। ऐसी गाठ वाली लकडियो को चीरने का काम बापूजी ने स्वय अपने ऊपर ले रखा है। उन्हे चीरते-चीरते वह पसीने से तर-बतर हो जाते है। दूसरे लोग बीच-बीच मे कुल्हाडी छोडकर आराम के लिए इधर-उधर हो जाते है, परन्तु ऐसी कडी गाठो को चीरते हुए भी बापूजी की कुल्हाडी अविरल रूप से चलती रहती है।

फार्म से जो खबर आती थी उसको तत्काल अमल मे लाने का मगनकाका आग्रह रखते थे। ऊपर वाली चिट्ठी पढने के बाद हमारे यहा भी अपने हाथ से लकडी चीरने का काम शुरू हो गया। फीनिक्स के आस-पास 'वाटलस' विलायती बबूल के वन लगाए जाते थे। उसी ईधन का हमारे यहा प्रयोग होता था। चीरने मे वह लकडी बबूल से भी सख्त थी ; सवेरे नहाने से पहले बारी-बारी से पिताजी और मगनकाका उन लकडियो को चीरते थे। मुझे यह गिनने मे आनन्द आता था कि किसकी कितनी चोट के बाद टुकडा अलग होता था।

: ३६ :

बापूजी की तेजस्विता

पहली बार जब बापूजी का दर्शन हुआ तब मै सात वर्ष का बालक था। तब वह ससार की दृष्टि मे अलौकिक नही बने थे। मेरे लिए वह घर के साधारण बुजुर्ग से अधिक नही थे। उन दिनो के प्रसग बहुत स्पष्ट नही है। उसके बाद दस वर्ष की आयु मे दुबारा बापू को देखने का प्रसग आया।

मगनकाका एक दिन फीनिक्स मे दोपहर को समाचार लाये कि बापूजी डरबन आ गए है, रात को फीनिक्स आयगे और कल हमारे घर पर ही

भोजन करेगे। साथ-ही-साथ उनके भोजन मे क्या-क्या किस मात्रा मे होना चाहिए इसकी चर्चा भी उन्होने मेरी माताजी से कर ली। होली-दिवाली के पर्व के समय जिस प्रकार घर मे रसोई की धूम मचती है वैसी ही धूम हमारे घर मे शुरू हो गई। किसी भी चीज मे नमक न डालकर अनेक प्रकार के व्यजन तैयार करने मे माताजी और चाचीजी व्यस्त हो गईं। मै भी सारा समय उनकी मदद मे लगा रहा। मैने मूगफली छीली, चीनी पीसी, बादाम तोडे और जो कुछ माताजी ने बताया किया। तैयार होने वाली चीजे ठीक बनी है या नही यह चखकर बताने का लाभ भी मैने पाया।

दूसरे दिन सवेरे उठते ही मै बापूजी के घर पहुचा। रात को वह आ गए थे। अब मै इतना छोटा नही रह गया था कि पहले की तरह उनके कधे पर चढ जाता। बापूजी फीनिक्स मे एक दिन रुकने वाले थे। इसलिए काम मे वह इतने व्यस्त रहे कि मुझसे खेलने, बात करने की उनको फुरसत ही नही थी। फिर भी मै बहुत देर तक उनकी अगुली पकडे-पकडे उनके साथ घूमता रहा।

फीनिक्स के छापेखाने के मुख्य कार्यकर्ताओ के साथ बातचीत करने मे बापूजी का सवेरे का सारा समय बीता। सारे समय उनके मुख के भावो को देखते रहने मे मुझे थकावट नही आई। फीनिक्स के बडे-बडे आदमी भी बापूजी के सामने बहुत छोटे मालूम दे रहे थे। बापूजी के मुख से प्रत्येक शब्द बहुत गम्भीरता से निकलता था और सुनने वाले उनके एक-एक वाक्य से अधिक चितन मे और गहरे विचार मे गोता लगाते प्रतीत होते थे। मध्याह्न के समय प्रायः एक बजे बापूजी हमारे घर पर भोजन के लिए आये। घर मे दो बडी-बडी मेजे थी। उनको जोडकर उनपर लम्बी सफेद चादर बिछा दी गई थी। दोनो सिरो पर और बाजुओ पर दस-बारह कुर्सिया थोडे-थोडे अन्तर पर रख दी गई थी। मेज पर खीर, तश्तरिया और चपातिया रखी गई थी। फिर केले, कटे हुए टमाटर, टमाटर का साग, सतरे, मोसम्बी, नीबू, मूगफली के दाने, मूगफली का पाक, मूंगफली को पीसकर बनाया हुआ मक्खन (नट-बटर) और अन्य कई वस्तुए करीने से सजाकर रख दी गई थी। आठ-दस आदमियो के साथ बापूजी आये। एक तरफ की बीज की कुर्सी पर वह स्वय बैठे और मेज की सारी चीजे जाचकर अपने दोनो ओर बैठे हुए व्यक्तियो की थाली मे परोसने लगे। भोजन शुरू हुआ। खीर, रोटी और तरकारी का भोजन समाप्त हो चुकने के बाद फलो की बारी आई। तश्तरी से उठा-उठाकर केले, नारगी आदि अपने पासवालो को और दूर बैठे हुओ को भी पहुचाने के बाद बापूजी ने स्वय रोटी-साग, फल आदि पांच-छ चीजे ली। उनके सामने की कुर्सी पर बैठ-बैठे मै यह सब देखता

रहा। प्राय: डेढ घटे तक बापूजी के भोजन का क्रम चलता रहा। भोजन के साथ-साथ बापूजी ने अपने काम के सम्बन्ध मे बहुत-सी बाते की। उन्होने वह डेढ घटा बेकार नही जाने दिया।

भोजन के बाद बापूजी सीधे प्रेस मे चले गए और फिर काम मे लग गए।

सध्या के समय रविवार न होन पर भी बापूजी के घर पर बैठक हुई। उन दिनो बैठके रविवार के मध्याह्न मे तीन से पाच बजे तक के समय मे हुआ करती थी और अग्रेजी तथ गुजराती भजन गाकर समाप्त हो जाती थी। बापूजी के होने के कारण उस दिन रात मे देर तक बैठक चलती रही। मै तो जल्दी ही सो गया था। बापूजी कब सोये, इसका पता मुझे नही चला।

अगले दिन सवेरे बापूजी ने डरबन के लिए प्रस्थान किया। मेरे पिताजी भी उनके साथ गये। मुझे भी डरबन तक उनके साथ जाने का मौका मिला। डरबन पहुचकर हम लोग सीधे 'पोर्ट' (बन्दरगाह) पर गये। मि. पोलक उसी दिन हिन्दुस्तान से लौटने वाले थे, इसलिए उनके स्वागत के लिए अनेक हिन्दू, मुसलमान, पारसी आदि बडे-बडे लोग वहा इकट्ठे हुए थे। स्टीमर को बन्दरगाह मे प्रवेश मिल गया था, परन्तु अभी किनारे लगने मे थोडी देर थी। बापूजी रुस्तमजी सेठ, दाऊद सेठ, उमर सेठ आदि डरबन के नेताओ के साथ बातचीत कर रहे थे। किनारे जिस जगह स्टीमर लगने वाला था, वहा से करीब बीस कदम की दूरी पर एक बडा गोदाम था। उसकी छाया मे वे सब लोग खडे थे। उन लोगो से अलग होकर मै अपने पिताजी के साथ स्टीमर लगने का स्थान देखने के लिए पहुचा।

धीरे-धीरे स्टीमर आकर किनारे लग गया। उतरने के लिए सीढी जमीन पर लगा दी गई। उस सीढी से एक ओर कुछ पाच-सात कदम पर, मै और पिताजी खडे थे। स्टीमर के ऊपर के डेक पर श्री पोलक खडे थे। उनके साथ पिताजी ने कुशल-मगल की बाते शुरू की। मेरा ध्यान उस ओर था, जहा स्टीमर को जमीन मे गडे खम्भो से मोटे-मोटे रस्सो द्वारा बाधा जा रहा था। इसी बीच कोई बीस-पच्चीस बरस का एक अग्रेज जवान, जो बन्दरगाह का कोई कर्मचारी होगा, वहा आया और हमारे तथा स्टीमर के बीच जो सकरी जगह थी उसमे से होकर दूसरी तरफ निकल गया। जाते-जाते उद्दडता के साथ उसने मेरे पिताजी से कहा, "चलो, हटो यहा से।" उसको निकलने के लिए जगह चाहिए, यह समझकर पिताजी जहा खडे थे वहा से एक कदम पीछे की ओर हट गए और पोलक साहब से बाते करते

रहे। मिनट-भर भी तो नही बीता होगा कि वह गोरा जवान फिर वहा आया और बोला, "चलो, ह—ट जाओ।" पिताजी हटे नही और वही खडे-खडे पोलक साहब से बाते करते रहे। यह देखकर उस अफसर का मिजाज गरम हो गया और वह गरजकर पिताजी से बोला, "अबे सुनता क्यो नही ? इस सीढी के पास से हटने के लिए तुझसे कह रहा हू। हट क्यो नही जाता ? हटो इधर से।" कहकर वह पिताजी को धक्का देने के लिए आगे बढा। पिताजी उसको कुछ उत्तर दे या वहा से हटे इससे पहले बापूजी और दूसरे और लोगो का ध्यान उस ओर गया। वह युवक जिस तेजी से चिल्लाकर बोला था उससे दुगनी ऊची आवाज मे बापूजी ने डाट लगाई–He shan't move an inch अर्थात् वह एक इच भी नही हटेगा। तीन ही शब्द की यह गर्जना इतनी तीखी थी कि आकाश गूज उठा। वह अग्रेज इस अचानक हमले से चौक उठा और पिताजी की ओर से मुडकर बापूजी के पास पहुचा। गुस्से मे भरा वह बोला, "क्यो नही हटेगा ? उसे हटना ही पडेगा। जहाज पर कुछ गडबडी करनी है क्या ?" बापूजी का पुण्य-प्रकोप प्रज्वलित हो उठा। वह गरजकर बोले, "नही—नही, वह एक इच भी नही हटेगा। तुम क्या करना चाहते हो ?" झगडा आगे बढे, इससे पहले ही कुछ बडे अग्रेज अफसर वहा पर जमा हो गए और उस अफसर को समझाते हुए कहने लगे, "यह तो गाधी है, मामूली कुली नही है। इससे तुम क्यो झगड रहे हो ? यह और इसके साथी ऐसे नही है जो स्टीमर पर कुछ गडबडी करे।" यह कह वे उस आदमी को बापूजी के पास से अलग ले गए। यह देख बापूजी के आसपास हिन्दियो की जो भीड इकट्ठी हो गई थी, उसने तथा स्टीमर पर के सभी हिन्दी-यात्रियो ने एक-स्वर मे "शरम शरम" (Shame, Shame) के नारे लगाये। वह बेचारा खिसिया गया और सब भारतीयो ने अपने स्वाभिमान का गौरव महसूस किया।

मि० पोलक आदि से बातचीत कर शाम के समय बापूजी डरबन से सीधे जोहान्सबर्ग लौट गए।

मेरी इच्छा बापूजी के साथ टाल्स्टाय-बाडी जाने की थी पर वह पूरी नही हुई। बापूजी जाते समय मुझसे कहते गए कि तुम टाल्स्टाय-बाडी नही जा सके, पर देवदास को तुम्हारे पास फीनिक्स मे रहने को भेजूगा। वह और तुम साथ-साथ फीनिक्स मे रहोगे तो ज्यादा मजा रहेगा।

: ३७ :

देवदासकाका

जैसा कि बापूजी ने मुझे आश्वासन दिया था उन्होने अपने छोटे पुत्र देवदासकाका को टाल्स्टाय फार्म से फीनिक्स भेज दिया। बात यह थी कि जेल जानेवाले सत्याग्रहियो की छावनी के रूप मे तथा आदर्श श्रमिक का जीवन अपनाने के प्रयोग-क्षेत्र के रूप मे टाल्स्टाय-फार्म श्रेष्ठ स्थान था; परन्तु विद्या-प्राप्ति के लिए वहा सतोषप्रद व्यवस्था नही थी। जीवन की बुनियाद को अधिक ठोस बनाने के लिए और ज्ञान तथा सस्कार दोनो का गहरा अनुशीलन करने के लिए बापूजी के विचार मे फीनिक्स का स्थान अधिक महत्वपूर्ण था। इसी वजह से उन्होने देवदासकाका को फीनिक्स भेजा और उनकी पढाई का उत्तरदायित्व मगनकाका तथा पिताजी को सौपा।

निश्चित दिन ट्रेन से देवदासकाका ही उतरे। कार्यवश बापूजी डरबन मे रुक गए थे। दो मिनट तक तो मै देवदासकाका को पहचान भी नही सका। उनका ऊचा-पतला शरीर, मामूली कोट-पतलून और छोटे-छोटे बाल देखकर मुश्किल से मै निश्चय कर पाया कि सचमुच यही देवदासकाका है।

स्टेशन से ढाई मील का पैदल रास्ता पूरा होने तक मै बडे गौर से देवदासकाका का अवलोकन करता रहा। वह क्या व कैसे बोलते है, क्या देखते है, उनकी आवाज मे कैसा परिवर्तन हुआ है, ये सब मेरे लिए जानने की बाते थी। तीन बरस पहले जब हम एक साथ खेलते-कूदते थे, हम लोगों को कघे और ब्रश से अपने बाल सवारने मे करीब आधा घटा लग जाता था। फार्म से लौटकर आनेवाले देवदासकाका मे इतना परिवर्तन होगा, इस बात की मुझे कल्पना तक न थी। कुछ दूर तक हम सब चुपचाप चलते रहे। फिर देवदासकाका ने मौन भग किया और उन्होने श्रीवीरजीभाई से पूछा, "आप मुझे कितने दिन मे कम्पोज करना सिखा देगे?" वीरजी फीनिक्स प्रेस के गुजराती विभाग के फोरमैन थे और देवदासकाका को लेने फीनिक्स स्टेशन आये थे। घर पहुचने तक इसी सिलसिले मे बात होती रही। उस सारी बात का सार मैने यह निकाला कि छापेखाने मे कम्पोज करने का काम सीखने के लिए बापूजी ने उनको तीन महीने के लिए फीनिक्स भेजा है। इसके बाद उनको फिर फार्म लौटना है और फीनिक्स मे भी फार्म के नियमो का पालन करना है।

दूसरे दिन बापूजी कुछ घटे के लिए फीनिक्स आये। उन्होने देवदास-

काका की पढाई के बारे मे मेरे पिताजी और मगनकाका से बातचीत की। अलोने आहार का आरम्भ कर देने के लिए बापूजी ने देवदासकाका को कहा। मगनकाका आदि ने उनसे अनुरोध किया कि अलोने-व्रत की कडाई कम कर दी जाय, परन्तु बापूजी अपनी बात पर अडिग रहे। केवल रविवार के दिन नमकीन पदार्थ खाने का अपवाद छोडकर शेष दिन अलोने का आग्रह रखने के लिए उन्होने देवदासकाका को समझाया और यह बात उनके मन पर जमादी।

दूसरी बात देवदासकाका के लिए बापूजी ने यह तय की कि प्रति दिन दुपहरी मे दो से चार बजे तक कुदाल लेकर खेत मे खोदने के लिए जाना चाहिए। ये दो बाते निश्चित करने के बाद बापूजी फिर जोहान्स-बर्ग लौट गए।

इस बार जब बापूजी आये थे तब उनके नियमो मे एक कठोर नियम और बढ गया था। नमक की तरह चीनी का भी उन्होने परित्याग कर दिया था। चीनी छोड देने के कारण उनके भोजन के लिए रसोईघर मे पहले के समान कई चीजे तैयार करने की सुविधा मेरी माताजी को नही मिली।

देवदासकाका के आने पर मेरा व्यक्तित्व मानो उनमे समा गया। मै उन्ही के साथ-साथ रहने लगा। पढने-लिखने, खेलने, खाने या और कोई काम करने का विचार मै उनके बिना नही कर पाता था। वह मेरे लिए 'बडे विद्यार्थी' (मानीटर) तो थे ही, साथ-साथ पूर्णतया मेरे नेता भी बन गए। उनका कपडे पहनने, बटन लगाने, दौडने, कुदाल पकडने और नाक साफ करने तक का ढग अपनाने के लिए मै सतत प्रयत्न करता था। उनके कार्यक्रम के साथ-साथ मेरा कार्यक्रम भी अपने-आप निश्चित हो गया।

सवेरे उठकर नहाने-धोने के बाद भोजन के समय तक हम दोनो गुजराती, गणित, सुलेखन और अग्रेजी का अध्ययन करते थे। पिताजी हमे पढाते थे। देवदासकाका के अलोने-व्रत मे मैने उनका साथ दिया। जब वह छापेखाने मे कम्पोजिग सीखने जाते, मै घर मे बैठकर पढता था। फिर दो बजे से चार बजे तक मगनकाका के साथ हम लोग खोदने का काम करते थे और सध्या के समय खेल-कूदकर सो जाते थे।

आयु मे देवदासकाका मुझसे अधिक बडे नही थे, परन्तु वह अपने को बालक महसूस करते हो, ऐसा मालूम नही पडता था। बडो के साथ बडो की तरह बरतते थे। वैसे, सभी के प्रति विनय रखते थे, लेकिन मगनकाका का आदर वह विशेष रूप से करते थे। बगीचे मे दोपहर के समय जब मगन-

काका हम दोनो को अपने साथ खोदने के लिए ले जाते थे, तब मैं उनका भय मानकर उनके इशारे पर जिस प्रकार काम करता था उसी प्रकार देवदास-काका भी। उनको अपना बडा समझकर नम्रतापूर्वक उनकी सूचना का पालन करता था। मगनकाका के साथ शायद ही वह बहस करते थे। एक ओर देवदासकाका, और दूसरी ओर मैं और बीच मे मगनकाका, इस प्रकार हमारी कुदाली सतत आगे-ही-आगे बढती जाती थी।

हम दोनो चाहे कितने ही थक जाय, तबतक अपना हाथ नही रोकते थे जबतक मगनकाका खुद विश्राम न ले। मगनकाका विश्राम लेते भी थे तो मुश्किल से दो-तीन मिनट रुककर फिर से कुदाल चलाने लगते थे। सम्भव है कि यहा जो वर्णन कर रहा हू वह फीका मालूम देता हो, परन्तु खोदने मे हमे जो आनन्द और रस आता था वह अवर्णनीय था। इतना कठिन परिश्रम होते हुए भी पता नही चलता था कि दो घटे कब बीत गए। मुझे कोई दिन ऐसा याद नही आता, जब हमारे मन मे आया हो कि इस परिश्रम से कैसे बचे। पसीने के मोती ज्यो-ज्यो बढते जाते थे और हाथ के फफोले ज्यो-ज्यो कडे पडते जाते थे, त्यो-त्यो हमारा आनन्द बढता था। वैसे, मगनकाका का गुस्सा बडा तेज था, लेकिन काम के इन घटो मे कभी उन्होंने गुस्सा किया हो, ऐसा मुझे याद नही है। लगभग सारा काम मौन रहकर होता था। बीच-बीच मे थोडा-सा मधुर विनोद और हँसी आदि करके मगनकाका हमारा उत्साह बढाते थे। जैसे मेरा अपनापन देवदासकाका के पास खो जाता था, उसी प्रकार मगनकाका के पास हम दोनो का व्यक्तित्व खो जाता था। मगनकाका का सकल्प, उनका परिश्रम उनके हाथ की सुघडता, उनका उत्साह और एक के बाद एक तालबद्ध पडने वाली उनकी कुदाल की चोटो का प्रवाह हमे अपने मे समा लेता था। उस समय हमे इस बात का जरा भी आभास नही था कि हमारा कुदाल चलाने का यह वर्ग कितना महत्वपूर्ण है और मगनकाका की महत्ता का भान तो था ही नही। वास्तव मे इस सारी क्रिया ने बडे भारी रसायन का काम किया—ऐसा रसायन कि जिसके फलस्वरूप वर्ष-सवा-वर्ष बाद ही हम-आधे आदमी से प्राय पूरे आदमी बन गए।

रविवार का दिन हमारे लिए मौज का दिन होता था। उस दिन काम की और पढने की छुट्टी के साथ-साथ अलोने की भी छुट्टी रहती थी। इस-लिए हमारा उत्साह बेहद बढ जाता था। घर मे उस दिन मसालेदार गर्म-गर्म भोजन मिलता था और मानो छ. दिन का नमक एक ही दिन मे खा लेने के लिए हम नमकीन चीजो पर हाथ धोकर टूट पडते थे। भोजन करके दूर तक घूमने जाते थे, दौडते थे, पतग उडाते थे और बागवानी

भी करते थ। इस प्रकार तीन महीने तक हमारा यह कार्यक्रम चलता रहा। इतने समय मे मानो एक युग बीत गया हो, ऐसा मुझे जान पडा। सूनापन और निरुत्साह अदृश्य हो गया और नई-नई बाते सीखने और जानने की उत्सुकता से जीवन रसमय बन गया।

तीन महीने समाप्त होने पर देवदासकाका के साथ मुझे फार्म जाने को मिलेगा या नही, इस चिन्ता मे मै था, लेकिन जब इस बात का भरोसा हो गया कि तीन महीने समाप्त होते ही देवदासकाका चले जानेवाले नही है, तब मुझे शाति हुई। तबतक टाल्स्टाय-वाडी से पूज्य बा फीनिक्स आ गई थी। बापूजी का घर खुल गया था। मै अपने घर और देवदासकाका अपने घर भोजन, शयन आदि करने लगे थे। फिर भी हमारा सहवास जरा भी शिथिल नही हुआ। हमारी पढाई और विकास का क्रम साथ-ही-साथ सतत आगे बढता जाता था।

: ३८ :

गोखलेजी का स्मरणीय प्रवास

एक दिन सवेरे नित्य से कोई दो घटे पहले मगनकाका प्रेस से घर लौट आये। उस समय पूज्य बा भी हमारे घर पर ही थी। कोई खास बात न हो तो प्रेस के समय मे मगनकाका घर नही आया करते थे। मै उनके पीछे हो लिया। वह सीधे बा के पास गये और बोले, "बापू का पत्र है, उनको पगडी चाहिए। माननीय गोखलेजी आने वाले है। उनको लिवाने के लिए बापू को केपटाउन जाना होगा। जब गोखलेजी जहाज से उतरेगे, तब उनके सम्मान के लिए सिर पर पगडी पहनकर ही जाना बापू आवश्यक समझते है।"

बापूजी की पगडी की शोहरत तो मैने बहुत सुनी थी, परन्तु उसे देखा नही था। फिर भी अखबारो के ढेर मे चित्र और फोटो आदि देखा करता था। उन चित्रो मे कई ऐसे होते थे जिनमे बापूजी की पगडी और उनकी पैनी नाक पर विशेष व्यग्य रहता था। टोपी और पगडी के विचित्र मेलवाली दुमदार पगडी व्यग्यचित्र मे बडी अजीब और अनोखी मालूम देती थी। लेकिन उसे पहनते हुए बापूजी को मैने नही देखा था।

गोखलेजी जब दक्षिण अफ्रीका पधारे तब बापूजी को बैरिस्टरी छोडे लगभग डेढ वर्ष बीत चुका था। अपना बैरिस्टरी का दफ्तर बन्द करने के साथ-साथ उन्होने अपना जोहान्सबर्ग का घर भी बन्द कर दिया था और टाल्स्टाय-वाडी के लिए आवश्यक चार जोडी कपडो के अतिरिक्त अपना कुल सामान फीनिक्स भेज दिया था। अब आवश्यकता पडने पर उन्होने अपने बन्द सामान से वह पगडी ढूढकर भेजने के लिए लिखा था।

बापूजी का यह सन्देश सुनकर पहले तो बा सोच मे पड गई कि अब वह पगडी कहा ढूढी जाय और यदि मिल भी जायगी तो पहनने योग्य रही होगी या नही; जर्जर तो वह हो ही गई थी। इस शका का समाधान करते हुए मगनकाका ने पूज्य बा से कहा कि यदि उसको सुधरवाने की आवश्यकता हो तो सुधरवा लिया जायगा, ऐसा बापूजी ने लिखा था। वह चाहते है कि नई पगडी बनवानी न पडे और उस पुरानी से ही काम चला लिया जाय।

दूसरे दिन पूज्य बा ने मगनकाका को वह पगडी सौप दी। देखने मे वह लम्बी गोल नाव सी दीखती थी। गत्ते की सी चीज का सख्त ढाचा था और उसपर बिलकुल काले रग की बारीक मलमल चढी थी। कपडा काफी पुराना पड गया था। उसके मिल जाने पर मगनकाका खुश हो गए और उसी दिन उसे ठीक-ठाक करके उन्होने पार्सल द्वारा उसे बापूजी के पास भेज दिया।

फीनिक्स स्टेशन के लिए कोई बना-बनाया रास्ता नही था। एक पगडडी थी, जो कही बहुत चौडी और कही बहुत सकरी हो जाती थी। रास्ते मे अनेक टीले और नाले पडते थे। बरसात के समय टीलो से नीचे आनेवाले पानी के बहाव के कारण वह सकरी पगडडी इधर-उधर से टूटी और खुदी हुई रहती थी। उस रास्ते को बीसियो गिरमिटिये मजदूर फावडे और बेलचे लेकर सुधारने लगे। कही गड्ढे भर रहे है, कही मिट्टी काटकर भूमि को समतल बना रहे है और सारा रास्ता चौडा कर रहे है।

अपने देश से गोखलेजी महाराज आ रहे थे, उनकी मोटर के वास्ते यह रास्ता ठीक किया जा रहा था।

मैने देवदासकाका से पूछा, "इसमे इन लोगो को क्या दिलचस्पी? वे लोग अपनी जमीन मे रास्ता क्यो ठीक कराते है?"

देवदासकाका ने बताया कि गोखलेजी बापूजी से बडे है। वह यहा की सरकार के भी मेहमान है, इसलिए यदि गोरे लोग यह रास्ता न सुधारे तो हमारे देश मे उनकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुचेगी।

कुछ दिन के बाद 'इडियन ओपीनियन' मे गोखलेजी के सुन्दर फोटो छपने लगे। केपटाउन शहर मे एक शानदार, खुली बग्घी मे आमने-सामने गोखलेजी और बापूजी बैठे थे। बापूजी के सिर पर वही दुमदार पगडी जच रही थी और बग्घी के चारो ओर लोगो की भारी भीड थी।

फीनिक्स के लोगो मे बातचीत का मुख्य विषय गोखलेजी का आगमन और उनका स्वागत-समारोह ही बन गया। बातचीत मे लोग कहते, "गाधी-गोखले के पीछे अपने देशवासियो की तो पूछो ही मत, गोरे लोग भी पागल-से बने हुए है। भीड-की-भीड उमडती है। बापूजी ने गोखलेजी का इतना भव्य सत्कार कराकर इस देश मे भारतवासियो की प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढा दी है। गोखलेजी की सेवा करने मे बापूजी ने दिन-रात एक कर रखा है। गोखलेजी के सत्कार मे भारतवासियो की ओर से कही जरा-सी भी कसर नजर आती है तो बापूजी खबर ले डालते है। एक-से-एक बढकर सेवक गोखलेजी की सेवा के लिए उपस्थित रहते है, पर इन बीसियो सेवको के होते हुए भी गोखलेजी की सारी सेवाए बापूजी स्वय अपने हाथ से करते है। गोखलेजी के सम्मान व आदर-सत्कार मे रत्ती-भर भी कमी न रह जाय इसके लिए बापूजी पूरी सावधानी रखते है।"

इधर फीनिक्स मे हमारी दिनचर्या मे परिवर्तन हो गया। डरबन शहर मे भारतीय लडको और लडकियो की दौडो के दगल किये जानेवाले थे और जीतनेवालो को गोखलेजी के हाथ से इनाम दिलाये जानेवाले थे। इस दगल मे फीनिक्स की पाठशाला के बच्चो को भी निमन्त्रित किया गया था। फीनिक्स आश्रम और आसपास दो-तीन मील मे बसनेवाले गिरमिट-मुक्त भारतीयो के बच्चो को मिलाकर हमारी सख्या मुश्किल से सात-आठ हुई। फिर भी मगनकाका ने खेलो के लिए उत्साह से तैयारिया करवाई। आधमील की दौड, सौ गज की दौड, तीन पैरो की दौड, ऊँची कुदान, लम्बी कुदान आदि के अभ्यास मे आधा दिन बीतने लगा। इन सभी खेलो मे देवदासकाका अव्वल आया करते थे।

अन्य तैयारियो मे, फीनिक्स मे, जहा हम लोग बसते थे, वहा के छोटे-बडे सभी रास्ते साफ-सुथरे किये गए। मुख्य-मुख्य स्थानो से घास साफ की गई और फीनिक्स मे गोखलेजी के पधारने पर उनके स्वागत के लिए मगन-काका हम लोगो को भजन सिखाने लगे। उनमे कुछ रामायण की चौपाइया और दोहे थे और एक अग्रेजी भजन था। हमारी रोज की पढाई को तो पूरा विराम मिल गया था।

जोहान्सबर्ग आदि मे होनेवाले भव्य स्वागत-समारोह की बाते सुनकर

देवदासकाका का मन फीनिक्स मे स्थिर नही रहता था। वहा जाने के लिए वह उत्सुक रहने लगे। जोहान्सबर्ग तो वह नही जा सके, परन्तु मारित्सबर्ग तक जाने के लिए उनको अनुमति मिल गई। देवदासकाका के द्वारा मैने भी उनके साथ मारित्सबर्ग तक जाने की अनुमति प्राप्त कर ली। अन्त मे एक दिन प्रात काल हम दोनो डरबन मे रुस्तमजी सेठ के घर पर पहुच गए।

डरबन से भारतवासियो की एक पूरी ट्रेन मारित्सबर्ग तक गोखलेजी के स्वागत के लिए जानेवाली थी। उसके छूटने मे करीब चार घटे की देर थी।

वही जमनादासकाका आ गए। हमे वडी खुशी हुई। डरबन मे गोखलेजी के स्वागतार्थ जो तैयारिया हो रही थी उनमे कुछ कसर हो तो उसे जाचने और ठीक कराने के लिए बापूजी ने उनको यहा भेजा था। जमनादासकाका से हमने ट्रासवाल मे हुए गोखलेजी के भव्य स्वागत की बहुत-सी नई बाते सुनी। जब गोखलेजी टाल्स्टाय-वाडी गये थे तब वहा किस-किस व्यक्ति को क्या-क्या काम दिया गया था और किसने अपने काम को सुचारु रूप से किया आदि बाते विस्तारपूर्वक जमनादासकाका ने देवदासकाका को सुनाई और इस प्रकार मेरे सामने फार्म का एक स्पष्ट कल्पना-चित्र आ गया।

टाल्स्टाय-वाडी मे स्वागत के लिए स्थानिक चीजो से ही सजावट की गई थी। जोहान्सबर्ग के बाजार से या कही से कपडे की कतरन भी सजावट के लिए नही लाई गई थी। टाल्स्टाय-वाडी के विद्यार्थियो और शिक्षको द्वारा किये गए कठिन परिश्रम से वहा के बागीचे मे जो फल-फूल तैयार हुए थे उनसे ही टाल्स्टाय-वाडी सजाई गई थी। पके-अधपके रग-बिरगे आडू-अलूचे और अन्य फलो के हरे-ताजे गुच्छे लटकाकर मेहराबे तैयार की गई थी। वहा की सादगी, शोभा और शान्ति से गोखलेजी मुग्ध हो गए।

भोजन के पश्चात् हम सब मारित्सबर्ग जाने के लिए स्टेशन को चल पडे। उस समय हमारा तिरगा झंडा तो था नही, पर भारतीय समाज का उत्साह और आनन्द प्रकट करने के लिए सैकडो झडे-झडिया रुस्तमजी सेठ के घर से बाटे गए। अनेक रगो के छोटे-बडे झंडे थे, जो हम सबने अपने हाथ मे ले लिये। जलूस बनाकर हम लोग डरबन के स्टेशन पर पहुचे। सारी ट्रेन हम लोगो से ठसाठस भर गई।

तीसरे दर्जे के दो-तीन डिब्बो को छोडकर पूरी-की-पूरी ट्रेन मे गलियारा (कारिडोर) था; अर्थात् चलती गाडी मे एक डिब्बे से दूसरे डिब्बे मे जाने

का मार्ग बना हुआ था। आमतौर से वहा की पूरी गाडी देखने का मौका हम भारतीयो को नही मिलता था, क्योकि गोरो के डिब्बे अलग हुआ करते थे। उस दिन का लाभ लेकर मैने और देवदासकाका ने पूरी ट्रेन मे दो बार चक्कर काटे।

करीब तीन घटे की यात्रा के बाद हम मारित्सबर्ग जा पहुचे। हम लोग अपने अनेकविध झडो के साथ गोखलेजी के पास शहर की ओर चल दिए।

गोखलेजी आ गए थे और शायद सभा भी हो चुकी थी। हम लोगो ने जाकर वह बगला बाहर से देखा, जिसमे उनको ठहराया गया था। नेटाल प्रात की राजधानी होने की वजह से मारित्सबर्ग नगरी सुन्दर बगीचे-जैसी बनी हुई थी।

दूसरे दिन सुबह उठकर कोई तीन मील पैदल चलता हुआ हमारा सघ मारित्सबर्ग स्टेशन पर पहुचा। मै और देवदासकाका किसी तरह सीधे गोखलेजी के डिब्बे के पास पहुच गए। डरबन से जो खास गाडी आई थी उसमे गोखलेजी का 'सैलून' जोड दिया गया था। यह सैलून दक्षिण अफ्रीका की सरकार की ओर से उनके स्वागतार्थ विशेष रूप से दिया गया था। गोखलेजी के डिब्बे मे बापूजी तथा दूसरे एक-दो व्यक्तियो को छोडकर किसी का प्रवेश नही हो पाता था। हम दोनो को तो बापूजी ने स्वय ही डिब्बे के अन्दर ले लिया था।

'सैलून' मे गोखलेजी केवल कुरता पहने हुए, नगे सिर बैठे थे। सिर के आधे बाल सफेद और आधे काले थे। पास जाकर हमने उनके पैर छुए। किसी ने देवदासकाका का परिचय करवाया तो गोखलेजी ने उनकी ओर देखा और थोडा मुस्कराए, फिर अपने हाथ की पुस्तक पढने मे एकाग्र हो गए।

'सैलून' मे हम लोगो के पहुचने के कुछ देर बाद मारित्सबर्ग से ट्रेन चल चुकी थी। थोडी ही देर बाद बापूजी गोखलेजी के कपडे अपने हाथ मे लेकर उनके सामने खडे हो गए और नम्रतापूर्वक बोले कि "अब स्नान से निबट लिया जाय।"

वह सैलून स्वय जनरल स्मट्स का था। हमने देखा कि उसमे फर्स्ट क्लास के डिब्बे से भी कही अधिक सुविधाए थी।

देवदासकाका और मै यह सब आश्चर्य-मुग्ध होकर देख रहे थे कि बापूजी गोखलेजी को स्नानगृह मे पहुचाकर हमारे पास आये और बहुत धीमी आवाज मे हम दोनो से कहा कि अब तुम लोगो ने सब देख ही लिया

है। सो अब जाकर सबके साथ बैठो। जहा पर अपना काम न हो वहा पर बेकार नही रुकना चाहिए।

बापूजी की यह आज्ञा पाकर 'सैलून' से निकलकर हम दोनो दूसरे डिब्बो मे चले गए और अन्य लोगो के साथ जा बैठे। मारित्सबर्ग से डरबन तक, प्राय ४०-४५ मील तक, एक स्थान पर ट्रेन रुकी। पर सारे रास्ते रेल के दोनो ओर जगह-जगह मनुष्यो की भीड नजर आती थी। वे लोग खुशी के जो नारे लगाते थे उस आवाज से ट्रेन के चलने की आवाज भी दब जाती थी।

उन दिनो गोखलेजी का स्वास्थ्य अच्छा नही रहता था। हल्का बुखार, सिर दर्द, कमजोरी आदि की उन्हे शिकायत थी। जोहान्सबर्ग मे उन्हे आठ-दस दिन बिस्तर पर लेटे रहना पड़ा था। फिर भी दक्षिण अफ्रीका के प्रश्न को हल करने के लिए अपने शरीर की चिता न करके वह अविरत परिश्रम किया करते थे। बापूजी उनके पहरेदार बन गए थे। विश्राम के समय लोगो की भीड उनके पास न हो इसकी वह सावधानी रखते थे। भोजन अपने हाथ से पकाकर और तैयार करके देते थे। उनके कपडे भी बापूजी स्वय धोकर तैयार करते थे। साथ ही गोखलेजी अधिक श्रम न करे इसकी भी खबरदारी रखते थे। और अपने गुरु पर शासन भी चलाते थे।

जोहान्सबर्ग का एक प्रसग है। श्री कैलनबैक के सुन्दर बगले मे गोखलेजी को टिकाया गया था। अगले दिन जोहान्सबर्ग मे दावत होने वाली थी। उस दावत मे दक्षिण अफ्रीका की सरकार के मुखिया जनरल स्मट्स और जनरल बोथा भी आनेवाले थे। उस दावत के भाषण की तैयारी करने के लिए रात मे ही गोखलेजी लिखने बैठ गए। बापूजी की नीद खुली तो देखा कि आधी रात के बाद शायद रात को दो बजे के समय बत्ती जल रही है। तब दोनो के बीच इस प्रकार चर्चा हुई

"आप अभी तक क्या कर रहे है ?"

"दावत के भाषण के लिए नोट तैयार कर रहा हू।"

"हमे नही चाहिए आपका ऐसा भाषण। अपने आराम मे मत खलल डालिए।"

"तो क्या इसे फाड दू ?"

"जी हा, फाड दीजिए।"

"लो, फाड दिया , पर अब तो वह तैयार है। कहो तो तुम्हे सुना दू।"

यह कहकर गोखलेजी ने उसी समय वे नोट ज्यो-के-त्यो सुना दिये, जो उन्होने फाडकर टोकरी के हवाले कर दिए थे। और वास्तव मे जोहान्स-

हिला देने वाला था। उस भाषण ने वहा के भारतवासियो के दिल मे आशा का सचार किया और गोरो के अत करण मे न्यायबुद्धि की चिनगारी जगाई।

मै भी उस सभा मे गया था। पर मेरी उत्सुकता तो गोखलेजी के हाथो बच्चो को जो इनाम बटनेवाले थे, उन्हे देखने की थी। इसलिए हम लोग तो भागते हुए घुडदौड के मैदान पर पहुचे, जहा सैकडो बालक—लडके और लडकिया—अलग-अलग टोलियो मे खेल-कूद के कार्यक्रम मे लगे हुए थे।

गोखलेजी तीन बजे पधारे और सारे मैदान मे पूर्ण शान्ति और व्यवस्था छा गई। हम लोग उस ओर बढे, जहा बडे आदमियो के लिए बैठकर देखने का मकान-सा बना हुआ था। कुछ विशेष प्रकार के खेल—बडे आदमियो की दौड, साइकल दौड और कुछ देर फुटबाल का खेल आदि उनके सामने किए गए। कार्यक्रम समाप्त होने पर दुमजिले से गोखलेजी इनाम देने के लिए नीचे उतरे और उनके हाथो से, बडे-बडे चादी के बर्तन, किताबे आदि, इनाम-विजेताओ ने प्राप्त किये।

जब यह हो रहा था तब मुझे भी एक बहुत बढिया इनाम मिल गया, जिसे मै कभी नही भूल सकता। किन्तु वह गोखलेजी के हाथ से न मिलकर एक गोरे सैनिक के हाथो मिला था।

बडे लोगो के लिए जो अहाता बना हुआ था उसके अन्दर मै अपने पिताजी के साथ पहुच गया था। कडी धूप के कारण जोर की प्यास लगी तो मै पानी पीने के लिए उस अहाते से बाहर निकल गया। लौटते समय फाटक पर भीड थी, इसलिए मै प्रवेश नही कर सका। विवश होकर मै हदबन्दी के रस्सो के नीचे से अन्दर घुसने लगा। घुटने पर झुककर ज्योही मैने सिर अन्दर किया कि मेरी पीठ पर जोर का चाबुक पडा। मुह से चीख निकल गई। मैने नजर ऊपर उठाई तो एक ताड-सा ऊचा, हट्टा-कट्टा लाल मुह वाला गोरा-पुलिसमैन हाथ मे लम्बा कोडा लिये हुए दिखाई दिया। मेरी समझ मे नही आया कि यह हुआ क्या? मेरी चीख सुनकर पिताजी और दूसरे कई आदमी वहा आ गए। उन्होने छोटे बच्चे पर हाथ उठाने के लिए उस सैनिक को शर्मिंदा किया और मुझे अन्दर ले लिया। वह गोरा बडबडाने लगा कि इसे अन्दर जाना था तो फाटक के रास्ते से क्यो नही गया? मेरी पीठ पर चाबुक की मार उभड आई। मेरे लिए यह इनाम किसी चादी के बर्तन या किताब से बढकर रहा।

गोखलेजी केपटाउन से लेकर डरबन तक के बडे नगरो मे और टाल्स्टाय-वाडी तथा फीनिक्स के सुदूर देहाती क्षेत्र मे लगभग डेढ महीने तक प्रवास करते रहे। स्वास्थ्य उनका बहुत नाजुक था। फीनिक्स-जैसे

बर्ग का वह भाषण दक्षिण अफ्रीका मे उनका सबसे बडा और अत्यधिक प्रभावशाली भाषण हुआ था।

उन्ही दिनो का एक किस्सा और मेरे सुनने मे आया। बापूजी के पास रहने वालो मे श्री प्रागजी देसाई बडे बुद्धिवादी थे। प्रत्येक बात की नुक्ता-चीनी करते और सवाल पूछते रहते थे। उन्होने गोखलेजी से एक बार पूछा, "कहते है कि आपको अपने पुराने व्याख्यान याद रहते है। कोई एक सुना दीजिए।" थोडा-सा याद कर गोखलेजी ने सन् १९०५ मे आक्स-फोर्ड विश्वविद्यालय मे दिये गए भाषण के कुछ अश ज्यो-के-त्यो सुना दिये।

दक्षिण अफ्रीका के इतिहास मे बापूजी ने लिखा है, "गोखले को एक आदत थी, जिसे मै कुटेव कहता था। वह नौकर से ही सेवा लेते थे और सफर मे नौकर को साथ रखते नही थे। मैने और श्री कैलनबैक ने उनके पैर दबाने के लिए बहुत आग्रह किया पर वह माने ही नही। हम लोगो को पैर छूने भी नही दिया बल्कि कुछ नाराज होकर डाटने लगे, 'क्या तुम्ही लोग दु ख झेलने के लिए पैदा हुए हो और मुझ-जैसे लोग तुमसे सेवा लेने के लिए ? तुम्हारे इस तकल्लुफ का बदला यह है कि मै तुम्हे अपने को छूने ही नही दूगा। तुम सब शौच के लिए दूर तक जाओगे और मेरे लिए कमोड रखोगे यह क्यों ? मै तुम्हारा गर्व दूर करूगा।' और इस तरह उन्होने हम लोगो को अपनी शारीरिक सेवा करने ही नही दी। खाने-नहाने आदि मे हमारी सहायता लिये बिना उनका चारा नही था। जब हम लोगो को आश्रम के फर्श पर बिस्तर लगाते हुए देखा तब उन्होने अपना बिस्तर भी चारपाई से नीचे बिछाया। वह जितने गम्भीर थे उतने ही विनोदप्रिय भी थे और उनके प्रत्येक वाक्य मे सत्य और स्वदेशाभिमान झलकता था और वह अपने सेवक को रिझाने का पूरा खयाल रखते थे।"

ऐसे महान व्यक्ति जब डरबन पधारे तब डरबन स्टेशन पर जसी भीड जमा हुई थी वैसी मैने कभी नही देखी थी। बाद मे भारत आने पर बापूजी के लिए वैसे विराट जन-समुदाय को एकत्र देखने का सौभाग्य अनेक बार मिला, फिर भी डरबन की उस स्मृति का असर मेरे मन पर विशेष रह गया। स्टेशन के फाटक से लेकर जहा तक नजर पहुचती थी मानव-सागर उमडा पडता था।

गोखलेजी के टाउनहाल के भाषण के बारे मे लोगो को कहने सुना कि वह बहुत ही सुन्दर भाषण था। टाउनहाल का वह विशाल कक्ष भारतीय और गोरे दर्शको से भरा हुआ था। सबकी आखे और कान गोखलेजी की ओर एकाग्र हो गए थे। उनका भाषण, भाषण नही था, मानो मन्त्रो का प्रवाह था। उनका प्रत्येक शब्द स्पष्ट, गम्भीर और सुनने वालो के दिलो को

हिला देने वाला था। उस भाषण ने वहा के भारतवासियो के दिल मे आशा का सचार किया और गोरो के अत करण मे न्यायबुद्धि की चिनगारी जगाई।

मै भी उस सभा मे गया था। पर मेरी उत्सुकता तो गोखलेजी के हाथो बच्चो को जो इनाम बटनेवाले थे, उन्हे देखने की थी। इसलिए हम लोग तो भागते हुए घुडदौड के मैदान पर पहुचे, जहा सैकडो बालक—लडके और लडकिया—अलग-अलग टोलियो मे खेल-कूद के कार्यक्रम मे लगे हुए थे।

गोखलेजी तीन बजे पधारे और सारे मैदान मे पूर्ण शान्ति और व्यवस्था छा गई। हम लोग उस ओर बढे, जहा बडे आदमियो के लिए बैठकर देखने का मकान-सा बना हुआ था। कुछ विशेष प्रकार के खेल—बडे आदमियो की दौड, साइकल दौड और कुछ देर फुटबाल का खेल आदि उनके सामने किए गए। कार्यक्रम समाप्त होने पर दुमजिले से गोखलेजी इनाम देने के लिए नीचे उतरे और उनके हाथो से, बडे-बडे चादी के बर्तन, किताबे आदि, इनाम-विजेताओ ने प्राप्त किये।

जब यह हो रहा था तब मुझे भी एक बहुत बढिया इनाम मिल गया, जिसे मै कभी नही भूल सकता। किन्तु वह गोखलेजी के हाथ से न मिलकर एक गोरे सैनिक के हाथो मिला था।

बडे लोगो के लिए जो अहाता बना हुआ था उसके अन्दर मै अपने पिताजी के साथ पहुच गया था। कडी धूप के कारण जोर की प्यास लगी तो मै पानी पीने के लिए उस अहाते से बाहर निकल गया। लौटते समय फाटक पर भीड थी, इसलिए मै प्रवेश नही कर सका। विवश होकर मै हदबन्दी के रस्सो के नीचे से अन्दर घुसने लगा। घुटने पर झुककर ज्योही मैने सिर अन्दर किया कि मेरी पीठ पर जोर का चाबुक पडा। मुह से चीख निकल गई। मैने नजर ऊपर उठाई तो एक ताड-सा ऊचा, हट्टा-कट्टा लाल मुह वाला गोरा-पुलिसमैन हाथ मे लम्बा कोडा लिये हुए दिखाई दिया। मेरी समझ मे नही आया कि यह हुआ क्या? मेरी चीख सुनकर पिताजी और दूसरे कई आदमी वहा आ गए। उन्होने छोटे बच्चे पर हाथ उठाने के लिए उस सैनिक को शर्मिदा किया और मुझे अन्दर ले लिया। वह गोरा बडबडाने लगा कि इसे अन्दर जाना था तो फाटक के रास्ते से क्यो नही गया? मेरी पीठ पर चाबुक की मार उभड आई। मेरे लिए यह इनाम किसी चादी के बर्तन या किताब से बढकर रहा।

गोखलेजी केपटाउन से लेकर डरबन तक के बडे नगरो मे और टाल्स्टाय-बाडी तथा फीनिक्स के सुदूर देहाती क्षेत्र मे लगभग डेढ महीने तक प्रवास करते रहे। स्वास्थ्य उनका बहुत नाजुक था। फीनिक्स-जैसे

१४

स्थल पर जहा सवारी के लिए मुश्किल से कच्चा रास्ता बना था उनको प्रवास करने मे बहुत कष्ट उठाना पडा, परन्तु उन्होने बडी प्रसन्नता से यह सारा प्रवास किया और जब वह भारत लौटे तब अफ्रीका के भारत-वासियो के मन मे स्वदेश के लिए जीवन न्योछावर करने का उत्साह और भी दृढ बनाते गए। हम फीनिक्स-वासियो के मन मे उन्होने यथाशीघ्र भारत पहुच जाने की उत्कठा बढा दी।

डरबन मे जिस दिन गोखलेजी का स्वागत किया गया, उसके दूसरे दिन वह फीनिक्स पधारे। हम लोग उनसे पहले फीनिक्स पहुच गए थे। उन दिनो गुजराती मे 'गोखले गणित' भाग प्रथम हमारी पाठ्य-पुस्तक थी। उसके मूल रचयिता गोखलेजी स्वय थे और गुजराती मे उसका अच्छा अनुवाद छपा था। गणित के ऐसे महान प्रोफेसर के हमारे फीनिक्स मे पधारने पर वह गणित के सवाल अवश्य पूछेगे, ऐसी हमारी धारणा थी। इसलिए उनके पधारने के दिन हमने अपने गणित के पाठ भरसक दोहरा लिए। सध्या के समय वह फीनिक्स आये। उनके फीनिक्स स्टेशन से आश्रम तक आने के लिए एक हलकी-सी घोडागाडी की व्यवस्था विशेष रूप से की गई थी। जब गोखलेजी पधारे तब वह अत्यधिक थक गए थे। हम लोगो ने बारी-बारी से उन्हे प्रणाम किया; उसके बाद भजन का कार्यक्रम शुरू हुआ। सबसे पहले 'इटर्नल स्पिरिट' नामक अग्रेजी भजन, जो दो महीने तक कोशिश करके मगनकाका ने इसी प्रसग के लिए हम लोगो को सिखा रखा था, देवदासकाका ने और मैने गाया। उसके बाद तुलसी रामायण से 'जेहि सुमिरत सिधि होइ' आदि मगलाचरण के सोरठे गाये गए। एक-दो भजन और भी हुए और बाद मे हम लोग गोखलेजी के आराम के खयाल से वहा से हट गए।

सवेरे उठने पर मुझे पता चला कि हमारे चले आने के बाद गोखलेजी ने देवदासकाका से एक अजीब प्रश्न किया था, जिसका जवाब देना बडो को भी कठिन मालूम हुआ। प्रश्न यह था कि "मान लो, तुम अपने माता-पिता के साथ किसी वन मे भ्रमण करने गए हो; तुम्हारी एक ओर कुछ दूरी पर पिताजी चल रहे है और दूसरी ओर माताजी चल रही है। ऐसे मौके पर एक भूखा बाघ सामने से आ जाता है। यदि तुम पिताजी की सहायता के लिए जाओगे तो बाघ माताजी को मार डालेगा, और यदि माताजी की सहायता करने जाओगे तो वह पिताजी को खा जायगा। बताओ ऐसी हालत मे तुम किसकी सहायता करने दौडोगे?"

सवेरे जब मै उठा, मगनकाका ने मुझसे भी यह प्रश्न पूछा। मै इसका उत्तर नही दे सका। मगनकाका ने बताया कि देवदास भी इसका उत्तर

नही दे सके थे और दूसरे जो लोग वहा बैठे थे, वे भी उत्तर देने मे असमजस मे पड गए थे। अत मे बापूजी ने उत्तर दिया, "मै स्वय बाघ के पास चला जाऊगा और इस प्रकार माताजी और पिताजी दोनों की रक्षा हो जायगी।"

फीनिक्स के कई स्थलो को देख लेने के बाद जरा भी आराम न करके गोखलेजी तागे मे बैठकर बापूजी के साथ श्री डूबे की शिक्षण-सस्था देखने के लिए चले गए। वह सस्था हब्शी बालको के लिए चलाई जा रही थी और हब्शी अध्यापक ही बडे प्रयत्न और परिश्रम से उन्हे पढाते थे। बापूजी और गोखलेजी के अलावा दूसरा कोई उनके साथ नही गया। सब, बापूजी की सूचना के अनुसार, अपने-अपने काम मे लगे रहे। जब बापूजी गोखले-जी को हमारी सस्था दिखा रहे थे, तब भी उनके पीछे किसी ने भीड नही की थी। बड़ो मे पिताजी और बालको मे शायद मै ही अकेला उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। श्री डूबे के स्कूल तक उनके साथ जाने की मुझे इच्छा थी, परन्तु बापूजी ने किसी को अपने साथ नही लिया। कोई दो घटे बाद गोखलेजी श्री डूबे की सस्था से लौट आए, फिर स्नान-भोजन करके आराम के लिए हमारी पाठशाला मे पधारे। उस मकान के चारो ओर पूर्ण शाति रहती थी। बापूजी ने इस बात के लिए बडी सावधानी रखी थी कि गोखले-जी के आराम मे जरा भी विघ्न न पडे। किसी के पैरो की आहट भी नही हो। जब गोखलेजी उस मकान मे जाकर चारपाई पर लेट गए तब बापूजी उनके पास बैठकर बहुत धीरे-धीरे बाते करने लगे।

दो महीने तक जिनके स्वागत के लिए फीनिक्स मे तैयारिया होती रही थी उन्होने दो दिन हमारे बीच रहकर सबको धन्य किया।एक शात पवित्र प्रकाश ने मानो फीनिक्स की उस भूमि पर अपने आशीर्वाद बिछा दिये। काम और सेवा के साथ-साथ सभी को बुद्धि का विकास और ज्ञान की उपासना भी सतत करनी चाहिए, यह सदेश वह फीनिक्स के वातावरण मे भर गए और जैसी शाति से आये थे वैसी ही शाति से उन्होने फीनिक्स से विदा ली। उनको विदा देने के लिए किसी भी प्रकार का समारोह नहीं किया गया। परन्तु हम लोगो के हृदयो को वह अपने साथ ले गए। गोस्वामी तुलसीदास ने जो कहा है, "बिछुरत एक प्रान हर लेही" उसका कुछ अनुभव वह हमे करा गए।

भारत लौटते समय गोखलेजी के आग्रह को मानकर बापूजी भी श्री कैलनबैक सहित जजीबार तक उनको पहुचाने गए।

बापूजी ने दक्षिण अफ्रीका के इतिहास मे लिखा है: "जजीबार में हमारा जो वियोग हुआ वह हम दोनो के लिए अतिशय दुखदायी था।

किन्तु देहधारियो का निकट-से-निकट का सहवास भी अत मे जाकर समाप्त होता ही है, ऐसा समझकर कैलनबैक ने और मैने सतोष किया।"

: ३६ :

एक कटु अनुभव

गोखलेजी को पहुचाकर बापूजी जजीबार से सीधे ही, शायद रेल के रास्ते से, जोहान्सबर्ग पहुचे। फीनिक्स मे बापूजी के स्वदेश लौटने की बातो ने जोर पकडा और हम लोग आखिरी फैसला जानने के लिए कि जनरल बोथा और जनरल स्मट्स की सरकार अपने वर्ण-विद्वेष के कानून को कब और कैसे वापस लेती है, उतावले हो गए। हम सब जल्दी-से-जल्दी स्वदेश जाने को उत्सुक थे। जमनादासकाका ने तो लौटने का निश्चय ही कर लिया। परन्तु नेटाल छोडकर निश्चितता से जाने के लिए उनका मन नही मानता था। यदि दक्षिण अफ्रीका की सरकार अपनी बात से मुकर जाय और गोखलेजी के परिश्रम के बावजूद सत्याग्रह की दुबारा नौबत आ ही जाय तो उस समय जमनादासकाका दक्षिण अफ्रीका से अनुपस्थित नही रहना चाहते थे। इस दुविधा से उन्होने यह रास्ता निकाला कि उनके भारत पहुँचने के बाद भी यदि सत्याग्रह छिड ही गया तो वह पहले स्टीमर से दक्षिण अफ्रीका के लिए चल पडेगे और दक्षिण अफ्रीका आकर सत्याग्रह मे शामिल हो जायेगे।

इस प्रकार अपने मन का समाधान करके जमनादासकाका फीनिक्स से भारत के लिए रवाना हुए। उन्हे बिदा करने के लिए पिताजी, मगन-काका आदि के साथ मै भी डरबन तक गया।

डरबन मे हम लोग सदा की भाति रुस्तमजीकाका के यहा ठहरे थे। जिस दिन हम डरबन पहुचे उसके दूसरे दिन बडे सवेरे जमनादासकाका को ले जाने वाला स्टीमर 'गोदी' (डाकयार्ड) से छूटने वाला था। जमनादास-काका ने अपना सामान दिन मे ही स्टीमर पर पहुचा दिया था। सध्या बीतने पर डरबन के मित्रो से भेट करके वह रात के आठ-नौ बजे बन्दरगाह जाने के लिए रवाना हुए। हम लोग भी उन्हे बिदाई देने के लिए बन्दरगाह तक गये। डरबन की पक्की, सुन्दर और स्वच्छ सडको पर बिजली की

बत्तियो का प्रकाश जगमगा रहा था, जन-कोलाहल शात हो गया था और टहलते-गपशप करते हम मजे मे जा रहे थे। लगभग आध-पौन घटे चलने के बाद हमे खयाल हुआ कि पैदल पहुचने मे बहुत देर हो जायगी और कप्तान आदि सो जायगे तो बडी दिक्कत होगी। अभी रात के दस नही बजे थे और ट्रामगाडिया चल रही थी। हम सब ट्राम पर सवार हो गए।

डरबन की ट्राम गाडिया दो-मजिली होती थी। उनकी नीचे वाली मजिल केवल गोरो के लिए सुरक्षित रखी जाती थी। ऊपर की मजिल मे भी प्रथम तीन-चार बेचे गोरे लोगो के लिए ही सुरक्षित रहती थी और केवल पिछले हिस्से की कुछ बेचो पर अश्वेत लोगो के बैठने की व्यवस्था थी। जब हम लोग ट्राम मे सवार हुए तब रात का समय था, इसलिए ऊपर की मजिल पूरी खाली थी। कायदा तोडने की नीयत से नही, पर सहजस्वभाव से हम लोग सबसे आगे वाली दो बेचो पर जा बैठे। दस-पन्द्रह मिनट तक हमने पूरे वेग से दौडती हुई ट्राम से डरबन नगर की शोभा देखने का और आपस मे बातचीत करने का आनन्द लिया। इसके बाद न जाने कैसे ट्राम के कडक्टर के ध्यान मे यह बात आई कि हम काले कुलियो ने श्वेत प्रभुओ के आसन पर बैठने का दुस्साहस किया है। वह झपटकर हमारे पास आया और बोला, "उठो इधर से, पीछे जाकर बैठो।" मगनकाका ने उसे तुरन्त उत्तर दिया, "यह नही हो सकता।" कडक्टर अकड गया और तेज होकर डाटने लगा, "तुमको उठना ही पडेगा।" मगनकाका ने दृढता से कहा, "जो चाहो सो करो, मगर हम यहा से नही हटेगे।"

कडक्टर तिलमिला उठा। उसने घटी बजाई और ट्राम रोक ली। फौरन ट्राम का चालक कडक्टर की सहायता के लिए नीचे की मजिल से ऊपर आगया। कुलियो को आगेवाली बेचो पर देखकर उसकी आखो से अगारे बरसने लगे। कडक्टर को दुगुना जोर मिला। उसने मगनकाका की पीठ पर जोर का घूसा जमाया। फिर भी मगनकाका अपनी जगह से नही हटे। तब दोनो ने मिलकर मगनकाका की बाहे पकड़ ली और वे उनको बेच से उठाने के लिए खीचने लगे।

हमारी ओर से घूसे का जवाब घूसे से देने की बात थी ही नही। मगनकाका ने बेच के जंगले को बड़ी मजबूती से पकड लिया। इस कारण दोनो गोरे मिलकर भी मगनकाका को आसानी से नही खीच सके। तब एक गोरे ने उनकी कमर को अपने हाथ से कस लिया और दूसरे ने बडी मुश्किल से उनकी मुट्ठिया जगले से अलग की और फिर ऊपर वाली

खिडकी से उनको उन्होने नीचे की ओर ढकेल दिया। मगनकाका कसरती जवान थे, फुर्तीले थे, इसलिए गिरते-गिरते भी उन्होने अपना सतुलन सभाल लिया और जमीन पर गिरने से पहले ही नीचे वाली मजिल के जगले को पकड लिया। और इस प्रकार भारी चोट से बच गए। मगनकाका के बाद इसी तरह हमारी मडली के प्रत्येक व्यक्ति को पकड-पकडकर और धक्के दे-देकर सीढी के रास्ते से नीचे लुढका दिया गया। मै बच्चा था, इसलिए मुझे उन लोगो ने हाथ नही लगाया। परन्तु जब सब लोग नीचे फेक दिए गए तो मेरे लिए अपने-आप नीचे उतरे बिना कोई चारा न रहा। मुझे डर था कि मगनकाका को सख्त चोट आई होगी, परन्तु जब मै नीचे गया तो देखा कि वह तो खडे-खडे मुसकरा रहे है।

ट्राम बिजली के वेग से अदृश्य हो गई। हम लोग पैदल ही 'गोदी' (डाक यार्ड) तक पहुचे। स्टीमर पर जमनादासकाका सवार हुए, अलविदा हुई, और शीघ्र ही स्वदेश मे परस्पर मिलने का दिन निकट आने की आशा से हम पैदल लौट पडे।

कुछ दूर चलने पर हम ट्राम की पटरियो के पास पहुचे। ट्राम पर जो अपमान हुआ था वह फिर आखो के आगे घूम गया। मन मे जोश आ गया। हमने कडक्टर और ड्राइवर के गुडेपन का प्रतिकार करने का निश्चय किया। मणिलालकाका का आग्रह था कि उन ट्रामवालो का दुबारा मुकाबला किया जाय। हम भारतवासी ऐसे नही है जो पग-पग पर ठोकरे खाते फिरे यह बात गोरो के गले उतारने का हमने मन-ही-मन निश्चय कर लिया। अखबारो मे समाचार प्रकाशन करही देने से काम बनने वाला नही था और वहा के गोरे अखबार उसे प्रकाशित करे, यह उम्मीद रखनी भी बेकार थी। ट्राम कम्पनी के मुख्य कार्यालय या पुलिस थाने मे भी सुनवाई नही होती थी। सारा प्रश्न ही गोरे और काले के बीच का था। कुछ देर यह सब चर्चा होती रही। मणिलालकाका का सुझाव था कि उसी नम्बर की ट्राम गाडी पर दुबारा सवार होकर उन्ही आगे की बेचो पर बैठा जाय और दृढतापूर्वक सत्याग्रह किया जाय। बडो ने भी नवजवान मणिलाल-काका की बात स्वीकार की और लगभग पौन घटे तक उसी स्थल पर हम लोग ट्राम की प्रतीक्षा मे खडे रहे। परन्तु वह ट्राम वहा आई ही नही और उस पर हमला करने का हमारा जोश मन-का-मन मे ही रह गया। आधी रात का समय हो चुका था इसलिए हम लोग अधिक प्रतीक्षा करना छोडकर और अपमान का कडुआ घूट पीकर पैदल ही सेठ रुस्तमजीकाका के घर पहुचे।

: ४० :

बापूजी के इलाज में

मेरे छोटे भाई कृष्णदास को मियादी बुखार हो गया था और उसने उग्र रूप धारण कर लिया था। छ. वर्ष से भी छोटी आयु का वह बालक सूखकर अस्थि-पिजर-मात्र रह गया था। चौदह दिन समाप्त होने पर भी उसका बुखार हलका नही हुआ था। टाल्स्टाय-फार्म मे जमनादासकाका ने कई रोगियो को बापूजी के पास रहकर, उनकी चिकित्सा-विधि से रोग-मुक्त होते देखा था। इस आधार पर राजकोट जाते हुए वह सलाह देते गए कि उसे बापूजी को दिखाना चाहिए। उसकी हालत नाजुक जान माताजी और पिताजी ने बापूजी की सलाह के अनुसार, जो जानते थे किया और बापूजी को तुरत खबर भेज दी। तत्काल बापूजी का तार आया, "मै आ रहा हू।" तीसरे दिन शाम को वह फीनिक्स आ पहुचे। उनको लिवाने के लिए मै भी स्टेशन पर गया था। ट्रेन से उतरते ही उन्होंने कृष्णदास के स्वास्थ्य के बारे मे बारीकी से पूछताछ की। जब हम लोग घर पहुचे तब अन्धेरा हो गया था। कृष्णदास को देखकर और जरूरी सूचनाए देकर बापूजी अपने घर चले गए।

दूसरे दिन सवेरे अचानक मुझे तेज बुखार हो आया। बापूजी ने मुझे देखा और निदान किया, "प्रभु को भी मियादी बुखार है।" और उन्होंने मेरी भी चिकित्सा का काम अपने हाथो मे ले लिया। बापूजी ने कृष्णदास को सबसे पहले दूध देना बन्द कर दिया, और पानी मे केवल मीठे नीवू निचोडकर दिन मे चार-पाच बार दो-दो घटे के अतर से देने लगे। इसके उपरात उसे दिन मे दो बार ठडे पानी से भीगी चादर मे लपेटकर कमरे के बाहर खुली हवा मे सुलाने का प्रयोग आरम्भ किया। शरीर पर गीली चादर लपेटकर उस पर कम्बल लपेट दिया जाता था। चादर के अन्दर कृष्णदास पसीने से तर हो जाता था। जब गरमी सहन नही होती थी तब उसे चादर से निकाला जाता था। और बन्द कमरे मे गीले अगोछे से सारा बदन पोछ कर धुले हुए साफ कपड़े पहनाकर बिस्तर पर लिटा दिया जाता था।

तीन या चार दिन मे उसका ज्वर हलका पड गया और घर-भर मे जो चिंता फैली हुई थी वह विलीन हो गई। कृष्णदास को हसाने और प्रसन्न रखने के लिए बापूजी बात-बात मे जो विनोद किया करते थे उसके फल-

स्वरूप घर मे चारो ओर हसी गूज उठती थी। सुबह, दोपहर और शाम को प्रतिदिन तीन बार बापूजी हमारे घर आते थे। पानी मे अपने हाथ से नीबू निचोडकर और छानकर देते थे और सावधानी रखते थे कि नीबू के अदर का जरासा रेशा भी उसके पेट मे न जाय। भीगी चादर मे लपेटने के समय अपने हाथ मे घडी लेकर स्वय खडे रहते थे और पन्द्रह-बीस मिनट तक अनेक तरह की बाते करके कृष्णदास को खुश कर देते थे। सारे वातावरण मे प्रसन्नता का ऐसा अमृत बरसने लगता था कि रोगी का कष्ट, और रोग का विप चाहे कितना ही विषम क्यो न हो, उसे दबना ही पडता। बापूजी ऐसे वैद्य थे कि उनके उपचार जिस मात्रा मे प्राकृतिक चिकित्सा के थे, उससे कही अधिक मन पूत थे और देह की अपेक्षा देही पर अधिक असर डालते थे।

इक्कीसवे दिन, अर्थात् बापूजी की चिकित्सा शुरू होने के चौथे या पाचवे दिन बाद, कृष्णदास सर्वथा ज्वर-मुक्त हो गया, केवल निर्बलता बाकी रही। मुझे बुखार था, परतु मेरे लिए किसी को विशेष चिंता नही थी। बापूजी की छाया मे मेरे ज्वर का उग्र रूप हुआ ही नही। जिस दिन बुखार आया उसी दिन से मेरे पेड पर चौबीसो घटे गीली मिट्टी की पट्टी बधी रहती थी। काली चिकनी मिट्टी से ककड अलग करके उससे तैयार किये गए गारे को डेढ बालिश्त चौकोर कपडे पर दो अगुल मोटाई मे कच्ची ईंट की तरह फैलाया जाता था और नाभि के नीचे उसे बाध दिया जाता था। घटे, डेढ-घटे बाद जब वह पट्टी सूखकर कडी हो जाती थी तब पट्टी बदल दी जाती थी। सध्या के समय प्रति दिन पाव घटे तक कटि-स्नान कराया जाता था, जिसमे नाभि के ऊपर और घुटने से लेकर पजो तक का हिस्सा कम्बल से ढककर पेडू पर रूमाल से पानी के अन्दर मालिश की जाती थी। ज्वर का पता चलने पर जब पहली बार बापूजी ने मुझे कटि-स्नान के लिए पानी मे वैठाया, तब मुझे जोर की नीद आ रही थी, इसलिए बैठना अच्छा नही लगता था। फिर भी वापूजी ने मुझे 'टब' मे बैठाया और अपना हाथ मेरे सिर के नीचे रखकर पानी मे बैठे-बैठे ही आराम से नीद लेने की सुविधा कर दी।

टब मे बैठते समय ठडे पानी की वजह से मुझे कपकपी मालूम हुई, परन्तु बापूजी ने सीने और पैरो पर इस तरह कम्बल लपेट दिये थे कि शरीर मे गरमी आ गई और मै सो गया। पिताजी लगभग आध घटे तक मेरे पेड को पानी मे ही मुलायम कपडे से रगडते रहे। इसके बाद मुझे बाहर निकालकर अगोछे से पोछकर और कपडे पहनाकर चारपाई पर सुला दिया। रात के समय एनीमा देकर मेरी आतो को जितना हो सका साफ किया गया।

पहले तीन दिन इसी प्रकार बीते। खाने के लिए कुछ भी नही और पीने के लिए केवल गरम पानी। मुझे भी खाने-पीने की इच्छा नही होती थी। चौथे दिन पानी मे नीबू निचोडकर दिया गया। यह क्रम छ दिन तक चला। साथ-साथ नित्य प्रति इसके अलावा रोज एक बार 'एनीमा' और दो बार कटि-स्नान का क्रम चालू रहा।

मेरी चारपाई ऐसे बरामदे मे रखी गई थी जो पश्चिम और दक्षिण दिशा मे बिलकुल खुला था। वहा पर खुली और तेज हवा और सायकाल की धूप आती थी। दक्षिण की ओर गुलाब की सुन्दर फुलवारी थी और पश्चिम मे फल-वृक्षो का सुन्दर बागीचा। मै खाट पर पडा-पडा इन दृश्यो को देखता रहता था, इसलिए समय सहज ही कट जाता था। वहा के तेज वायु से शरीर का रक्षण करने के लिए सावधानी से मुझे हर समय कम्बल ओढाकर रखा जाता था, केवल मुह और नाक को खुला रखा जाता था। रात के समय चारपाई बरामदे से कमरे मे हटा दी जाती थी, परन्तु कमरे मे भी खिडकिया खुली रखी जाती थी। एक बडी खिडकी मेरे सिरहाने पर थी। मै चौबीस घटो मे लगभग अठारह घटे गहरी नीद सोता था।

बापूजी ने दस दिन तक मुझपर अपने मिट्टी-पानी के प्रयोग किये। उसके बाद चिकित्सा के क्रम मे थोडा परिवर्तन किया। रोज सवेरे आकर वह मेरी जीभ की जाच किया करते थे। ग्यारहवे दिन सवेरे उन्होंने जिह्वा-परीक्षा के बाद मुझसे कहा, "अब तेरी जीभ साफ हो गई। आज मै कुछ खाना दूगा।"

दस दिन तक गरम पानी के सिवा मेरे पेट मे कुछ गया ही नही था इसलिए दो-एक दिन से खाने की इच्छा जोर पकड रही थी। बापूजी ने स्वय ही यह बात कही, इसलिए मै बहुत खुश हो गया। खाने की स्वीकृति मिलने के दो घटे बाद मुझे सबसे पहले नमक या चीनी के बिना नीबू का पानी ही मिला। दोपहर के बाद दो 'ग्रेनडेला' (एक प्रकार का फल) तोड-कर उसका छना हुआ रस दिया गया।

'ग्रेनडेला' फल मुझे बहुत प्रिय था। भारत मे मैने कही वह फल नही देखा। पर दक्षिण अफ्रीका मे वह बिना खास सार-सम्हाल के पैदा होता है। उसकी सेम की जैसी बेल होती है। कच्चे फल का रग हरा होता है और पकने पर वह जामुन या बैगन का-सा हो जाता है। आकृति मे वह अडाकार और बडे कागजी नीबू या छोटी नारगी के बराबर होता है। फल के भीतर केसर के रग का पतला रस निकलता है और उसके बीज काले और पपीते

के बीज के बराबर बडे और चपटे-से होते है। उसके स्वाद की तुलना मीठे कधारी अनार के स्वाद से की जा सकती है।

ज्वर-मुक्त होने के बाद भी कई दिन तक बापूजी ने मुझे या कृष्ण को दूध नही दिया। हमारी निर्बलता हटाने के लिए उन्होने फलो के रस का ही आहार हमारे लिए रखा। मेरा ज्वर छूटने के तीसरे दिन से मुझे अनन्नास का रस मिलने लगा। एक गिलास रस पीने के बाद मुझे और कुछ लेने की भूख नही रहती थी। सुबह पिया हुआ रस शाम तक काम दे जाता था।

अनन्नास का रस जब भली-भाति हजम होने लगा और चारपाई मे अपने-आप बैठने-उठने की शक्ति आ गई तब हम लोगो को बापूजी ने केला देना आरम्भ किया। आधे केले से शुरू किया गया। बापूजी अपने हाथ से केले को छीलकर धीरे-धीरे कुचलते थे और फिर उसे मथकर दूध जैसा तरल बना देते थे। उसका एक कण भी ठोस न रहने पाता था। इसमे इतना अधिक समय खर्च होता था कि कृष्णदास तो बहुत अधीर हो उठता था। परन्तु बापूजी पूरे धैर्य से केले को मथते जाते थे और कृष्ण को बातो मे लगाए रहते थे। केला मथ जाने के बाद उसमे एक नीबू निचोडते थे और फिर काफी देर तक उसका सम्मिश्रण करते थे। सुन्दर पेय बनने के बाद धीरे-धीरे छोटे चम्मच से हमे चूसने ('सिप' करने) के लिए वह दिया जाता था।

जब तक बिस्तर छोडकर हम दोनो खेलने न लगे, हमे काफी शक्ति प्राप्त न हो गई, तब तक बापूजी ने हमको फलो के रस पर ही रखा। कमजोरी मिटाने के लिए अन्न, शाक, खिचडी, दलिया अथवा मूगफली या बादाम की जैसी कोई चीज दी गई हो, ऐसा याद नही पडता। औषधि के नाम से तुलसी या नीम-जैसी पत्ती और मसाले के नाम से काली मिर्च-जैसी वस्तुए भी हमे नही दी गई।

मै जब ज्वर-मुक्त हुआ उसके छ-सात दिन बाद मैने बापूजी को पिताजी से यह कहते हुए सुना : "यदि इन दोनो भाइयो की बीमारी ने मुझे यहा पर रोक न रखा होता तो आज से पहले ही मै 'फार्म' लेकर यहा आ गया होता। अब पूरे 'फार्म' को समेटकर ही यहा आने का मेरा विचार है। ऐसा करने मे पन्द्रह-बीस दिन सहज ही बीत जायेगे। दुबारा वहा जाना न पडे इसलिए वहा से सभी को अपने साथ लिवा लाऊ यही उचित होगा।" बापूजी के ये उद्‌गार सुनकर मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा।

मै स्वय टाल्स्टाय-वाडी जाने के लिए दो बरस से छटपटा रहा था।

अन्त मे ईश्वर ने मेरी उस उत्कठा को दूसरे तरीके से पूरा किया। गोखले-जी के लौट जाने के बाद लगभग तीसरे महीने मे टाल्स्टाय-वाडी के सभी शिक्षक और विद्यार्थियो के साथ बापूजी फीनिक्स आ गए और फीनिक्स ही अब उनकी सारी प्रवृत्तियो का केन्द्र-स्थान बन गया।

: ४१ :

टाल्स्टाय-वाड़ी की स्मृतियां

टाल्स्टाय-वाडी मे बापूजी ने शरीर को सुदृढ, सशक्त और फुर्तीला बनाने पर जोर दिया था। इसलिए वहा सभी के बीच अपना वजन बढ़ाने की तथा अधिक-से-अधिक चलने की होड लगी रहती थी।

फार्मवासियो मे एक दतकथा ऐसी प्रचलित हो गई थी, जो वहा की गतिविधि की तथा वातावरण की लाक्षणिक रूप से सूचक है और बहुत विनोदपूर्ण भी है।

डरबन नगर मे रहने वाले एक गुजराती व्यापारी का लडका कुछ महीने फीनिक्स मे मेरा सहपाठी रह चुका था। बाद मे उसके पिता ने उसे बापूजी के पास टाल्स्टाय-वाडी भेजा था। वह स्वभाव से बहुत सरल था और हर किसी की बात को बिना परखे ही मान लेने वाला था। उसका अहभाव इतना अधिक और असतुलित था कि वह हर बात मे अपने को प्रथम बनाने की धुन के कारण कई बार बुद्धू बन जाता था। लडके भी उसको बनाने का मौका खोजते रहते थे।

टाल्स्टाय-वाडी के शिक्षक और विद्यार्थी समय-समय पर जाच किया करते थे कि शरीर की ऊचाई, मोटाई एव तौल में कौन बाजी मारता है। वजन मे क्या घट-बढ हुई, यह जानने के लिए अक्सर सब लोग अपना तौल करने जाया करते थे। एक बार तौल के समय कुछ लडको ने मिलकर इस वणिक-पुत्र को घेर लिया। गणित के वर्ग मे प्रश्न का हल निकालने मे वह कमजोर नही था और 'टन' बडे-से-बडे वजन को कहा जाता है, यह उसको मालूम था। पर इस बात का बिलकुल अन्दाज न था कि 'टन' का वजन कितना अधिक होता है। जब लड़को ने गम्भीरतापूर्वक काटा देखकर उसे बताया कि तुम्हारा वजन चालीस टन है तब उसने इस बात

पर विश्वास कर लिया और मन-ही-मन फूला न समाया। उछल-उछलकर सबसे कहने लगा, "देखोजी, मै सबसे आगे निकल गया। मै तौल मे अब चालीस टन हू।"

वह दौडकर बापूजी के पास भी पहुच गया और उसने उनको भी बता दिया कि "मै चालीस टन हू।" बापूजी तो विनोद-प्रिय थे ही। लडको के इस मनोविनोद मे वह भी शामिल हो गए और उस लकडे को बडी गम्भीरता से उन्होने बधाई दी। चारो ओर उसकी प्रशसा फैल गई; हर मुह से यह बात कही जाने लगी, "वाह भाई, कमाल है ! इन जनाब ने सबसे बाजी मार ली ! पूरे 'चालीस टन' हो गए।" अपनी इस प्रशसा से हमारे उस बाल-मित्र को इतना हर्ष होता था कि प्रशसा की बौछार के पीछे जो व्यग था वह उसकी समझ मे ही नही आता था। कई दिनो बाद उसको पता चला कि सबने मिलकर उसे बुद्धू बनाया था। लेकिन उसके लिए 'फार्टी टन' (चालीस टन) का जो सबोधन प्रचलित हो गया था वह कायम ही रहा। उसके बाद सभी लोग उसे 'फार्टी टन बोस्टर" अर्थात् "चालीस टन की डीग हाकने वाला" नाम से पुकारते रहे।

बापूजी ने जब फार्म मे भोजन के नये-नये नियम बनाये, आमिष-भोजियो को सयुक्त रसोई मे निरामिष भोजन से ही सतोष करने के लिए समझाया और रमजान-महीना तथा श्रावण-मास साथ-साथ आने पर मुसलमान लडको को रोजा रखने को और हिन्दुओ को एक ही समय भोजन करने को प्रोत्साहित किया, तब उन्हे स्वादिष्ट रसोई बना-बनाकर भोजन कराने की पूरी सावधानी रखी थी। वह अपने ही हाथ से पकाते और परोसते थे। जब उन्होने विद्यार्थियो से अलोने आहार का प्रयोग करवाया तब वह अपनी सारी वत्सलता से लडको को सराबोर रखते थे।

छात्रावास मे ऊधम मचाने से भी बढकर शिक्षको को तग करने मे फार्म के कुछ लडके मशहूर हो गए थे। वे बापूजी की धाक मानते थे। श्रीकैलनबैक से भी डरते थे। बापूजी जब मौजूद होते तो कायदे से चलते थे और कैलनबैक से शरारत करने का शायद उन्हे मौका ही नही मिलता था, क्योकि उनके सामने वे लगातार काम मे लगे रहते थे। कुदाल लेकर खोदने या फल-वृक्ष की टहनियो को कतरकर व्यवस्थित करने का काम कैलनबैक इतनी तेजी से करते कि काट-छाटकर गिराई हुई टहनियो को खाद के गड्ढे मे पहुचाने मे तीन-तीन जवान भी थक जाते थे, दूसरे, वह इतने खबरदार थे कि जो लडका काम करने से बचने की कोशिश करता था उसे अवश्य ही अपने साथ रखते थे। लेकिन जब बापूजी और कैलन-

बैक किसी काम से बाहर चले जाते थे तब अन्य शिक्षको को तग करने मे लडके कोई कसर उठा नही रखते थे।

फार्म मे दिलचस्प समय वह होता था, जब कडा परिश्रम करने के बाद मध्याह्न मे श्रीकैलनबैक और बापूजी भोजन के लिए बैठते थे। दोनो केवल फलाहारी थे, फिर भी ठीक डेढ घटे तक उनका भोजन चालू रहता था। चौबीस घटो मे वे केवल यही भोजन पाते थे और इस एक वक्त के भोजन मे भी बडी पाबदिया थी। नमक नही, मिर्च मसाले नही, दूध-घी नही, चीनी-गुड नही और अन्न या द्विदल धान्य भी नही। इसके अतिरिक्त जो कुछ मिले उसे आग पर पकाये बिना ही खा लिया करते थे। केले और मूगफली दो चीजे फलाहार मे मुख्य होती थी। इन दोनो को खूब चबा-चबाकर मुह मे घोलकर खाने का बापूजी का नियम था। प्रात काल से मध्याह्न तक खेत मे कडा परिश्रम करने और टाल्स्टाय फार्म की आरोग्य-वर्द्धक जलवायु के कारण भोजन मे केले और मूगफली की मात्रा कम नही रखी जा सकती थी, इसलिए वास्तव मे बापूजी को भोजन का वह डेढ घटा भी कम पडता था, और दूसरे काम की जल्दी होने के कारण इतने समय मे अपना फलाहार समाप्त करने के लिए शीघ्रता करनी पडती थी। फार्म के लडको को यह डेढ घटा आराम और खेल-कूद के लिए मिल जाता था। इसके बाद वहा की पाठशाला मे पढाई का काम शुरू होता था।

पाठशाला के मुख्य शिक्षक बापूजी स्वय थे, पढनेवालो की कक्षा अनेक थी और कक्षा-विद्यार्थियो की मातृभाषा भी चार-पाच प्रकार की थी—गुजराती, हिन्दी, तमिल और अग्रेजी-भाषी लडके थे। कुछ लडके जो ट्रासवाल मे ही जन्मे थे, उनके लिए डच लोगो की भाषा सुगम थी। पूरे नौजवान युवक और छोटे लडके व लडकिया भी थी। एक-दो बच्चे तो इतने छोटे थे, जिनको हमेशा गोद मे ही रखना पडता था। जेल गये हुए सत्याग्रहियो के बीबी-बच्चो को बापूजी ने फार्म मे आश्रय दिया था। इस प्रकार जिस बच्चे के पिता मौजूद न हो उसके पिता का काम भी बापूजी अपने ऊपर ले लेते थे। किसी-न-किसी बच्चे को गोद मे लेकर प्राय खडे-खडे ही बापूजी लडको को पढाया करते थे। कभी कोई लेख लिखवाते थे तो कभी कापिया जाचते थे। यदि मै भूलता नही हू तो दो-एक लडको ने मुझे यहा तक बताया था कि अनेक बार बापूजी ने पैर से कलम पकडकर जाची हुई कापी पर दस्तखत किये थे, क्योकि नन्हे बच्चे को गोद मे लेने के कारण उनके दोनो हाथ घिरे रहते थे। फार्म की पाठशाला मे इस तरह पढाई का काम मुश्किल से दो घटे होता था। फीनिक्स मे आने के बाद ही बापूजी के पास रहनेवाले लडको की पढाई कुछ व्यवस्थित रूप से शुरू हुई।

फार्म का एक असाधारण कार्यक्रम पैदल प्रवास का था। टाल्स्टाय-वाडी से जोहान्सबर्ग २१ मील था। दो बजे रात को चलकर दिन निकलते-निकलते जोहान्सबर्ग पहुचना सभव होता था। कई बार बापूजी इस पैदल प्रवास की होड भी करवाते थे। ऐसी एक होड मे जमनादासकाका ने श्री-कैलनबैक को भी हरा दिया था और इनाम पाया था। उन्होने चार घटे पैंतीस मिनट मे २१ मील की वह पैदल यात्रा पूरी की थी।

वहा की सख्त ठड मे बड़े जोर का पाला पडता था। सूर्योदय से पहले पानी पर बरफ भी जम जाया करती थी। इस पर बापूजी ने फार्म-वासियो से बूट और जुराब का त्याग करवा दिया था। ऐसी हालत मे तडके ही पैदल चल पडना आसान काम नही था। मर्दाने खेलो की जैसी ही वीरता का यह काम था। यदि कोई इसमे ढीला पडता तो बापूजी उसकी कसकर खबर लेते थे।

एक बार श्री कैलनबैक ने जमनादासकाका का कायम किया हुआ चार घटे पैंतीस मिनट का रेकार्ड तोडने का बीड़ा उठाया। सदा के नियमा-नुसार वह टाल्स्टाय-वाडी से अपनी पीठ पर बगल-थैला लादकर चल पडे। रास्ते मे समय होने पर कलेवा करने का सामान बगल-थैले मे था। परन्तु कधे पर कसा हुआ बगल-थैला खोलने और उससे खाने का सामान निकालने तथा फिर से थैला कधे पर बाधने मे काफी समय खर्च हो जाने का भय था। इसलिए रास्ते के किसी होटलवाले से उन्होने नाश्ता खरीदा और चलते-ही-चलते जलपान किया। दूकानदार से बची हुई रेजगारी वापिस लेने तक को भी कैलनबैक नही रुके। इस प्रकार पिछला रेकार्ड चन्द मिनटो से तोडने मे वह कामयाब हुए। पर जब बापूजी को इस बात का पता चला तब उन्होने श्री कैलनबैक को आडे हाथो लिया और कहा कि ऐसा साहबी-पन, कि बगल मे खाना मौजूद हो तब भी पैसे डालकर दूसरा खाना खरीदा जाय, बिलकुल अशोभनीय है। बापूजी की इस टीका के कारण श्री कैलन-बैक कुछ उदास होगए।

प्रति सप्ताह कम-से-कम एक बार बापूजी भी टाल्स्टाय-फार्म से जोहान्सबर्ग पैदल जाया करते थे। श्री कैलनबैक भी उनका साथ देते थे। मुश्किल से दो या तीन घटे रात को झपकी लेकर बापूजी उठ खड़े होते थे और ठीक दो बजे, ब्राह्ममुहूर्त्त से पहले ही, पैदल यात्रा आरम्भ कर देते थे। बापूजी की रफ्तार कम नही थी। पाच या साढे पाच घटे मे वह अपने आफिस तक का २१ मील का पैदल प्रवास पूरा कर लेते थे। प्रात काल पैदल जाने के बाद उसी दिन शाम को बापूजी और दूसरे सब लोग रेल-गाडी से फार्म लौट आते थे।

एक वार का किस्सा है। जोहान्सबर्ग से कई लडको के साथ बापूजी फार्म से लौट रहे थे। साथ मे बोरी-भर मूगफली थी। एक गोरा टिकट-बाबू बापूजी से भिड गया कि उस बोरी को तुलवाकर आवश्यक रेल-महसूल दिया जाय। बापूजी ने उसे समझाया कि वह प्रवासियो के भोजन की चीज है, उसका किराया लेने का कानून नही है। परन्तु ऊचे दिमाग वाला टिकट-बाबू बापूजी की बात को समझ नही पाता था। तब बापूजी ने अपने साथवाले सभी लडको को सारी मूगफली बाट दी और बोरी खाली कर दी। लडके भी तुरन्त मूगफली छील-छीलकर खाने लगे। यह देखकर वह टिकट-बाबू खिसिया गया और चुपचाप वहा से चलता बना।

टाल्स्टाय-वाडी के जीवन मे उत्साह था, आनन्द था। एक ओर कठिन परिश्रम और कठोर तप था तो दूसरी ओर बापूजी की वत्सलता और प्रेम वरसता रहता था।

: ४२ :

साधना-भूमि फीनिक्स

बापूजी टाल्स्टाय-वाडी (फार्म) का सारा परिवार लेकर फीनिक्स आये, उस समय गो-धूलि वेला थी। बापूजी के स्वागत के लिए हम लोग कुछ दूर चलकर आगे गये थे। वह डरबन से सोलह मील पैदल चलकर आ रहे थे। फीनिक्स आश्रम की सीमा से करीब मील-भर दूरी पर हमे उनके दर्शन हुए। सूर्य-प्रकाश पश्चिम की ओर सिमट रहा था। पगडडी के दोनो ओर के ऊचे-ऊचे 'वॉटल' वृक्षो पर सध्या की छाया फैलती जा रही थी। उन श्यामल आभा मे बापूजी के शुभ्र वस्त्र बहुत सुन्दर लग रहे थे। वह आधी बाह की कमीज और पतलून पहने हुए थे। पतलून को नीचे से करीब घुटनो तक मोड रखा था। लम्बे-लम्बे डग रखते हुए और चारो ओर प्रसन्नता बिखेरते हुए बापूजी तेजी से सबसे आगे आ रहे थे। उनके पीछे तीन-तीन चार-चार की टोलियो मे छोटे-बड़े फार्मवासी घिसटते हुए-से चले आ रहे थे।

हम लोगो ने बापूजी को प्रणाम किया। फिर उन टोलियो के साथ मिलकर हम सब फीनिक्स की ओर बढे। पिताजी और मगनकाका बापू-

जी के साथ बातचीत करने लगे और मैंने फार्म-वासियो पर उत्सुकतापूर्ण दृष्टि डाली। उनमे से वहुतो के नाम मैंने सुन रखे थे, परन्तु व्यक्तिगत रूप से मै उन्हे नही पहचानता था।

अधकार के साथ ठडक भी वढती जा रही थी। औरो के मुकावले वापूजी का वदन ज्यादा खुला हुआ था। स्वागत के लिए आने वालो मे किसीके पास एक शाल थी और उसने वह बापूजी को ओढने के लिए दी; किन्तु उन्होने उसे लौटा दिया और कहा, "नहीं, कोई खास ठड नही है, ओढने की मुझे जरा भी जरूरत नही है। प्रभुदास को इसे ओढा दो।" मुझे ठड लग रही थी। वापू के प्रेम के कारण मुझे शाल मिल गई और मै ठडक से वच गया।

बापूजी के मकान पर, जो 'वडा घर' कहलाता था, पहुचते-पहुचते काफी अधेरा हो गया, थके-थकाये सव लोगो ने जब वहा पर पडाव डाला तव सचमुच वह घर 'वडा घर' वन गया। वास्तव मे उस घर मे केवल इतनी जगह थी कि वापूजी का केवल निज का परिवार सुविधा से रह सके, किन्तु अव उस घर मे दस-वारह गुने आदमी वढ गए थे। कोठी या वगला तो वह था नही। टीन की चादरो से बनी हुई एक वडी-सी कुटिया ही उसे कहना चाहिए। भीड के वढ जाने के वाद पूज्य बा और वापू के लिए अलग कोठरी तो दरकिनार, अलग कोना भी नही बच पाया था।

दूसरे दिन सुबह मै नवीन फीनिक्स का दर्शन करने के लिए निकल पडा। हमारे रहने के मकान के पूर्व मे श्री पुरुषोत्तमदास देसाई का और पश्चिम की ओर कुछ दूरी पर श्री आनदलाल गाधी का मकान था। महीनो से ये दोनो मकान खाली पडे थे। अव इन दोनो मकानो मे जहा देखो आदमी-ही-आदमी नजर आ रहे थे। नए आने वालो मे से कई के लिए सोने-रहने की व्यवस्था इन मकानो मे की गई थी, परन्तु फार्म से आये हुए सभी फार्मवासियो के लिए भोजन की व्यवस्था 'वडे घर' मे ही निश्चित की गई थी। इस कारण अव 'वडे घर' का नाम रसोईघर पड गया।

दोपहर को जव मै खा-पीकर वडे घर पहुचा तो देखा कि उस घर के वीच के खड मे मेज लगी हुई थी और उसके चारो ओर वेंच व कुर्सिया डालकर वहुत से आदमी सटकर वैठे थे और भोजन कर रहे थे। अनुमान से तीस से भी ज्यादा व्यक्ति होगे। वापूजी खडे-खडे सारी मेज की प्रदक्षिणा करते हुए परोसने का काम कर रहे थे। भोजन का ढग देखकर मै और भी चकित रह गया। प्रत्येक व्यक्ति के पास तामचीनी का केवल एक-एक तसला और एक-एक चम्मच था। दाल-भात, शाक, रोटी सव-कुछ वापूजी

फीनिक्स-आश्रम के निवासी
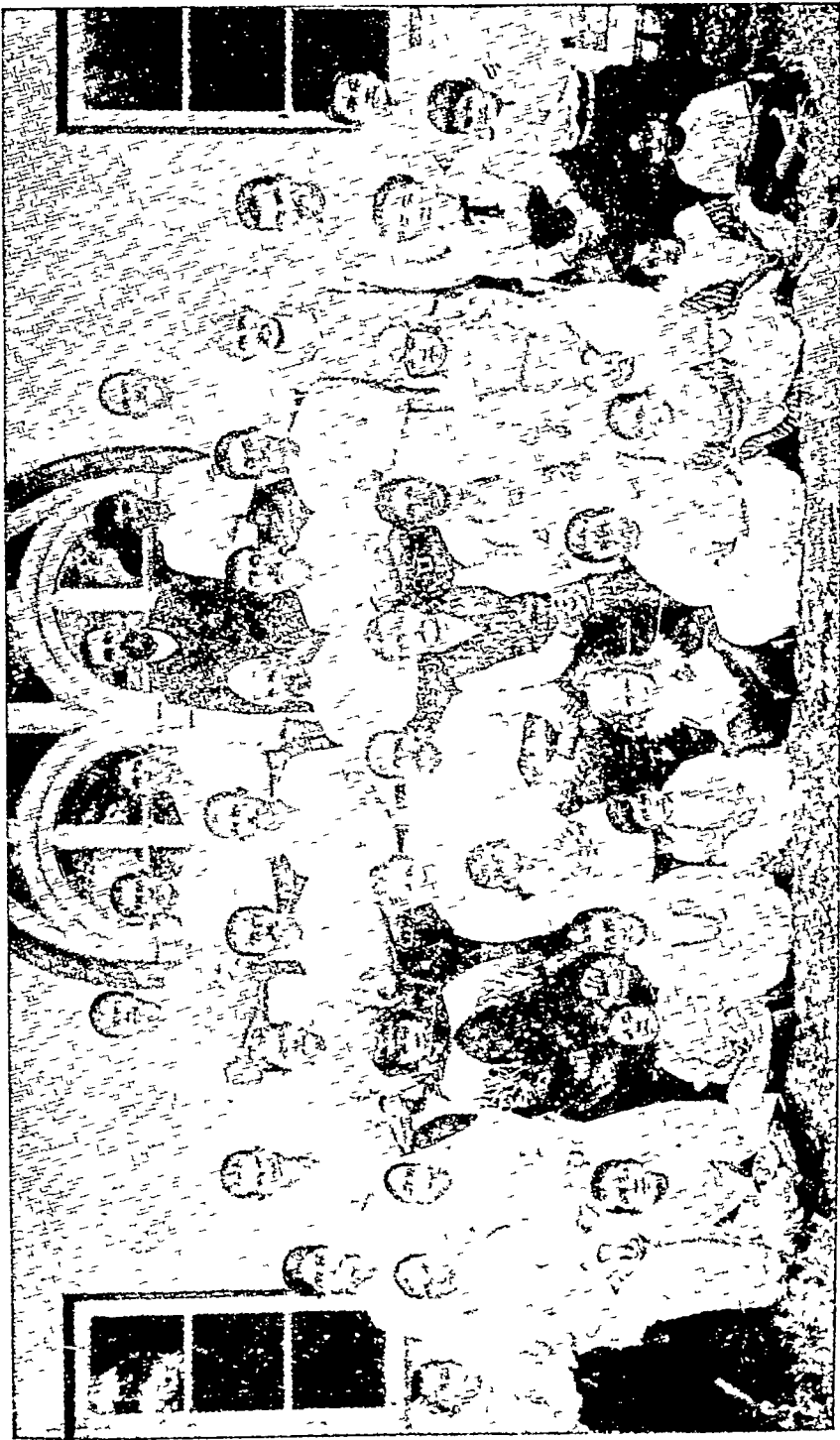
उस एक ही तसले मे परोसते थे। मेरी समझ मे यह नही आया कि बापूजी एक ही तसले मे इतनी सारी चीजे क्यो परोस रहे है और थाली-कटोरो का प्रयोग क्यो नही कर रहे है। भोजन पानेवाले सभी व्यक्ति तसले की हरेक चीज का अलग-अलग स्वाद लेने की भरसक कोशिश करते थे और बापूजी भी प्रत्येक व्यक्ति को हर चीज तसले के उसी कोने मे परोसते थे जहा वह इशारा करता था। फिर क्या कारण था कि सब-कुछ एक ही बरतन मे परोसा जाय? परन्तु किसी से यह प्रश्न पूछने का मुझे साहस नही हुआ।

भोजन से निवृत्त होने पर सब लोग फार्म से आये हुए सामान को खोलने-सजाने मे जुट गए। बापूजी हथौडी, कीले और आरी लेकर पुस्तकों के लिए खुली अलमारी (बुक स्टैंड) बनाने मे लग गए। वहा पर बात-चीत क्वचित् ही होती थी। बापूजी ने अपने कमरे की फर्श से लेकर छत तक पहुचने वाली सोलह-अठारह फुट ऊची एक खुली अलमारी सूरज छिपने तक ठीक-ठाक करके खडी कर दी। उसकी सीढिया और तख्ते पहले से तैयार ही थे।

रात के समय उसी मेज के चारो ओर, जिस पर भोजन किया गया था, सभा जुडी। दो-एक भजन होने के बाद बापूजी का प्रवचन हुआ। अपनी धुधली स्मृति के आधार पर उस प्रवचन का सार यहा देता हू :

"मान लो जेल मे जाने का प्रसग नही आया और हिन्दुस्तान जाना पडा तो भी हमे सादगी और कडे व्रतो का पालन करना होगा। वहा जाकर हम लोगो को यहा से भी अधिक काम करना है, इसलिए यहा पर फीनिक्स मे कई ऐसे नियम अमल मे आयगे जो टाल्स्टाय-फार्म पर नही थे। इन नियमो को जो तोडेगा वह फीनिक्स मे रहने योग्य नही रहेगा।

"पहला नियम तो यही कि फार्म की तरह यहा भी जब चाहो तब वृक्ष से फल तोडकर खाये नही जा सकते। बाग के वृक्ष से ही नही, जगल के फल भी कोई इस तरह न खाय। भोजन पर बैठकर दिन मे तीन बार जो खाना मिलता है उसके अलावा किसीको फल की एक फाक भी अपने मुह मे नही डालनी चाहिए। भोजन के लिए बैठे तब भरपेट खा ले। बाग के फल भी भोजन के समय पर्याप्त मिल जायगे। लेकिन इसके बाद लालचवश कोई छोटा-सा फल भी तोडेगा तो उसे चोरी समझनी चाहिए।

"दूसरा नियम यह है कि अपने से बडे के प्रति हरेक को विनय से रहना चाहिए और अदब रखना चाहिए। बडो के प्रति उद्दडता शोभा

नही देती। ऐसा नही होना चाहिए कि जब तक मै न कहू, तब तक किसी की बात पर ध्यान ही न दिया जाय।

"यह सब अमल मे लाने के लिए तुम लोग तरोताजा हो जाओ, इसलिए मै तुम लोगो को सात दिन की छुट्टी देता हू। अगले सोमवार से हमारी पाठशाला शुरू होगी। आगामी इतवार की सध्या तक तुम लोग जी-भर कर खेल लो, जितना आलस करनाहो कर लो और जो मौज करनी हो कर लो। फिर यह मत कहना कि बापूजी खेलने नही दे रहे है, काम-ही-काम करवा रहे है। पहले खेल लो, वाद मे हम कसकर काम करेगे।"

छुट्टी के सप्ताह मे बापूजी स्वय बहुत व्यस्त रहे। वह दिन-भर टाल्स्टाय-वाडी से आया हुआ सामान व्यवस्थित करने और नई पाठशाला की तैयारियो मे लगे रहे।

विद्यार्थियो मे बडे और छोटे लडको की दो टोलियां-सी बन गई थी। बडे विद्यार्थियो ने सात दिन की छुट्टिया नहाने-धोने, बिस्तरो को धूप मे फैलाने और सारी दुपहरी तानकर सोने मे बिताई। छोटे लडकों ने अपना समय बगीचे मे घूमने, खेलने और छोटे-वडे लड़कों की अच्छाई-बुराई की चर्चा करने मे बिताया।

सातवे दिन रविवार था। झरने पर आनद से सब लडके नहाने-धोने मे मस्त थे। अचानक बापूजी बिना किसी सूचना के वहा आ पहुचे। उनके हाथ मे बाल काटने की मशीन थी। आते ही उन्होने एक के बाद दूसरा और फिर तीसरा—इस प्रकार लगभग सवा घटे मे सभी लडको के बाल काट दिए। फिर बहुत सक्षेप मे बोले, "जिनको अब भी बाल प्यारे है, शान-शौकत की इच्छा है, वे फीनिक्स से लौटकर जा सकते है। यह सभी को समझ लेना चाहिए कि पुराना ढग अब नही चलेगा। अब नए सिरे से सारा जीवन बिताना होगा, फैशन और चैन का अब कोई मौका नही है।"

वापूजी फीनिक्स मे साधारणतया रात को तीन बजे और कई वार दो वजे उठकर लिखने-पढने के काम मे लग जाते थे। वापूजी के टाल्स्टाय-वाडी से आने के वाद के कई दिन मुझे याद है जब मेरी माताजी ने मुझे पौ फटने पर जगाया और कहा कि "देख, बापूजी दो वजे से उठकर लिख रहे थे, अब उन्होने दतौन ले ली है और देवदासकाका को जगा रहे है। तू भी अब उठ जा।"

हमारा घर वापूजी के घर से दूर था पर वापूजी बरामदे मे ही सोते थे, इसलिए हमारे घर की खिडकी और बरामदे से वहा की सारी हल-चल दीख पड़ती थी। नीद मे मै वापूजी की आवाज सुनता था, "देवा!

उठो, देवा... ! देवा...उठो !" और फीनिक्स की सारी दिशाए गूज उठती थी। बापूजी जब पुकार लगाते थे तब उनकी आवाज धीमी नही होती थी।

चूकि अलग-अलग तीन मकानों मे सब छात्र बटे हुए थे, बापूजी को अपने पास सोए हुए लडको को उठाने के बाद दूसरे दो मकानो मे भी सबको जगाने के लिए जाना पडता था।

उठ जाने के बाद सब विद्यार्थी बापूजी के बरामदे के पास जमा हो जाते थे। वहा आगन के एक सिरे पर बालिश्त-भर चौडी, फुट-भर गहरी और आठ-दस फुट लम्बी खाई खुदी रहती थी। उस खाई के किनारे पक्तिबद्ध बैठकर सभी लोग एक साथ दातौन करते थे। बापूजी हमारे बीच मे बराबर उपस्थित रहते थे और कोई खाई से बाहर थूक नही सकता था। तेज ठड के मौसम मे या भारी वर्षा के दिन छात्रावास के एक बडे कमरे मे ही दतौन की यह प्रातर्विधि सपन्न की जाती थी। एक या दो बडी परातें और तामचीनी का थूकदान बीच मे रखकर उसके आसपास हम सब बैठ जाते थे और दतौन की क्रिया पूरी होने पर एक लडका उस थूक को खाद के गड्ढे मे पहुचा देता था और उसे मिट्टी से ढक देता था।

दतौन की विधि बापूजी के विचार से बहुत महत्व की थी। वह अक्सर कहा करते थे कि प्रात काल दतौन करने के साथ-साथ हमे आध्यात्मिक दतौन भी करनी चाहिए, मुह का मैल ज्यो-ज्यो साफ करते जाय, त्यो-त्यो मन का मैल भी निकालना चाहिए। उन्होने अपनी यह आदत बना ली थी कि दतौन के साथ-साथ गभीर चिन्तन भी किया करते थे। जब हम लोग दतौन के लिए बैठते थे तब बापूजी की उपस्थिति के कारण गप-शप नही कर पाते थे। वातावरण शात और गभीर रहता था और बापूजी अत्यन्त गहराई से आत्मचिन्तन मे लगे हुए दिखाई देते थे। किसी से कुछ कहना भी आवश्यक हो तो इशारा भर करते थे, और यथासभव मौन ही रखते थे: उन दिनो प्रात काल की प्रार्थना का प्रारम्भ नही हुआ था। एक प्रकार से यह दतौन-विधि ही प्रार्थना का कुछ काम दे जाती थी।

जब दतौन का यह सिलसिला पूरा होता था, घटा बज उठता था। घटे के बजते ही फीनिक्स के सभी कार्यकर्ता, छोटे-बडे विद्यार्थी और बापूजी भी अपनी-अपनी कुदाल, फावडा आदि लेकर निकल पडते थे और बगीचे मे पहुच जाते थे।

बगीचे मे अधिकतर खोदने या घास साफ करने का काम रहता था। किसने अपने काम का कितना हिस्सा पूरा किया इसकी पूछताछ कोई

नही करता था। अपने-अपने उत्साह से अपने बल के अनुसार जो जितना भी काम करे उससे सतोष कर लिया जाता था। काम करने वाले विद्यार्थी और बडे भी काम का समय पूरा होने पर बताया करते थे कि परिश्रम के कारण किसके हाथ मे अधिक बढिया फफोले तैयार हुए है और किसके हाथ के निशान अधिक पक्के है।

मेरे छोटे भाई कृष्णदास के गले मे एक गाठ हो गई थी। उसकी पीडा के कारण वह बोल नही सकता था। डाक्टर के अभाव मे बापूजी ने खुद ही उस गाठ को चीरने का निश्चय किया। गाठ को पूर्णरूप से पकाने के लिए उन्होने उसपर रात को आटे की पुलटिस बधवाई और सूचना दे गए कि सवेरे गरम पानी, उस्तरा आदि तैयार करके उनको बुलवा लिया जाय। दूसरे दिन सब तैयारी करके मेरी माताजी ने मुझे बापूजी को बुलाने के लिए भेजा।

बापूजी एक खेत मे घुटने तक ऊची घास को फावडे से साफ करने मे व्यस्त थे। उनकी सारी टोली भी यही काम कर रही थी। वह सबसे आगे की जगह पर झुके हुए अपना फावडा ताल-बद्ध रूप से चला रहे थे। घास खोदने के सिवा दुनिया मे उनका और कोई लक्ष्य था ही नही, ऐसा प्रतीत होता था। कई मिनट तक मै बापूजी की बगल मे खडा रहा, परन्तु खोदने के काम मे वह इतने तल्लीन थे कि उन्होने मुझे देर तक देखा ही नही। कुछ देर बाद उन्होने देखा और पूछा, "कृष्ण के लिए बुलाने आये हो न ? चलो, मै आया।" कहकर अपने हाथ का फावडा उन्होने अलग रखा, पतलून पर लगी हुई मिट्टी झाड दी और मुझे आगे करके हमारे घर की ओर चले। वहा से निकलते समय लडको से उन्होने कहा, "देखो, अब तुम लोगो की बाते बन्द होनी चाहिए। मेरी मौजूदगी मे तुम लोग काफी खेले और गपशप करते रहे। अब मेरी अनुपस्थिति मे तुम्हे आलस नही करनी चाहिए। मेरे लौटने तक पूरी तरह काम करो। बडो के सामने आलस करो, वह निभा लिया जा सकता है, परन्तु बडो की पीठ के पीछे आलस करके उनको धोखा कदापि नही देना चाहिए।"

हमारे घर पहुचने तक माताजी ने कृष्णदास की पट्टी खोल दी थी। जिस गाठ को चीरने का निश्चय रात के समय किया गया था, वह सवेरा होने पर घुलकर बैठ गई थी। यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ। बापूजी ने कृष्णदास से विनोद किया, "वाह रे बहादुर, उस्तरे से इतना डर गया कि गाठ को ही छिपा दिया! यह कोई बहादुरी की बात नही है!" पाच-सात मिनट कृष्णदास से मज़ाक करके बापूजी बडी तेज चाल से खेत मे काम पर फिर लौट गए। मुश्किल से आधा घटा बीता होगा,

किन्तु इतने थोडे समय मे लडको ने इतना काम कर डाला कि सवेरे से काम के वदले खेल मे जो अधिक समय विताया था उसका वदला चुक गया। वह सारा खेत प्राय साफ हो चुका था और लडके पसीने से तर हो गए थे।

"शावाश!" वापूजी ने वधाई दी और कहा कि "हमेशा इसी प्रकार हर एक को सच्चा वनना चाहिए। अव तुम लोग थोडा-सा विश्राम कर लो, वाकी जो थोडा रहा है वह मै पूरा करता हू।" यह कहकर फिर से वापूजी खोदने मे तल्लीन हो गए। किन्तु लडको ने विश्राम नही किया और वाकी का टुकडा साफ करने मे उन्होने वापूजी को अन्त तक मदद दी। आठ वजे की घटी होने तक वह सारा काम पूरा हो गया।

आठ की घटी पर सव वापूजी के घर अर्थात् रसोईघर मे नाश्ते के लिए जाते थे। दो घटे के कडे परिश्रम के वाद भूख वहुत तेज हो जाती थी और वापूजी ने नाश्ते मे काफी चीजे देने की व्यवस्था की थी। घर मे वनाई गई डवल-रोटी, दूध, तरकारी, मुरब्वा और ताजे फल भरपेट नाश्ते मे मिलते थे। काम जितना परिश्रम का था, आहार उतना ही सरस था। उस समय वाते होती थी, हास्य-विनोद होता था और परोसते-परोसते वापूजी भी काफी व्यग और विनोद कर लेते थे।

नौ वजे फिर घटी वजती। तव हम सव वालक पढने के लिए पाठशाला मे पहुचते थे और वडे लोग फावडा लेकर फीनिक्स से वगीचे के काम पर पहुच जाते थे।

: ४३ :

वापूजी की पाठशाला

प्रात काल दो घटे तक खोदने का श्रम करने के वाद दो घटे हमारी पढाई चलती थी। खेतो के वीच, दो झोपडो मे हमारी पाठशाला थी। एक मिट्टी की कच्ची दीवारो से वना था और ऊपर फूस का छप्पर था। दूसरा नालीदार टीन की चद्दरो से वना था। आध-आध, पौन-पौन घटे मे घटिया होती थी। शिक्षक वारी-वारी से हमारे वर्ग मे आते थे। उनके आने पर खडे होने की, हाथ जोडने की, या उनके लिए रास्ता वना देने

की तहजीब से हम अनजान न थे। पढाने का काम पूरा करके जब एक शिक्षक वर्ग से चला जाता था तब हम लोग तुरन्त ही दूसरा सबक उठा लेते थे और एक-दूसरे से पूछकर अपनी पढाई आगे बढाते थे। शिक्षक आता तो एक बडा पूछनेवाला और बतानेवाला बनकर हम लोगो मे घुल मिल जाता था। कई बार हमारे शिक्षक के पैर खेत के गारे से सने होते थे। उनकी आस्तीने कोहनी तक मुडी हुई रहती थी और अधबीच सिर पर आये हुए इस काम को निबटाकर खेत मे अपने काम पर लौट जाने की जल्दी उनकी मुख-मुद्रा पर झलकती रहती थी।

गणित, गुजराती, गीता और व्याकरण हमारी पढाई के मुख्य विषय थे। अग्रेजी भी सब सीखते थे; किन्तु उसके लिए सवेरे का अनमोल समय खर्च नही किया जाता था। तमिल और हिन्दी बालको को गुजराती के बदले अपनी-अपनी भाषा सीखने की सुविधा थी।

गणित के शिक्षक मेरे पिताजी थे, गुजराती के मगनलालकाका और जेकी बहन तथा गीता के मगनभाई और बापूजी थे। बहुधा विषय और विद्यार्थी वही रहते थे, परन्तु शिक्षक बदलते रहते थे। मुख्य अध्यापक बापूजी स्वय ही थे।

ऐसी पाठशाला शायद ही देखने मे आती होगी, जहा पढाई के समय प्रधान अध्यापक के पास पहुचने पर उनके हाथ बेलन, करछुल आदि से शोभित दिखलाई पडे। पाठशाला के उन दोनो घटो मे अधिकतर बापूजी रसोई के काम मे व्यस्त रहते थे। अपने २५-३० बालको मे से किसी को कच्ची या जली हुई रोटी न मिले, इसकी उनको बहुत चिन्ता रहती थी। भोजन की घटी होने पर रसोई आधी ही रह गई हो, ऐसा मौका न आने देने के लिए वह स्वय रसोई मे लग जाते थे। इस प्रकार प्रधान रसोइया और प्रधान अध्यापक का दोहेरा उत्तरदायित्व निभाना और डरबन आदि अन्य स्थलो से आनेवाले मुलाकातियो का स्वागत करना तथा उनके प्रश्नो का उत्तर देना, यह सब साथ-साथ चलता था।

किसको क्या पढाया जाय, किस-किस को एक साथ पढाया जाय, सस्था के जरूरी काम से यदि कोई शिक्षक समय पर पढाने न जा सके तो उसके बदले कौन पढावे इत्यादि निर्णय प्रतिदिन बापूजी ही करते थे। गणित के वर्ग मे किस विद्यार्थी के कितने सवाल सही रहे, कितने गलत, इसका ब्यौरा भी वर्ग पूरा होते ही उनके पास पहुच जाता था। भोजन के समय परोसते-परोसते वह गणित मे गलती करनेवाले लडके की कई बार मीठी चुटकी भी लिया करते थे। गुजराती मे जो श्रुतलेखन होता था उसको

जांचकर कापियो मे नम्बर देने और हम-जैसे अबोध बच्चो को रसभरी रीति से गीता का बोध देने का काम भी वही करते थे। मगनभाई मास्टर हम लोगो को सस्कृत श्लोको का उच्चारण सिखाते और हमसे उन्हे याद करवाते थे। बापूजी हमे, उस समय प्रचलित श्री गट्टुलालजी कवि के लिखे हुए गीता के समश्लोकी पद्यानुवाद का अर्थ समझाते थे। उनके पढाने से ऐसा मालूम होता था, मानो साक्षात ज्ञान और प्रकाश की मूर्त्ति हमारे सामने खडी है। गीता का अर्थ हम लोग एकाग्र मन से सुने, इस पर बापू का बडा जोर था।

हर शनिवार को हमारी परीक्षा ली जाती थी। एक सप्ताह मे गणित की, दूसरे मे गुजराती की, तीसरे मे गीता की और चौथे मे अग्रेजी की। इस प्रकार हर महीने प्रत्येक विषय की परीक्षा हो जाती थी। परीक्षा के उत्तरपत्र बापूजी ही जाचते थे और उसी दिन सध्या-प्रार्थना मे उसका परिणाम सुना देते थे। साथ-साथ भूले भी बताते और समझाते जाते थे। हम लोग शनिवार की प्रतीक्षा उत्सुकता से करते थे। बापूजी या मगन-भाई हमारे हाथ मे प्रश्न-पत्र देकर चले जाते थे। कोई हमारी चौकसी-पहरा करता हो, ऐसा मुझे याद नही। हम लोगो मे से किसी के मन मे यह इच्छा ही पैदा नही होती थी कि स्वय जितने दक्ष है उससे अधिक दक्षता बताये। इसलिए लुक-छिपकर दूसरे की नकल करने की बात ही नही उठती थी। प्रत्येक विद्यार्थी अपनी बुद्धि के अनुसार धैर्य रखकर, जो कुछ बन पडता था, स्पष्टता से लिखता था। यदि समझ मे नही आता था तो उसके दिल मे क्षोभ या घबराहट पैदा नही होती थी। प्रत्येक के मन मे तसल्ली रहती थी कि जो कमी होगी, बापूजी सिखा देगे। असफल होते थे तो दूसरे महीने अधिक कोशिश करके ज्यादा अच्छा परिणाम लाने का सकल्प करते थे और परीक्षा का दिन जल्दी आ जाय ऐसा मनाते थे।

परीक्षा मे नम्बर देने का बापूजी का तरीका मुझे कई बार अन्यायपूर्ण प्रतीत होता था। एक ही प्रश्न का उत्तर एक ही वर्ग के विद्यार्थी दे तो दो विद्यार्थियो मे जो अधिक अच्छा उत्तर देता था, उसको बापूजी कम नम्बर देते थे और जिसका उत्तर कम अच्छा होता था उसको अधिक नम्बर देते थे। मुझे लगता था कि सुलेख के अक्षरो पर नम्बर देने मे बापूजी अवश्य पक्षपात करते है। जब हम पूछते थे कि इतने अच्छे अक्षरो के भी आपने कम नम्बर क्यो दिये तब बापूजी बताते थे कि किसी लडके के मुकाबले कोई लडका ज्यादा होशियार है ऐसा हिसाब मुझे नही लगाना है। मुझे तो यह देखना है कि प्रत्येक लड़का जहा पर था, वहा से कितना आगे बढ़ा है। उसने अपना काम कितना सुधारा है। होशियार लडका

मदबुद्धिवाले लडके के साथ ही अपने काम की तुलना करता रहेगा तो उसमे अभिमान आ जायगा और उसकी बुद्धि और मद हो जायगी। वह पढने मे परिश्रम कम करेगा और कायदा यह है जो आगे नही बढता वह पीछे हटता ही है। जो लडका अधिक परिश्रम करके पूरी सावधानी से अपना काम करेगा उसी को मै अधिक नम्बर दूगा।

इन साप्ताहिक परीक्षाओ के द्वारा बापूजी ने हम लोगो को तेजी से आगे बढाया। जो कुछ हम सीखते थे वह पक्का हो जाता था। यदि हम फिर भी कच्चे रहते तो हमारी बुद्धि को तेज करने के लिए बापूजी विशेष कोशिश करते थे।

हमारी यह पाठशाला मुश्किल से एक वर्ष तक चली होगी, लेकिन इतने समय मे मेरी प्रगति इतनी अधिक हुई कि जो पिछले तीन वर्षों मे भी नही हो पाई थी। गणित मे जहा जोड-गुणा करना भी मेरे लिए कठिन था वहा अब दशमलव, भिन्न और त्रिराशि के सवाल करने लगा। गीता मे प्रथम अध्याय के १५-२० श्लोक याद थे, वह चौथे अध्याय तक याद हो गई। गुजराती लेखन आदि मे दूसरी कक्षा मे भी कच्चा था, पर इस एक वर्ष मे पाचवी कक्षा तक पहुच गया। मुझे विश्वास है कि अपनी आयु के दसवे वर्ष मे बापूजी की उस पाठशाला मे मैने जो पाया वही और भी दस वर्ष तक उन्ही के प्रत्यक्ष मार्ग-दर्शन मे पा सकता तो विद्वानो के गढ मे बापूजी ने मुझे प्रवेश करा दिया होता, ऐसा मुझे विश्वास है। किन्तु बापूजी के विद्यालय का आदर्श विद्वान पैदा करना नही था, सत्याग्रही पैदा करना था। वह रम्य, शात और ओजस्वी विद्या-सत्र खडित होने के बाद दुबारा चलाने का अवसर बापूजी को नही मिला। उस पाठशाला का स्मरण ही मुझ-जैसे विद्यार्थी के लिए पूरे जीवन का विद्यालय बन गया।

हमारी पाठशाला मे पढाई का काम सवेरे नौ से ग्यारह बजे तक चलता था। उसके बाद ग्यारह से साढे ग्यारह बजे तक हम लोगो को फावडा लेकर खेत मे काम के लिए जाना पडता था। पाठशाला की शीतल छाया से निकलकर चिलचिलाती दुपहरी मे कधे पर फावडा रखकर खोदने जाने को हमारा जी नही करता था।

वह आधा घटा इधर-उधर चक्कर काटकर बिता देने की नीयत रहती थी, परन्तु बापूजी हमारी एक नही सुनते थे। ग्यारह बजते ही हमारी पुस्तके बन्द करवाकर हमे खेतो पर ले ही जाते थे। इस समय मे हम लोग अपना-अपना कुदाल-फावडा परखने और उठाने मे दो मिनट भी नष्ट करे, यह उनको गवारा नही होता था। काम की निश्चित मात्रा

बापूजी बता दिया करते थे और कह देते थे कि उतना काम पूरा करने के बाद ही छुट्टी मिलेगी। उस आधे घटे मे प्राय एक घटे का काम हो जाता था। तेजी से आध घटे तक लगातार फावडा चलाने से सब लोग पसीने से तर हो जाते थे और जब छुट्टी मिलती तो एक विजय-भावना के साथ स्नान के लिए दौड पडते थे।

एक बार हमारी पढाई हो चुकने पर ग्यारह बजने मे दस मिनट बाकी रह गए थे। बापूजी प्रसन्न-चित्त थे और हम लोगो से विनोदवार्ता कर रहे थे। इस मौके का लाभ लेकर हममे से एक बडे विद्यार्थी ने साहस के साथ बापूजी से कहा, "बापूजी, हम लोगो को यह आधे घटे वाली खेती अच्छी नही लगती, खेत पर जाने-आने मे ही कुछ समय कट जाता है। आप सवेरे ही हम लोगो से आधा घटा अधिक श्रम करवा लिया करे।"

बापूजी ने जवाब दिया, "इस आधे घटे को बदलने के लिए मै जरा भी तैयार नही हू। भरी दुपहर मे, कडी धूप मे, फावडा चलाने की आदत तुम्हे डालनी ही चाहिए। आज यहा पर पढ रहे हो, कल यदि लडाई छिड गई और जेल जाना पडा तो वहा शीतल छाया मे बैठने को थोडे ही मिलेगा। वहा पर तो बहादुर मजदूर की तरह अपनी कमर तोडकर दिन-भर ऐसी कडाके की धूप मे ही तुम लोगो को फावडा चलाना पडेगा। अगर वहा तुम हार जाओ, थक जाओ, रोनी सूरत वाले बन जाओ, तो मेरी और तुम्हारी दोनो की नाक कट जायगी। इससे तो बेहतर है कि तुम इस पाठशाला को ही छोडकर घर लौट जाओ। ऐसा करने मे मेरी और तुम्हारी शोभा अधिक रहेगी। फिर इस तरह निपट स्वार्थी बनना भी हम लोगो को शोभा नही देता। तुम सब यहा मजे से बैठे पढ रहे हो और बडे लोग प्रातकाल से लगातार अपनी हड्डियो को गलाकर परिश्रम कर रहे है, उन लोगो को क्यो भुला देते हो? हमे उनका साथ देना चाहिए। काम की पूर्णाहुति के समय हमारी सारी पाठशाला यदि उनकी मदद मे पहुच जाय तो उनको बहुत सतोष होगा। उनकी थकान भी दूर हो जायगी।"

साढे ग्यारह बजे थके-थकाये हम लोग अपने फावडे और औजारो को कोठरी मे फेककर नहाने के लिए चले जाते थे। छापाखाने के कुए पर एक भारी पम्प था। उसे दो आदमी मुश्किल से खीच पाते थे। उससे तीन इच मोटा प्रवाह निकलता था। बारी-बारी से दो-दो आदमी पम्प चलाते थे, और दूसरे सब स्नान करते थे। सवेरे से खेती के काम के कारण शरीर पर जमा हुआ मैल, पसीना और मिट्टी आदि पानी से धोकर और हाथ से मलकर चद मिनट मे साफ कर दिया जाता था। स्नान मे साबुन का उपयोग नही होता था। कपडे बदलने की झझट कम रहती थी। एक ही

कपडे अधिक दिन बरतते थे। उन्हे धोने का अवसर रविवार को ही मिलता था। बाकी दिनो मे चटपट स्नान से निबटकर भोजन के लिए ठीक समय पर पहुच जाना पडता था।

भोजन के बाद ठीक एक बजे दुपहर का कार्यक्रम शुरू हो जाता था। एक बजे से पांच बजे तक सब बडे व्यक्ति छापाखाने मे साप्ताहिक के लिए लिखने, कम्पोज करने आदि का अपना-अपना काम करते थे और हम लोग तीन बजे तक पाठशाला मे बैठकर स्वाध्याय करते थे। उस समय हम लोगो की गपशप भी चला करती थी। यदि कोई अतिथि-शिक्षक आ जाता तो उससे गुजराती के प्राचीन कवियो के लिखे हुए रसपूर्ण और बोधपूर्ण आख्यान सुनते थे। लेकिन वास्तव मे हमारे लिए यह समय बिना शिक्षक की पाठशाला का था।

बापूजी का "इडियन ओपीनियन" साप्ताहिक के मुख्य लेख लिखने का समय भी यही होता था। भोजन के बाद वह सीधे छापाखाने के कार्यालय मे पहुच जाते थे और एकाग्र चित्त से सम्पादकीय और पत्र-व्यवहार का काम पूरा करते थे। इतने थोडे समय मे से भी आधा घटा बचाकर बडे विद्यार्थियो को अग्रेजी सिखाने के लिए वह ढाई बजे से तीन बजे तक पाठशाला मे आया करते थे।

एक दिन की बात है। पाठशाला मे बैठे हम लोग गप्पे लडाने मे मशगूल थे। देवदासकाका, डाह्याभाई मोची, रामदासकाका, मै और दूसरे भी आपस मे अपने गणित के वर्ग की नुक्ताचीनी कर रहे थे। एक लडका बोला, "भाई, गणित बापूजी ही पढावे तो अच्छा, छगनलालभाई अच्छी तरह समझा नही पाते। कठिन-से-कठिन सवाल को भी बापूजी बहुत अच्छी तरह समझाते है।" दरवाजे के बाहर खडे-खडे बापूजी हमारी बात सुन रहे थे। चौखट की आड मे दो-एक मिनट तक वह खडे रहे और फिर धीरे से हमारे सामने आ गए। उनको देखते ही हम सब सहम गए। बापूजी ने उस रोज पढाना छोडकर हमे जो बाते सुनाई वे अब तक याद है'

उन्होने कहा, "तुम लोगो की यह कैसी उद्दडता है? मेरे मुकाबले आज तुमको छगनलाल भाई अयोग्य शिक्षक लगते है, तो कल गोखले महाराज की तुलना मे मै अयोग्य लगूगा। तुमको अपनी पढाई से मतलब है कि अपने शिक्षक को योग्यता के नम्बर देने से? जो विद्यार्थी अपने शिक्षक की निन्दा करता है वह चाहे कितना ही बुद्धिमान क्यो न हो, उसकी सारी पढाई शून्य ही रह जायगी। शिक्षक चाहे कितना भी दे, जिस विद्यार्थी मे विनम्रता नही है वह कुछ भी ग्रहण नही कर सकता। उलटे,

यदि शिक्षक थोडा-सा भी दे तो नम्र विद्यार्थी उसे बहुत बनाकर ग्रहण कर लेगा और तेजस्वी बनेगा। तुम लोग शिक्षको का दोष देखो, यह बिलकुल असह्य है। दोष देखना ही हो तो तुम अपने दोषो को देखो। गणित के शिक्षक छगनलाल ही रहेगे। मेरे पास जिस तरह चित्त लगाकर तुम सवाल करते हो, उसी तरह छगनलाल के पास भी पूरे ध्यान से करना चाहिए। मन मे उनके प्रति आदर भी रखना चाहिए।"

बापूजी की इस टीका का यह असर हुआ कि इसके बाद हम लोगो की चर्चा मे फिर कभी भी शिक्षको की टीका-टिप्पणी नही हुई।

ठीक तीन बजे हम पाठशाला से छापाखाने मे पहुचते थे। वहा पर हमे उद्योग-शिक्षण मिलता था। तमिल, हिन्दी और गुजराती-भाषी लडके अपनी-अपनी भाषा मे, और बडे विद्यार्थी अग्रेजी मे कम्पोज करना सीखते थे। साप्ताहिक को प्रकाशित करने के दिन बडो के साथ सब विद्यार्थियो को भी चटपट काम पूरा करने की चिता लगी रहती थी। कागजो को इधर-से-उधर मोडकर तह बनाना, अखबारो के बडल तैयार करना आदि हम लोग खूब तेजी से करते थे। अखबार के इस उद्योग मे जो लडका मद साबित होता था, उसकी लगाम बापूजी अपने हाथ मे लेते थे। आगे चलकर ऐसे भी सप्ताह आये, जब छापने और प्रकाशित करने का, सारा-का-सारा काम विद्यार्थियो ने हाथ मे ले लिया।

ठीक पाच बजे हम लोग फिर से खेतो पर पहुच जाते थे। क्षितिज पर अस्त होने वाले सूर्य की लालिमा से सुशोभित आकाश के नीचे, पक्षियो के गीतो की विविध ताने सुनते हुए हम लोगो को खेत के काम का वह घटा बहुत सुखद मालूम होता था। इस समय कडा परिश्रम क्वचित् ही होता था। खोदने का भारी काम सवेरे हो जाता था और शाम को दिन छिपने तक हम लोग कोमल पौधो को पानी देने और उनकी क्यारिया बनाने मे तथा बगीचे के फल-फूलो की अभिवृद्धि का निरीक्षण करने मे लगे रहते थे। छापाखाने का बडा घटा छ. बजने की सूचना देता था। घटा सुनते ही हम लोग घर पहुच जाते थे और हाथ-मुह धोकर शीघ्रता से भोजन करने के लिए पक्ति मे जा बैठते थे।

शाम की ब्यालू के बाद हम लोग तरह-तरह के खेल खेलते थे और इतनी हनी होती थी कि दिन-भर की थकान दूर हो जाती थी।

: ४४ :

मेरा शिक्षण

तीसरे पहर तीन से पाच तक छापाखाने मे उद्योग सीखते समय बापूजी के कठोर अनुशासन मे रहना पडता था। छापाखाने मे जरा भी बात करने की गुजाइश नही थी। बापूजी की बैठक ऐसे कोने मे थी कि थोडी-सी फुसफुसाहट भी उनके कानो तक पहुच जाती थी और अपनी बैठक के पर्दे की ओट से वह आवाज लगाते थे, "काम चल रहा है या बाते ? काम और बातो का साथ कैसा ? हाथ मे काम लेते ही ओठो पर ताला पड जाना चाहिए।" और सब चुपचाप अपने काम पर जुट जाते। इस पर भी यदि कही से बोलने का शब्द सुनाई पडता तो उस लडके को बापूजी अपने पास बुलवा लेते। कभी-कभी बापूजी चुपचाप अपनी बैठक से उठकर छापाखाने मे चक्कर लगाते और सुस्त तथा धीमे विद्यार्थी को सावधान करते।

पढाई मे मै कभी तेज था ही नही, और उद्योग मे भी मै बहुत ही मद-बुद्धि था। अन्य सभी विद्यार्थियो की अपेक्षा मै बेहद सुस्त था। काम करने का मेरा वेग बढता ही नही था। छापाखाने मे कम्पोजिग सिखाने वाले मुझे बार-बार टोक दिया करते थे। प्रतिदिन जब बापूजी प्रत्येक विद्यार्थी के काम का हिसाब पूछते तब मेरे सबध मे उनके पास बात आती कि प्रभुदास को दस मिनट का काम पूरा करने मे डेढ-दो घटे लग जाते है।

छापाखाने के काम में मेरा इस कदर ढीलापन उन्हे पसंद न था। उन्होने मुझे सख्ती से कहा, "काम करते-करते ऊघना हो तो बेहतर है कि घर ही जाकर सो जाया करो। काम करने मे सुस्ती नही करनी चाहिए।" तीन दिन तक सबके बीच मे मुझे इस तरह झेपना पडा। मैने बार-बार कोशिश की कि मै भी औरो की तरह तेजी से अपने हाथ चलाने लगू और काम को तुरन्त निपटा दू, परन्तु मै सफल न हो पाया। पढाई मे मै देवदास-काका का साथी था। उन्ही के वर्ग मे था, पर छापाखाने के काम मे देवदास-काका जब बडे-बडे आदमी के बराबर तेजी से काम करते थे, मै सबकी हसी का पात्र बना रहता था।

एक अशुभ दिन मेरी दुर्बुद्धि ने जोर मारा और अपनी बेइज्जती से मै बच निकला। बात यह थी कि वहा के क्रम के हिसाब से लबी-लबी दस-पद्रह गेलियो के टाइपो को डिस्ट्रीब्यूट करने के बाद ही नव-सिखियो को

नया लेख कपोज करने को मिलता था। मै बहुत चाहता था कि मुझे डिस्ट्रीब्यूट करने के काम से छुट्टी मिले और 'कपोजिग' करने दिया जाय परतु हमारे उद्योग-शिक्षक यह बात स्वीकार करते ही नही थे। तब मैने एक तरकीब निकाली। टाइपो को मुट्ठी मे भरकर अपनी पतलून की दोनो जेबो मे चुपचाप डाल लेता। सभी लोग अपने-अपने काम मे तल्लीन रहते थे। इसलिए सबकी नजर बचाकर जेब मे टाइप भर लेना मेरे लिए कठिन बात न थी। फिर लघुशका के बहाने मै छापाखाने से बाहर निकल जाता और प्रेस के पीछे झरने के गहरे गड्ढे मे उन टाइपो को फेक आता। पहले दिन चार-पाच पक्तिया, फिर दस और बाद मे प्रतिदिन २५-३० पक्तिया फेकते रहने का मेरा सिलसिला चलता रहा। किसीको मेरी इस हरकत का पता नही लगा। सबने यही माना कि अब काम करने मे मेरी गति बढ गई है और इस पर मुझे बधाई भी मिली।

डिस्ट्रीब्यूट करने के लिए निश्चित गेलियो को जब मैने साफ कर दिया तब कपोज करने का काम मुझे दिया गया। मुझ-जैसे मद विद्यार्थी को छापाखाने के रोज के काम मे कौन हाथ लगाने देता। इसलिए ऐसा काम ढूढा गया, जिससे नित्य के काम मे बाधा न आये। बापूजी ने सोच-विचारकर मुझे उन भजनो को कपोज करने का काम दिया, जो फीनिक्स मे शाम की प्रार्थना के समय गाये जाते थे। छोटे-छोटे शब्दो वाले बिना मिले-जुले अक्षरो के सादे भजन बापूजी चुनकर देते थे। पिताजी उन्हे अलग कागज पर लिख देते थे और मै रोज दो घटे के वर्ग मे दो-तीन लाइन कपोज कर लेता था।

आठ-दस दिन बाद जब एक भजन पूरा कपोज हो जाता और उसका प्रूफ उठाकर बापूजी के हाथ मे मै देता तब आनन्द के बदले भारी दुःख मुझे उठाना पडता। चोरी का जो अपराध मैने किया था वह अपने साथी और शिक्षको से तो मै छिपा पाया था, परन्तु उसका कुपरिणाम मुझे तुरत ही भुगतना पडा। डिस्ट्रीब्यूट करने मे लापरवाही के कारण ठीक खाने मे ठीक अक्षर मैने नही डाले थे। हरेक खाने मे अक्षरो की खिचडी बन गई। अत मेरे कपोज की हर पक्ति मे दस-बारह गलतिया निकल आती थी। 'थ' के बदले 'त', 'त' के बदले 'य', ऐसा होता था। मेरे इस भूल-भरे प्रूफ को बापूजी स्वय प्रार्थना के बाद सबके सामने सुधारते थे और मेरी गलती पर सबके सामने मुझसे प्रश्न पूछते थे कि ये गलतिया क्यो हुई ? मै शरम के मारे जमीन मे गड जाता था और आखो से आसू टपकने लगते थे।

महीनो तक यही क्रम चला और मेरी गलतियो में कमी नहीं हुई ; परन्तु बापूजी ने धैर्य नही छोडा। न मुझे कभी कटु वचन कहे। न मुझमे

वह काम ही छीना। महीनो बाद मेरे द्वारा कपोज किये गए भजनो को पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। उसी के प्रारम्भ मे बापूजी ने एक-दो विशेष कठिन भजन छपवाये। अपनी ओर से छोटी प्रस्तावना भी लिखी और एक दिन वह आया जब कि 'नीतिना काव्य' फीनिक्स मे और दक्षिण अफ्रीका-भर मे लोकप्रिय पुस्तिका बन गई। एक मूढ और अकुशल बालक अपने ढीले काम का ऐसा सुन्दर फल देखे तो उसके हृदय मे उमग और आनद किस प्रकार उमड आता है, यह शब्दो मे बताना कठिन है। आज भी जब वह लघु पुस्तिका अपने पिताजी के पुराने सग्रह मे हाथ आती है तो ध्यान मे आता है कि मुझे सिखाने मे बापूजी ने कितना अधिक धर्य और समय खर्च किया था।

आमतौर पर छापाखाने मे विद्यार्थियो के काम के दो घटे रहते थे, परतु शुक्रवार को दोपहर-भर और आवश्यक हो तो शाम को देर तक भी काम करना पडता था, क्योकि शनिवार की प्रात.काल को अखबार समय पर डाक मे पहुचाना आवश्यक था। छापाखाने के बडे लोग और हम सब लडके उस दिन बहुत खुश होते, मानो कोई उत्सव हो। अलग-अलग टोलियो की आपस मे होड लगती थी। देखे कौन पहले छपे अखबारो को मोड लेता है। कटाईवाले जीतते है या लोहे के तार से टाके लगाने की मशीनवाले या बडल बाधनेवाले? इस होड को बापूजी प्रोत्साहन देते थे और कई बार सारा काम डेढ-दो घटे पहले ही पूरा हो जाता था।

एक बार शुक्रवार को जिस टोली मे मै था, उसकी हार हुई। जोरो की तालिया बजी। हम खिसिया गए। अपना काम हमने बहुत ही वेग से किया था। मैने भी उस दिन अपने धीमेपन को भुला दिया था। फिर भी हम पर तालिया बज गई, यह मुझसे सहा नहीं गया। थोडी देर मे पता चला कि हमारी टोली के साथ छल किया गया था। अखबारो की एक बडी गड्डी हमसे छिपाकर अलग रख दी गई थी और अन्त मे हम पिछड गए, यह दिखाने के लिए वह अधूरा काम हमारे सामने रख दिया गया। मुझे बडा गुस्सा आया और रोया भी। मै सीधा दौडकर बापूजी के पास गया और सारा किस्सा सुना दिया। शाम की प्रार्थना के बाद बापूजी ने इस बात पर जीती हुई टोली के लडको को डाटा और खेल मे या होड मे भी असत्याचरण से बचने के लिए सबको सचेत किया। मुझे सान्त्वना मिली। परन्तु कुछ दिन बाद बापूजी ने मुझे भी टोक दिया। नियमानुसार प्रार्थना के बाद तुलसी-रामायण का अर्थ बापूजी सुना रहे थे; उसी सिलसिले मे निन्दा-चुगली न करने पर समझा रहे थे। इसमे मेरा उदाहरण बापूजी ने दे दिया और कहा, "लडको के आपस के खेल मे कही गड़बड़

हो जाय तो चुगलखोर उसी तरह दौडकर शिकायत करने आयगा, जैसे उस शुक्रवार को प्रभुदास आया था।"

उस दिन से फिर कभी शिकायत लेकर बापूजी के पास जाने का मुझे साहस नही हुआ।

: ४५ :

उपवास-गंगा का उद्गम

"आज दोपहर मे तो मैने खाना खा लिया, लेकिन शाम को कुछ नही खाया। पानी भी जहर-सा कडवा मालूम देता था। बेटा बाप को इस हद तक धोखा दे सकता है, यह जानकर मेरा अतर छिद रहा है, लेकिन मै शात रहा हू। मुझसे जब रहा ही नही गया तब मैने अपने गाल पर पाच तमाचे लगा लिए। किसी और को मै मारू, इससे तो बेहतर है कि मै अपने को ही मार लू। तभी तो पता चलेगा कि इस प्रकार का आचरण मुझे कितना दु ख दे रहा है। देवा (देवदास) ने तो मेरे पास सारी बात कबूल कर ली है और वह कहता है कि उसे बहुत पछतावा है। दुबारा ऐसी भूल न करने का उसने मुझे भरोसा दिलाया है। लेकिन अब भी मुझसे खाना नही खाया जा सकता। अभी तक लडको ने मेरे सामने सत्य छिपाया है। लडके एक बात कहते है और. . .दूसरी। दोनो एक दूसरे की बात उलट देते है, इसलिए कौन सच्चा है और कौन झूठा, इसका पता नही चलता। मैने सबसे बडे निहोरे किये, पर कोई सच बोलना चाहता ही नही है। असत्य मेरे पास बना रहे तो मेरा जीवन तो मिट्टी मे मिल जाय। इसलिए जबतक सत्य हाथ नही आता, मेरे लिए, जीवित रहने की चेष्टा करना व्यर्थ है। मैने आज दिन-भर इस बात पर बहुत विचार किया और अन्त मे इस निश्चय पर आया कि मेरे लिए अन्न-जल का त्याग ही उचित है। जबतक लडके खुद आकर सही-सही बात मुझे नही बतायगे तबतक मै अपने मुह मे न अन्न का दाना रखूगा न पानी की बूद।"

बापू के इन वचनों को सुनकर प्रार्थना-सभा में बिजली-सी कौंध गई। सब निस्तब्ध रह गए। सभा की नीरवता भग करने का साहस किसी को नही हुआ।

बापू फिर बोले, "मुझ पर जिसे दया आ रही हो वह मुझे खाने के लिए समझाने को न आये। सत्य की खोज मे अगर मेरी मौत हो जायगी तो उसके बराबर सोने की-सी मृत्यु और क्या हो सकती है? जिस पर ईश्वर के अनेक आशीर्वाद हो, जिसके अनेक जन्म के पुण्य जुडे हुए हो उसी को ऐसी मृत्यु मिलेगी। तुम सबको तो ऐसे दिन उत्सव मनाना चाहिए, जिस दिन सत्य की खातिर मेरी देह गिरे। इसलिए मुझसे विनती करने का कोई प्रयत्न न करे। अगर विनती करनी ही हो तो लडको से करे और सत्य को खोज निकालने मे मुझे सहायता दे।"

बापूजी के हृदय-परिवर्तनकारी और जीवन-शोधक उपवासो से आज केवल भारतवासी ही नही सारे ससार के लोग भली-भाति परिचित है। बापू के उपवास की बात सुनकर लोगो मे एक लहर फैल जाती थी। लोग सोचने को विवश हो जाते थे। इस पीढी के लोगो को दिल्ली के हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए किये गए २१ दिन के उपवास, यरवडा जेल मे तथा बाहर हरिजनो के लिए किये गए उपवास, आगाखा महल मे सर्वशक्तिमान से न्याय की प्रार्थना के लिए किया गया २१ दिन का उपवास तथा स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद कलकत्ता और दिल्ली मे शान्ति-स्थापना के लिए किये गए उपवास तो ताजी बाते मालूम होती है। उनके विश्व-व्यापी, हृदय-शोधक एव क्रातिकारी परिणामो को आज सारा ससार जानता है। गगा का उद्गम जैसे पतली-सी धारा के रूप मे दिखाई देता है, पर सागर मे मिलने जाती हुई गगा द्वितीय सागर-सी विशाल हो जाती है। कुछ वैसी ही बापूजी की इस उपवास-गगा की कथा है। इसका प्रारम्भ फीनिक्स के आश्रम के बालको एव अध्यापक की साधारण-सी मानी जानेवाली त्रुटियो को लेकर हुआ। पर बापूजी के लिए तो छोटी-सी बात ही नीव की बात होती थी।

बात यह हुई कि फीनिक्स आश्रम मे एक रोज एक बालक को एक शिलिंग कही पडा हुआ मिला। विद्यार्थी आपस मे चर्चा करने लगे कि इसका क्या उपयोग किया जाय? एक दल कहता था कि यह बापूजी को दे देना चाहिए। एक का मत यह था कि स्टेशन या डरबन से कुछ बढिया खाने की चीज मगाई जाय। इस षड्यन्त्र मे एक अध्यापिका बहन भी शामिल हुई। इसी बीच एक विद्यार्थी को चौथाई शिलिंग का एक सिक्का और मिल गया। वह भी इसी कोष मे मिला लिया गया। बहुमत खाने की चीज मगाने की ओर हुआ और खाने की चीज मगाने की व्यवस्था की गई। इस बात की पूरी सावधानी रखी गई कि बात फूटने न पाये।

बापूजी किसी काम से जोहान्सबर्ग गये। उनके जाने के बाद एक रोज डरबन से एक शिलिंग की पकौडिया और चौथाई शिलिंग के कुछ चित्र

मगाये गए। क्लास मे से सब लडको के चले जाने के बाद अध्यापिका ने मुझे बुलाया और दराज मे से चुपके से पकौडिया निकालकर मुझे देते हुए कहा कि यह लो, ये तुम्हारे हिस्से की पकौडिया है। चुपचाप खा लो और खेलने चले जाओ। मै झिझका, मगनकाका की मार और बापूजी के उलहने से डरा भी। मैने कहा, "पकौडिया मै नही लूगा। मुझे तो चित्र दे दे। मुझे वे अच्छे भी लगते है।"

शिक्षिका ने डाटते हुए कहा, "चटपट खा लो। तुम्हारे हिस्से की ही तो बची है। नही लोगे तो क्या होगा इनका? देर मत करो, नही तो ठीक नही होगा।"

मै डरता जाता था और पकौडियो की वास भी मन को ललचा रही थी। अलोने का व्रत बापूजी के सामने ले रखा था। उसके टूट जाने का भय था और बापूजी को धोखा देने की भी बात इसमे है, ऐसा मन को लग रहा था। भावना यह भी थी कि यह सब ठीक नही हो रहा है। यह सब बापूजी से छिपाना ठीक नही है। ये विचार मेरे मन मे आ रहे थे। इसी उलझन मे देर होती देखकर शिक्षिका ने फिर जोर से अपनी बात कही। मैने चुपचाप पकौडिया उनके हाथ से ले ली। मुह मे डालने से पहले सूघा। गध अच्छी लगी। कुछ देर सूघता रहा, पर खा नही सका। पकौडिया एक लडकी को दे दी और खेलने को भाग गया। बात आई-गई हो गई।

कुछ दिन बाद पकौडियो की दावत खाने वाले लडकों के दो दल हो गए। दोनो एक-दूसरे को दोष देने लगे। मै दोनो दलो मे मिल जाता और इधर की बात उधर और उधर की बात इधर किया करता। ऐसा कुछ दिन चलता रहा।

एक दिन एकाएक आश्रम का सारा वातावरण गभीर और क्षुब्ध हो गया। बापूजी जोहान्सबर्ग से आ चुके थे। मैने देखा कि बापूजी का चेहरा बडा गभीर है। उन्होने उन शिक्षिका बहन से घटे-सवा-घटे बाते की। फिर दूसरे व्यक्ति से अपने घर ले जाकर बाते की। मैने देखा कि प्रेस और अपने घर के बीच के रास्ते घूमते हुए बापूजी ने कई लोगों से बाते की। बापूजी के घर के बरामदे मे मगनकाका, रावजीभाई आदि बडे लोग और हमारी बाल-मडली विषादपूर्ण मुद्रा मे चिंतित भाव से खडी थी थोडी देर बाद बापूजी आये और देवदासकाका को अपने साथ ले गए। उनसे अकेले मे बडी देर बात की और ऐसा लगा मानो बापू किसी को चाटे लगा रहे है। मुझे लगा कि बापूजी ने देवदासकाका को पीटा है। तुरन्त मेरे मन मे खयाल आया कि दौडकर बापूजी के पास चला जाऊ और सचसच बाते

बता दू और देवदासकाका को बचा लू। पर फिर रुक गया कि कही चुगली खाने का दोष मुझे न लगाया जाय। कुछ देर बाद ही पता चला कि बापूजी को सारी बाते पता चल गई, लेकिन कुछ लोगो ने सच बात नही बताई, इससे बापूजी को बहुत दु ख हुआ और उन्होने देवदासकाका को नही, बल्कि अपने ही गाल पर चार-पाच चाटे जोर-जोर से लगा लिये।

दोपहर हो गई थी। सब लोग बिखर गए और अपने-अपने काम मे लग गए। लेकिन आश्रम के सारे वातावरण मे बडी उदासी और खिन्नता छा गई।

शाम को बडे मकान मे सब लोग प्रार्थना के लिए इकट्ठे हुए। प्रार्थना हुई। भजन हुए। उसके बाद स्तब्धता छा गई। सबकी आखे बापूजी की ओर लग गई। बहुत धीमी और शान्त आवाज मे बापूजी ने बोलना शुरू किया।

इस अध्याय के शुरू मे जो उद्धरण दिया गया है वह इसी प्रवचन का अश है। इस प्रकार बापूजी ने अपने मन की वेदना प्रकट की और असत्याचरण करनेवालो के हृदय मे शुभ-भावना जागृत करने के विचार से अन्न-जल-त्याग का कष्ट अपने ऊपर ले लिया।

उसके बाद कोई बोला नही। सब उठ-उठकर अपने-अपने निवास-स्थान को चले गए।

दूसरे दिन दोपहर की गाडी से बापूजी को जोहान्सबर्ग जाना था। सुबह मै पिताजी के साथ बापूजी के घर गया। देखा कि बापूजी दतौन कर रहे है और रावजीभाई और वह अध्यापिका बहन वहा बैठी है। कुछ बाते करके पिताजी घर लौट आये।

समय होने पर बापूजी स्टेशन जाने को निकल पडे। अनशन होने पर भी वह पैदल ही जा रहे थे। दो दिन से अन्न-जल नही लिया था, फिर भी बापूजी अडिग चाल से चले जा रहे थे। चलते हुए भी कभी रावजीभाई से, कभी उन अध्यापिका बहन से कभी किसी और भाई से अकेले या मिलकर बाते करते जाते थे। हम सब बालक भी मूक होकर यह सब देखते-देखते पीछे चले जा रहे थे।

स्टेशन पर पहुचे। बापूजी की बाते जारी ही थी। उनके और उनसे बात करनेवालो के चेहरो के बदलते भावो को मै बारीकी से देख रहा था। गाडी आ गई। बापूजी बैठ गए। बापूजी के चेहरे पर कुछ शान्ति, समाधान और प्रसन्नता की झलक देखी। गाडी चलते-चलते मेरे पिताजी ने बापूजी से कहा, "अब तो आप रुस्तमजी सेठ के यहा पहुँचकर भोजन करके फिर आगे की यात्रा शुरू कीजिएगा।"

लेकिन बापूजी ने कहा, "ऐसी कोई बात नहीं है। मेरे लिए भोजन से जरूरी सत्य की प्राप्ति है। मुझे वह प्राप्त हो गया। यही मेरी असली खुराक है। आज तो उपवास ही रखूगा और कल भोजन करूगा। पत्र लिखना। .. बहन भी लिखे।"

गाडी चल दी। सब वापस आश्रम लौट आये।

जोहान्सबर्ग पहुचकर दूसरे ही दिन बापूजी ने जो पत्र भेजा उसके कुछ अश इस प्रकार हैं।

"तुम्हारे साथ किसी पिछले जन्म की लेनदेन निकलती है। इतने प्रेम का मुझे तुमसे क्या अधिकार हो सकता है? फिर भी जब मैं ऐसे सकट मे पड गया तब तुमने जो प्रीति बताई है उसका वर्णन नही किया जा सकता। उसके द्वारा तुम दोनो की आत्मा अधिक तेजस्वी बने, ऐसा मैं चाहता हू और उस प्रीति का अनुभव पाकर आत्मा की शान्ति पर मेरा विश्वास अधिक दृढ हो, यह कामना तुम करना। एक मामूली प्रतिप्ठा अर्थात् तपश्चर्या का आरम्भ इतना कर सकता है तो की हुई तपस्या कितना कर सकती है इस बात की थाह ही नही मिल सकती है। यह सीधा-सा त्रैराशिक लगाने पर हमें मालूम होता है। प्रतिज्ञा न ली जाती तो मैं शुद्ध प्रेम का अनुभव नही पा सकता था और जितनी जल्दी सत्य बाहर आ गया तथा बालक निर्दोष साबित हुए, वैसा नही हो पाता।"

". ....को मैंने जिस ऊची सतह पर माना था वहा से उसे नीचे आना पडा है। फिर भी मेरे मन मे आता है कि वह पुण्यात्मा तो है ही। उसमे कई सद्गुण है। हमारा कर्तव्य है कि हम उसका विकास करे। उसका पाप और कार्य तो बहुत भारी था। उसकी याद उसे न दिलाई जाय। ऐसा रुख उसके प्रति हम रखे यह आवश्यक है। उसको घर के काम-काज मे प्रवीण बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। लडको मे से कोई उसका अपमान न करे, इसका ध्यान रखना। रात की कथा का सिलसिला जारी रखना। लडको को जगाने का उत्तरदायित्व रावजीभाई पर है ही। मगनभाई (मास्टर) के स्वास्थ्य की खबर नियमपूर्वक मुझे मिलनी चाहिए।"

उस दिन तीसरे पहर जब भूखे-प्यासे बापूजी को लेकर फीनिक्स स्टेशन से गाडी चल दी तब हम लोगो को घर लौटते हुए बडी बेचैनी और मायूसी रही। घर पहुँचकर दूसरे दिन भी हमारे मन की व्याकुलता घटी नहीं, बढी ही। लेकिन कारण कुछ समझ मे नहीं आ रहा था।

ऐसी मन स्थिति मे मुश्किल से आठ-दस दिन बीते होगे कि बापूजी

जोहान्सबर्ग से लौट आये और हम सब लोग सदा की भाति उन्हें लिवा
के लिए फीनिक्स स्टेशन पर गये।

स्टेशन पर गाडी के रुकते ही बापूजी डिब्बे से बाहर आये, पर उनवे
मुख पर मुस्कराहट का सर्वथा अभाव था। उनके बाद कैलनबैक रेल
उतरे। उनका चेहरा भी बहुत ही मायूस था। एक-आध मिनट बाद स
लोग स्टेशन से आश्रम को चल पडे। बापूजी जरा देर रुके रहे। जब स
लोग काफी आगे बढ गए तब केवल कैलनबैक और....को अपने सा
लेकर बापूजी चले।

मैंने अनुमान किया कि फिर कोई बडी गम्भीर बात हो गई है। घ
पहुचते ही...बहन उदास मुह लेकर बापूजी के पास आई और बापूज
बिलकुल अकेले मे उनसे बाते करने लगे। मैंने मान लिया कि झूठ औ
चोरी का जो प्रकरण चला था वह अब भी समाप्त नही हुआ है। परन्
वास्तव मे चर्चा उससे भी भारी अपराध की थी, जिससे मै अनभिज्ञ था

शाम की प्रार्थना मे भजन के बाद बापूजी बोले, "बहुतो को पता च
गया होगा कि मै आज से सात दिन का उपवास कर रहा हू। कुछ दि
पहले मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसके-जैसी डरा देने वाली प्रतिज्ञा यह नह
है। तब तो अन्न के एक दाने या पानी की एक बूद को भी ग्रहण नही किय
जा सकता था, पर इस बार मैंने पानी लेने की छूट रखी है और साथ-ही
साथ सात दिन की अवधि भी है ही। इसलिए इसमे मुझपर कोई बडी
भारी विपदा आ पडेगी ऐसी बात नही है। हमारे देश मे तो आज भी ऐसे
कई साधु मिलेगे जो चालीस-चालीस दिन के उपवास करते है।

"कोई ऐसा न माने कि मै यह उपवास अपराधी व्यक्तियो को सज
देने के लिए कर रहा हू। अपना निज का कच्चापन मिटाने के लिए ही म
यह कर रहा हू। हमारे ऋषि-मुनियो का तप ऐसा होता था कि शेर औ
गाय दोनो मिल-जुलकर उनके सामने खेलते थे। उनका तप इतना प्रख
होता था कि चाहे कैसा ही कुटिल मनोवृत्तिवाला आदमी क्यो न हो
उनके निकट पहुचने पर वह शुद्ध हृदय बन जाता था और उसके पेट क
सच-झूठ तत्काल अलग छट जाता था। जबतक हम ऐसे तपस्वी नही बनेंगे
तबतक हमे मोक्ष नही मिल सकता। लेकिन उस पद से तो हम मजिलो
दूर है। वहा पहुचते-पहुचते तो हमारे अनेक जीवन बीत जायेगे।

"जो व्यक्ति दूसरो को अच्छा बनाने के लिए अपने पास रखता है,
गलत रास्ते से सही रास्ते पर ले जाने के लिए अपने चारो ओर छोटे-बडे
लोगो की मडली जमा करता है, उसे स्वय अत्यधिक सच्चा रहना ही चाहिए।

उसके पास तो तपश्चर्या का भडार भरपूर होना चाहिए। मेरे पास ऐसा कुछ नही है। मैने आज तक कुछ भी तपस्या नही की है। बहुत-सी झझटो में घिरा हुआ रहता हू। कही किसी जगल मे पहुचकर तपस्या करने लगू ऐसा सुयोग मुझे मिला ही नही। अगर ऐसा अवसर मिले भी तो वह इस देश मे नही मिल सकता। अपने देश मे सब-कुछ हो सकता है। लेकिन यदि उमा के समान महातप करने का मौका न मिले तो भी यहा रहते हुए जो कुछ किया जा सके वह तो मैं कर लू! काम करना तो हमारे खाने-पीने, सास लेने आदि के जैसी बात होती है, उसमे कोई भारी सकट नही उठाना पडता। शरीर को काम करना ही होता है और उसे वह किया करता है। वास्तव मे मनुष्य-जन्म पाकर यदि हमे कुछ विशेष करना है तो वह केवल तपश्चर्या ही है। ऐसी तपश्चर्या का मुझे यह जो सर्वप्रथम अनुभव मिल रहा है उसे देखकर तुम सबको खुश होना चाहिए, दु ख मानकर और व्याकुल होकर मेरे दु ख मे वृद्धि नही करनी चाहिए।

"बा, रामदास .. .और दूसरे भी मेरे साथ सात दिन तक उपवास करना चाहते है परन्तु मैने सभी को बिलकुल मना किया है। कैलनबैक का तो मेरे प्रत्येक व्रत मे साथ देना धर्म बन गया है। उनके अतिरिक्त केवल.... को अपने साथ उपवास करने की इजाजत मैंने दी है। इसके बिना उसके हृदय को शाति मिल ही नही सकती। उसके लिए अपनी देह को टिकाना अब तभी सभव हो सकता है जब उसकी काया पश्चात्ताप की अग्नि मे तपकर शुद्ध हो जाय। इन उपवासो को सहन तो वह कर ही लेगा, लेकिन कदाचित् उसने सहन नही किया और उसकी देह गिर गई तो मुझे उस कारण दु ख होने वाला नही है। मै तब शोक नही मनाऊगा। अपनी शुद्धि करते हुए अगर कोई मनुष्य मौत को गले लगा लेता है तो उसके जैसा शुभ अवसर और कौन-सा हो सकता है? लेकिन ऐसा कुछ होने वाला नही है। वह तो इन उपवासो को मुझसे भी अच्छी तरह बर्दाश्त कर सकेगा।

"अब प्रश्न यह उठ सकता है कि जब मैने ..को और कैलनबैक को प्रायश्चित्त करने की स्वीकृति दी तो ..को क्यो नही दी? उसके बस का वह नही है। यदि उसे प्रायश्चित्त करना है तो और ढग से भी कर सकती है। फिर उसके अन्तर मे क्या-क्या चल रहा है इसका अभी तक मुझे सही-सही अनुमान नही हो सका है। यदि उसे प्रायश्चित्त करना ही हो तो वह अपने सारे बाल कटवा डाले, रग-बिरगे कपडे पहनना छोडकर केवल सफेद साडी ही पहने। पाठशाला मे पढाने का काम पन्द्रह दिन के लिए छोड दे, बाते करना और इधर-उधर फिरना बन्द कर दे और देवी बहन (श्री वेस्ट की बहन) के साथ अपना समय बिताए। यही उसका

प्रायश्चित्त है। मैंने उसे यह सब करने के लिए कह दिया है। इसलिए कल सवेरे ही पहला काम मै उसके बाल काटने का करनेवाला हू।

"रामदास, बा या किसी और को उपवास करने की आवश्यकता है ही नही। उन्हे यदि किसी बात का प्रायश्चित्त करना ही है तो मै अपना उपवास समाप्त कर लूं, तबतक वे प्रतीक्षा करे। बाद मे चाहे तो कर सकते है। मै उपवास करूंगा, इसलिए रसोई, खेती और मोची के काम मे, हर जगह, मेरे हिस्से के काम की कमी रहेगी। उन सारे कामो को पूरा करना तुम सबका कर्त्तव्य है। मेरे उपवास के दिनो मे तुम लोगो को दुगने उत्साह से काम करना चाहिए। ये सब बाते बा और रामदास भी मान ले तो अच्छा है।

"एक और बात जो मुझे सभी के लिए और विशेषकर लडको के लिए कहनी है, वह यह है कि कोई आपस मे कानाफूसी न करे। अपराध करने वालो का मजाक उडाना और उनकी निन्दा करना बहुत बुरी बात है। हम सभी लोग एक-से ही अपराधी है। यदि न हो तो हमारे बीच ऐसी भूले होने ही न पायं। कोई आदमी जो अपराध करता है, उसकी नीव मे सभी का पाप होता है। जब किसी को ठोकर लगे तब हमे सावधान हो जाना चाहिए। यदि हम उसपर हस दे और ऊचा देखकर चले तो हमे भी वैसी ही ठोकर खानी पडेगी। समझदारी इसी मे है कि दूसरो को ठोकर खाते देखकर हम विनम्र बन जाय और सभल जाय। ठोकर खानेवाले के प्रति दयाभाव रखने और उसकी सहायता के लिए दौड जाने मे जैसे शिष्टता है वैसे ही जब हमारा साथी भूल कर बैठे और उसका अन्तर उसे नोचने लगे तब हमे उससे बडी मिठास और सहानुभूति से बरतना चाहिए।

"मेरा काम केवल इन उपवासो से ही निबटनेवाला नही है। सात दिन के उपवास पूरे होते ही मेरा चार महीने का एकासना व्रत शुरू हो जायगा यदि दुबारा इन्ही व्यक्तियो की भूल के लिए मुझे फिर प्रायश्चित्त करना आवश्यक हुआ तो १४ दिन का उपवास और बरस-भर का एकासना करना पडेगा। यदि तिबारा वैसा करना पडे तो इक्कीस दिन के उपवास के बिना मेरे लिए यह प्रायश्चित्त कहलायगा ही नही। एक बार प्रायश्चित्त कर डाला, इसका अर्थ यह नही होता कि फिर निहग होकर सब बातो से छुट्टी पा जाऊ। प्रायश्चित्त निपटा देने के बाद यदि दूध के धुले-से बनकर हम हलके मन से बरतना शुरू कर दे तो वह प्रायश्चित्त व्यर्थ है। अपने तन पर लगी हुई धूल को जिस प्रकार हम झाड डालते है उसी प्रकार से पापो को नही झाडा जा सकता। प्रायश्चित्त के बाद हमारा उत्तरदायित्व अत्यधिक बढ जाता है। जिसने एक बार प्रायश्चित्त किया हो उसके लिए दुबारा प्रायश्चित्त करने का अवसर-यदि उपस्थित हो जाय तो उसे पहले से दुगुना प्रायश्चित्त करना चाहिए।"

वापूजी ने अपना प्रवचन समाप्त किया तब ऐसा मालूम हुआ मानो हम अपनेको भूल गए है। रामदासकाका फिर से उनके पास पहुचे और उनके साथ उपवास मे शामिल होने की स्वीकृति पाने के लिए आग्रह करने लगे। तब वापूजी ने सोच-विचारकर यह घोषित किया कि जिनकी इच्छा हो वे सब उनके उपवास के पहले और आखिरी दिन उपवास कर सकते है। यह स्वीकृति मिलने पर छोटे-बडे सभी के मुख पर छाई हुई विषाद की छाया कुछ कम हो गई।

: ४६ :

'वह अपूर्व अवसर कब आयेगा ?'

महात्मा टाल्स्टाय, महान विचारक रस्किन और राजयोगी श्रीमद् राजचन्द्र, इन तीन मानव-विभूतियो ने वापूजी के हृदय को अभिभूत कर लिया था और इन तीनो के उच्चतम आदर्शों का अनुशीलन करके वापूजी उनके अनुसार आचरण करने का सतत प्रयत्न करते थे।

उनकी आराधना फीनिक्स मे चोटी तक पहुच गई थी। "मजदूर और वकील, सम्पादक और चपरासी को दिन-भर की मजदूरी का मेहनताना एक-सा ही मिले, क्योकि सबका पेट एक-सा ही होता है," रस्किन का यह सिद्धात वहा अच्छी तरह अमल मे लाया जाता था। वापूजी, उनके प्रथम सहायक और निम्न सेवको के रहन-सहन का स्तर अलग-अलग नही था। सर्वोदय समाज का वहा स्पष्ट दर्शन होता था। "कस कर मजदूरी की जाय और नित्यप्रति पसीना वहाने के वाद ही भोजन किया जाय"—यह टाल्स्टाय की धुन वापूजी ने फीनिक्स के वच्चे-वच्चे मे भर दी थी। जो व्यक्ति उत्पादक शरीर-श्रम करने मे आगे निकल जाता था वह अपने को धन्य समझता था। अनशन-व्रत का श्रीगणेश करके वापूजी ने राजचन्द्रजी की वाणी में प्रदर्शित जैन-दर्शन की इस महत्त्वाकाक्षा को भी फीनिक्स के वायुमडल मे भर दिया कि "मनुष्य-देह हर तरह से एक वोझा है। उससे मोक्ष पाना सबका कर्तव्य है। कठोर-से-कठोर व्रत धारण करके देह तथा इन्द्रियो का जितना वने अधिक दमन करने तथा हृदय मे सभी प्राणियो के प्रति अहिंसा की भावना को निखारते रहने मे ही मानव-जीवन की सफलता है।"

सात दिन का ही वह पहला अनशन कितना भयावह था, इसकी कल्पना अब नही की जा सकती। उन दिनो ऐसा प्रतीत होता था, मानो साक्षात मृत्यु हमारे सामने मूर्तिमंत खडी हो। मृत्यु का स्वागत परम-मित्र के रूप मे करने की बापूजी की चर्चा हृदय को और भी व्यथित करती थी। दूसरी ओर उपवास की भारी कमजोरी के होते हुए भी प्रत्येक सध्या को प्रार्थना के समय बापूजी ज्ञान का जो गभीर स्रोत बहाते थे, उसके कारण हमारा उद्वेग और भी वढ जाता था। समझ मे नही आता था कि उस भव्य ऊचाई तक पहुचने के लिए बापूजी क्या-क्या कर बैठेगे और यदि वह सचमुच ही चल बसेगे तो हम किस मुह से दुनिया मे रह पायगे।

बापूजी ने अपना नित्यक्रम पूर्ववत् चालू रखा मानो कोई विशेष बात ही न हुई हो। हम लोगो के वर्ग लेने मे कमी नही आने दी। खुद उपवास कर रहे थे और हमे भोजन परोसते थे। भोजन के समय प्रसन्नता भी बनाये रखने मे सावधान रहते थे। घूमने-फिरने का काम कुछ घटा दिया था, किन्तु आखिरी दिन तक चलते-फिरते थे, लेटे नही रहे। हमारे गीता के वर्ग मे उन दिनो जो प्रवचन होते थे उनमे हमारा चित्त असाधारण रूप से एकाग्र रहता था। बापूजी को लेशमात्र भी परेशानी न हो इस खयाल से सभी विद्यार्थी बहुत सीधे बन गए थे। आखिरी और सातवे दिन बापूजी कुर्सी पर बैठे-बैठे हमारी साप्ताहिक परीक्षा के उत्तर-पत्र जाच रहे थे। उस समय दो मिनट के लिए अकस्मात उनका सिर झुक गया। सबने समझा कि उन्हे मूर्छा आ गई है। क्या किया जाय? इस सोच-विचार मे ही हम लोग थे कि बापूजी ने आखे खोल दी। वह तनकर बैठ गए और हमारी कापियों को जाचने का काम फिर शुरू कर दिया। मध्याह्न का सारा काम भी नियमपूर्वक पूरा किया।

उपवास के सातो दिन तक श्रीमद् राजचन्द्र के एक मननीय गुजराती भजन का पारायण किया गया, जिसमे पन्द्रह कडिया थी और उन्हे गुजराती लोक-गीत की तर्ज मे गाने मे काफी समय लगता था। 'आरगन' (हारमोनियम-जैसा एक अग्रेजी वाद्य) पर मणिलालकाका ज्योही उसकी स्वर-लहरिया बजाते थे, सारा वातावरण भावार्द्र हो जाता था। मगनकाका अपने गभीर कण्ठ से उस पद्य की शब्दावली गाते और मेरी माताजी और दूसरी बहने तथा विद्यार्थी एक साथ गद्गद कण्ठ से उसको दोहराते थे। भजन हो जाने के बाद बापूजी उसका अर्थ समझाते थे और फिर अपनी भावना का प्रवाह वाणी द्वारा बहाते थे। उस भजन की कुछ पक्तिया निम्नलिखित है

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे, क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रंथ जो ?

ऐसा अपूर्व अवसर कब प्राप्त होगा जब कि हम अन्तर-बाह्य की ग्रथियो से नि शेष हो जायगे ?

सर्व संबंधनु बंधन तीक्षण छदीने, विचरीशुं क्यारे महत्पुरुषने पंथ जो ?

सब प्रकार के सबधो का तीक्ष्ण बधन काटकर महापुरुषो के पथ पर हम कब विचरण करेगे !

बहु उपसर्ग कर्ता प्रत्ये पण क्रोध नहीं वदे चक्री तौपण न मळे मान जो।

जो हमारा अतिशय उत्पीडन करता हो—जो हमे बेहद सताता हो—उसके प्रति भी हमारे दिल मे क्रोध पैदा न हो, और चक्रधारी महाराजाधिराज भी यदि हमारे पैर छुए, तब भी हमारे मन मे अभिमान का पता तक न हो !

देह जाय पण माया थाय न रोम मां लोभ नहीं छो प्रबल सिद्धि निदान जो।

भले ही शरीर गिर जाय, लेकिन माया का कुस्पर्श हमारे रोम मे भी न हो और चाहे बडी-से-बडी सिद्धि निश्चित रूप से हाथ आनेवाली हो फिर भी उसके लोभ मे हम न फसे।

जीवित के मरणे नहीं न्यूनाधिकता भव मोक्षे पण वर्ते शुद्ध स्वभाव जो।

चाहे जीवन बना रहे, चाहे मरण सिर पर आ जाय, दो मे से किसी को भी हम न्यूनाधिक न समझे। ससार मे हो या मोक्ष-स्थिति मे पहुच जाय दोनो परिस्थितियो मे हमारा स्वभाव विशुद्ध बना रहे।

मोह स्वयभू-रमण समुद्र तरी करी बळीसींदरीवत् आकृति मात्र जो।

अपने-आप ही अन्तर मे लहराता हुआ मोह का जो समुद्र है उसको पार करके जली हुई नारियल की रस्सी की तरह केवल आकृति रूप ही हमारी स्थिति कब बन जायगी ? अर्थात् जिस प्रकार नारियल की रस्सी सारी जल जाने के बाद भी देखने मे बटी हुई तैयार रस्सी-जैसी ही दीख पडती है, पर वास्तव मे वह रस्सी नही राख ही होती है, उसी प्रकार हमारे शरीर का अहकार, मोह आदि पूर्णतया जलकर समाप्त हो जाय और मृत्यु के दिन तक शरीर बना रहे तो केवल आकृतिमात्र ही रहे, उसमे आसक्ति की ताकत कुछ भी न रहे। ऐसी स्थित कब आयगी ?

एक परम पद प्राप्तिनुं धर्युं ध्यान में गजा वगरनो हाल मनोरथ रूप जो।

उस परम-पद की प्राप्ति पर मैने अपना ध्यान लगाया है, यद्यपि उसे पाने मे मै असमर्थ हू और इस समय तो वह केवल मेरे मनोरथ के रूप मे ही है।

सात दिन का ही वह पहला अनशन कितना भयावह था, इसकी कल्पना अब नही की जा सकती। उन दिनो ऐसा प्रतीत होता था, मानो साक्षात मृत्यु हमारे सामने मूर्तिमंत खडी हो। मृत्यु का स्वागत परम-मित्र के रूप मे करने की बापूजी की चर्चा हृदय को और भी व्यथित करती थी। दूसरी ओर उपवास की भारी कमजोरी के होते हुए भी प्रत्येक सध्या को प्रार्थना के समय बापूजी ज्ञान का जो गभीर स्रोत बहाते थे, उसके कारण हमारा उद्वेग और भी बढ जाता था। समझ मे नही आता था कि उस भव्य ऊचाई तक पहुचने के लिए बापूजी क्या-क्या कर बैठेगे और यदि वह सचमुच ही चल बसेगे तो हम किस मुह से दुनिया मे रह पायगे।

बापूजी ने अपना नित्यक्रम पूर्ववत् चालू रखा मानो कोई विशेष बात ही न हुई हो। हम लोगो के वर्ग लेने मे कमी नही आने दी। खुद उपवास कर रहे थे और हमे भोजन परोसते थे। भोजन के समय प्रसन्नता भी बनाये रखने मे सावधान रहते थे। घूमने-फिरने का काम कुछ घटा दिया था, किन्तु आखिरी दिन तक चलते-फिरते थे, लेटे नही रहे। हमारे गीता के वर्ग मे उन दिनो जो प्रवचन होते थे उनमे हमारा चित्त असाधारण रूप से एकाग्र रहता था। बापूजी को लेशमात्र भी परेशानी न हो इस खयाल से सभी विद्यार्थी बहुत सीधे बन गए थे। आखिरी और सातवे दिन बापूजी कुर्सी पर बैठे-बैठे हमारी साप्ताहिक परीक्षा के उत्तर-पत्र जाच रहे थे। उस समय दो मिनट के लिए अकस्मात उनका सिर झुक गया। सबने समझा कि उन्हे मूर्छा आ गई है। क्या किया जाय? इस सोच-विचार मे ही हम लोग थे कि बापूजी ने आखे खोल दी। वह तनकर बैठ गए और हमारी कापियों को जाचने का काम फिर शुरू कर दिया। मध्याह्न का सारा काम भी नियमपूर्वक पूरा किया।

उपवास के सातो दिन तक श्रीमद् राजचन्द्र के एक मननीय गुजराती भजन का पारायण किया गया, जिसमे पन्द्रह कडिया थी और उन्हे गुजराती लोक-गीत की तर्ज से गाने मे काफी समय लगता था। 'आरगन' (हारमोनियम-जैसा एक अग्रेजी वाद्य) पर मणिलालकाका ज्योही उसकी स्वर-लहरिया बजाते थे, सारा वातावरण भावार्द्र हो जाता था। मगनकाका अपने गभीर कण्ठ से उस पद्य की शब्दावली गाते और मेरी माताजी और दूसरी बहने तथा विद्यार्थी एक साथ गद्गद कण्ठ से उसको दोहराते थे। भजन हो जाने के बाद बापूजी उसका अर्थ समझाते थे और फिर अपनी भावना का प्रवाह वाणी द्वारा बहाते थे। उस भजन की कुछ पक्तिया निम्नलिखित है

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे, क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रं

ऐसा अपूर्व अवसर कब प्राप्त होगा जब कि हम अन्तर-बाह्य की ग्रथियो से नि शेष हो जायगे ?

सर्व संबंधनु बंधन तीक्षण छदीने, विचरीशुं क्यारे महत्पुरुषने पंथ जो ?

सब प्रकार के सबधो का तीक्ष्ण बधन काटकर महापुरुषो के पथ पर हम कब विचरण करेगे !

बहु उपसर्ग कर्ता प्रत्ये पण क्रोध नहीं वदे चक्री तौपण न मळे मान जो।

जो हमारा अतिशय उत्पीडन करता हो—जो हमे बेहद सताता हो—उसके प्रति भी हमारे दिल मे क्रोध पैदा न हो, और चक्रधारी महाराजाधिराज भी यदि हमारे पैर छुए, तब भी हमारे मन मे अभिमान का पता तक न हो।

देह जाय पण माया थाय न रोम मां लोभ नहीं छो प्रवल सिद्धि निदान जो।

भले ही शरीर गिर जाय, लेकिन माया का कुस्पर्श हमारे रोम मे भी न हो और चाहे वडी-से-वडी सिद्धि निश्चित रूप से हाथ आनेवाली हो फिर भी उसके लोभ मे हम न फसे।

जीवित के मरणे नहीं न्यूनाधिकता भव मोक्षे पण वर्ते शुद्ध स्वभाव जो।

चाहे जीवन वना रहे, चाहे मरण सिर पर आ जाय, दो मे से किसी को भी हम न्यूनाधिक न समझे। ससार मे हो या मोक्ष-स्थिति मे पहुच जाय दोनो परिस्थितियो मे हमारा स्वभाव विशुद्ध वना रहे।

मोह स्वयंभू-रमण समुद्र तरी करी वळीसींदरीवत् आकृति मात्र जो।

अपने-आप ही अन्तर मे लहराता हुआ मोह का जो समुद्र है उसको पार करके जली हुई नारियल की रस्सी की तरह केवल आकृति रूप ही हमारी स्थिति कव वन जायगी ? अर्थात् जिस प्रकार नारियल की रस्सी सारी जल जाने के वाद भी देखने मे वटी हुई तैयार रस्सी-जैसी ही दीख पड़ती है, पर वास्तव मे वह रस्सी नही राख ही होती है, उसी प्रकार हमारे शरीर का अहकार, मोह आदि पूर्णतया जलकर समाप्त हो जाय और मृत्यु के दिन तक शरीर वना रहे तो केवल आकृतिमात्र ही रहे, उसमे आसक्ति की ताकत कुछ भी न रहे। ऐसी स्थित कव आयगी ?

एक परम पद प्राप्तिनुं धर्युं ध्यान में गजा वगरनो हाल मनोरथ रूप जो।

उस परम-पद की प्राप्ति पर मैंने अपना ध्यान लगाया है, यद्यपि उसे पाने मे मै असमर्थ हू और इस समय तो वह केवल मेरे मनोरथ के रूप मे ही है।

तो पण निश्चय राजचन्द्र मनने रह्यो प्रभु आज्ञाए थाशुं तेजस्वरूप जो।

फिर भी राजचन्द्र के मन मे यह पक्का निश्चय है कि ईश्वर की आज्ञा से मै वह उच्च स्वरूपमय बन ही जाऊगा।

सातवी रात को इस भजन की अन्तिम पक्तियो की व्याख्या बापूजी ने की और जो निश्चय राजचन्द्र ने किया था, वही बापूजी ने अपने लिए भी जोरदार शब्दो मे दोहराया। कवि ने तो उस आदर्श तक पहुचने के लिए कोई दूर का समय सूचित किया है, परन्तु बापू को उसमे विलम्ब और प्रतीक्षा असह्य प्रतीत हो रही थी। उनके मुख पर इतना दृढ सकल्प प्रकट हो रहा था, मानो वह उस अपूर्व अवसर को अपनी मुट्ठी मे शीघ्र ही बाध लेगे।

प्रवचन की समाप्ति पर बापू ने अपना प्रिय भजन 'वैष्णवजन' गाने को कहा। सभवत: भक्त प्रह्लाद और उसके पिता हिरण्यकश्यप के बीच के सवादवाला गुजराती भजन भी उस समय गाया गया था। सातो दिन निर्विघ्न बीत जाने के लिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए हम लोग रात्रि के विश्राम के लिए चले गए।

दूसरे दिन बापूजी ने अपना उपवास समाप्त किया। कैलनबैक और . . के उपवास भी समाप्त हुए। कैलनबैक सात दिन की अवधि मे अधिक दुर्बल हो गए थे, पर उनके मुख पर शान्ति झलक रही थी। . . .ने भी धैर्य और बहादुरी के साथ उपवास पार किया।

उपवास की पारणा होने के दिन से ही बापूजी ने दिन मे एक ही बार खाने का अपना ४॥ मास का व्रत शुरू कर दिया। कमजोरी दूर होने तक भी नही रुके। जिस उद्देश्य से अनशन किया गया था, उसकी फल-प्राप्ति मुझ बालक की समझ मे आनी कठिन थी; लेकिन उसके बाद से फीनिक्स मे उपवासो का सिलसिला बढ गया। मुझे ऐसा स्मरण है कि. . .बहन ने बापूजी के बाद चार-पाच दिन का उपवास किया था, और कई दिनो तक उन्होंने मौन धारण कर रखा था। दूसरे लडको ने भी एक-एक, दो-दो दिन के उपवास किये थे और एक दिन का उपवास मैने भी किया था ऐसा याद है।

: ४७ :

बुनियादी शिक्षा

श्री वेस्ट को अपना मकान बहुत छोटा पडता था। उसमे सुधार करने और कमरे बढाने का काम कई महीनों से थोडा-थोड़ा होता था। परन्तु वेस्ट साहब की बहुत-सी परेशानियो को देखकर बापूजी ने एक सप्ताह मे ही उस काम को पूरा करने का निश्चय किया। सबके साथ विचार-विनिमय करके पूरे सप्ताह-भर पाठशाला बन्द रखने की योजना बनाई गई। साप्ताहिक पत्र तो बन्द रह नही सकता था, इसलिए यह सोचा गया कि छापाखाने मे काम करनेवाले सभी बडे व्यक्ति उस काम से मुक्त किये जाय और केवल लडके ही अपना सगठन करके 'इडियन ओपीनियन' का उस सप्ताह का अक प्रकाशित करे।

लडको ने उत्साहपूर्वक यह बीडा उठा लिया और वेस्ट साहब का घर बनाने के लिए छापाखाने के प्रत्येक बडे आदमी को मुक्त कर दिया गया। पकी उम्र वाले श्री काबाभाई का शरीर धूप मे कडा काम करने योग्य नही था और उनके बिना वेस्ट साहब का घर बनाने मे ढील होती ऐसी बात भी नही थी। फिर भी गुजराती कम्पोजिग का एक-तिहाई हिस्सा अकेले ही कर लेने वाले उस वृद्ध को भी छापाखाने से लडको ने छुट्टी दे दी ताकि लडको के यश मे कमी न आ ये। बापूजी से हमारी मडली ने यह वादा करा लिया कि चाहे कितनी ही उलझन पैदा हो, शुक्रवार से पहले एक भी बडा व्यक्ति हमारे काम मे दखल नही देगा।

इस प्रकार छापाखाने का पूरा राज्य लडको के सिपुर्द करके बापूजी ने मिस्त्री का काम अपने हाथ मे ले लिया। बापूजी, मगनकाका, श्री वेस्ट आदि को बढई के काम का कुछ अभ्यास हो गया था, दूसरो को परिश्रम करने मे आपत्ति नही थी, इसलिए अलादीन के चिराग वाले मकान की फुर्ती से वेस्ट साहब का घर बनने लगा। बापूजी को उस काम मे लगे हुए देखते ही बनता था। वह उस काम के लिए उस देश मे प्रचलित नीले रग का पतलून पहनते थे, जिसने दस-बारह जेबे होती थी—दो-दो जेबें जाघ के ऊपर, दो-तीन कमर पर, दो अगल-बगल मे, इसके अलावा चमडे का एक-दो जेबो वाला और पीतल की कई कडियो वाला कमर बद भी था। इन विविध जेबो मे बापूजी छोटी-मोटी कीले स्क्रू, बागर, हथौडी, जम्दूर, पेचकस आदि लगा लेते थे। वह पतलून क्या, बढई का एक थैला ही था।

उस थैले से सुसज्जित होकर बापूजी छप्पर के ऊचे-से-ऊचे स्थान मे पहुंच जाते थे और वहा कडी धूप मे, अभ्यस्त बढई की तरह एकाग्रता से घटों टीन की नालीदार चद्दरो को कीलो से जडने का काम करते रहते थे। बापूजी के साथ ही मगनकाका भी रहते थे, जो काम मे उनसे सवाए थे। दूसरे भी सभी लोग पूरे जोर से अलग-अलग काम मे लगे रहते थे। फीनिक्स की चारो दिशाओ मे दिन-भर कील आदि के ठोकने की आवाज़ गूजती रहती थी। उसे सुनकर हम लोगो को अपना काम करने मे और भी जोश आता था।

बापूजी ने विद्यार्थियो को अकेले ही साप्ताहिक छापने का काम दिया। उसका और भी कारण था। हम लोगो मे जो अधिक सयाने थे उन्होने कानाफूसी शुरू की कि अब पन्द्रह-बीस दिन मे ही शायद सत्याग्रह-सग्राम छिड जायगा और हमारा भारत जाना रुक जायगा। तब अगर सभी बडे व्यक्ति जेल चले जाय तो विद्यार्थीगण 'इडियन ओपीनियन' का प्रकाशन बन्द न होने दे, इसी हेतु बापूजी ने हमारी यह कसौटी की है। इसमे हमे अपना जौहर बता ही देना चाहिए।

हम लोग काम मे जुट गए। पर कई बार बडे लोग हमको ताने दे ही देते थे कि अब के शुक्रवार को हमे दुगना काम करना पडेगा। रात-भर जागकर भी मुश्किल से डाक पहुचा पायगे। परन्तु शुक्र की सध्या होने से पहले ही हमने अखबार तैयार कर के सारे पारसल बाध लिये और डाक के थैले बाकायदा भरकर रख दिये थे। सध्या के पाच बजे जब मकान के काम से छुट्टी पाकर बडे लोग हमारा काम जाचने आये, तब हम मे से कई तो अपना काम पूरा करके खेलने के लिए चले गए थे और दूसरे जाने की तैयारी मे थे। हमारे काम का परीक्षण करके बडो ने बापूजी को बधाई दी कि लडके तो हमसे सवाए साबित हो गए। बापूजी ने लडको को शाबाशी देते हुए कहा, "मुझे यकीन था कि तुम लोग हमे हरा दोगे।" बापूजी के इन शब्दो ने सब लडको का हौसला बढा दिया।

आमतौर से शनिवार को एक पहर बीतने के बाद मुश्किल से अखबार के बडल डाक के लिए रवाना किये जा सकते थे, लेकिन हमने दिन निकलते ही उन्हे स्टेशन पर पहुचा दिया।

लडको की इस सफलता के पुरस्कार-स्वरूप बापूजी ने सध्या के समय खेल मे हमारे साथ अपना कुछ समय देना स्वीकार किया।

शिवपूजनसहाय—हममे सबसे बडा विद्यार्थी और कुप्पुस्वामी के बीच लबी दौड लगाने की शर्त हुई थी। शिवपूजन ने दावा किया था कि आश्रम

से स्टेशन तक कोई भी लडका मुझसे दस मिनट पहले दौडना शुरू करे तो भी मै बाद मे चलकर उससे पहले लौट आऊगा। दो लडको ने इस चुनौती को स्वीकार किया। छापाखाने के द्वार पर बापूजी स्वय घडी लेकर खडे रहे। स्टेशन पर श्री मगनभाई मास्टर को घडी के साथ पहले ही भेज दिया गया। कुप्पुस्वामी और गोविन्द को बापूजी ने दस मिनट पहले रवाना किया और ठीक समय पर शिवपूजन को। हम लोग तमाशा देखने के लिए स्टेशन के रास्ते के अधबीच तक गये। कुप्पु और गोविन्द करीब स्टेशन तक पहुचे होगे तब हमारे सामने से—आश्रम से कोई डेढ मील की दूरी पर—हिरन की तरह चौकडी भरता हुआ शिवपूजन दौडता हुआ निकल गया। घोडे की तरह उसके नथुने फूल रहे थे। कुप्पु और गोविन्द भी कम तेजी से नही दौडे थे। परन्तु लौटकर ठीक १॥ मिनट पहले शिवपूजन, बापूजी जहा घडी लिए खडे थे, पहुच गया। उसकी जय-जयकार से आकाश गूज उठा। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि उन्तीस मिनट मे शिवपूजन ने पाच मील की दौड उस ऊबड-खाबड पगडडी पर पूरी की थी।

: ४८ :

सत्याग्रह की तैयारी

कुछ दिन बाद ही दक्षिण अफ्रीका के एक न्यायालय ने भारतीय महिला के सम्बन्ध मे ऐसा एक फैसला दिया जिससे भारत मे हिन्दू और मुस्लिम विधि से विवाहित पत्नी दक्षिण-अफ्रीका मे अनधिकृत पत्नी बन जाती थी। दक्षिण अफ्रीका मे बापूजी की सत्याग्रह की लडाई को उस समय तक छ-सात वर्ष हो चुके थे, लेकिन तबतक उसमे किसी स्त्री सत्याग्रही का प्रवेश नही हुआ था। अब, जब कि दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने भारतीय लग्न-विधि को गैरकानूनी घोषित करके भारतीयो की—और विशेषत भारतीय स्त्रियो की—धार्मिक भावना पर अनपेक्षित आक्रमण किया, तो उसके विरोध मे बहनो का भी सत्याग्रह करके जेल जाना आवश्यक हो गया। बापूजी ने अपनी रीति के अनुसार महिला-सत्याग्रही को जेल भेजने का श्रीगणेश अपने ही घर से करना आवश्यक समझा। परन्तु अपनी ओर से पूज्य बा के सामने यह प्रस्ताव रखकर उनको वह असमजस मे नही डालना चाहते थे। इसलिए उन्होने बहनो के जेल जाने की प्रथम चर्चा मेरी माताजी

और काकी से की। बापूजी ने दोनो से यह वादा ले लिया कि दक्षिण अफ्रीका मे और कोई स्त्री जेल के लिए तैयार न हो, तो भी उनको सत्याग्रह मे कूदना होगा। जब पूज्य कस्तूरबा को बापूजी के इस आह्वान का पता चला तब वह खुद ही जेल जाने के लिए तत्पर हो गई। पूज्य बा के लिए जेल जाना साधारण बात नही थी, क्योकि तब वह बीमार थी और केवल फलाहार करने का ही उनका व्रत था। इस व्रत के कारण उनको जेल मे अत्यधिक कष्ट भोगना पड सके और प्राणो की बाजी लगा देनी पडे ऐसा अदेशा था। परन्तु इस को समझते हुए भी पूज्य बा ने अपना नाम महिला-सत्याग्रहियो मे सर्वप्रथम रखने का आग्रह किया तथा बापूजी ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस प्रकार फीनिक्स से कुल मिलाकर ४ महिलाए जेल जाने के लिए तैयार हो गई। ये थी—पूज्य बा, मेरी माताजी, मेरी चाची और बापूजी के परम मित्र डा० प्राणजीवनदास मेहता की पुत्री जयकुवर बहन।

तीन-चार दिन बाद निश्चित रूप से पता चल गया कि हमारे घर से तीन व्यक्ति जेल जायगे—पिताजी, माताजी और काकी। मगनकाका 'इडियन ओपीनियन' के काम तथा आश्रम के सब बच्चो की देखभाल के लिए रुक जायगे।

पाठशाला मे बैठकर पढने मे अब हमारा जी नही लगता था। बापूजी से हमने कहा भी कि चाहे देश के लिए चलना हो चाहे जेल के लिए, हमे भी तब तक की छुट्टिया दे दी जाय। परन्तु बापूजी ने साफ इनकार कर दिया और कहा

"इस तरह पढाई बन्द करना गलत होगा। यदि सब लडके जेल चले जाय तो भी पाठशाला का थोडा-बहुत क्रम तो जारी रखना ही चाहिए। पढाने वाला शिक्षक न रहे तो लडके आपस मे एक-दूसरे की सहायता करके पढे। और कुछ नही तो नित्य नियम से थोडा समय गणित का अध्ययन ही किया जाय। छुटपन मे गणित सीख लिया जाय तो बाकी बाते बडेपन मे भी सीखी जा सकेगी। इसलिए गणित के स्वाध्याय मे एक दिन का भी प्रमाद उचित नही है।

इस प्रकार फीनिक्स का नित्यक्रम चलता रहता था; पर दिन-भर बाते जेल-यात्रा की ही होती थी और नजीर की प्रसिद्ध गजल की निम्नलिखित पक्तिया मानो हमारे श्वासोच्छ्वास का अग बन गई थी :

है बहारे बाग दुनिया चन्द रोज।
देख लो इसका तमाशा चद रोज॥
ऐ मुसाफिर कूच का सामान कर।
इस जहां में है बसेरा चंद रोज॥

तुम कहां औ' मैं कहां ऐ दोस्तो !
साथ है मेरा तुम्हारा चंद रोज ॥

जेल जाने की चर्चा के साथ ही लडको मे फीनिक्स के बाहर की चर्चाए भी होने लगी। इन चर्चाओ का सार यह था कि फीनिक्स तथा जोहान्सबर्ग से जो मुट्ठी-भर सत्याग्रही तैयार हो रहे है, उन्हे बडा कठिन मोर्चा लेना होगा। बापूजी बडा भीषण युद्ध ठान रहे है। इस बार की जेल-यात्रा कोई खिलवाड न होगी। इसीलिए बापूजी चुन-चुनकर कच्चे व्यक्तियो को फीनिक्स से घर लौट जाने के लिए कह रहे है।

× × ×

एक दिन जब मै स्टेशन पहुचा और स्टेशन मास्टर के हाथ मे मैने 'इडियन ओपीनियन' की डाक दी तो वह बोले, "मिस्टर गाधी से कहना कि केपटाउन से जनरल स्मट्स का तीन सौ शब्दो का तार आया है। डरबन वालो ने यहा खटखटाया पर मुझे लेने की फुरसत नही थी, इसलिए वह शाम की ट्रेन से पाच बजे यहा आ जायगा।"

पाच बजने मे मुश्किल से डेढ घटा बाकी था। पर इतनी देर स्टेशन रुका रहना मैने ठीक नही समझा। चार दिन से जिस तार की बडी आतुरता से प्रतीक्षा की जा रही थी उसके आने का समाचार मैने दौडकर आश्रम मे बापूजी के पास पहुचाया। सारे आश्रम मे विद्युत्वेग से तीन सौ शब्दो के तार की चर्चा फैल गई। और यह पक्का अनुमान हो गया कि तार मे समझौते की बात नही होगी। सत्याग्रह छिडकर ही रहेगा।

सध्या की प्रार्थना से पहले तार बापूजी के हाथ मे आ गया। प्रार्थना मे उन्होने मेरी माताजी से वह गुजराती भजन गाने को कहा, जिसमे भट्ट प्रेमानन्द ने बडी करुणापूर्ण वाणी मे नल राजा के परित्याग के बाद दमयन्ती की विपदा दरसाई है .

"वैदरभी वनमा वलवले अधारी छे रात" वाला वह भजन समाप्त होने पर बापूजी का यह प्रवचन हुआ :

"अब जेल जाने का दिन आ पहुचा है। जेल जाना कोई खेल नही है, दिन-भर पत्थर फोडने पडेगे, सूखी और कडी जमीन को खोदना पडेगा। हाथ बहुत दुखने लगेगे और खाने का महाकष्ट होगा। स्वाद का नाम नही; उबला हुआ दाल-चावल भी स्वच्छ मिले तो गनीमत। उपवास के मौके भी आयगे और उपवास के समय भी काम पूरा करना होगा। बेहोश होकर शरीर के पट जाने तक काम करने से इनकार नही करना होगा। इसलिए इन कष्टो के बारे मे अब भी तुम सब जितना चाहो सोच लो।

जेल मे जाने के बाद दु ख सहन न हो सके, आख से आसू बहने लगे, इससे बेहतर है कि जेल न जाय। इस समय सोलह व्यक्ति यहा से जाने के लिए तैयार है, उनमे से दस ही जायगे, शेष रुक जायगे तो मै जरा भी बुरा नही मानूगा, किन्तु एक बार जेल मे जाने के बाद चाहे कितने ही वर्ष तक यह सघर्ष जारी रहे, कोई जेल जाने से मुकर जाय यह नही चलेगा। रणक्षेत्र मे जाकर पीछे कदम हटाने से न जाना अच्छा है।"

बापूजी के इन वचनो को बडी गम्भीरता से सबने सुना और पाच-दस मिनट तक कोई कुछ बोला नही। तब बापूजी एक-एक से व्यक्तिगत प्रश्न करने लगे। बाहर रहने के लिए कई लालच भी उन्होने बताए और सबको काफी हँसाया, लेकिन सोलह मे से एक भी अपना नाम लौटाने के लिए तैयार नही हुआ। अन्त मे बापूजी ने माताओ को दुबारा चेताते हुए कहा .

"एक बार जेल जाकर छूटने के बाद यदि तुम देखोगे कि तुम्हारे बच्चे निराधार हो गए है तो भी दुबारा जेल जाने से रुकना नही होगा। बच्चो को सभालने वाला ईश्वर बैठा ही है। वह समर्थ है, चाहेगा तो तुम्हारे हाथ मे रहते हुए भी बच्चो को बीमार कर देगा और चाहेगा तो तुम्हारी अनुपस्थिति मे भी उनका हजार गुना भला करेगा। इसलिए बच्चो के मोह मे पडकर तुम कर्त्तव्य से चूक जाओ यह ठीक न होगा। इस बात पर पुन -पुन. सात बार विचार करने के बाद तुम लोग जेल के लिए प्रयाण करना। गलत जोश मे, मत चल देना।"

: ४६ :

सत्याग्रही टोली का प्रयाण

दिन सोमवार का था और तारीख १६ दिसम्बर, सन् १६१३। पूर्व क्षितिज से सूर्य के ऊपर आने के साथ-साथ आज सारे फीनिक्स का दृश्य ही बदल गया था। पाठशाला और खेत का काम बिलकुल बन्द था। सब लोग सत्याग्रहियो की टोली के प्रयाण की तैयारियो मे व्यस्त थे। जो लोग जाने वाले नही थे वे सस्था के काम का बोझ अपने कधो पर लेने को तैयार हो रहे थे।

रसोईघर मे बापूजी रसोई की मेज पर बडी फुर्ती से काम मे जुटे हुए थे। वहा पर पूज्य कस्तूर बा और मेरी माताजी का उपस्थित न होना एक नई बात थी। माताओ के बिना रसोईघर खाली-सा दीखता था। परन्तु महिलाओ के सहयोग के अभाव मे रसोई का काम शिथिल न होने देने के लिए बापूजी कटिबद्ध थे। मगनकाका बापूजी की सहायता कर रहे थे और दोनो ने मिलकर चपातियो का ढेर लगा दिया था। पाव रोटी के लिए बहुत कडा आटा मलना था और वह मजबूत हाथों से करने का काम था। उसे करने मे देवदासकाका अपनी सारी ताकत लगा रहे थे। मुझपर साग बनाने का काम था।

रसोई का काम करते हुए बापूजी उन सभी के प्रश्नो के उत्तर दे रहे थे, जो यात्रा मे अपने साथ ले जाने के सामान के बारे मे पूछने आते थे।

यह बिदाई का दिन था और रणसग्राम मे जूझने वालो के लिए घर का यह अन्तिम भोजन था। भोजन की घटी बजने तक रसोई तैयार हो गई। चपाती, खीर, सब्जी, टमाटर आदि की चटनी, खजूर भिगोकर तैयार किया गया मधुर रस, और कढी-भात आदि चीजे तैयार हो गई थी। सार यह कि किसी त्यौहार या उत्सव के दिन फीनिक्स मे हम लोगों को जो भोजन मिला करता था उससे भी श्रेष्ठ भोजन आज का था। बापूजी ने स्वय बडे प्रेम से और कुछ आग्रह से भी सभी को भोजन परोसा।

शाम के चार बजे रेलगाडी छूटने वाली थी। स्टेशन जाने के लिए अभी तीन घटे का समय था। जेल जाने की बाते तो महीनो से चलती थी पर अब प्रयाण सन्निकट आ गया तो सभी के सामने आगे आने वाली भीषण परिस्थिति का सारा चित्र उपस्थित हो गया। बापूजी ने बीसियो बार दोहराकर जिन कठिनाइयो की सम्भावना बताई थी, वे सब मानो एक साथ फीनिक्स-वासियो के स्मृति-पट पर मंडराने लगीं। उन बातों का निचोड इस प्रकार था :

१. प्रवासी भारतवासियो के खून को चूस लेनेवाले कानून जबतक हटाए न जाय तबतक सत्याग्रह लगातार चालू रखना होगा चाहे कितना ही सकट क्यो न भुगतना पडे।

२. जबतक तीन पौंड का विनाशकारी कर उठा न लिया जाय, जेल जाने का सिलसिला कायम रखा जायगा।

३. उस कर का बोझा जिन गरीब गिरमिटिये भाइयो पर पडता है, वे खुद इस सघर्ष मे सहायता देगे या नहीं, देगे तो कितनी देगे, यह शकास्पद होने पर भी हमें अन्त तक जूझना ही होगा।

४. यदि हमारे सहयोगी और भारतवासी भाई इस सत्याग्रह से ऊब जाय, उन्हे यह सत्याग्रह व्यर्थ मालूम देने लगे और वे सत्याग्रह के युद्ध मे साथ देना छोड दे तो भी आज के दिन प्रयाण करने वाले सोलहो व्यक्तियो को अपनी निन्दा सहन करके भी आगे ही बढना है। दम लेने के लिए भी रुकना नही है।

५. जबतक फीनिक्स का नाम-निशान है, तबतक हार मानकर बैठने का अवसर नही है। यह निश्चय करके ही आज के प्रयाण का श्री-गणेश होना चाहिए।

बापूजी की इन बातों को याद करके प्रत्येक फीनिक्सवासी अपने आपमे डूब-सा गया था।

दो बजने पर सब के बिस्तर आदि एक ठेले पर लादकर स्टेशन भेज दिये गए और सब लोग प्रार्थना के कमरे मे एकत्र हुए। सब के आ जाने पर बापूजी ने अपनी धीर-गम्भीर वाणी मे इस आशय की बाते कही: "देखो, लाज रखना। इस समय जैसे उत्साह मे और आनन्द मे हो उसी प्रकार के उत्साह और आनन्द मे रहना, चाहे कितना ही दु:ख क्यो न सिर पर आ जाय। मृत्यु की घडी आ पहुची तो तब भी हमारा उत्साह तिल-मात्र ढीला नही होना चाहिए। तीन महीने की कैद तो कुछ बात है ही नही। उसमे तो चैन है, आराम है। वहा पर पहनने के लिए वस्त्र, लेटने के लिए बिस्तर और भोजन के लिए अन्न नियमपूर्वक मिलता रहेगा। मजदूरी करनी पडेगी सही, परन्तु वह किसी को अखरनी नही चाहिए। हा, आत्मसिद्धि के लिए वह मुश्किल बात रहेगी परन्तु हम लोग यहा मजदूरी नही करते क्या? वास्तव मे हम तो अधिक मजदूरी करते है। यदि सच्ची नीयत से, जरा-सा भी आलस्य न करके, मजदूरी करोगे, अपनी परिश्रम-शक्ति को तिल-भर भी नही चुराओगे, तो फिर वार्डर को तुम पर पहरा ही क्यो देना पडेगा?

"मुझे पता है कि तुम नौजवान हो और जेल के कच्चे-पक्के वार्डरो का जरा-सा भी कडुआ शब्द सह नही पाओगे। तुम लोगो का खून खौल उठेगा; लेकिन तब भी मै कहूगा कि तुम लोगो को सब सहन करना ही चाहिए। यही हमारी तपश्चर्या है। क्रोध हमे जरा भी नही करना चाहिए। तपस्वी यदि क्रोध करे तो उसका तपोबल वृथा हो जाता है। हमे तो सपूर्ण रूप से निर्दोष बने रहना है। यदि तुम लोग अपनी निर्दोषिता बनाए रखोगे तो जेल के सार्जेंट-वार्डर के अनुचित शब्द तुमको नही चुभेगे, आसानी से उनकी बाते अनसुनी कर पाओगे। भोजन के लिए या अन्य लालच के कारण किसी को घूस देने या कोई चीज चुराने के मोह मे भूलकर भी नहीं

पडोगे, ऐसी मै आशा करता हू। ऐसी टुच्ची बातो में जी छोटा करने वाले पर यह भरोसा कैसे किया जा सकता है कि जब फासी पर भूलने की बात आयगी तब वह कमजोर नही पड जायगा।

"नौजवान बालको के लिए मै अपनी बात कह चुका। जो इनमे बडे है उनके लिए तो कहने की कौनसी बात हो सकती है। सत्य ही हमारा राजमार्ग है। उस राजमार्ग से हम कही लुढक न जाय, यह सम्हाले। यह सम्हालने मे दु ख-सुख की आधिया उठेगी और साफ होती रहेगी। जिस प्रकार सुख सदा के लिए नही टिकता, उसी प्रकार दु ख भी नित्य का नही होता। बात यह है कि दु ख से व्याकुल हो उठनेवाले के लिए दु ख के दिन बडे लम्बे बन जाते है। यदि अपने मन को बाकायदा लगाम मे रखे और सत्य के राजमार्ग से चूके नही तो हमारी जीत निश्चय ही है। बहुत दूर तक निगाह दौडाकर मायूस होने से बेहतर है कि दूर तक निगाह दौडावे ही नही। हमारा कदम सच्चा और अडिग होगा तो चाहे कितना ही लम्बा रास्ता क्यो न हो, अवश्य पार हो जायगा।

"दूसरी बात यह है कि दु खो से दब जाने पर, जेल मे न्याय प्राप्त करने के लिए पाच-पाच सात-सात दिन तक जब अनशन करना पडेगा और जब मन डावाडोल होगे तब तुम्हारे दिल मे यह बात उठेगी कि हम औरों के लिए क्यो दु ख भोगते रहे! जेल से बाहर हमे किस बात की कमी है, जो हम इस झझट को मोल लेते फिरे? तीन पौड का कर हमारे सिर पर कहा है? हमे कहा ट्रासवाल मे घुसना है? चैन से नेटाल मे रह रहे थे, वहा से यहा कहा आ फसे? इस प्रकार की अनेक तरगे उठेगी। परन्तु ऐसे विचार क्षण-भर के लिए भी शोभा नही देगे।

"हम लोग नरसिह मेहता का जो पद अनेक बार गाते है उसमे सर्वप्रथम बात यही तो बताई गई है कि 'परदु खे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे।' अर्थात् दूसरे के दु ख मे उसकी सहायता करने पर भी जो अपने मन मे अभिमान न लाये वही वैष्णवजन है। हममे कई ऐसे है जिनके गले मे तुलसी की माला है। हम लोग वैष्णव जन्मे हुए है। हमारा धर्म है कि औरो के दु ख मे हम दु खी हो। औरो के दु ख से दु खी होने के अतिरिक्त हम और कुछ भी नही कर सकते। गैरो का क्या अपने सगे भाई का दुःख भी दूर करना हमारे हाथ की बात नही होती। दु ख तो ईश्वर ही दूर करता है। जो बात ईश्वर करता है, जिसमे हम तिलमात्र भी कमी बेशी नही कर पाते उसके बारे मे हम अभिमान से क्यो फूले? भरतजी जाकर नदीग्राम मे क्यो रहे थे? अयोध्या मे उनके लिए क्या कष्ट था? वहा सब प्रकार से आराम ही तो था। फिर भी जब राम वनवास के दु खो को भोग रहे हो

४. यदि हमारे सहयोगी और भारतवासी भाई इस सत्याग्रह से ऊब जाय, उन्हे यह सत्याग्रह व्यर्थ मालूम देने लगे और वे सत्याग्रह के युद्ध मे साथ देना छोड दे तो भी आज के दिन प्रयाण करने वाले सोलहो व्यक्तियो को अपनी निन्दा सहन करके भी आगे ही बढना है। दम लेने के लिए भी रुकना नही है।

५. जबतक फीनिक्स का नाम-निशान है, तबतक हार मानकर बैठने का अवसर नही है। यह निश्चय करके ही आज के प्रयाण का श्री-गणेश होना चाहिए।

बापूजी की इन बातो को याद करके प्रत्येक फीनिक्सवासी अपने आपमे डूब-सा गया था।

दो बजने पर सब के बिस्तर आदि एक ठेले पर लादकर स्टेशन भेज दिये गए और सब लोग प्रार्थना के कमरे मे एकत्र हुए। सब के आ जाने पर बापूजी ने अपनी धीर-गम्भीर वाणी मे इस आशय की बाते कही: "देखो, लाज रखना। इस समय जैसे उत्साह मे और आनन्द मे हो उसी प्रकार के उत्साह और आनन्द मे रहना, चाहे कितना ही दु ख क्यो न सिर पर आ जाय। मृत्यु की घडी आ पहुची तो तब भी हमारा उत्साह तिल-मात्र ढीला नही होना चाहिए। तीन महीने की कैद तो कुछ बात है ही नही। उसमे तो चैन है, आराम है। वहा पर पहनने के लिए वस्त्र, लेटने के लिए बिस्तर और भोजन के लिए अन्न नियमपूर्वक मिलता रहेगा। मजदूरी करनी पडेगी सही, परन्तु वह किसी को अखरनी नही चाहिए। हा, आत्मसिद्धि के लिए वह मुश्किल बात रहेगी परन्तु हम लोग यहा मजदूरी नही करते क्या? वास्तव मे हम तो अधिक मजदूरी करते है। यदि सच्ची नीयत से, जरा-सा भी आलस्य न करके, मजदूरी करोगे, अपनी परिश्रम-शक्ति को तिल-भर भी नही चुराओगे, तो फिर वार्डर को तुम पर पहरा ही क्यो देना पडेगा?

"मुझे पता है कि तुम नौजवान हो और जेल के कच्चे-पक्के वार्डरो का जरा-सा भी कडआ शब्द सह नही पाओगे। तुम लोगो का खून खौल उठेगा; लेकिन तब भी मै कहूगा कि तुम लोगो को सब सहन करना ही चाहिए। यही हमारी तपश्चर्या है। क्रोध हमे जरा भी नही करना चाहिए। तपस्वी यदि क्रोध करे तो उसका तपोबल वृथा हो जाता ह। हमे तो सपूर्ण रूप से निर्दोष बने रहना है। यदि तुम लोग अपनी निर्दोषिता बनाए रखोगे तो जेल के सार्जेंट-वार्डर के अनुचित शब्द तुमको नही चुभेगे, आसानी से उनकी बाते अनसुनी कर पाओगे। भोजन के लिए या अन्य लालच के कारण किसी को घूस देने या कोई चीज चुराने के मोह मे भूलकर भी नही

पडोगे, ऐसी मै आशा करता हू। ऐसी टुच्ची बातो में जी छोटा करने वाले पर यह भरोसा कैसे किया जा सकता है कि जब फासी पर झूलने की बात आयगी तब वह कमजोर नही पड जायगा।

"नौजवान बालको के लिए मै अपनी बात कह चुका। जो इनमे बडे है उनके लिए तो कहने की कौनसी बात हो सकती है। सत्य ही हमारा राजमार्ग है। उस राजमार्ग से हम कही लुढक न जाय, यह सम्हाले। यह सम्हालने मे दु ख-सुख की आधिया उठेगी और साफ होती रहेगी। जिस प्रकार सुख सदा के लिए नही टिकता, उसी प्रकार दु ख भी नित्य का नही होता। बात यह है कि दु ख से व्याकुल हो उठनेवाले के लिए दु ख के दिन बडे लबे बन जाते है। यदि अपने मन को बाकायदा लगाम मे रखे और सत्य के राजमार्ग से चूके नही तो हमारी जीत निश्चय ही है। बहुत दूर तक निगाह दौडाकर मायूस होने से बेहतर है कि दूर तक निगाह दौडावे ही नही। हमारा कदम सच्चा और अडिग होगा तो चाहे कितना ही लम्बा रास्ता क्यो न हो, अवश्य पार हो जायगा।

"दूसरी बात यह है कि दु खो से दब जाने पर, जेल मे न्याय प्राप्त करने के लिए पाच-पाच सात-सात दिन तक जब अनशन करना पडेगा और जब मन डावाडोल होगे तब तुम्हारे दिल मे यह बात उठेगी कि हम औरो के लिए क्यो दु ख भोगते रहे! जेल से बाहर हमे किस बात की कमी है, जो हम इस झझट को मोल लेते फिरे? तीन पौंड का कर हमारे सिर पर कहा है? हमे कहा ट्रासवाल मे घुसना है? चैन से नेटाल मे रह रहे थे, वहा से यहा कहा आ फसे? इस प्रकार की अनेक तरगे उठेगी। परन्तु ऐसे विचार क्षण-भर के लिए भी शोभा नही देगे।

"हम लोग नरसिंह मेहता का जो पद अनेक बार गाते है उसमे सर्वप्रथम बात यही तो बताई गई है कि 'परदु खे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे।' अर्थात् दूसरे के दु ख मे उसकी सहायता करने पर भी जो अपने मन मे अभिमान न लाये वही वैष्णवजन है। हममे कई ऐसे है जिनके गले मे तुलसी की माला है। हम लोग वैष्णव जन्मे हुए है। हमारा धर्म है कि औरो के दु:ख मे हम दु खी हो। औरो के दु ख से दु खी होने के अतिरिक्त हम और कुछ भी नही कर सकते। गैरो का क्या अपने सगे भाई का दुःख भी दूर करना हमारे हाथ की बात नही होती। दु ख तो ईश्वर ही दूर करता है। जो बात ईश्वर करता है, जिसमे हम तिलमात्र भी कमी बेशी नही कर पाते उसके बारे मे हम अभिमान से क्यो फूले? भरतजी जाकर नदीग्राम मे क्यो रहे थे? अयोध्या मे उनके लिए क्या कष्ट था? वहा सब प्रकार से आराम ही तो था। फिर भी जब राम वनवास के दु खो को भोग रहे हो

तब भरत से किस प्रकार सुख की सेज पर सोया जा सकता था ? हमारे मन मे जरा-सी भी शका पैदा हो, दु ख से भागने की तरगे उठ खडी हो, तो ये सारी बाते जो नित्यप्रति हम लोग रामायण मे पढते रहे हैं, और भजनो मे अलापते रहे है उनपर गौर करना चाहिए। उन वचनो मे क्या उद्देश्य छिपा है यह खोजते रहना चाहिए। ऐसा करने पर राम हमारी सहायता के लिए दौड आयगा और हमारे हृदय मे बस जायगा। अन्तर मे अत्यधिक बल प्राप्त होगा और उसी शक्ति के सहारे गैरो के दु खो के लिए प्रसन्न-वदन से मरने मे भी तुम अपने कदम को पीछे नही हटाओगे।"

इसके बाद बापूजी ने पूज्य बा और मेरी माताजी आदि को सबोधित करते हुए कहा :

"तुम बालको को छोडकर जा रही हो, उनकी सभाल ईश्वर करेगा। तुम उनकी कुछ भी चिन्ता न करना। वहा जेल मे बैठे-बैठे रामनाम का जाप करते रहना और प्रसन्न रहकर अपने कर्त्तव्य का पालन करना बस होगा। बच्चे यहा पर खुश रहेगे। बस अब पहले 'वैष्णव जन' और बाद मे 'सुख दु.ख मनमा न आणीए' वाला भजन हम सब मिलकर गा ले और फिर चले।"

मेरी माताजी ने भजन का प्रारम्भ किया। उनका अनुसरण पच्चीस-तीस लोगो ने किया, परंतु किसी की कठ-ध्वनि खुलकर नही निकल रही थी। सब गद्गद हो उठे थे। प्रार्थना-खड का सारा वातावरण करुण-गभीर कपन से भर गया। दोनो भजन समाप्त होने पर बापूजी ने अतिम आदेश दिया :

"इन दोनों भजनों को अपने पाथेय के रूप में अपने साथ रख लो, इनका स्मरण करते रहना और इनके अर्थ को समझकर उसके अनुसार चलना।"

कुछ क्षणो के लिए सर्वत्र शाति फैल गई। कोई एक-दूसरे की ओर आख उठाकर देखता तक नही था, मानो सभी व्यक्ति अपने अतस्तल की गहराई मे गोता लगा रहे थे। कई वीरो की —योद्धाओ की—आखो मे आसू दिखाई दिये। मुझ-जैसा बालक ऐसे समय माताओ की मडली की ओर देखे यह स्वाभाविक था। मैने देखा कि पूज्य कस्तूर बा और अन्य माताए बडी कठिनाई से अपने आसुओ को रोक रही थी।

थोडी देर मे सब उठ खडे हुए और चद मिनटों के बाद सब 'सत्याग्रही योद्धा' और फीनिक्स मे रुकने वाले व्यक्ति भी स्टेशन के लिए रवाना

हो गए। रुकने वालो मे उल्लेखनीय दो ही व्यक्ति थे—बापूजी और मगन-काका। सत्याग्रहियो की पहली टोली मे सोलह वीरो के नाम ये थे :

महिलाए—१. पूज्य कस्तूर बा, २ श्री काशीवहन गाधी (लेखक की माता), ३. श्री सतोक बहन गाधी (लेखक की काकी), ४. श्री जयकुवर बहन।

पुरुष—१. श्री पारसी रुस्तमजी सेठ (डरवन शहर के प्रसिद्ध व्यापारी और बापूजी के घनिष्ठ मित्र व सहयोगी), २. श्री छगनलाल खुशहालचद गाधी (लेखक के पिता), ३. श्री रावजी भाई मणिभाई पटेल, ४. श्री मगनभाई हरिभाई पटेल, ५. श्री सोलोमन, ६. श्री गोविद स्वामी राजू।

कुमार—१ श्री शिवपूजनसहाय बद्री, २. श्री राजू गोविन्दु।

अठारह वर्ष से कम आयु के किशोर—१. श्री रामदास गाधी (बापूजी के तृतीय पुत्र), २. श्री रेवाशकर रतनशी सोढा, ३. श्री कुप्पूस्वामी मुदलियार, ४. श्री गोकलदास हसराज।

सोलह वीरो की इस टोली के बाद फीनिक्स से सत्याग्रह के लिए और भी एक-दो टोलियो के जाने की योजना थी। परतु उस दिन अनुमान यह था कि फीनिक्स मे ही नही, दक्षिण अफ्रीका-भर मे सत्याग्रहियो का यही जत्था सबसे बडा होगा और सत्याग्रह के तीसरी बार के सघर्ष का मुख्य उत्तरदायित्व इन्ही वीरो के सिर रहेगा। हममे से किसी को कल्पना नही थी कि इस प्रयाण द्वारा किसी विशाल और भव्य युद्ध का सूत्रपात हो रहा है।

: ५० :

प्रथम टोली की गिरफ्तारी

दक्षिण अफ्रीका मे 'कानूनभग' शब्द के पहले 'सविनय' विशेषण जोडने की प्रथा नही चली थी, फिर भी बापूजी ने जोर दिया था कि सत्याग्रहियो की ओर से कोई ऐसा आचरण न हो, जिससे नैतिक दृष्टि से वहा की गोरी जनता के दिल को ठेस लगे। वह चाहते थे कि सत्याग्रहियो की सज्जनता व शालीनता तनिक भी कम न हो और फिर भी विरोधभावना का प्रदर्शन इतना जोरदार हो कि सरकार चेन न ले सके।

दूसरी ओर, स्मट्स सरकार नही चाहती थी कि सत्याग्रह के मामले को लेकर भारत मे, इग्लैड मे और ससार मे शोर मचे। स्मट्स-सरकार स्वय महसूस करती थी कि भारतीयो के साथ उसका व्यवहार न्यायोचित नही है, लेकिन उसके मन मे आशा बधी हुई थी कि चतुराई से वह अपनी मनमानी कर सकेगी।

सत्याग्रहियो के उत्साह को कुचलने के लिए स्मट्स-सरकार ने एक नई नीति का अवलम्बन किया। बिना विशेष अनुमति-पत्र के कोई भारतीय नेटाल से ट्रान्सवाल मे प्रवेश करे तो वह कानून का भग माना जाता था और उस अपराध के लिए तीन से छ. महीने तक का कारावास दण्ड दिया जाता था। अब उसने बापूजी, रुस्तमजी सेठ आदि नेता और धनीमानी व्यक्तियो को इस अपराध पर गिरफ्तार न करने की नीति अपनाई, ताकि बडे लोगो को जेल से बाहर रखकर दूसरे लोगो का उत्साह ठडा किया जा सके। इस हालत मे फीनिक्स से चले हुए सत्याग्रहियो के सामने प्रश्न था कि जब वे नेटाल से ट्रान्सवाल मे प्रवेश करेगे तब यदि सरकार पकडेगी ही नही तो फिर सत्याग्रह आगे कैसे चलेगा ?

बापूजी इस प्रथम मोर्चे को इतना पवित्र और सुदृढ बनाना चाहते थे कि उन्होने कार्यारम्भ से पूर्व ही अखबारो मे उसकी प्रसिद्धि नही होने दी। फीनिक्सवासियो के अतिरिक्त डरबन और जोहान्सबर्ग के कुछ मजे हुए सत्याग्रहियो को ही उन्होने सत्याग्रह के लिए तत्पर रहने की सूचना दी थी। सत्याग्रह का श्रीगणेश पुन कब और कैसे होगा इसका पता फीनिक्स से बाहर मुश्किल से दो-चार उन व्यक्तियो को दिया गया था जो आश्रम-जीवन से अत्यधिकले-मिले हुए थे।

ट्रान्सवाल की सरहद पर सरकारी अफसर फीनिक्स के इन सत्याग्रहियो के साथ विशेष रूप से पेश न आये, साधारण भारतीय के समान ही उन सबसे व्यवहार करे इस हेतु से बापूजी ने फीनिक्सवासियो को ट्रान्सवाल मे प्रवेश करते समय अपना पूरा परिचय न देने की सूचना दी थी। यहा तक कि अपना प्रचलित नाम बदल देने के लिए भी कहा था। इसके अनुसार पूज्य बा को अपना नाम 'श्रीमती गाधी' न बताकर 'कस्तूर बहन', 'पारसी रुस्तमजी' को केवल 'रुस्तम' और मेरे पिता को 'सी० के० गाधी' के बदले केवल 'छगनलाल' बताना था। रामदासकाका को पिता का नाम न बताने तथा 'गाधी' शब्द का प्रयोग न करने और मेरी माता व काकी को भी केवल अपना नाम देकर मौन रहने तथा 'गाधी' के साथ अपना रिश्ता प्रकट न करने का निर्देश दिया गया था। किशोर सत्याग्रहियो मे रेवाशकर सोढा नाम का जो लडका इस टोली मे जा रहा था, उसको भी

बापूजी ने आदेश दिया कि वह 'सोढा' नाम का प्रयोग न करे क्योकि उसके पिता श्रीरतनसी सोढा ट्रान्सवाल के ख्यातनामा सत्याग्रही थे और उसकी माता ने भी देश-सेवा के काम मे प्रसिद्धि पाई थी। सार यह कि गिरफ्तारी और जेल की सजा हो जाने तक फीनिक्सवासियो को अज्ञात रहने की पूरी-पूरी कोशिश करनी थी।

फीनिक्स आश्रम से जब मडली स्टेशन के लिए चली और रास्ते मे बातचीत मे किसी ने कहा कि "इस तरह अपना नाम छिपाना असत्य नही कहलाएगा ? सत्याग्रही को इस प्रकार झूठ बोलना चाहिए ? और बापूजी स्वय इस प्रकार झूठ बोलने के लिए किस प्रकार कह रहे है ?"

जब बापूजी के कानो तक यह बात पहुची तो उन्होने समझाया

"वह झूठ नही है। झूठ का मतलब है. 'जो नही है वह कहना।' जो है सो न कहना कोई झूठ नही है। यदि मै अमुक बात को जानता हू या बताना नही चाहता, तो मै हरगिज नही बताऊगा। चाहे कोई मुझे डराए, धमकाए, या मार डाले। मै यह नही कहूगा कि मै 'जानता नही हू', परन्तु यह कहूगा कि 'मै जानता तो हू, पर बताऊगा नही। अगर वह भी कहना मै उचित नही समझूगा तो कह दूगा 'मै यह बताने को तैयार नही कि मै जानता हू या नही जानता।'

"अत. यदि हम अपना आधा ही नाम बताए तो उसमे जरा भी झूठ नही है।"

स्टेशन पहुचने मे थोडा-सा रास्ता बाकी रहा तब पूज्य कस्तूर बा और मेरी मा ने देवदासकाका को और मुझे अपने पास बुलाकर बडी वत्सलता से सीख दी। उन्होने हमे अपने से छोटे बच्चो को माताओ के बिना दु खी न होने देने के लिए हमारा कर्त्तव्य समझाया। देवदासकाका से मेरी माता ने विशेष रूप से कहा "प्रभु को अपना छोटा भाई बनाकर रखना और जब-जब उसकी भूल हो, उसे नसीहत देना।" माताओ की सीख हम दोनो ने चुपचाप अपने कानो मे भर ली और फिर दौडकर निकल गए।

कोई घटे-डेढ-घटे मे सब स्टेशन पहुचे। बापूजी सबसे बाद पहुचे। स्टेशन पर पहुचकर वह पूज्य बा के साथ बातचीत करने लगे। पद्रह-बीस मिनट के बाद रेलगाडी आ गई। उसकी आवाज के साथ मेरे दिल मे हलचल-सी मच गई। अपनी टोली से अलग होकर जल्दी से मै अपनी माताजी और पिताजी के पास पहुचा; दोनों को नजर-भर के देखने लगा और पल-भर के लिए मन-ही-मन काप उठा। बिजली की तरह मन मे विचार दौड गया कि "माता-पिता दोनों ही जेल जा रहे है, दुबारा शायद

इनसे मिलना भी न हो। क्या मै अकेला हो जाऊगा ? ऐसी हालत में छोटे भाई कृष्णदास का क्या होगा ?" पर यह विचार क्षणिक ही रहा। ट्रेन रुकने वाली नही थी। चटपट मैने अपने माता-पिता के पैर छुए, दूसरे बडो के भी पैर छुए और जाकर बापूजी की बगल मे खडा हो गया।

दक्षिण अफ्रीका की रेलगाडी मे गोरे लोगो के लिए अलग और काले लोगो के लिए तीसरे दर्जे मे भी अलग डिब्बे रहते थे। काले लोगो के डिब्बो मे बहुत भीड थी। फिर भी सोलह सत्याग्रहियो मे से जितने सवार हो सकते थे उन्ही डिब्बो मे सवार हो गए। प्लेटफार्म पर बहुत-सा सामान पडा रहा और तीन-चार लोगो को जगह मिली ही नही। तब रेवाशकर, सोलोमन और कुप्पूस्वामी ने मिलकर साहस के साथ गोरो के लिए सुरक्षित रखे गए एक डिब्बे को खोल लिया और वे उसमे सवार हो गए।

यह डिब्बा इजन से सटा हुआ था, इस कारण ड्राइवर का ध्यान एकदम उस ओर गया और उसके पुकारने पर गार्ड भी वहा आ पहुचा। दोनो ने मिलकर हमारी टोली के लोगो को डाटना-डपटना शुरू किया। उन्होने रेवाशकर आदि को हाथ पकडकर डिब्बे से नीचे उतारने की कोशिश की, परन्तु फीनिक्स के विद्यार्थी कमजोर शरीर के नही थे। वे डटे रहे। सामान बाहर फेकने का और जो सामान नीचे से ऊपर दिया जा रहा था उसे रोकने का भी उन्होने प्रयत्न किया। गरजकर उन्होने कहा, "देखते नही, यह डिब्बा तुम्हारे लिए नही है ?" ड्राइवर और गार्ड को क्या पता था कि ये साधारण काले कुली लोग नही है, मौत के साथ जूझने के लिए प्रयाण करने वाले सत्याग्रही है। हमारे वीरो ने बहुत शाति से उस डिब्बे मे जमकर स्थान ले लिया और अन्दर से दरवाजा बन्द करके गार्ड से कह दिया कि "और कही जगह नही है, इसलिए हम यहा पर सवार हुए है, अब तुम चाहे कुछ भी करो, हम उतरनेवाले नही है।" देर तक गाडी रोकी नही जा सकती थी। इसलिए ड्राइवर व गार्ड ने गाडी छोड दी, पर रेवाशकर आदि से कहा, "अगले स्टेशन पर उन्हे देख लेगे।"

बा आदि के प्रस्थान के समाचार दो दिन बाद बापूजी ने मणिलाल-काका को पत्र द्वारा जोहान्सबर्ग लिख भेजे। मणिलालकाका भी जेल जाने के लिए अधीर हो रहे थे। योजना यह थी कि फीनिक्स का पहला जत्था गिरफ्तार हो उसके बाद तुरन्त ही जोहान्सबर्ग से एक दूसरा जत्था ट्रान्सवाल की सरहद पर सत्याग्रह के लिए पहुच जाय। पूज्य बा को विदा देने के बाद बापूजी ने मणिलालकाका के नाम जो पत्र भेजे थे, उनमे से दो पत्रो के कुछ अश इस प्रकार है :

बुधवार, १८ सितम्बर, १९१३

चि० मणिलाल,

....बा आदि सब सोमवार के दिन बडी हिम्मत के साथ चढे है।....

तमोगुण के अतिरिक्त रजोगुण और सत्वगुण। तमोगुण से मनुष्य अध अज्ञान और अहदी रहता है। रजोगुण से मनुष्य अविचारी और दु सा-हसी तथा सासारिक कार्यो मे उत्साही रहता है। यूरोप की प्रजा मे रजोगुण की प्रधानता है। हम लोगो की भी बहुत-सी प्रवृत्तिया रजोगुण-वाली है। सत्वगुण वाले शात, धीर और विचारवान होते है। वे दुनिया की झझटो मे पडते नही है, और हर समय अपने मन को ईश्वर मे लगाये रहते है। इस सात्विक वृत्ति को Soothfastness कहा गया, यह ठीक ही है। 'सूदफास्ट' का मतलब है शात। ness लगने पर वह सज्ञा बन गया याने शाति। शात वृत्ति मे ही आत्मदर्शन हो सकता है। और जिस वृत्ति के द्वारा आत्मदर्शन होने की सभावना हो, वह है सात्विक वृत्ति। परमात्मा त्रिगुणातीत के रूप मे तो कुछ भी प्रवृत्ति—बुरी या भली—करता नही है। किन्तु माया चैतन्यरूप से रहती है। उसने तीनो गुणो को अतीत कर रखा है। परन्तु जब अर्जुन को ज्ञान देने की प्रवृत्ति का काम करे तब वह सात्विक वृत्ति है और प्रवृत्तिमात्र झझट है। इसलिए उसे सत्वगुण की झझटवाला स्वरूप कहा गया।

गुरुवार, १९ सितम्बर, १९१३

चि० मणिलाल,

. बा आदि वालक्रस्ट मे गिरफ्तार हो गए है। कल वे लोग अदालत मे पेश होने वाले थे। परन्तु क्या हुआ, मै इस बात के तार की प्रतीक्षा मे हू। तुमको वह समाचार देना था पर आया नही है।

तुम ज्यो निराश होओगे, मै अधिक दु खी होऊगा। तुमको जो वचन दिया है उससे मै हटा नही हू। मैने महत्व का परिवर्तन नही किया है। मै आत्मा को प्रसन्न करके दु खी नही होऊगा, व्रतो से मै दु खी नही होता, सुखी होता हू। इसमे तुम दु ख मानो यह अज्ञान है। मुझे दु ख तो तुम्हारे दुर्वर्तन से ही होगा। मेरे सुख-दु ख का आधार तुम्हारे आचरण पर ही है मै क्या करता हू इसको सोचते रहने से तुम मेरा दु.ख नही हरोगे। तुमको क्या करना चाहिए इसका विचार करने से तुम मुझे सुखी बना सकोगे।

: ५१ :

जन्मभूमि-व्रत

दुखियानो विसामणो रे, माडी तारी झूंपडी,
रण वगडानो छांयो रे, माडी तारी झूंपडी।
नन्दनवन शी वहाली रे, अमने तारी झूंपडी,
जन्मभूमि-व्रत पाळी रे, शाणगारीशुं झूंपडी।

(हे मा, तेरी झोपडी दुखीजनों को आसरा देने वाली है; ऊजड प्रदेश मे तेरी झोपडी छाया देने वाली है। हम लोगो को तेरी यह झोपडी नन्दन-वन-जैसी प्यारी लगती है। हम जन्मभूमि-व्रत का पालन करके तेरी झोपडी की शोभा बढायेगे।)

'वन्देमातरम्' गीत हम लोग फीनिक्स मे किसी खास मौके पर गाते थे। हरेक सभा मे वह अवश्य गाया जाय ऐसा आग्रह तब नही था। प्रतिदिन की प्रार्थना के भजन प्राय. धार्मिक ही हुआ करते थे। एक-दो गीत ऐसे थे जिनके द्वारा अपनी मातृभूमि के प्रति हमारे दिलो मे ममता और सेवा के भाव जगते थे। फीनिक्स मे गुजरातियो की सख्या अधिक थी इसलिए स्वभावत' गुजराती गीत अधिक रहते थे। ऐसे गीतो मे 'दुखियानो विसामणो' हम लोगो को अनेक वार गद्गद कर देता था। इसका रचयिता एक होनहार युवक था जो अपने देश-सेवा के अरमान अधूरे छोडकर भरी जवानी मे ही चल बसा था। बापूजी कहा करते थे कि उसकी इच्छा पूरी करने का कर्त्तव्य अब उसके रचे गीत को गाने वालो पर है।

सत्याग्रह का श्रीगणेश घर के आगन से यानी फीनिक्स स्टेशन से ही हुआ, यह देखकर हम लोग खुश होते हुए घर लौटे। शाम की प्रार्थना के समय बापूजी के चारो ओर हम सब बालक बैठ गए। प्रार्थना पूरी होने पर बापूजी की सूचना से मगनकाका, देवदासकाका और मैने मिलकर ऊपर वाला भजन गया। जैसे-जैसे गाना आगे बढता गया, हमारे मन के भाव अधिक आर्द्र होते गए। भजन की समाप्ति पर बापूजी ने दीर्घ नि.श्वास छोडा और धीरे से बोले :

"नन्दनवन शी वहाली रे,
अमने तारी झूंपडी।
जन्मभूमि-व्रत पाळी रे,
शाणगारीशुं झूंपडी॥"

और फिर उन्होंने देवदासकाका से और मुझसे इन पंक्तियों का शब्दशः अर्थ करवाया। अन्त मे पूछा, "वोलो, जन्मभूमि-व्रत का अर्थ जानते हो न ?"

हम कुछ नही वोल सके, तव वापूजी का प्रवचन शुरू हुआ :

"उस व्रत के पालन करने का मतलव है, अपने दु खी भाई-वहनों की सेवा करना—जो दु.खी हो, उनके लिए कुछ-न-कुछ दु ख हमें खुद उठाना। क्यो यह ठीक समझ में आती है न ?"

हमने हा भरी, तो वापूजी ने कहा :

"तव कहो, जो जेल गये हैं उनके लिए तुम क्या करोगे ? मा-वाप, भाई-वहन जेल मे जाय तव हम मौज उडाये यह उचित है क्या ? उन लोगो को जेल मे जव उवला हुआ और कूडे का-सा खाना मिले, घी न मिले, दूध न मिले, तव हम लोग यहा पर मिष्टान्न तो खा ही नही सकते हैं न ? मैं तो तुम सव से इतना चाहता हू कि तुम सभी वालक अलोना शुरू करो। हमारे वगीचो मे ढेर-के-ढेर फल होते हैं। इसके अलावा हम रोटी ले, यह वहुत काफी समझना चाहिए। जेल मे तो उन लोगो को इतना भी नसीव न होगा। वोलो, मेरी वात मजूर है ?"

वापूजी की यह वडी अजीव वात थी कि अलोने का व्रत वह चार-पाच वर्ष की आयु के वच्चो से भी लिवाना चाहते थे और फिर उसे कोरे अनुशासन के रूप मे वच्चो पर लादना नही चाहते थे, उन्हे समझा-वुझाकर और उनका हार्दिक सकल्प पक्का कराकर सामूहिक रूप से अमल मे लाना चाहते थे। इसलिए उन्होने केशू, कृष्ण, नवीन, शाति, छोटम आदि प्रत्येक वच्चे से व्यक्तिगत रूप से चर्चा की। तरह-तरह के फलो, मुरव्वो आदि का नाम ले-लेकर वच्चो को ललचाया और जव देखा कि वच्चे नमक छोडने मे सकोच करते है तव कहा कि "मिर्च-मसालेदार चटपटा शाक, कढी, खिचडी आदि नमकीन भोजन हर रविवार को मिल जाया करेगा और सप्ताह मे छ. दिन ही अलोना रहेगा। फिर तो शुरू करोगे अलोना ?"

रविवार को अपवाद मिल जाने पर सभी वच्चे उत्साह मे आ गए। प्राय. आध घटे तक उस दिन वापूजी ने वच्चो के साथ मनोविनोद किया और हसी-खुशी का ऐसा प्रवाह वहाया कि प्रत्येक वालक ने अलोने आहार की उनकी वात कवूल कर ली। छोटे वच्चो के वाद वापूजी ने मुझसे और देवदासकाका से भी अलोने के लिए पूछा। हम तो तैयार थे ही। फौरन वह नियम हम दोनो ने स्वीकार कर लिया। परतु अलोने की वात निश्चित होते ही वापूजी ने हमारे सामने एक नया और कठिन प्रस्ताव रख दिया :

"क्यो देवा (देवदास) ! कल सुबह से चार बजे उठा दू न ? अब हमे कठोर जीवन बिताने का आरभ कर देना चाहिए।"

इस वाक्य को सुनते ही हम डर गए। चार बजे उठने के नियम का पालन करना किसी भी तरह हमारे बूते नही था। चार बजे उठने के बदले चाहे कितना ही कठिन काम बापूजी बताए, हम करने को तैयार थे। देवदासकाका ने बात टाल देने की बडी कोशिश की, परतु बापूजी मानने वाले कहा थे ? जब देवदासकाका ने हा भरने मे विलब किया तो बापूजी ने मुझ पर जोर डाला।

मेरे लिए चार बजे उठना कठिन नही था। परतु रोज सवेरे नियम-पूर्वक चार बजे बिस्तर छोड देना मुझे मुश्किल मालूम दिया। इसलिए मैने उत्तर दिया . "उठूगा तो सही, परतु नियम-पूर्वक नही उठ पाऊगा।"

बापूजी ने देखा कि हमारे मन की कायरता दूर हो ही नही रही है, तो उन्होने दुबारा हमे समझाना शुरू किया "अगर तुम लोग चार बजे उठना भी स्वीकार नही कर पाते तो फिर सबके साथ जेल जाने के लिए किस तरह तैयार हो गए थे ? जेल मे चार बजे उठने के मुकाबले कही अधिक कठिनाइया उठानी पडती।"

इस अन्तिम वाक्य ने हमे मजबूर कर दिया। चार बजे उठने की बात स्वीकार किये बिना कोई चारा ही हमारे लिए नही रहा, क्योकि अपने बडे सहपाठियो के साथ जेल जाने के लिए हम भी तत्पर हो गए थे। तेरह वर्ष से भी छोटी आयु के कारण ही देवदासकाका को और मुझको जेल-यात्रा का लाभ नही दिया गया था।

दूसरे दिन जब बापूजी ने मुझे चार बजे उठाया तब मै उठ तो गया परन्तु उठने के बाद घटो तक आखो मे नीद भरी रही। शरीर की सुस्ती के साथ मन भी उदास हो गया था। माता-पिता और सहपाठियो को विदा करके जब हम घर लौटे थे तब हमारा मन उत्साह मे था, सत्याग्रह का रग अच्छा जमेगा यह धुन हम बालको के सिर पर भी सवार थी। परन्तु दूसरे दिन जाने कहा से मन मे उदासी छा गई। फीनिक्स मे रीतापन महसूस होने लगा। माता-पिता की अनुपस्थिति अखरने लगी। पाठशाला के निकट से गुजरने पर अपने जेलयात्री सहपाठियो की उछल-कूद और चहल-पहल नजर के सामने तादृश हो जाती थी और पाठ रटने की कट-ध्वनि मानो सतत सुनाई पडती थी।

फीनिक्स मे आबादी थी ही कितनी ? सोलह व्यक्तियो ने विदा ली, तो मानो तीन-चौथाई से भी ज्यादा फीनिक्स खाली हो गया। फीनिक्स

भर मे अब पाच-सात ही बडे रह गए थे, जो सब छापाखाने मे दिन-भर काम के लिए जाते थे। तब हमारे निवासस्थान के प्राय चौथाई मील के घेरे मे चारो ओर इतना सूना रहने लगा कि छोटी-सी चिडिया की आहट भी चौंका देने वाली लगती थी।

पहला काम बापूजी ने यह किया कि दूसरे सब घरो पर ताला डालकर सभी बालको को अपने घर मे इकट्ठा रखा। फिर हम सबको इस तरह काम मे लगा दिया कि माता-पिता आदि के वियोग की याद करने का हमे अवकाश ही न मिले। कुछ ही दिन बाद बापूजी को स्वय भी फीनिक्स छोडकर जाना था। उनके पीछे भी हम लोग खिन्न न रहे और उत्साहपूर्वक अपने दिन बितायें इसके लिए उन्होने बच्चो को परस्परावलबन सिखाने पर जोर दिया।

छापाखाने के काम पर तो बापूजी ने दो-तीन वैतनिक कारीगरो को रखा था, परन्तु घरेलू काम के लिए एक भी वैतनिक कर्मचारी नही था। हम बालको मे मै और देवदासकाका ग्यारह और तेरह वर्ष की आयु से कम के थे और दूसरे आठ बालक सात से तीन वर्ष के थे। इन सबकी सार-सम्हाल—खाना-पीना, स्नान, कपडे आदि का काम करना छोटी बात नही थी। इस पर भी बापूजी ने नौकर या रसोइया रखने का विचार नही किया। बच्चो की सारी आवश्यकता बच्चे आप ही पूरी करे यही लक्ष्य उन्होने दृढतापूर्वक रखा।

बच्चो की शारीरिक शक्ति और बाल-मनोवृत्ति का विचार करके बापूजी ने बच्चो की दो टोलिया बना दी। एक टोली का नायक देवदासकाका को बनाया और दूसरी का मुझे। शरीर से अधिक मजबूत और रूठने-झगडने मे कम ऐसे बालक मेरी टोली मे और तेज मिजाज तथा अधिक छोटे बच्चे देवदासकाका की टोली मे। इस प्रकार हर टोली मे चार-चार के हिसाब से आये। कुल पाच-पाच बालको की इन दोनो टोलियो मे एक-एक तो इतना छोटा बच्चा था जो बोलना और चलना भी अभी मुश्किल से सीखा था। एक तश्तरी, दो चम्मच उठाकर एक कमरे से दूसरे कमरे मे पहुचा दे तो वह भी उसके हिसाब से काम की गिनती मे आता था। दोनो टोलियो को एक-एक दिन की बारी से काम करना होता था। इसलिए रोज एक ही काम न होने के कारण हमारा उत्साह कायम रहता था।

बापूजी ने हमे कई काम बताये। बगीचे से फल और शाक-सब्जी तोडकर ले आना, उन्हे छील-छीलकर तैयार करना, भोजन के समय से पहले मेज और कुर्सियो को बाकायदा लगाना, चीनी मिट्टी की तश्तरिया,

काच के गिलास आदि सजाना, कोई वडा व्यक्ति उपस्थित न हो तो साव-धानी से परोसना, वुहारना, कपडे धोना, क्यारियो मे पानी देना, भोजन के वाद काच के वरतनो को सावुन से धोकर और पोछकर व्यवस्थित रख देना, इत्यादि।

कहा जाता है कि वापूजी की अनेक वाते परस्पर-विरोधी हुआ करती थी। वह दया के सागर थे, पर भिक्षुक के लिए चुटकी-भर आटा देने नही देते थे; अहिसा के आचार्य थे, फिर भी गावो की गलियो मे मारे-मारे फिरने वाले कुत्तो को और खेती उजाडने वाले बन्दरो को जान से मार डालने के लिए तत्पर हो जाते थे; भगी के घर का वच्चा भी बेपढा और वुद्धिहीन रहे यह उनके लिए वहुत दु खद था, लेकिन वह लिखने-पढने के काम को वहुत गौण वस्तु मानते थे। भय या लालच दिखाकर किसी से काम लिया जाय इसके वह वडे विरोधी थे। इस वात मे भी वह कम विश्वास नही रखते थे कि वच्चो को औरो के सामने अपमानित या तिरस्कृत न किया जाय; न उनसे कोई वात वना-वनाकर कही जाय। लेकिन यह सब होते हुए भी स्वस्थ स्पर्धा की वृत्ति को वह पूरा-पूरा पोषण देते थे। तैरने, दौडने आदि के मर्दाने खेलो मे स्पर्धा को वह वडा प्रोत्साहन देते थे। इसी प्रकार कामकाज करने मे स्पर्धा—होड का वातावरण पैदा करके वापू-जी ने छोटे-छोटे वच्चो से भी भरपूर काम लिया। जो काम घटे-पौन घटे मे पूरा होने वाला हो स्पर्धा की रचना करके वह पन्द्रह-बीस मिनट में ही पूरा करा देते थे। वालको का भोजन समाप्त होने के वाद वह स्वय भोजन के लिए बैठते थे। उनका भोजन आधा भी पूरा न हो पाता कि हम लोग चौका-बरतन तथा झाडू-पानी पूरा करके उनके सामने उपस्थित हो जाते थे। उनसे प्राप्त होने वाला शावाशी का एक शब्द या, उनकी जरा-सी मुस्कान ही हमे उत्साह से भर देती थी।

हमारे वीच मे उनकी उपस्थिति का, उनके प्रोत्साहन का और पग-पग पर उनके विनोद का ऐसा जादू भरा असर होता था कि अपने काम मे पीछे और सदैव शिथिल रहने वाला वच्चा भी उमग मे भरकर अपनी कर्त्तव्य-शक्ति को आप ही वढाने पर तुल जाता था। और, जो आगे निकल जाता था, वह अपने कमजोर साथी को चुपचाप सहारा देने लग जाता था। यदि कोई टोली अपना काम पहले पूरा कर लेती तो वह दूसरी टोली का काम पूरा कराने मे हाथ वटाती थी और फिर सव मिलकर वापूजी के पास खेलने के लिए पहुच जाते थे।

गृहकार्य के लिए यदि वापूजी नौकर की व्यवस्था कर देते तो अवश्य ही हम वच्चो को अपने माता-पिता आदि का विछोह वहुत अखरता।

इस प्रकार पूरा एक सप्ताह भी नही बीता होगा कि बापूजी ने फीनिक्स की सारी प्रवृत्तियो का पुनस्संगठन कर दिया। वैसे फीनिक्स खाली-सा हो गया था, लेकिन उन्होने उसमे पर्याप्त ऊष्मा पैदा कर दी। हमारे दिन उत्साह से बीतने लगे।

: ५२ :

सत्याग्रहियों की तपस्या और बापू का चिंतन

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेः न शक्यते धैर्य गुणप्रमार्ष्टुम्।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेः नाधः शिखा याति कदाचिदेव॥

(धैर्य को जिसने अपनाया है उसको चाहे कितना ही उत्पीडित क्यो न किया जाय, उसका धैर्य मिटाया नही जा सकता। अग्नि को उठाकर उलटे मुह कर दिया जाय तो भी उसकी लपटे नीचे की ओर हरगिज़ नही जायगी।)

ट्रान्सवाल की सरहद पर फीनिक्स-सत्याग्रहियो की टोली के गिरफ्तार होने के बाद उन पर क्या-क्या बीती, इसके समाचार पाच-सात दिन बाद आए।

वालक्रस्ट के स्टेशन पर सबको रेलगाडी से नीचे उतार लिया गया। वहा के गोरे अफसरो को इस टोली के बारे मे कुतूहल पैदा हो गया था। सब सत्याग्रही एक ही ढग से पेश आते थे यह उनके लिए अचम्भे की बात थी। ट्रान्सवाल मे प्रवेश पाने के वास्ते अनुमति-पत्र प्राप्त करने के लिए समझाने पर भी अधिकारी लोग एक भी व्यक्ति को तैयार नही कर पाए। तब उन्हे पुलिस के द्वारा वालक्रस्ट कस्बे से कुछ आध-पौन मील दूर, वाल नदी की पुलिया के उस पार भिजवा दिया गया। वे सब निर्विरोध चले भी गए। ट्रान्सवाल की हद से नेटाल की हद मे इन सत्याग्रहियो को पहुचाने के बाद ज्योही पुलिस ट्रान्सवाल की हद मे लौटी, ये सत्याग्रही भी वाल नदी की पुलिया पार करके दुबारा वहा दाखिल हो गए। तब पुलिस ने उन सबको गिरफ्तार कर लिया, हवालात मे रखा और यथासमय अदालत मे पेश किया। मैजिस्ट्रेट ने सबके नाम पूछे तो मेरे पिताजी ने दुभाषिए का काम किया, सबके नाम लिखवाये और सबकी ओर से अपराध स्वीकार

किया। साथ-साथ यह भी बता दिया कि हम लोग अपना बचाव करना नही चाहते। मैजिस्ट्रेट ने सबको तीन-तीन महीने की कडी कैद की सजा सुना दी। इस प्रकार सोलहो सत्याग्रही सरकारी अतिथि बन गए।

जेल मे पहुचने पर वहा के अधिकारियो ने जब पूज्य बा आदि को शिनाख्त लिखने के लिए बुलाया तब बडी विनोदपूर्ण बात हुई। महिलाओ मे जयकुवर बहन ग्रेजुएट थी और भलीभाति अग्रेजी बोल सकती थी; परन्तु सभी ने अपनी मातृभाषा गुजराती और राष्ट्रभाषा हिन्दी के अतिरिक्त किसी भाषा मे न बोलने का आग्रह रखा। तब हारकर जेलवालो ने मेरे पिताजी को दुभाषिए के काम के लिए बुलाया।

जेल के क्लर्क ने पूज्य बा की ओर इशारा करके पिताजी से कहा—यह जो पहले खडी है, उनसे नाम पूछो।

पिताजी (पूज्य बा से गुजराती मे)—कृष्ण-भवन की पहली रात कैसी बीती ?

बा—अधेरा होने पर भजन करके हम लोग आराम से सो गईं।

पिताजी (क्लर्क से अग्रेजी मे)—इनका नाम कस्तूर बाई है।

बेचारा क्लर्क इस नाम के हिज्जे न कर सका, तब आखिर पिताजी ने ही वह नाम लिख दिया।

क्लर्क—क्या वह विवाहित है ?

पिताजी (पूज्य बा से)—रात को ब्यालू की थी ?

बा—मुझे तो फल चाहिए। इन सबने साग-रोटी सूघकर रख दी। बरतन भी तो गन्दे और घिनौने थे !

पिताजी (क्लर्क से)—वह विवाहित है और उनसे पति का नाम मोहनदास करमचन्द है।

इसके बाद आयु, जाति, वेतन आदि के सवाल एक-एक करके चारों महिलाओ से पूछे गए और पिताजी ने उसका लाभ लेकर अन्दर की सारी जानकारी प्राप्त की तथा बाहर की जानकारी बता दी। पिताजी ने पूज्य बा को बता दिया कि फलाहार के लिए हनुमानजी (कैलनबैक) वालक्रस्ट मे आ पहुचे है और जेलर से मिलकर फल पहुचाने की तजवीज मे लगे है। उन्होने यह सूचित किया कि प्रार्थना के भजन जोरो से गाने की माग रुस्तमजीकाका ने की है, क्योकि केवल एक ही दीवार सत्याग्रही भाई-बहनो के बीच थी।

वालक्रस्ट जेल की सुविधा चार-पाच दिन तक ही रही। फिर सबको नेटाल प्रान्त की राजधानी मारित्सबर्ग की जेल मे भेज दिया गया। वाल-

क्रस्ट से तो श्री कैलनबैंक के पत्रो से समाचार फीनिक्स पहुच जाते थे; परन्तु मारित्सबर्ग से कई दिन बाद जेलवासियो के अधूरे समाचार मिले।

मुख्य खबर यह थी कि मारित्सबर्ग जेल मे पूज्य बा को फल नही दिये गए। फीनिक्स से चलते समय बापूजी के परामर्श से पूज्य बा ने यह प्रतिज्ञा ले रखी थी कि जेल मे विशुद्ध फलाहार ही करना है चाहे भूखा रहना पडे या मृत्यु हो जाय। लेकिन जेल के अधिकारी प्रतिज्ञा के गौरव को क्या समझे? उन्होने तो उद्दडता से कहा कि "ऐसे नखरे करने थे तो जेल मे क्यो आई?" पूज्य बा ने धैर्य रखा और शान्तिपूर्वक अनशन करती रही। जब दूसरा और तीसरा दिन भी बीत गया तब 'मेट्रन' कुछ ढीली पडी और बोली, "अगर हम लोगो को तीसरे पहर की चाय न मिले तो हमारे हाथ-पाव शिथिल पड जाते है, और दिमाग काम नही देता। तुम इतनी दुबली-पतली होने पर भी तीन-तीन दिन बिना खाये कैसे रह सकती हो?" साथ ही यह भी समझाती कि 'जेल मे जो मागो, वह तो खाने को मिल नही सकता। कृपा करके जो मिलता है, वही ले लो।' परन्तु मुसकरा देने-भर के अतिरिक्त बा और क्या उत्तर देती?

पाचवे दिन सरकार झुकी और बा को फलो की सुविधा दी गई। लेकिन वह सुविधा इतनी मर्यादित थी कि पूरे तीन महीने तक बा को प्राय. उपवासी ही रहना पड़ा। मेरी माताजी ने जेल से लौटकर बताया कि पूज्य बा को केवल पाच या छ केले आध पाव अमरीकी सूखे आलूबुखारे और चार कागजी नीबू ही प्रतिदिन के भोजन के लिए मिलते थे। मूगफली या और कोई गिरी अथवा घी-तेल आदि कुछ भी नही दिया जाता था। दूध की तो बात ही नही थी। यह पूज्य बा का ही साहस था जो मारित्सबर्ग मे, जहा का हवा-पानी बहुत ही आरोग्यवर्धक और सुपाच्य था, इतने कम आहार मे पूरी शान्ति से दिन काटती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि तीन महीने तक पूज्य बा को दिन-रात भूख के दावानल मे अपनी देह-यष्टि को झुलसाना पडा और तीन महीने बाद जब वह जेल के फाटक से बाहर आई तो उनका शरीर ककाल-मात्र रह गया था। उस समय उनके दर्शन करनेवालो की आखो मे पानी आए बिना न रहा।

माताजी ने दूसरी बात यह बताई कि "जेल के अन्य छोटे-मोटे कष्टो की तुलना मे हमे कपडो का कष्ट अत्यधिक दुखदायक प्रतीत हुआ था। अफ्रीका के आदिवासी जुलू कैदियो को दिये जाने वाले फ्राक पहनने मे हमे बडा सकोच हुआ। पाच-सात दिन तक वहा का खाना भी घिनौना लगा और जरा-जरा चखकर भोजन को हम सब अलग से सरका देती थी। परन्तु बाद में सबकी भूख इतनी तेज हो गई कि मकई के पुप्पु (दलिया) मे बड़ा

स्वाद आने लगा। यही नही, पूज्य बा के लिए आने वाले केले और नीबू के छिलके भी हमारी भूख की ज्वाला मे कई बार स्वाहा हो जाते थे।

तीन सप्ताह मुश्किल से बीते होगे कि फीनिक्स मे खबर पहुची कि पूज्य बा के जेल जाने से जोहान्सबर्ग के सत्याग्रही बहुत ही जोश मे आ गए है। विशेषत मद्रासी बहने अलग-अलग टोलियो मे निकल पडी है तथा वे सब जेल जाने के लिए बार-बार प्रयत्न कर रही है। स्थान-स्थान पर जाकर सामूहिक रूप से कानून तोड रही है। परन्तु सरकार अब और महिलाओ को गिरफ्तार नही करती। एक तो पूज्य बा की गिरफ्तारी से ट्रान्सवाल मे ही सत्याग्रह की ज्वाला भडक उठी थी और दूसरे भारत के अखबारो मे बा के जेल जाने का प्रतिघोष बहुत जोर का हुआ था। गोखले-जी महाराज ने पूरे भारत की सहानुभूति बापूजी के सत्याग्रह आन्दोलन की ओर जगा दी थी। उधर इग्लैंड मे भी स्मट्स सरकार के इस काम को नापसन्द किया जा रहा था।

जोहान्सबर्ग से दूसरी खबर आई कि बापूजी के घनिष्ठ सपर्क मे रहने वाले जोहान्सबर्ग के सत्याग्रहियो ने भी वालक्रस्ट की चौकी पर अपने को गिरफ्तार करवा लिया है। उनमे बापूजी के द्वितीय पुत्र श्री मणिलाल गाधी और श्री प्रागजी देसाई तथा श्री सुरेन्द्रनाथ मेढ मुख्य थे। उन लोगो को भी मारित्सबर्ग की जेल मे फीनिक्सवाली टोली के साथ रख दिया गया था

एक दिन मगनकाका ने खुशखबरी सुनाई कि मेरे छोटे काका जमना-दास गाधी राजकोट से रवाना हो गए है तथा उनका कार्यक्रम पहले स्टीमर द्वारा पूर्वी अफ्रीका के बैरा बदरगाह मे उतर कर रेल के रास्ते दक्षिण अफ्रीका पहुचने का है। वह दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रह का नया मोर्चा केप कालोनी की सरहद पर खोलेगे।

थोडे दिन बाद हमे खबर मिल गई कि जमनादासकाका ने शानदार सत्याग्रह किया है। उन्होने केप कालोनी और आरेज फ्रीस्टेट कालोनी के प्रान्तो से पाच-सात साथी जमा कर लिये है और अब वे सब आरेज-कालोनी की सुन्दर नगरी किबर्ली की, जो हीरे की खान के लिए प्रख्यात है, जेल मे रखे गए है। बाद मे यह पता चला कि जमनादासकाका आदि पाच-छ नवयुवको को किबर्ली से क्रिश्चियाना नाम के सुदूरवर्त्ती गाव की जेल मे भेज दिया गया है।

अन्य कई सत्याग्रहियो ने भी ट्रान्सवाल से चलकर वालक्रस्ट मे अपने को गिरफ्तार करवा लिया और कारावास प्राप्त किया।

इधर फीनिक्स मे बापूजी सत्याग्रह का अध्ययन, चिट्ठी-पत्री एव

अपने 'इडियन ओपीनियन' के द्वारा उसका सचालन करते रहे। साथ-साथ, भारत मे गोखलेजी महाराज के पास भी प्रतिदिन के समाचार विस्तार-पूर्वक तार और चिट्ठी द्वारा भेजते रहे। इतना काम होने पर भी फीनिक्स के छोटे-छोटे कामो मे से किसी के प्रति उदासीन नही हुए। कुछ-न-कुछ मजदूरी का—शरीर-श्रम का काम नित्यप्रति कर ही लेते थे। जब तक वह फीनिक्स मे रहे हम बच्चो को समय से भोजन परोसने का काम उन्होने ही किया।

परन्तु अब धीरे-धीरे वह बच्चो के साथ बातचीत मे कम समय देने लगे। उनका विनोद भी कम हो गया। हम लोग अपनी छोटी-छोटी बात लेकर उनके पास पहुच जाया करते थे। वह स्थिति अब बदलने लगी। अब उनके बदले मगनकाका हमारे दैनिक कार्यक्रम पर विशेष ध्यान देने लगे। मगनकाका के पास जाने पर ही जब हमारा काम बन जाता था तब हमे बापूजी को घेरने की आवश्यकता नही रहती थी। बापूजी और मगन-काका आपस मे बहुत कम बाते करते दिखाई देते थे। वैसे फीनिक्स मे बापू-जी ने कभी मौनव्रत लिया हो ऐसा मुझे याद नही पडता; परन्तु बिना मौनव्रत के ही इन दिनो वह प्राय मौन रहते थे।

महादेवभाई का जैसा कोई मत्री तब बापूजी के पास था नही, जो उनके मनोमथन की बातो पर प्रकाश डालता। मै अनुमान करता हू कि ज्यो-ज्यो सत्याग्रह का यह दौर जोर पकडता गया, बापूजी अपने उत्तर-दायित्व को अधिकाधिक महसूस करते गए और सत्याग्रह की व्यापकता के साथ उसकी पवित्रता बनी रहे इसके लिए भारी चितन करते रहे।

इन्ही दिनो बापू ने 'इडियन ओपीनियन' मे एक लेख लिखा था, जिस-सेउस समय की उनकी मनोदशा का परिचय मिलता है। उस लेख की कुछ पक्तिया ये है

"जो धर्म पर सच्ची आस्था वाला हो वही सत्याग्रही बन सकता है; 'मुख मे राम बगल मे छुरी' वाली आस्था नह । धर्म का नाम लेकर धर्म से उलटा काम किया जाय तो वह धर्म नही है। किन्तु जो धर्म, दीन और ईमान को सचाई से पालने वाला है वह ईश्वर पर ही सारी बात छोड देता है। उसके लिए ससार मे हार-जैसी चीज होती ही नही। यदि लोग उसे हार बताए तो वह हार नही कहलायगी और यदि लोग उसे जीत कहे तो वह जीत भी न होगी। इस रहस्य को जो जानता है सो ही जानता है।

"सत्याग्रह शब्द का अर्थ विचारने पर हम देखते है कि उसमे प्रथम बात सत्य के आग्रह की—सत्य के बल की होनी चाहिए। 'एक पग दही

मे और दूसरा दूध मे ' वाली बात इसमे नही चल सकती। वैसा आदमी दो पाटो के बीच कुचल ही जायगा। सत्याग्रह कोई गाजर की पिपिहरी नही है जो बजेगी नही, तो चबा ली जायगी; उसे ऐसा समझने वाला न घर का रहेगा न घाट का। शरीर-बल की कमी होने के कारण अथवा शरीर-बल के लिए मौका नही है यह देखकर इन्हे सत्याग्रही बनने के लिए मजबूर होना पडा है, ऐसा जो कहते है वे बिलकुल बेकार की बात कहते है।

"सत्याग्रही को मौत का डर छोडकर अन्त तक जूझना होता है। उसमे शरीर-बल से भी अधिक साहस होना आवश्यक है। अर्थात् सत्याग्रही मे सर्वप्रथम सत्य का सेवन और सत्य पर आस्था होना लाजिमी है।"

फलाहार के लिए पूज्य बा का और कस्ती के लिए रुस्तमजीकाका का उपवास तो शीघ्र ही सफल होगया था, परन्तु जब सत्याग्रहियो ने शुद्ध घी प्राप्त करने के लिए अनशन आरम्भ किया तब जेल से बाहर वालो की चिन्ता और मन की अशाति बहुत बढ गई। यद्यपि डरबन नगरी सम्पूर्ण दक्षिण अफ्रीका की श्वेतनगरी कही जाती थी और नेटाल प्रात की राजधानी मारित्सबर्ग मानो मोतीनगर ही था, किन्तु उन दोनो स्थलो के कारागृह कालिमा और घोर उत्पीडन के केन्द्र बने हुए थे। इसमे डरबन का कारागार और भी कुख्यात था। वहा पर विशेष रूप से कत्ल के जुर्म की सजा पाए हुए खतरनाक हब्शी कैदियो को रखा जाता था। जब सत्याग्रह सघर्ष ने बहुत जोर पकडा, जेले भर गईं और मारित्सबर्ग की जेल मे जगह नही रही तब वहा से चुन-चुनकर अधिक जोशीले सत्याग्रहियो को डरबन की जेल मे लाया गया।

पूज्य बा की तरह रुस्तमजीकाका को भी अनशन करना पडा था। मारित्सबर्ग की जेल के फाटक मे प्रवेश करते ही उनका 'कस्ती-सदरा' जब्त कर लिया गया। जेल के अधिकारियो को समझाने की बडी कोशिश की गई कि बिना 'कस्ती-सदरा' के पारसी लोग अपनी पूजा नही कर सकते और बिना पूजा के वे खाना नही खा सकते, परन्तु जेलवाले नही माने। इसलिए रुस्तमजी सेठ को अनशन के लिए मजबूर होना पडा। दूसरे सभी सत्याग्रहियो ने भी उनका साथ दिया। एक कर्मकाडी ब्राह्मण के लिए जो महत्व यज्ञोपवीत का होता है, वैसे ही रुस्तमजीकाका के लिए 'कस्ती-सदरा' अनिवार्य था। उनकी 'कस्ती' यज्ञोपवीत के धागे-जैसी ही थी और उसे वह कन्धे पर न डालकर कमर मे बाध लिया करते थे। भोजन से पूर्व, सूर्य के सामने खडे होकर अपना जाप करते हुए वह उस कस्ती को, अपनी अजलि से, सूर्य के सामने ऊची उठाया करते थे और धीरे-धीरे कमर के चारो ओर सरकाते जाते थे। 'सदरा' उनके पहनने का विशिष्ट कुर्ता था।

किसी सिख से कच्छ-कडा आदि छीन लिया जाय, किसी मुसलमान से वजू और नमाज का सामान ले लिया जाय, तो उसकी जैसी हालत होगी, वैसी ही एक पारसी से 'कस्ती सदरा' ले लेने पर होती है। फीनिक्स की सारी टोली मे केवल रुस्तमजी सेठ ही पारसी थे, परन्तु उनका कष्ट सब के लिए अपना कष्ट ही महसूस हुआ, मानो एक ही शरीर के वे अभिन्न अग थे। परन्तु जेल वालो को सत्याग्रहियो की यह माग बेकार की धाधली प्रतीत हुई और उन्होने कडाई से काम लेने का निर्णय किया।

नतीजा यह हुआ कि मेरे पिताजी और सेठजी को मारित्सवर्ग से बदलकर डरबन की जेल मे भेज दिया गया, जो बहुत बदनाम जेल थी। उधर मारित्सवर्ग मे भी रावजीभाई, मगनभाई आदि बडो को छोटे नवयुवको से अलग कर दिया गया। परन्तु सभी जवान अनशन पर डटे रहे। जब डरबन से काकाजी को 'सदरा-कस्ती' मिल जाने की विश्वसनीय खबर उनको दी गई तब उनका अनशन समाप्त हुआ और इस प्रकार जेल मे उन सबकी पहली कसौटी पूरी हुई।

इसके पहले जो सत्याग्रह ट्रान्सवाल मे दो बार किया गया था उसमे गोरे लोगो की जेब पर सीधी मार नही होती थी। परन्तु इस बार के सत्याग्रह से नेटाल के पूजीपतियो का बडा भारी आर्थिक नुकसान हो रहा था, इसलिए उनकी हमदर्दी मे सरकारी गोरे हाकिम तिलमिला उठे थे।

दक्षिण अफ्रीका मे जेल के सुपरिटेडेट को जेल का गवर्नर कहा जाता था। डरबन का जेल-गवर्नर उन दिनो बडा कठोर बताया जाता था। भारतीय कैदियो को सीधा करने और उनका जोश ठडा करने का मानो उसने सकल्प कर रखा था।

दक्षिण अफ्रीका की जेलो मे मास खाने वालो को सप्ताह मे दो बार मास दिया जाता था। जो भारतीय सत्याग्रही मास लेना निषिद्ध मानते थे, उन्होने ट्रान्सवाल की जेल मे अनशन करके मास के स्थान पर सप्ताह में दो दिन छटाक-छटाक-भर घी पाने की व्यवस्था जेल के कानून मे पक्की कराई; किंतु ट्रान्सवाल की सरकार ने जो देना स्वीकार किया था वह नेटाल की सरकार ने देने से इनकार कर दिया। जब जेलवालो ने सत्याग्रही कैदियो की माग पर ध्यान नही दिया तब फीनिक्स और जोहान्सबर्ग के वे सत्याग्रही, जो बापूजी के घनिष्ठ सम्पर्क मे आये थे, घी के मसले पर अनशन करने के लिए कटिबद्ध हो गए। दूसरे सत्याग्रही भी बडी सख्या मे अनशन मे शामिल हुए। घी का मसला मुख्य था, पर साथ-साथ जेल-जीवन की और भी कई शिकायते उन लोगो को थी—जैसे, जूओ से भरे हुए कम्बल, मांस की जूठन से सने हुए बरतनो मे परोसा जाने वाला भोजन; अकारण

गालियां और डाट-डपट तथा सप्ताह मे केवल एक बार नहाने की इजाजत और उसमे भी भारी असुविधा।

उपवास करने वालो मे दो तो मणिलालकाका और रामदासकाका थे। तीन-चार दिन तक जेल के बाहर वाले हम लोगो ने धैर्य से समझौते की प्रतीक्षा की, किन्तु बात को बढते हुए देखकर सब बेचैन हो उठे। इस बीच 'इडियन ओपीनियन' मे छपने के लिए रेवाशकर सोढा और मजिस्ट्रेट के बीच का एक सवाद आया। उसे अपनी स्मृति के आधार पर नीचे दे रहा हू :

मैजिस्ट्रेट—तुम लोगो ने यह क्या शरारत कर रखी है ? खाते क्यो नही ?

सोढा—जानबूझकर थोडे ही हम शरारत कर रहे है। हमे घी चाहिए। वह दिलवा दीजिए, फिर खाने लगेगे।

मैजिस्ट्रेट—घी नही मिलेगा। जानते हो कैद मे आये हो ? जो मागो सो कैदखाने मे थोडे ही मिल सकता है ?

सोढा—आप घी न देने मे मजबूर है तो हम अपना उपवास छोडने मे मजबूर है।

मैजिस्ट्रेट—घी नही मिलेगा तो कब तक उपवास करते रहोगे ?

सोढा—मर जायगे तब तक।

मैजिस्ट्रेट—मर जाओगे तो कोई टोटा नही आयगा। हमारे पास दफनाने की जगह काफी है।

सोढा—तो, घी नही मिलेगा तब तक मरने वालो का भी टोटा नही पडेगा।

जेलखानो मे पहुचे हुए सत्याग्रहियो मे उस समय सबसे छोटी आयु-वाले रामदासकाका और रेवाशकर सोढा थे। इन दोनो को उपवासी दल से फोड लेने के लिए सरकारी अधिकारियो ने अपनी सारी कारगुजारी कर डाली। रेवाशकर ने जेलवालो को ऐसे मुह-तोड जवाब दिये कि उनके दात खट्टे हो गए। उधर, रामदासकाका ने अपनी नम्रता, सरलता और दृढता से जेल वालो की हर कोशिश को विफल कर दिया।

घी वाले अनशन के समय रामदासकाका की शिष्टता, साधुता और दृढता का जेलवासियो पर असाधारण प्रभाव पडा था। लेकिन इससे भी अधिक उनके प्रति सबका आदर इस बात से बढ गया था, कि जेल के प्रत्येक नियम का उन्होने बडी प्रामाणिकता से पालन किया था। जेल से

छूटने पर उनके जेल के साथी कहते थे कि सचमुच रामदास तो रामदास ही थे। मानो स्वय बापू के ही प्रतिरूप हो। काम के समय सतत काम करते रहते थे। जेल-जमादार हम लोगो को काम के लिए टोकता था, परन्तु रामदास के पास वह जाता तक नही था; क्योकि थक जाने पर कुदाल छोडकर रामदास कभी बैठ नही जाते थे। खडे-खडे ही अपनी थकान थोडी-सी उतारकर फिर से खोदने लग जाते थे। बगीचे मे से हम लोग गाजर, मूली लेकर रामदास के सामने भी रखते थे। परन्तु वह उन्हे हाथ नही लगाते थे और हम से स्पष्ट कह देते थे—'मुझसे कुछ मत कहो'। काम करते समय जिस तरह वह लगे रहते थे, उसी तरह कमरे मे भी अपने समय का पूरा उपयोग करते थे। स्वस्थता से बैठकर पढा करते थे और किसीको अपनी ओर से असुविधा न हो, इसकी सावधानी रखते थे। फीनिक्स की सारी टोली मे सब से छोटे होने पर भी रामदासकाका के सामने और सब छोटे मालूम पडते थे। उनका विनय और उनकी टेक इतनी तेजस्वी थी।

घी के लिए किये गए उपवासो मे आरम्भ मे सत्याग्रहियो की बडी सख्या सम्मिलित हुई थी। परन्तु बाद मे वह धीरे-धीरे घटती गई। चाय-बीडी की आदत वाले अधिक समय नही टिक पाए। अनशन पर दृढ रहने वालो मे रेवाशकर और मगनभाई पटेल बगीचे मे काम करते-करते सर्वप्रथम मूर्छित हुए। परन्तु रामदासकाका उपवासो को भली-भाति सहन करते रहे।

जेल के उपवास मे साधारण कैदी को आराम, स्नान, मनोविनोद आदि की कुछ भी सुविधा नही मिलती। हमारे सहाध्यायी जब जेल से छूटकर आये तो उन्होने डरबन जेल के अनशन की जो कहानी सुनाई उसका सक्षेप यह है कि उपवासो का पता चलते ही जेलर और जमादार की धाक-धमकी बहुत बढ गई। उपवास होते हुए भी रोज हमे बगीचे मे खोदने के लिए नियमपूर्वक ले जाया जाता था। सध्या को बद होने से पूर्व हमे अपने पूरे शरीर की तलाशी देनी पडती थी। इस तलाशी मे सभी कैदियो को दिगम्बर होकर तबतक कतार मे शातिपूर्वक खडा रहना पडता था जबतक दरोगा तलाशी पूरी न कर ले। अनशन के दिनो में इन परेडो मे जेल के अधिकारी सत्याग्रही कैदियो को और भी परेशान तथा अपमानित करते थे। किसी ने अपने शरीर मे कोई चीज छिपा तो नही रखी, यह जाचने के लिए उनको कूदने, हाथ फैलाने और मुह खोलने के लिए विवश किया जाता था। भूखे कैदियो को इस तरह जलील करके जेल वाले उनको झुकाना चाहते थे। जेल वालो की इस तरह की हिमाकत से

सत्याग्रहियो का खून खौल उठता था लेकिन अपना सारा गुस्सा वे मन-ही-मन पी जाते थे। मध्याह्न मे भोजन के समय जो डेढ घटा दिया जाता था केवल उसी समय मे वे परिश्रम से छुट्टी पाकर सो लिया करते थे। इससे बिलकुल गिर पडने से बच जाते थे। मूर्छित होकर गिर पड़ना और जेल के अस्पताल मे भरती होना, सत्याग्रही अपनी शान के खिलाफ समझते थे। भूख हडताल को तुडवाने के लिए उनके बिस्तर के पास भोजन परोसा तसला रख दिया जाता था लेकिन वह रात-भर ज्यो-का-त्यो पडा रहता था। सत्याग्रही उसे सूघते तक नही थे।

चार-पाच दिन के बाद जब कडी धूप मे काम करते-करते भूख के मारे चक्कर खा कर रेवाशकर गिर पडा तब जेलवाले घबराए और उन्होने धूप मे सत्याग्रही से कडाई से काम लेना कुछ कम कर दिया। रेवाशकर को जेल के अस्पताल मे पहुचाया गया और वहा चार-पांच आदमियो ने मिल कर जबरन उसके गले मे दूध डाल दिया। रेवाशकर इस तरह दबने वाला व्यक्ति नही था; उसने उल्टी करके दूध निकाल दिया। जेल वाले और भी खीझ उठे। अब उन्होने रबर की नली गले मे डाल कर दूध को पम्प करके सीधे आतो मे ही पहुचा दिया। दूध के रग को देखकर रेवाशकर को सदेह हुआ कि शायद उसमे अडा भी मिलाया गया है। वह निरामिश-भोजी था, इस कारण बहुत दुखी हुआ।

तनहाई मे प्रागजीभाई देसाई पर हब्शी जमादार टूट पड़ा। उसने उनको लाते लगाई और टाग पकड कर पीठ के बल दस-बारह फुट तक घसीटा। अन्य सत्याग्रहियो की भी इसी तरह की हालत की गई। परन्तु बापूजी के परखे हुए वीर अपने प्रण पर दृढ रहे। पूरा एक सप्ताह अनशन-सघर्ष चलने के बाद सरकार ने उन्हे घी देना तथा उनकी दूसरी शिकायतो को भी दूर करना स्वीकार कर लिया। सत्याग्रह-सग्राम का अंत अभी तक कही नजर नही आ रहा था। इस बीच कारावास मे होने वाली इस जीत ने सभी भारतीयो के दिल मे काफी उत्साह बढा दिया।

जेल के अनशन की समाप्ति की कथा जो हमारे सहपाठी कुप्पुस्वामी ने सुनाई थी वह भी बडी रोचक है। उसने बताया कि छ-सात दिन तक तो हम जोश-ही-जोश मे भूख को सहार गए। फिर दिल मे धडकन पैदा हुई कि जाने कब तक यह कष्ट भुगतना पडेगा। बडे लोग तो अलग थे, हम तीन युवक एक साथ थे। रामदासजी, जो हमारे साथ थे, वह मन से खिन्न नही हुए थे। हम लोग सोच-विचार मे परेशान थे कि एक सध्या के समय जेलर, गवर्नर और मैजिस्ट्रेट सामने आ धमके। आते ही उन्होने हम लोगो को जोरो से डाटना शुरू कर दिया, "तुम, अपने मन मे क्या समझते

हो? ऐसी शैतानी करोगे तो बर्बाद हो जाओगे। भला है सरकार चुप है, याद रखना, जब वह आखे लाल करेगी, तुम्हारी मिट्टी पलीद कर दी जायगी।" गोरे अफसरो की बात समझाने के लिए एक दुभाषिया (इन्टरप्रेटर) भी उनके साथ कायदे से आया था। जेल मे हम लोग उसे 'इन्द्रपट' कहा करते थे, उसने साहब से भी दुगने जोर से उनकी अग्रेजी का अनुवाद हमे सुनाया और बोला, "सुनो! साहब बोलता है, तुम नही खायेगा तो तुम को सजा होगा। तुम खाओ, नही तो सरकार तुम को बहुत सजा देगी।" इस तरह धमकाने के साथ-साथ धीरे से वह यह भी कह देता था कि घी का परवाना तो आ गया है। फिर ऊचे से कह देता था कि "तुम को खाना ही पडेगा। साहब को कह दो कि हम खायगे। मान जाओ।" अन्त मे धीरे से पाद-पूर्ति करता था कि "घी का परवाना मिल गया है। फिकर मत करो।" इस प्रकार धमकी और घी की खबर एक साथ हमे मिली। हमारे मन जो ढीले होने जा रहे थे, वे फिर तन गए और साहब को हमने रोज की तरह 'इन्कार' ही सुनाया।

जब हम लोग सोने की तैयारी मे थे कि दुबारा जेलर हमारे पास आया और बहुत ही भलेमानस की तरह बोला कि हमने तुम्हारी सारी बाते सरकार मे भेजी थी। तुम लोगो की कुछ मागे तो ठीक थी लेकिन इस तरह दगा मचाना उचित नही है। खैर, मिस्टर चिमनी (एशियाई दफ्तर का अफसर) की मजूरी आ गई है। बोलो, क्या खाओगे? तुम जानते हो कि रसोईघर तो इस समय बन्द है। हमने उनको धन्यवाद दिया और दूसरे दिन सवेरे सबके साथ ही उपवास खोलने का निर्णय करके शाति से सोये।

हमे घी मिला और रसोईघर मे हमारे प्रतिनिधि के स्वरूप श्री मेढ को भिजवाया। इसके बाद हम लोगो की थोडी-सी तिकडम भी चली। जेल के बाहर के समाचार हम लोग प्राप्त करने लगे। विशेषत तब, जब नहाने के लिए हम एक जगह इकट्ठे होते थे। नहाते-नहाते श्लोक बोलने का हमारा धर्म है इस बात पर हम अकड़ जाते थे और फिर बीच-बीच मे तुकबन्दी गाते थे :

"बाहर से खबर आई। बापू-कूच बढ़ चली॥
हड़ताली तीन हजार। घुस गये ट्रांसवाल॥"

इन समाचारो से स्वाभाविक ही हमारा उत्साह बढता था।

एक रविवार के दिन फीनिक्स मे डरबन की जेल का एक बोर (डच) जमादार साप्ताहिक छुट्टी मनाने आया था। वह पूरा छः-साढे छ. फुट ऊचा

और तगडा था। जेल मे मेरे पिताजी पर पहरा देने का उसका काम था। हम लोगो ने उसे अपने साथ भोजन कराया। बडे चाव से उसने हमारी हिन्दुस्तानी रसोई खाई और फिर पुचकार कर मुझसे कहा कि तेरे पिता जेल मे मजे मे है। तू कुछ उनके लिए कहना चाहता है ? मुझे उस आदमी से बोलने की इच्छा ही नही होती थी। उसके गोरे और गम्भीर मुह को मै ताकता ही रहा तथा मन मे सोचता रहा कि यह कैसा अजीब आदमी है, जो यहा पर तो भला और मीठा बन रहा है और जेल मे सत्याग्रहियो को अनशन करना पडे, इस हद तक सताता होगा। खैर, मैने सक्षेप मे कहा, 'कह देना, हम मजे मे है।' जाते-जाते उसने हमारे बगीचे के फल भी भर-पेट खाये और फीनिक्स के प्रति अपना आदर और स्नेह व्यक्त करके वह डरबन जेल के लिए लौट गया। जेल का जमादार भी एक प्रकार से अच्छा आदमी हो सकता है यह देखकर उस दिन से मेरे मन मे यह बात बस गई कि खराब कहे जाने वाले आदमी मे भी कुछ-न-कुछ अच्छाई होती ही है।

: ५३ :

सत्याग्रह की प्रगति

जब जनरल स्मट्स ने तीन पाउड का कर रद्द करने के वचन का भग किया तब सत्याग्रह सग्राम पुन. आरम्भ करने के विषय मे बापूजी ने गोखलेजी को लिखा था। वह पूरे राजनीतिज्ञ पुरुष थे। दोनो ओर के बलाबल का अनुमान किये बिना कैसे बापूजी को झुकने की सलाह दे देते ? अत उन्होने प्रश्न किया, "भैया, लडाई मोल लेने की बात सोच रहे हो, पर यह तो बताओ कि तुम्हारे सग लडने वाले वीर अधिक-से-अधिक और कम-से-कम कितने है, जो तुम्हारे साथ अत तक टिकने वाले हो ?" 'दक्षिण अफ्रीका का इतिहास' नामक पुस्तक मे 'वचन-भग' शीर्षक प्रकरण मे बापूजी ने लिखा है "मैने गोखलेजी के पास अधिक-से-अधिक ६५ या ६६ और कम-से-कम १६ नामो की गिनती लिख भेजी थी। साथ मे यह भी लिखा था कि इतने कम मनुष्यो के वास्ते मै हिंदुस्तान से पैसे की सहायता की अपेक्षा न करूगा। इसके बारे मे आप निश्चित रहे और अपने स्वास्थ्य पर—जो काफी कमजोर हो गया है—अधिक बोझ न डालने की कृपा करे।"

इसी पुस्तक मे बापूजी ने एक और स्थल पर लिखा है: "जो अतिम

उपाय सोच रखा था उसे करने का निश्चय किया। वह कदम वहुत तेजस्वी साबित हुआ। मैने सोच रखा था कि अतिम अवसर आ जाने पर उन सबको बलि चढा देना होगा जो मेरे साथ फीनिक्स मे रह रहे है। मेरे लिए वह अतिम त्याग था। फीनिक्स मे रहने वाले मेरे निजी साथी और रिश्तेदार थे। अखबार चालू रखने के लिए आवश्यक आदमियो को और सोलह वर्ष से कम आयु वाले छोटे बालको को छोडकर अन्य सभी को जेल-यात्रा के लिए भेज देने की मेरी धारणा थी। इससे अधिक त्याग करने का मेरे पास और कोई साधन-सामान था ही नही। गोखलेजी को लिखते समय आखिरी सोलह व्यक्ति, जो मैने अपने मन मे रखे थे, यही थे।"

फीनिक्स वाले सत्याग्रही जेल मे जा डटे, तो बापूजी ने ट्रान्सवाल की उन ग्यारह वीरागनाओ का जत्था मोर्चे पर भेजा जिनको टाल्स्टाय-वाडी मे अपने साथ रखकर उन्होने तालीम दी थी। उनकी योग्यता बताते हुए उन्होने लिखा है:

"बहनो को जेल मे भेजने का काम बहुत ही खतरनाक था, यह मै जानता था। फीनिक्स मे रहने वाली बहने गुजराती थी, अर्थात् ट्रान्सवाल-वाली बहनो के समान अनुभवी और कष्ट उठाने की अभ्यस्त नही थी। वे अधिकतर मेरे परिवार की थी और केवल मेरे लिहाज के कारण ही जेल जाने को तैयार हो जाय और बाद मे ऐन मौके पर कमजोर हो जाय या जेल मे पहुच कर माफी माग ले, तो मुझे भारी आघात पहुचने का और लडाई कमजोर पड जाने का डर था। किन्तु जो बहने टाल्स्टाय-फार्म मे मेरे साथ रही थी वे इस सत्याग्रह मे शामिल होने के लिए व्याकुल हो रही थी। उन सबको मैने इस लडाई के कष्टो के बारे मे सचेत किया, परन्तु वे डरी नही। सब की सब बहादुर थी, मेरे कहने पर भी किसी कदर रुकने वाली नही थी। ये सभी (श्रीमती भवानीदयाल को छोडकर) तमिल प्रदेश की थी। उनमे छ बहनो की गोद मे दूध पीने वाले बच्चे थे।"

महिलाओ की उस सारी टोली का नेतृत्व श्रीमती थम्बी नायडू कर रही थी। उनके पति एक वीर सत्याग्रही थे और ट्रान्सवाल मे बापूजी के साथियो मे प्रथम वीर माने जाते थे। मीर आलम ने जब बापूजी पर घातक प्रहार किया था तब उन प्रहारो को अपने ऊपर झेल कर बापूजी की रक्षा करने वालो मे श्री थम्बी नायडू का नाम ही मुख्य था। परतु उनकी पत्नी का शौर्य उनसे भी दुगना माना जाता था, जो इस मोर्चे पर स्पष्ट प्रमाणित हो गया। इन तमिल बहनो के साथ श्रीमती भवानीदयाल भी थी, जो कई महीने फीनिक्स मे रह चुकी थी। बापूजी ने उनकी चिकित्सा अपने मिट्टी-पानी के तरीको से की थी। वह देखने मे दुबली-पतली और कोमल

थी और बाल्टी-भर पानी ढोना तक उनके लिए कठिन हो जाता था। श्री भवानीदयालजी को, जो बाद मे भवानीदयाल सन्यासी कहलाये, हिंदी-जगत् भूल नही सकता। उनके व्यक्तित्व के प्रति हमे आदर था और जब श्रीमती भवानीदयालजी ने अन्य महिलाओ के साथ जेल-यात्रा के लिए प्रयाण किया तब उन दोनो के प्रति हमारे मन का आदर बहुत बढ़ गया।

ये महिलाए ट्रान्सवाल के दो-दो, तीन-तीन सीमा-स्थानो पर गई और बिना परमिट के सीमोल्लघन करके फिर से ट्रान्सवाल मे आईं। परन्तु पूज्य बा को पकडने से ही दक्षिण अफ्रीका की सरकार की देश-विदेश मे कडी टीका होने लगी थी, तब और भी बहनो पर हाथ डालने का साहस उसने नही किया। ज्यो-ज्यो सरकार ने उन्हे गिरफ्तार न करने की सावधानी बरती, श्रीमती थम्बी नायडू की टोली नये-नये कानून तोडती गई। अत मे बापूजी की सूचना से वे सब बहने कोयले की खान के मजदूरो के पास चली गई और जबतक सरकार तीन पौंड का कर न हटा ले तब तक हडताल करने के लिए उन्हे समझाने लगी।

इधर स्मट्स सरकार ने बहनो को गिरफ्तार न करके तग कर डाला। उधर ट्रान्सवाल से अनेक पुराने और मजे हुए सत्याग्रही उन्ही कानूनो को तोड कर जेल पहुच गए। मुश्किल से एक महीना पूरा हुआ होगा कि सत्याग्रह की लड़ाई का रग जम गया। बापूजी को इस प्रगति से सतोष हुआ और वह अपने हमले को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के उपाय करने लगे।

फीनिक्स से निकलने वाले साप्ताहिक का काम बहुत कम आदमियो से ठीक तरह चलता रहे ऐसा परिवर्तन करना बापूजी ने आवश्यक समझा। पहले वह शनिवार को प्रकाशित होता था, अब उसे बुध को प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। इस सबधी व्यवस्था का उल्लेख करते हुए बापूजी ने नीचे लिखे आशय का लेख 'इडियन ओपीनियन' के इस अक मे लिखा :

"अब से बुधवार के दिन यह अखबार प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। इस अक को तैयार करने के लिए तीन ही दिन का समय था। इस वजह से इस अक के चार ही पृष्ठ हैं। शनिवार के दिन प्रकाशित करने से यह डरबन आदि नेटाल के स्थलो मे उसी दिन पहुच जाता है। परतु जोहान्सबर्ग और ट्रान्सवाल में सोम या मगल के दिन पहुचता है। 'इडियन ओपीनियन' के अधिकतर पाठक काम-धधे मे इतने व्यस्त रहते हैं कि अगली शनि-रवि की छुट्टी आने से पहले उन्हे यह साप्ताहिक पढने का अवकाश नही मिलता। यह नई व्यवस्था उनकी सुविधा के लिए की गई है, ताकि शनिवार के दिन ही उनको यह साप्ताहिक मिल जाया करे।

"हिन्दवासियो की वर्तमान परिस्थिति के सबध मे सही-सही जानकारी पहुचाने के लिए यह साप्ताहिक चालू रहना चाहता है। यदि लोगो को इसकी आवश्यकता नही है और वे इसके खर्च का बोझ उठाना नही चाहते तो भले-बुरे विज्ञापन आदि की भरमार करके जैसे-तैसे इसके छापते रहने मे और इसके द्वारा पैसे बटोरने मे मुद्रक-प्रकाशक जनता के प्रति तथा देश के प्रति गभीर अपराध करते प्रतीत होते है। इस समय इसके नौ सौ ग्राहक है। यह ग्राहक-सख्या यदि गिर जायगी तो यह पत्र चलाना सभव नही होगा। इसलिए यह आवश्यक है कि कोई इसकी घटी हुई पृष्ठ-सख्या को देखकर हैरान न हो। असल मे जो पन्ने कम किये गए है, उनमे केवल विज्ञापन और बेकार की चीजे ही छाटी गई है। पढने की जो सामग्री बाकी रह जाती है वह कोई खोखली नही है। हमे आशा है कि हम थोडी पढाई मे ज्यादा-से-ज्यादा उपयोगी बाते देगे। एक शब्द भी बेकार नही होगा। इस कम पन्ने वाले अखबार को प्रकाशित करने के श्रम और खर्च मे अधिक पन्ने वाले अखबार के मुकाबले विशेष अतर नही पडता। अत. इसका वार्षिक चन्दा कम नही किया जा सकता। प्रत्येक पाठक का कर्तव्य है कि वह इसमे प्रकाशित होने वाले विवरण और विचारों को अपनी जान-पहचान वाले सभी हिन्दियो में प्रसारित करे और जो लोग पैसे से 'इडियन ओपीनियन' की सहायता करने मे समर्थ हो, ऐसे अपने-अपने मित्रो को इसका ग्राहक बना दे।"

अखबार प्रकाशित करने का दिन बदलने के साथ बापूजी ने एक बडा परिवर्तन और भी किया। सोलह पृष्ठ छापने वाला बडा यत्र तेल के इजन से चलता था। बापूजी ने तेल के इजन का प्रयोग बद कर दिया। मिट्टी का तेल पीने वाला वह दैत्य जब रूठता था तब किसी के बस का नही रहता था। उसके मुख्य चक्र—फ्लाई व्हील को चालू करने मे तगडे-तगडे जवानो का दम भी फूल जाता था। छपाई के दिन मुद्रण-यत्र पर काम चढने से पूर्व पाच-पाच छ.-छ घटो तक हमारे हब्शी जवान चार्ली और श्री गोविन्दसामी-जैसे पहलवानो को उसकी आराधना करनी पडती थी।

बापूजी ने उस तेलिये-भूत के बदले अपना बाहु-बल काम मे लाना पसन्द किया। साढे चार या पाच फुट ऊचा एक बहुत बडा लोहे का चक्का हाथ से चलने का—वहा रखा गया था। इजन के बिगड जाने पर उस पर पट्टा चढाकर मुद्रण-यत्र चालू किया जाता था और चार आदमी मिल कर उसे चलाया करते थे। बापूजी ने इसी पहिये से नियमित रूप से काम लेने का निश्चय किया। हर आध घटे बाद चारो आदमियो की बारी बदली जाती थी, इसलिए मुद्रण यत्र उसी वेग से काम समाप्त कर देता था जिस

वेग से इजन के द्वारा होता था। उसे चलाने के लिए स्थानीय हब्शी मजदूरो को लगाया गया था, फिर भी बापूजी ने स्वय अपने लिए भी उसे चलाने की बारी रखी थी। अखबार छपने के दिन उसे चलाने के लिए वह बिला नागा उपस्थित हो जाते थे। उन दिनो बापूजी फलाहार ही करते थे। लेख लिखने, गोखलेजी के साथ पत्र-व्यवहार करने तथा सत्याग्रह-सचालन-सबधी सूचनाए भेजने का भारी काम घटो तक मेज पर बैठ कर उन्हे करना पडता था। फिर भी शरीर-श्रम करने का आग्रह इतना उग्र था कि दो-दो, तीन-तीन बारी बदल जाने तक वह पहिये पर से हटते नही थे।

पहले बुधवार को जब बापूजी लोहे का वह भारी पहिया घुमाने गए तब उन्होने अपनी जोडी मे मुझे चुना। मैं छोटा बालक था, और पहिया ऊचा था इसलिए उसे घुमाने मे मेरा जोर कम लगता था। परन्तु मेरी कमी बापूजी सवाया जोर लगा कर पूरी कर रहे थे। इतनी निकटता से बापूजी के साथ काम करने का अवसर मुझे कई दिनो बाद मिला था। शीघ्र ही बापूजी जेल चले जाने वाले थे। और कब यह अवसर फिर मिलेगा इसका पता नही था इसलिए बापूजी से बाते करने के इस मौके का लाभ उठाने का मैंने प्रयत्न किया। बहुत सोच-विचार कर मैंने कई प्रश्न बापूजी से पूछे। बापूजी भरसक मौन रहकर चितन करते हुए पहिया चलाते थे। फिर भी मेरे प्रश्नो का उत्तर उन्होने धीरज से पहिया घुमाते-घुमाते दिया। उनमे कुछ उत्तरो का सार देता हू।

मैंने पूछा था कि साप्ताहिक मे लेख आप अकेले लिखते है फिर भी "हमारी यह राय है" "हम यह कहते है" ऐसा बहुवचन का प्रयोग क्यो करते है ? इसके उत्तर मे बापूजी ने कहा, कि सम्पादक जो लिखता है वह उसके अकेले का ही विचार नही होता। उसके अनेक साथियो के विचार भी उसके विचार मे मिले हुए होते है इसलिए वह अपने लेख मे अपने लिए एक वचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग करता है।

इसके बाद विज्ञापन हटाने के सबध मे मेरे प्रश्न के उत्तर मे बापूजी ने कहा, "दूकानदार लोग अपनी चीजो का बहुत चढा-बढा कर बखान छपवाते है। हमारे छापने से उनके ग्राहक बढते है लेकिन हम पैसे के लालच से आजतक जो विज्ञापन छापते थे वह गलत काम करते थे। दूकान-दार अपना माल अच्छा न होने पर भी अच्छा बतावे अथवा जैसा हो उससे कई गुना बढाकर बतावे, यह झूठ ही तो हुआ। सच्चा आदमी ऐसी झूठी बाते क्यो कर छाप सकता है। फिर जो चीज हम अपने उपयोग मे लाते नही और लाना गलत समझते है उन चीजो को लेने का, हमारा अखबार पढ कर, लोगो का मन करे तो वह हमारी ही भूल कही जायगी न ?"

एक और प्रश्न के उत्तर मे बापूजी ने मुझे समझाया कि जब तू टोली-नायक है तब अपनी टोली के करने का काम अधूरा न रह जाय, यह देखना तेरा कर्तव्य है। तेरे साथी लडको मे से कोई आलस करे तो उस दिन तू दुगना काम करना लेकिन काम बाकी मत रहने दे।

: ५४ :

वह चिरजीवी इतिहास !

सत्याग्रह के इस इतिहास को औरो की दृष्टि से देखने के बदले उसके प्रणेता के शब्दो मे पढना ही अच्छा होगा। तीन पौड के कर को हटाने मे विजयी होने के तुरत बाद स्वय बापूजी ने 'इडियन ओपीनियन' के विशेषाक मे गुजराती मे एक लेख लिखा था। उसका कुछ अश लेकर उस इतिहास का दर्शन कराना जरूरी समझता हू। बापूजी ने लिखा था—

"फीनिक्स की टोली के जेल जाने के बाद जोहान्सबर्ग से नही रहा गया। वहा की औरते अधीर हो गई और उनको जेल जाने का बहुत उत्साह हुआ। श्री कैलनबैक उनको लेकर फीनिखन गये। वहा जाने मे उम्मीद यह थी कि वे फ्री स्टेट (ऑरेज कॉलोनी) की सरहद पर जा कर लोटते समय गिरफ्तार हो जायगी। उनकी उम्मीद पूरी नही हुई। कुछ दिन उन्होने फीनिखन मे ही सुख-दुख मे बिताये। वहा सिर पर डलिया रख कर फेरी लगाई। परतु किसी ने उनको पकडा नही। इस निराशा मे अमर आशा छिपी हुई थी। सरकार ने महिलाओ को फीनिखन मे ही पकड लिया होता तो कदाचित् हडताल न होती। यह तो निश्चित बात है कि वह जम कर जिस पैमाने पर हुई उस पैमाने पर नही हो सकती थी। किन्तु कौम पर ईश्वर का हाथ था।

"भगवान् सदैव सत्य का रक्षक है। महिलाए पकडी न गई तब तय किया गया कि वे नेटाल की सीमा पार करे। यदि उनको पकडा न जाय तो श्री थम्बी नायडू के साथ वे न्यूकेसल मे अपनी छावनी डाले। यह निश्चय किया गया था कि सत्याग्रही महिलाए न्यूकेसल मे गिरमिटियो तथा उनकी स्त्रियो से मिले। उनकी दुर्दशा का उनको खयाल करायें और तीन पौड के कर के बारे मे उनको हडताल करने के लिए समझायें। जब

मै न्यूकेसल पहुच जाऊ तब हडताल की जाय। किन्तु महिलाओ की उपस्थिति ने सूखे ईंधन पर दियासलाई का काम किया। सेज-पलग के बिना न सोने वाली और मुश्किल से अपना मुह खोलने वाली इन महिलाओ ने गिरमिटियो की आम सभा मे भाषण दिये। वे जाग उठे और उन्होने मेरे पहुचने से पहले ही हडताल करने का आग्रह किया। यह बहुत खतरनाक काम था। मुझको श्री नायडू का तार मिला। श्री कैलनबैक न्यूकेसल गये और हडताल शुरू हो गई। मेरे पहुचने तक कोयले की दो खानो के भारतीयो ने काम बन्द कर दिया था।

"मिस्टर होस्केन की अध्यक्षता मे यूरोपियनो की सहायक समिति ने मुझे बुलाया। मै उनसे मिला। उन्होने हमारे आन्दोलन को पसन्द किया और प्रोत्साहन देने का प्रस्ताव किया। एक दिन जोहान्सबर्ग मे रुक कर मै न्यूकेसल पहुचा और वहा रुक गया। मैने देखा कि लोगो मे बेहद उत्साह था। सरकार महिलाओ की उपस्थिति को सह नही सकी और उसने अन्त मे उनको आवारागर्दी का जुर्म लगाकर जेल भेज दिया

"श्री लेभरस का मकान अब सत्याग्रहियो की धर्मशाला बन गया। वहा सैकडो गिरमिटियो के लिए खाना पकाना जरूरी हो गया। फिर भी श्री लेभरस ने निरुत्साह को अपने पास फटकने नही दिया। न्यूकेसल के भारतीयो ने एक समिति नियुक्त की। श्री सीदात प्रमुख नियुक्त हुए। जोरो से काम चल पडा। दूसरी खानो के भारतीयो ने भी काम छोड़ दिया।

"इस प्रकार, खानो के मजदूर काम बन्द करते चले तब कोयला-खानो के मालिको के मडल की सभा हुई। वहां बहुत बातचीत हुई, पर कोई फैसला नही हुआ। उनकी माग यह थी कि यदि हमारी ओर से हडताल रोक दी जाय तो वे लोग सरकार से तीन पौंड के कर के बारे मे लिखा-पढी करेगे। सत्याग्रही यह स्वीकार नही कर सकता। हमे मालिको से कोई बैर नही था। हडताल का उद्देश्य मालिकों को दुख पहुचाने का नही था, केवल हम दु ख उठाए, यही था। इसलिए कोयला-खानो के मालिको की सलाह को स्वीकार किया जा सके, ऐसा नही था। मै फिर न्यूकेसल लौट गया। उस सभा का नतीजा मैने सुनाया तो उत्साह बढ़ गया। और भी खानो मे काम बन्द हो गया।

"अब तक मजदूर लोग अपनी-अपनी खानो पर ही रहे थे। न्यूकेसल की कार्यवाही समिति ने सोचा कि जब तक गिरमिटिये लोग अपने मालिक की जमीन पर रहेगे तब तक हडताल का पूरा प्रभाव पडने वाला नही है। वे लोग लालच मे आकर या डर कर काम शुरू कर दे, यह खतरा था ही

और मालिक का काम न करने पर भी उसके घर मे वसना अथवा उसका नमक खाना अनीति कही जायगी। अर्थात् गिरमिटिए का खान पर रहना दोषयुक्त था। यह दोष सत्याग्रह के शुद्ध प्रयास को मलिन करने वाला मालूम दिया। दूसरी ओर, हजारो भारतीयो को कहा पर रखा जाय, उनको किस तरह भोजन कराया जाय, ये सव विकट समस्याए थी। श्री लेभरस का मकान अव छोटा महसूस हुआ। फिर भी चाहे जैसा खतरा उठा कर भी खानो को खाली ही करने का निश्चय किया गया। गिरमिटियो को अपनी खाने छोड कर न्यूकेसल चले आने का सदेश पहुचाया गया।

"खवर मिलते ही खानो से कूच शुरू हो गई। वेलगी की खान के भारतीय पहले आ गए। न्यूकेसल मे ऐसा दृश्य वन गया मानो हर रोज यात्रियो का सघ ही आ रहा हो। जवान, बूढे, औरतें—कोई अकेली तो कोई गोद मे बच्चे वाली, सभी स्त्रिया अपने-अपने सिर पर गठरिया लिये हुए चल दी, मर्दो के सर पर पेटिया नजर आती थी। कोई दिन मे आ पहुचते थे, तो कोई रात मे। उनके लिए भोजन का इन्तजाम करना पडता था। इन गरीब लोगो की सतोष-वृत्ति का मै क्या वयान करू। जो कुछ थोडा-सा मिल गया उसे वे सुख समझते थे। कोई रोता हुआ शायद ही नजर आता था। सव के मुख पर स्मित दमक रहा था। मेरे मत से तो वे तेतीस कोटि देवताओ मे से थे। स्त्रिया देवी रूप थी। उन सब के लिए छत की व्यवस्था कैसे सभव हो सकती थी ? सोने के लिए 'तृणशय्या' थी, छत के स्थान पर आकाश था। रक्षक उनका ईश्वर था। किसी ने बीडी की माग की। मैने उसको समझाया कि उन्होने गिरमिटियो के रूप मे यात्रा नही की है, भारत के सेवको के नाते निकले हुए है। धार्मिक लडाई मे शामिल हुए है, और ऐसे अवसर पर तम्बाकू आदि व्यसनो को उन्हे त्याग देना चाहिए। इन साधु पुरुपो ने ऊपर वाली सलाह स्वीकार कर ली और इसके वाद किसी ने बीडी के लिए पैसा खर्च करने की माग मेरे पास नही की। इस प्रकार खानो मे से पांत-की-पात लोगो की चल पडी। उनमे एक गर्भवती स्त्री को चलते-चलते रास्ते मे गर्भपात हो गया। ऐसे अनेक दुख उठाने पर भी कोई थका नही, पीछे हटा नही।

"न्यूकेसल मे भारतीयो की सख्या वहुत बढ गई। वहा के भारतीयो के स्थान भर गए। उनके वहा जितने मकान मिल सके उनमे स्त्रियों और बूढो का समावेश किया गया। यहा पर कहना होगा कि न्यूकेसल मे बसने वाली गोरी जनता ने वहुत विनय का वर्ताव रखा था। उन्होने अपनी सहानुभूति भी दरसाई थी। एक भी भारतीय को उन्होने सताया नही। एक भली महिला ने अपना मकान मुफ्त मे ही उपयोग के लिए

दे दिया था। और भी बहुत-सी छोटी-मोटी सहायता गोरो के पास से मिलती रहती थी।

"परन्तु न्यूकेसल में हजारो भारतीयो को सदा के लिए रखा जा सके ऐसी हालत नही थी। 'मेयर' घबरा गए थे। साधारणतया न्यूकेसल की आबादी तीन हजार मानी जाती थी। ऐसे देहात मे दूसरे दस हजार मनुष्य समा ही नही सकते थे। अन्य खानो के मजदूर भी काम बन्द करने लगे, तब यह प्रश्न उठा कि क्या किया जाय। हडताल करने का उद्देश्य जेल जाने का था। सरकार चाहे तो वह मजदूरो को गिरफ्तार कर सकती थी। किन्तु हजारो के लिए उसके पास जेले भी नही थी। इसलिए उसने मजदूरो पर हाथ नही डाला। इस हालत मे ट्रान्सवाल की सरहद को पार करके गिरफ्तार होने का सरल उपाय हमारे पास था। यह भी खयाल किया गया कि ऐसा करने पर न्यूकेसल की भीड कम होगी और हडताल करनेवालो की कसौटी भी हो जायगी।

"न्यूकेसल मे खान-मालिको के जासूस लोग हडताल वालो को ललचा रहे थे। पर एक भी मजदूर डिगा नही फिर भी उस लालच से उनको दूर रखना कार्यवाहक मडली का कर्त्तव्य था। इन कारणो से न्यूकेसल से चार्ल्सटाउन कूच करके जाना उचित मालूम हुआ। मार्ग करीब पैंतीस मील का था। हजारो मनुष्यो के लिए रेलभाडा नही खर्च किया जा सकता था; जो स्त्रिया चल न सके उनको रेल मे ले जाने का निश्चय हुआ। रास्ते मे गिरफ्तारिया होने की सभावना थी। और फिर इस प्रकार का यह पहला ही अनुभव होने वाला था। इसलिए निश्चय हुआ कि पहली टुकडी को मैं ले जाऊ। पहली टोली मे लगभग पाच सौ व्यक्ति थे, जिनमे लगभग साठ स्त्रिया अपने बच्चो के साथ थी। इस टुकडी का दृश्य मैं कभी भूल नही सकता। यह टुकडी 'द्वारकानाथ की जय,' 'रामचन्द्र की जय,' 'वन्देमातरम्' के नारे लगाती हुई चलती थी। दो दिन के लिए आवश्यक मात्रा मे पका-पकाया दाल-चावल सबके साथ बधवा दिया था। सब अपने-अपने बोझ को बाध कर चल पडे। उनको नीचे लिखी शर्तें सुना दी गई थी:

"१. मै गिरफ्तार कर लिया जाऊ, ऐसा सभव था। यदि ऐसा हो तो भी टुकडी अपना कूच जारी रखे और जब तक खुद नही पकड लिये जाय, तबतक वे चलते रहे। रास्ते मे खाने के लिए और पीने के पानी के लिए व्यवस्था करने का सब प्रयत्न किया जायगा, फिर भी यदि किसी दिन खाना न मिले तो सतोष रखे।

"२. लडाई मे जबतक रहे, शराब आदि का दुर्व्यसन छोड दे।

"३. मौत आने पर भी पीछे कदम न करे।

"४. मार्ग मे रात हो जाय तो टिकने के लिए मकानो की आशा न करके घास पर ही पडे रहने को तैयार रहे।

"५. रास्ते मे आने वाले पेड-पौधो को जरा भी नुकसान न पहुचाया जाय और पराई वस्तुओ को बिलकुल छुआ न जाय।

"६. पुलिस गिरफ्तार करने आये तब अपने को पकडवा लिया जाय।

"७ पुलिस से या और किसी से मुकाबला न किया जाय, किन्तु जो मार पडे वह सहन कर ली जाय तथा प्रहार के सामने प्रहार करके अपना रक्षण न किया जाय।

"८. जेल मे जिन कष्टो को भुगतना पडे उन्हे भुगत लिया जाय और जेल को महल समझ कर वहा पर दिन बिताए जाय।

"इस सघ मे सभी वर्ण तथा धर्म वाले थे—हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे। कलकतिये थे, तमिल थे। कुछ पठानो और उत्तर की ओर के सिंधियो को मार खाकर भी अपना बचाव न करने वाली शर्त कठिन महसूस हुई थी, किन्तु उन्होने उसे खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया। यही नहो, कसौटी का मौका आने पर उन्होने अपने बचाव मे भी अपना हाथ नही उठाया।

"ऐसी परिस्थिति मे पहली टुकडी का कूच शुरू हुआ। पहली रात को ही जगल मे घास पर सोने का अनुभव मिला। रास्ते मे करीब एक सौ पचास आदमियो के लिए वारट आए। वे लोग खुशी से गिरफ्तार हो गए। उनको पकडने के लिए केवल एक ही पुलिस अफसर आया था। उसकी सहायता के लिए और कोई नही था। जो पकडे गए उनको कैसे ले जाय, यह प्रश्न सामने आया। हम लोग चार्ल्सटाउन से केवल छ मील दूर थे, इसलिए मैने अफसर से कहा कि यदि वह चाहे तो पकडे गए आदमियो को मेरे साथ कूच करने दे और चार्ल्सटाउन मे उनका कब्जा ले ले, अथवा अपने अधिकारी से पूछ कर जैसा हुक्म मिले, करे। अफसर ने मेरी सलाह स्वीकार की और वह लौट गया। हम लोग चार्ल्सटाउन पहुचे। चार्ल्सटाउन बहुत छोटा देहात है। मुश्किल से उसकी आबादी एक हजार की होगी। उसमे एक ही आम सडक है। बहुत कम भारतीय वहां बसते है। इसलिए हमारे सघ को देखकर गोरे लोग आश्चर्यचकित हुए। इतने भारतीय चार्ल्सटाउन मे कभी दाखिल नही हुए थे। पकडे गए लोगो को न्यूकेसल ले जाने के लिए रेलगाडी तैयार नही थी। पुलिस उन्हे कहा रखे, यह सवाल था। थाने मे भी इतने कैदियो को रखने की गुजायश नही थी।

इसलिए गिरफ्तार किये गए लोगो को पुलिस ने मेरे हवाले किया और उनके भोजन का बिल चुका देना स्वीकार किया। सत्याग्रह के प्रति यह कोई थोडे मान की बात नही थी। उनमे से कोई लापता हो जाय तो हमारी जिम्मेदारी नही थी। लेकिन सत्याग्रही का काम पकडे जाने का ही होता है, ऐसा सबने समझ लिया था और इसलिए उन्हे विश्वास बैठ गया था। इस प्रकार ये पकडे गए लोग चार दिन तक हमारे साथ ही रहे। पुलिस उनको ले जाने के लिए तैयार हुई तब वे खुशी से उसके अधीन हो गए।

"टुकडियो की भरती होती चली गई। किसी दिन चार सौ तो किसी दिन उनसे भी अधिक लोग आते रहे। बहुत-से लोग पैदल आते थे और स्त्रिया प्राय: गाडी से आती थी। चार्ल्सटाउन के भारतीय व्यापारियों के मकानो मे जहा पर जगह थी वहा सुविधा की गई। वहा के कोपेरेशन ने भी मकान दिये। गोरे लोग बिलकुल सताते नही थे, बल्कि सहायता भी देते थे। वहा के डाक्टर ने मुफ्त मे चिकित्सा व शुश्रूषा का काम करना अपने ऊपर ले लिया। हम लोग जब चार्ल्सटाउन से आगे बढे तब उन्होने मूल्यवान दवाइया और कुछ आवश्यक औजार नि शुल्क दे दिये। रसोई मसजिद के मकान मे होती थी और चूल्हा चौबीसों घटे जलता रखना पडता था। रसोई का काम करने वाले हडतालियो मे से ही तैयार हुए थे। अन्तिम दिनों मे तो चार से पाच हजार आदमियों को भोजन कराना पडता था। फिर भी काम करने वाले हारे नही। सवेरे-सवेरे मकाई के आटे की मीठी लपसी दी जाती थी और मक्की की रोटी भी। शाम को चावल और दाल तथा शाक दिया जाता था। दक्षिण अफ्रीका मे सब लोग प्राय. तीन बार खाने वाले होते है। परन्तु उन हडतालियो ने सत्याग्रह-सग्राम के समय दो बार भोजन करके सतोष माना। वे लोग स्वाद का आनन्द लेने वाले होते है, पर वहा वह स्वाद भी उन्होने छोड दिया।

"चार्ल्सटाउन मे इतने मनुष्यो को लम्बे अरसे तक सुविधा-असुविधा मे रखने पर लोगो का उपद्रव फैल जाने का खतरा था। ये हजारो व्यक्ति, जो सदैव काम करने वाले ही होते है, बेकार बैठे रहे यह उचित भी नही था। यहा पर यह बता देना आवश्यक है कि इतने गरीब आदमी वहा इकट्ठे हो गए थे, फिर भी चार्ल्सटाउन मे एक भी व्यक्ति ने चोरी नही की। किसी भी समय पुलिस की आवश्यकता पैदा नही हुई, और न पुलिस को किसी भी समय अधिक काम ही करना पडा। इस पर भी अब चार्ल्सटाउन मे ही न बैठा रहा जाय, यही उत्तम मार्ग जान पडा। इसलिए ट्रान्सवाल मे प्रवेश करने का और यदि पकडे न जाय तो टाल्स्टाय-फार्म पहुचने का निश्चय हुआ। कूच करने से पहले सरकार को खबर दी गई

कि गिरफ्तार होने के लिए हम लोग ट्रान्सवाल मे प्रवेश करने वाले है। हम लोगो को वहा पर रहना नही है, वहा पर बसने के अधिकारो की हमे अपेक्षा नही है, परन्तु जबतक सरकार नही पकडेगी, हम टाल्स्टाय-फार्म मे जाकर डेरा डालेगे। सरकार यदि तीन पौड का कर हटा देने का वचन दे देगी तो हम लौट जाने के लिए तत्पर रहेगे।

"इस नोटिस पर कुछ भी गौर करने की मनोवृत्ति सरकार की नही थी। उसके जासूस उसको चक्कर मे डाल कर उकसा रहे थे। लोग थक जायगे ऐसा आश्वासन वे अधिकारियो को देते थे। सरकार ने सभी भाषाओ मे चुनौतिया छपवा कर हडतालियो के बीच बटवा दी।

"अन्त मे चार्ल्सटाउन से आगे बढने का समय आ गया। तारीख छ· नवम्बर (१९१३) को तीन हजार के सघ ने प्रभातवेला मे प्रयाण किया। सारी पक्ति एक मील से भी ज्यादा लम्बी थी। श्री कैलनबैक तथा मै पीछे के हिस्से मे थे। सघ सरहद पर पहुच गया। वहा पुलिस की टुकडी मौजूद थी। हम दोनो वहा पहुचे, तब पुलिस से बातचीत हुई। उसने हम लोगो को गिरफ्तार करने से इन्कार कर दिया। तब सारा जलूस अनुशासन के साथ शातिपूर्वक वालक्रस्ट के मध्य से गुजरा। शहर के बाहर स्टाडर्टन रोड पर जाकर सभी ने पडाव डाला। सबने खाना खाया। स्त्रिया कूच मे शामिल न हो ऐसी व्यवस्था की गई थी, परन्तु उनके जोश की बाढ को रोकना कठिन हो गया और कुछ स्त्रिया शामिल हुई। फिर भी कुछ स्त्रिया तथा बालक अब भी चार्ल्सटाउन मे रह गए थे। उनकी सार-सम्हाल के लिए वालक्रस्ट की सरहद से पार होने के बाद मैने श्री कैलनबैक को भेज दिया।"

: ५५ :

सत्याग्रह का प्रवाह : बापू की कठोर साधना

पाठक पीछे के अध्याय मे पढ चुके है कि श्रीमती थम्बी नायडू के नेतृत्व मे जोहान्सबर्ग की महिला सत्याग्रहियो के कारण न्यूकेसल की कोयले की खानो मे हडताल प्रारम्भ हो गई थी। यह भी पाठक बापूजी के लेख मे पढ चुके है कि वह हडताल जोर पकड़ गई और बापू ने उसका सचालन

स्वय अपने हाथो मे ले लिया था। पाठक यह भी जानते है कि बापूजी ने सात दिन के उपवास के बाद साढे चार मास के एकासने (एकसमय भोजन) का व्रत लिया था, जो इन दिनो भी चल रहा था। इस कारण उनका शरीर पहले का-सा मजबूत नही रह गया था। उस पर सत्याग्रह और हडताल की यह भारी जिम्मेदारी! यह सब देख-सुनकर हम फीनिक्सवासी लोग और खासकर मगनकाका वडे चिंतित रहने लगे। मगनकाका तो बार-बार यह कहा करते कि अच्छा हो बापू जल्दी ही गिरफ्तार हो जाय। समय-समय पर कोई-न-कोई न्यूकेसल से फीनिक्स बापू का सदेशा लेकर आता। उससे बापू की हालत का पता चलता रहता। यह सब सुन-सुन हम सब फीनिक्सवासी चिंतित रहने लगे क्योकि बापू अपने व्रतो के पालन मे बडे कठोर थे। दूध-घी आदि का त्याग वह बहुत पहले कर चुके थे। एक बार के भोजन मे भी बापू केवल फल लेते थे। और जब हडताल करने वाले गिरमिटिये मजदूरो का नेतृत्व उन्होने अपने ऊपर ले लिया तो उन भूखे और निराधार स्त्री-पुरुषो के साथ रह कर महगे फल और मेवे वह अपने लिए कैसे मगा सकते थे! दूसरी ओर अपने काम करने का वेग और परिश्रम दुगना-चौगुना कर दिया। उन दिनो बापू की दिनचर्या निम्न प्रकार थी :

प्रात. चार बजे से पहले ही अपने नित्य-कर्म से निवृत्त होकर ठीक चार बजे से बापूजी अपनी देखभाल मे रसोई का काम प्रारभ करा देते थे और दिन निकलते ही हडताली मजदूरो की प्रथम टोली को भोजन के लिए बैठा देते थे। बापूजी स्वय अपने ही हाथो उन सबको खाना परोसते थे। इस प्रकार बारी-बारी से उन साढे चार हजार मजदूर स्त्री-पुरुषो और बच्चो को खाना खिलाने का सिलसिला लगातार रात के दस बजे तक चलता था। एक बार की रसोई परोस चुकने के बाद दूसरी रसोई तैयार होने तक जो समय मिलता था उसमे नये-नये आने वाले हडताली दलो की व्यवस्था करने मे उनका समय जाता था। वह यह देखते थे कि कोई भूखा, प्यासा न रह जाय। औरतो, बच्चों व बूढो को भरसक सुविधा मिले।

परोसने का तरीका यह था कि एक मेज पर खाना रख दिया जाता था। मेज के सामने से होकर हडतालियो की कतार हाथ मे अपने बर्तन लिये आगे बढती जाती थी और बापूजी प्रत्येक की थाली मे खाना परोसते थे। राशन 'क्यू' और इस 'क्यू' मे अन्तर यह था कि पका-पकाया अन्न परोसने मे बापूजी हजारो लोगो के साथ अपना व्यक्तिगत सपर्क साध लेते थे और उनके मुख के भाव पर से सबके सुख-दुख, आशा-निराशा उत्साह-भीरुता आदि को भरसक जान लिया करते थे। इतना ज्यादा भोजन बनाने

में खाना कच्चा या जला-अधजला रह ही जाता था। सख्या के हिसाब से कई बार आधा पेट खाना परोसना पडता था और थोडा सतोप रखने के लिए कहना पडता था। इस प्रकार हजारो व्यक्तियो को स्वय परोसने मे सुबह से लेकर आधी रात तक एक पल के लिए भी बापूजी कुर्सी पर या जमीन पर बैठ नही पाते थे। रात को दस बजे रसोई उठा देने के बाद भी वह हडतालियो के बीच चक्कर लगाने के लिए निकल पडते थे और सारी व्यवस्था देखने के बाद सबके साथ ही घास पर सो जाते थे। वह प्राय. रात के बारह बजे सो पाते थे और ब्राह्म मुहूर्त मे दो-ढाई बजे फिर उठ बैठते थे।

उठकर दातौन आदि से निबटने के बाद बापूजी तुरत ही अपना चौबीस घटो मे एक बार का फलाहार भी कर लिया करते थे, क्योकि दिन-भर मे फिर फलाहार करने के लिए उनको पूरा समय नही मिल पाता था। मूगफली के दाने चबाने की फुरसत न होने के कारण उन्होने अपने आहार मे मूगफली की मात्रा भी घटा दी थी।

सवेरे भी समय की कमी का कारण यह था कि ऊषा का आलोक होने से पहले ही बापूजी को यह देखना पडता था कि कोई अधेरे मे गलत जगह पर पाखाना-पेशाब तो नही करता? तथा जहा भी टट्टी-पेशाब किया जाता है वहा ठीक तरह से उस पर सूखी मिट्टी डाली जाती है या नही? यदि इस बारे मे पूरी चुस्ती से काम न लिया जाता, गदगी को शुरू मे ही न रोक दिया जाता, तो इतनी भीड के जमा होने पर किसी भी समय भयावह बीमारी फैल सकती थी। अगर ऐसा होता तो गोरो की आबादी वाले उस शहर मे भारतीयो की प्रतिष्ठा को बडा भारी धक्का लगता, और सत्याग्रह के सघर्ष को हानि पहुचती।

इस प्रकार एक ओर तो दारुण परिश्रम व अल्पहार से बापूजी अपने शरीर को सुखा रहे थे और दूसरी ओर एक दूसरा सकट भी उनके सिर पर मडरा रहा था। गिरमिटिया लोगो की इस हडताल के कारण सारे नेटाल प्रान्त के वातावरण मे ऐसी गरमी छा गई थी और निहित स्वार्थ वाले गोर-प्रभुओ की मनोवृत्ति आपे से बाहर हो रही थी कि किस समय वे क्या कर बैठेंगे इसका कोई अन्दाजा नही था। हर समय यह डर लगा रहता था कि बहकावे मे आकर कोई भी हडताली बापूजी पर हमला न कर बैठे! ऐसे वातावरण मे उस परदेश मे गोरे मालिको की नौकरी छोडते ही उनको कही से एक कण भी अन्न प्राप्त होना कठिन था। इस हालत मे भूख की ज्वाला से पीडित होकर और हडताल के कष्टो से तग आकर यदि किसी हडताली का दिमाग फिर जाय और वह बापू को ही अपना जानी दुश्मन मान बैठे तो भी आश्चर्य की बात न थी।

ऐसे वातावरण मे एक दिन जब बापूजी मेज पर रसोई के बरतन लगवा रहे थे और परोसने की तैयारी हो रही थी तब एकाएक लोगो की भीड मे खलबली मच गई। कुछ लोग दूसरो को धक्के देकर आगे बढे और उन्होने परोसने की मेज पर धावा बोलना चाहा। लेकिन बापूजी ने उन्हे आगे बढने से रोक दिया और समझा-बुझाकर शान्त कर दिया। वे बोले, "धीरज खोने का कोई कारण नही है। यकीन रखिए कि आप लोगो मे से एक को भी मै भूखा नही रहने दूगा। एक बच्चा भी भूखा नही रहेगा। लेकिन आप लोगो ने हुल्लड किया और छीना-झपटी की तो पहले मुझ पर वार करना होगा।"

बापूजी के इन शब्दो ने उफनते हुए दूध मे पानी की बूद की तरह काम किया। सारी भीड शान्त हो गई और वे बाकायदा कतार मे रहकर बारी-बारी से अपनी थाली परोसवाने लगे।

इस प्रकार बापूजी एक ओर तप से अपने शरीर को कस रहे थे तो दूसरी ओर सत्याग्रह को पवित्र और जोरदार बना रहे थे।

: ५६ :

वह चिरजीवी इतिहास—२

तीन हजार भारतीय गिरमिटियो के सघ को लेकर बापूजी ट्रान्सवाल की सीमा मे आगे बढे तब अधिक देर तक सरकार चुप नही रह सकी। उनको गिरफ्तार करने के लिए वह मजबूर हो गई। इसके बाद का विवरण बापूजी के शब्दो मे निम्न प्रकार है, जो पिछले (वह चिरजीवी इतिहास—१) प्रकरण ५४ मे उद्धृत किये गए 'इडियन ओपीनियन' के लेख का शेष अश है।

"अगले दिन सवेरे पामफर्ड के पास पुलिस ने मुझे गिरफ्तार कर लिया। मुझपर अनधिकारी लोगो को ट्रान्सवाल मे प्रविष्ट कराने का अपराध लगाया गया था औरो को गिरफ्तार करने का हुक्म नही था। इसलिए बालक्रस्ट पहुचने पर सरकार को निम्न प्रकार तार दिया' 'सत्याग्रह की लडाई के मुख्य प्रचारक को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया है इससे मै खुश हुआ हू, लेकिन साथ-साथ यह भी कहे बिना मुझसे नही रहा जाता कि गिरफ्तारी के लिए जो मौका साधा गया है वह दया की दृष्टि से अत्यत नाजुक और

खतरनाक है। सरकार को शायद पता होगा कि इस कूच मे १२२ स्त्रिया और ५० बालक है। सब लोग, जबतक अपने-अपने स्थान पर नही पहुचते, केवल जिन्दगी टिकाने-भर के लिए थोडे-से आहार पर गुजर कर रहे है। सर्दी-गर्मी से रक्षण की कुछ भी सुविधा उन लोगो के लिए नही है। ऐसी परिस्थिति मे मुझको उन लोगो से अलग करना अतिशय हानिकर होगा। जब कल रात को मुझको गिरफ्तार किया गया, मै अपने साथ के लोगो को पता दिये बिना ही, उनको छोड कर आ गया। वे लोग कदाचित क्रोध से बेहद पागल हो उठेगे। इसलिए मै यह माग करता हू कि या तो सरकार उनके साथ मुझे कूच करने की स्वीकृति दे या वह उन लोगो को रेलगाडी से टालस्टाय-फार्म पहुचा दे और उनके लिए भोजन की भी व्यवस्था करे। जिस पर उनका विश्वास है उससे उनको पृथक कर देना, साथ-ही-साथ उनके लिए खाने-पीने का कुछ भी इन्तजाम न करना अनुचित होगा। मुझे उम्मीद है कि पुनर्विचार करने के बाद सरकार अपना निर्णय बदलेगी। यदि कूच के बीच मे ही कोई आकस्मिक घटना घटेगी और विशेषत. यदि किसी दुधमुहे बच्चे वाली स्त्री की मृत्यु होगी तो उसका उत्तरदायित्व सरकार पर रहेगा।"

"सघ आगे बढा। मुझको वालक्रस्ट के न्यायाधीश के सम्मुख पेश किया गया। अपना बचाव तो मुझे करना ही नही था, लेकिन जो लोग पामफर्ड से आगे निकल गए थे, और जो अभी चार्ल्सटाउन मे पडे थे, उनके लिए कुछ व्यवस्था करनी बाकी थी। इसलिए मैने मियाद मागी। सरकारी वकील ने उसके खिलाफ बहस की, लेकिन न्यायाधीश ने कहा कि जमानत की नामजूरी केवल खून के मुकदमे मे ही की जा सकती है। इसलिए उसने मुझसे पचास पाउड की जमानत माग ली और एक सप्ताह की मियाद दी। मै छूटकर सीधा कूच करनेवालो से जा मिला। उनका उत्साह दुगना हो गया। इस बीच प्रिटोरिया से तार आ गया कि सरकार का इरादा मेरे साथ वाले भारतीयो को पकडने का नही है, नेताओ को ही पकडा जायगा। इसका अर्थ यह नही था कि अन्य सब को छूट दे दी जायगी; लेकिन सबको पकड कर हमारे काम को सरल बनाने का अथवा भारत मे खलबली मचाने का सरकार का इरादा नही था।

"हमारे पीछे-पीछे श्री कैलनबैक एक बडी टोली लेकर आ रहे थे। जब हमारा दो हजार लोगो का सघ स्टैन्डर्टन तक पहुचा तब मुझको दुबारा गिरफ्तार किया गया, और मुकदमे की तारीख ११वी डाल दी गई। हम तो आगे चले, किन्तु अब सरकार से यह सब बर्दाश्त नही किया जा सकता था। इसलिए उसने इन सबसे पहले मुझको तत्काल पृथक् कर देने का कदम

उठाया। इस समय श्री पोलक को डेपुटेशन लेकर हिन्दुस्तान भजने की तैयारी चल रही थी। विदा होने से पहले वह मुझसे मिलने आये। किन्तु अपना किया आरभ अधवीच मे ही रह गया और 'हरि करे सो होय' के अनुसार रविवार के दिन मुझे तिवारा ग्रेलीगस्टाड के पास पकड़ लिया गया। इस बार वारण्ट डडी से निकाला था और मुझपर गिरमिटियो से काम छुडाने का अपराध लगाया गया था। मुझे वहा से बहुत ही लुकाछिपा कर डडी ले जाया गया। मै बता चुका हू कि श्री पोलक कूच मे हमारे साथ थे। उन्होने यह काम सम्भाल लिया। मगल के दिन डडी मे मुझपर मुकदमा चला। मुझपर लगाये गए तीनो अपराध मुझको पढकर सुना दिये गए। मैने उनको स्वीकार किया और कोर्ट की अनुमति लेकर मैने कहा—

'अपने प्रति और सारी जनता के प्रति न्याय के लिए मुझे बताना चाहिए कि जो अपराध मुझपर लगाये गए है उनका सारा उत्तरदायित्व एक वकील के नाते और नेटाल के पुराने निवासी के नाते मै अपने ऊपर ले रहा हू। इन लोगो को नेटाल कालोनी से बाहर ले जाने के कारण जनता के दिल पर जो प्रभाव पडा है उसका उद्देश्य उत्तम था। खान के मालिको के साथ कोई झगडा नही है। इस लडाई से उन लोगो को गम्भीर नुकसान पहुचता है, इसके लिए मुझे खेद है। भारतीय मजदूरो को अपने यहा रखने वालो से भी मै निवेदन करता हू कि ३ पौड का कर मेरे देशवासी बधुओं पर भाररूप है और वह हटा दिया जाना चाहिए। मै मानता हूं कि माननीय श्री गोखले और जनरल स्मट्स के बीच जो बात पैदा हो गई है उसे देखते हुए मेरा कर्तव्य था कि जिस पर अत्यन्त ध्यान आकर्षित हो ऐसी लडाई मै चलाऊ। स्त्रियो को और गोद के बच्चो को जो सकट सहन करने पडे है उनको मै महसूस करता हू; फिर भी मै मानता हू कि लोगो को सलाह देने का मेरा कर्तव्य था और मैने उसका पालन किया है। जब तक वह कानून रद्द नही किया जाता तब तक अपने देशवासियो को काम न करने व भीख माग कर पेट भर लेने की बार-बार सलाह देना मै अपना कर्तव्य समझूगा। मुझे विश्वास है कि दुख उठाये बिना उनपर होने वाले जुल्मो का अन्त नही होगा।'

"मै तो जेल मे स्थिरता से बैठ गया। बाद मे मुझपर वालक्रस्ट मे मुकदमा चलाया गया और डडी मे मुझे जो नौ महीने की सजा हुई थी उसके अतिरिक्त तीन महीने का कारावास और दे दिया गया।

"इस बीच मुझे पता चला कि श्री पोलक गिरफ्तार कर लिये गए है और वह हिन्दुस्तान जाने के बदले जेल मे जाकर बैठ गए है। मै तो खुश ही हुआ। मेरे मन से डेपुटेशन के मुकाबले यह डेपुटेशन बड़ा था। इसके बाद

तुरन्त ही श्री कैलनवैक भी गिरफ्तार हो गए और वह भी पोलक की भांति तीन महीने को जेल मे जा वैठे। नेताओ को पकड लेने के वाद लोग झुक जायगे ऐसा मानने मे सरकार ने गलती ही की। सभी हडतालियो को करीव चार विशेप ट्रेनो मे भर कर डडी और न्यूकेसल की खानो पर लौटा दिया गया। वहा उन पर वेहद जुल्म ढाये गए। उनको वहुत कष्ट सहन करना पडा। लेकिन वे सव सहन करने के लिए निकले हुए थे ही। सभी नेता थे। कथित नेताओ के विना उनको अपना वल वताना था, जो उन्होने वता दिया। किस प्रकार वताया यह ससार को विदित है। कवि दयाराम ने ठीक ही गाया है कि 'कष्ट पाम्या विना कृष्ण कोने मळया, चारे जुगना जुओ साधु शोधी'—(कष्ट पाए विना कृष्ण किसे मिले है! चारो युग के साधुओ को जाच कर देखो।)"

जिस दिन प्रथम वार वापूजी के गिरफ्तार होने की खवर फीनिक्स में आई उस दिन मगनकाका ने प्रसन्नता के साथ हम वालको को सुनाया कि "वालक्रस्ट की हद तो वह पार कर गए, परन्तु रात को जव सव लोग सो रहे थे, सरकारी आदमी इस प्रकार चुपचाप उन्हे पकड ले गए जिससे किसी को पता न चल पाए।"

इसके वाद प्रत्येक डाक से नई-नई खवरे आती गई। सारी परिस्थिति इतनी तेजी से वदलती जा रही थी कि एक वात पूरी तरह से समझ लेने से पहले ही दूसरी नई वात उपस्थित हो जाती थी। अधेरे-अधेरे मे गिरफ्तारी, फिर छूट जाना, दुवारा हडताली-सघ के वीच जा पहुचना और कूच का नेतृत्व करना आदि वातो की तह मे पहुचने की हम कोशिश कर रहे थे। एक दिन वुधवार होने के कारण रात के नौ-दस वजे तक छापाखाने मे कामकाज चल रहा था कि मगनकाका के पास वापूजी का पत्र आया। उसका सार कुछ इस प्रकार था .

"आज यहा पर मुकदमा चला। छूटने के लिए काफी गुजाइश थी। परन्तु सत्याग्रही इस तरह कैसे छूट सकता है? अपने वचाव मे मैने एक शब्द भी नही कहा। सारा आरोप अपने ऊपर ओढ लिया है। यहा के व्यापारी जमानत पर छुडाने के लिए और पैसे भर देने के लिए व्याकुल हो रहे है। जमानत पर निश्चित समय के लिए छूटा जा सकता था, परन्तु ऐसा करना आवश्यक नही है। मै जेल से वाहर रहूगा तभी हमारी लडाई ठीक तरह से चलेगी, यह मानना अभिमान है। इसमे ईश्वर का हाथ है। वह सव कुछ ठीक तरह से पार उतारेगा।"

इसके वाद जेल से उनका दूसरा पत्र आया। वह इस प्रकार है:

की आग जहा नही पहुची थी उन खानो मे भी पहुच गई। सुबह से शाम दुगने और शाम से सुबह चौगुने मजदूर हडताल मे शामिल होने लगे।

खान के मालिको के दिमाग का पारा अब बहुत ऊचा चढ गया। जब खानो की गहराई से पानी को फेकते रहने वाले पपो को चलाने का काम बन्द हो जाने की नौबत पहुची तब तो उनकी बेचैनी का कोई ठिकाना ही न रहा। भारतीय मजदूरो की जगह उन्होने नेटाल प्रान्त के आदिवासी जूलुओ को पप चलाने के काम पर लगाया। यद्यपि शरीर मे जुलू लोग भारतीयो के मुकाबले ड्योढे-दुगने तगडे होते है, उनके हाथ-पैर के स्नायु शेर के स्नायु जैसे सुगठित दीखते है, फिर भी वे सतत परिश्रम करने मे भारतीय मजदूरो का मुकाबला नही कर पाते थे। थोडी ही देर मे वे थक जाते। देर तक एक काम पर जुटे रहने की उनकी आदत ही नही होती। अधिक मजदूरी देने पर भी शाम से पहले वे उस काम को छोड जाते थे। इस प्रकार भारतीय मजदूरो के बिना कोयले की खानो मे हानि बढती गई। तब गोरे मालिक क्रोधाध होकर हडतालियो पर और भी सितम ढाने लगे। परन्तु ज्यो-ज्यो उनका कहर बढता गया त्यो-त्यो हडताल का दावानल भी अधिकाधिक दूर तक फैलता गया। यहा तक कि चार्ल्सटाउन व न्यूकेसल के आस-पास की वह हडताल पचासो मील आगे बढती हुई हमारे फीनिक्स की चौहद्दी पर आ पहुची। और इस तरह हम लोगो को यानी फीनिक्स के नाबालिगो को, सत्याग्रह के उस अपूर्व युद्ध-मोर्चे पर उपस्थित होने का जो सौभाग्य प्राप्त नही हो रहा था, वह प्राप्त हो गया। हम मोर्चे पर नही जा पाये तो वह मोर्चा खुद हमारे आगन मे ही आ गया।

फीनिक्स के चारो ओर चीनी की बहुत-सी मिले थी। उनके गिरमिटिये मजदूर अपने-आप हडताल मे शामिल हुए। बिना किसी के कहे-सुने, बिना किसी के निमन्त्रण के फीनिक्स मे आसरा लेने आ गए। गाधी-बाबा का वहा घर था इतना उनको मालूम था। पाच-पन्द्रह आदमियो की आबादी वाले हमारे फीनिक्स आश्रम मे अब हजारो आदमियो की रौनक हो गई। सुबह से शाम तक नये-नये दल आते ही गए। पूछने पर वे कहते थे: "हमारे राजा को सरकार ने कैद किया है, उसकी रानी और बच्चो को भी कैद किया है; तो फिर हम क्यो काम करे?"

उन भोले लोगो को 'नेता', 'अगुआ' आदि शब्दो का भी ज्ञान नही था। उन्होने बापूजी को, जो उनके सुख-दुख के साथी थे, 'राजा' की सज्ञा दे दी थी।

भारत के प्राचीन इतिहास मे जहा कही भी शस्त्रयुद्ध की कहानी पढने को मिलती है, बहुधा यह विवरण मिलता है कि ज्यो ही राजा कैद कर लिया जाता था या वह घायल हो जाता था तो उसके दल के सैनिको

में तत्काल भगदड मच जाया करती थी और विरोधी पक्ष अकस्मात विजयी हो बैठता था। यह प्राचीन परम्परा दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह-सग्राम मे जड-मूल से बदल गई। गिरमिटिया मजदूरो में न तो कोई तालीम पाये हुए सैनिक थे, न जन्मजात क्षत्रिय; अधिकतर लोग शूद्र थे। उन्हे हम छोटे बच्चे भी गया-गुजरा समझते थे। हब्शी पडोसियो से जान-पहचान करने मे हमे आनन्द आता था, परन्तु गन्ने के खेतो मे गोरे मालिको की मज-दूरी मे अपमानित होकर दिन-रात जुटे रहने वाले अपने भाइयो को देखकर हल मे जुते हुए बैलो के प्रति होने वाला भाव हमारे मन में पैदा होता था।

ऐसे दीन और श्रीहीन गिरमिटियो में, बापूजी के अहिंसामय सत्याग्रह आन्दोलन ने बिजली की-सी शक्ति पैदा कर दी थी। बडे-बडे गुणवानो और पढे-लिखे शिष्टजनो को मात कर देने वाले महान सद्गुण और पराक्रम की झलक उन गिरमिटिया मजदूरो ने बताई। नेटाल में प्राय पौन लाख भारतीय मजदूर गोरो की गुलामी मे थे। अमरीका के हब्शी गुलामो और दक्षिण अफ्रीका के इन भारतीय अर्धगुलामो के दुख-दैन्य की कहानी करीब एक-सी ही अकथनीय थी।

न्यूकेसल के कोयले के क्षेत्र मे, जो अधिक विस्तृत नही था, श्रीमती थम्बी नायडू की टोली ने हडताल की आग फैलाने मे तेल छिडकने तथा दियासलाई देने का काम किया था। परन्तु फीनिक्स के आस-पास गन्ने के खेतिहर मजदूरो मे हडताल का प्रचार करने के लिए शायद ही कोई गया हो। वहा प्रचार करना आसान भी नही था। डरबन से उत्तर मे पचास मील से भी अधिक दूरी तक गन्ने की खेती के क्षेत्र फैले हुए थे। चीनी की मिलो के माउटेजकम्ब, वेरुलम, टोगाट, स्टेंगर, अमजीन्टो आदि बडे केन्द्र फीनिक्स आश्रम से दस, बीस और पचास मील तक दूर थे। वहा के गिरमिट मजदूरो को बापूजी के सपर्क मे आने का प्रसग कभी आया ही नही था। तब बापूजी महात्मा नही बने थे, न 'गाधी' शब्द मे तब कोई जादू ही समाया था।

इस पर भी अज्ञान के दलदल मे फसे हुए इन हतभागे भारतीयो के अन्तर मे न्याय को प्राप्त करने और अन्याय का प्रतिरोध करने के लिए ज्वाला भडक उठी। बापूजी के विशुद्धतम और अति उग्र तप का यह परिणाम था, भारतीय महिलाओ के अहिंसक आक्रमण का यह सुफल था और निष्ठावान सत्याग्रहियो के 'मर जायगे पर झुकेगे नही,' इस अटल सकल्प का यह परिणाम था।

नेटाल प्रान्त का शायद ही कोई कोना ऐसा बचा होगा जहा पर भारतीय

गिरमिटिये गोरे मालिकों की नौकरी मे बाधे गए हो और वहा पर हडताल की आग न पहुची हो। आश्चर्य की बात यह थी कि बापूजी, श्री पोलक और श्री कैलनवैक जैसे प्रभावशाली नेता ही नही, छोटे-मोटे प्राय. सभी प्रचारक कारागार मे पहुचा दिये गए थे। बाहर की प्रवृति से जेल मे बैठे हुए नेताओ का सपर्क पूरा-पूरा कटा हुआ था। न कोई प्रचारक थे, न भाषण-प्रवीण दूत थे, न दैनिक पत्रिकाओ की बाढ थी, न किसी प्रकार के गुप्त व साकेतिक सदेशो का सिलसिला था। रेल, मोटर, तार-टेलीफोन, घोडे-साइकिल से या पैदल ही रोज-रोज के कार्यक्रम को स्थल-स्थल पर पहुचाने का आयोजन या प्रयास भी नही किया गया था। उन अबूझ लोगो की आत्मा अपने-आप जग उठी थी और कष्ट-ही-कष्ट भुगतने वाले इस सघर्ष मे वे लोग स्वय प्रेरित होकर अपने-आप कूद पडे थे। प्रति दिन दक्षिण अफ्रीका की सरकार के विरुद्ध वह अहिसक आक्रमण दुगने से चौगुना होता चला जा रहा था। मानो किसी दैवी शक्ति द्वारा उन सहस्रो श्रमिको का सचालन, सगठन और सर्वार्पण कराया जा रहा हो! बापूजी ने अपने हृदय मे जिस पुनीत ज्योति को जगाया था वह गूढ तरीके से अपने देश-भाइयो की अन्त-र्ज्योति को, 'दीप-से-दीप' के न्याय से जगा रही थी।

रावजीभाई को, जो सोलह सत्याग्रहियो की प्रथम टोली मे गिरफ्तार होकर उस समय जेल मे थे, नेटाल के उन परगनो का अधिक परिचय था, जहा चीनी की मिले और गन्ने की खेती करानेवाले गोरे जमीदारो की कोठिया थी। जेल से छूटने के बाद उन्होने वहा के अपने परिचित मित्रो से उन हडतालियो की वीरता और सस्कारिता की कहानिया सुनी थी। उसका वर्णन उन्होने अपनी पुस्तक "गाधीजी की साधना" मे इस प्रकार किया है

"गाधीजी को ऐसी एकान्त जेल मे बन्द किया गया था कि उनके विचारो का सक्रामक रोग भूलकर भी अन्य भारतीयो तक न पहुच जाय। इस बार सरकार ने अपनी ओर से पूरी खबरदारी से काम लिया था। परन्तु उनकी गिरफ्तारी के बाद जिन्होने गाधीजी का नाम तक सुना न होगा या वे कैसे आदमी है इसकी झाकी तक न देखी होगी ऐसे हजारो भारतीय गिरमिटियो के हृदय उमड पडे, जो अज्ञान थे, एक प्रकार के जगली वातावरण मे ही पडे हुए थे, उन्होने हडताल कर दी। वही पर वे रुके नही; कुछ कोठियो से दो-दो सौ मजदूरो के दल हडताल करके सीधे अपने परगने के हाकिम की कचहरी मे पहुचे। वहा पुलिस और मैजिस्ट्रेट के सामने उन्होने ऐलान किया: 'हमे सजा दो, हम लोगो को जेल भेज दो, हमने गिरमिट का कानून तोडा है, गिरमिटिये मजदूर होते हुए हम लोगो ने हडताल की है और अपने-अपने मालिक की आज्ञा के बिना ही भाग कर

हम यहा आये है। हम पर मुकदमा चलाओ और हमे जेल भेज दो।'

"उनकी यह निर्भय पुकारे सुन-सुनकर पुलिस हाथ मे कोडे लेकर उनको डराने-धमकाने लगी। मैजिस्ट्रेट कहता, 'भाई ! तुम लोगो ने कोई कसूर नही किया, लौट जाओ अपने काम पर।' तब वे भोले गिरमिटिये मजिस्ट्रेट से पूछते थे : 'हमारे गाधीराजा ने और उनकी रानी ने तथा उनके कुअरो ने क्या कसूर किया था ? हमे भी उनके साथ जेल भेज दो। या उनको छोड दो।' अन्त मे मैजिस्ट्रेट कहता, 'चलो, तुम लोगो को आठ दिन की कैद दे दी गई।' गिरमिटिये पुकारते, 'नही, तीन-तीन महीने की कैद से कम नही लेगे।' तब हार मानकर मैजिस्ट्रेट उनको एक महीने की सजा दे देता और सबके नाम लिखकर उन लोगो को पुलिस के हवाले कर देता।

"ये लोग जेलो के फाटक मे प्रवेश करते समय 'गाधी राजा की जय !' और 'वन्देमातरम्' के नारे लगाते और सारी जेल मे वे नारे गूज उठते थे।

"दूसरी ओर जो छुट-पुट मजदूर भिन्न-भिन्न गोरो की दुकानो मे—कपनियो मे—नौकरी करते थे उनमे से भी प्रत्येक ने काम छोडने का सिलसिला अपनाया। ये तो अपना स्वतन्त्र जीवन बिताने मे समर्थ थे परन्तु गिरमिटिये मजदूर बिलकुल लाचार थे। डरबन के चारो ओर पचास-साठ मील के क्षेत्र मे हडताल फैल चुकी थी। उनकी सेवा और सहायता के लिए, उनको अनाज पहुचाने के लिए, डरबन के व्यापारियो ने अपनी दुकानो से व्यवस्था की। भूख का कष्ट किसीको उठाना न पडे ऐसी कोशिश उन सहृदय लोगो ने की।

"उन मजदूरो को मार्गदर्शन कराने वाला कोई समर्थ या नामी, नायक नही था, फिर भी सत्याग्रह के नियमो पर वे लोग समझ-बूझ कर कायम रहे। डरबन शहर मे उन घरो पर शान्त धरने बैठाये गए, जहा भारतीय मजदूर काम पर थे। साथ-साथ स्वय मजदूरो ने ही यह आदेश अपने मजदूर भाइयो को दिया कि जो लोग अस्पतालो मे म्युनिसिपैलिटी के स्वच्छता-विभाग मे हो, वे काम न छोडे। अर्थात् उस निरकुश हडताल मे भी नैतिक नियमन कायम रहा।

"सरकार से यह सहन नही हो सकता था। उसने अपना पूरा बल लगा दिया। हडताली लोग अशाति और ऊधम मचावे ऐसे सुयोजित प्रयत्न सरकार की ओर से किये गए। हडताली लोग दगा-फिसाद पर उतारू हो कि फौरन ही उनपर गोली आदि की बौछारे करके हजारो को मटियामेट कर देने की बाकायदा व्यवस्था की गई। परन्तु सरकारी अफसरो की मुराद पूरी न हुई। भारतीयो ने शाति-व्रत का पूरा-पूरा पालन किया।

२०

फिर भी 'पत्थर फेके गए' का बहाना बनाकर पुलिस ने छुट-पुट गोलिया चला ही दी और चार निर्दोष गरीबो की हत्या कर डाली।"

अशिक्षित, व्यसनी, अज्ञानी और चरित्रहीन माने जाने वाले उन भारतीय मजदूरो ने क्या-क्या सहन किया, इसकी कल्पना उस एक प्रसग से मिलेगी जिसकी आखो देखी बात एक सुप्रतिष्ठित अफ्रीकी मूलनिवासी पढे-लिखे सज्जन श्री जान डुबे ने मि० पियर्सन और श्री रावजीभाई को सुनाई थी :

"मै भारतीय मजदूरो को जगली मानता था और उन्हे घृणा से देखता था। पर अब प्रत्येक भारतीय के प्रति मेरे दिल मे बडा आदर-भाव पैदा हो गया है। हम हब्शी लोगो मे भारतीयो की वह दिव्य शक्ति नही है। अपनी आखो से जो मैने देखा, उससे चकित रह गया हू। सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था। एक दिन मै डरबन से आ रहा था। फीनिक्स स्टेशन पर उतर कर अपने यहा जा रहा था। कुछ दूर जाने पर रास्ते के एक छोटे से मैदान मे प्राय पाच सौ भारतीय जमा होकर बैठे थे। अपनी कोठी मे हडताल करके वे वहा पर आये थे। गोरा मैनेजर, उसके आदमी और गोरी पुलिस उनके चारो ओर घेरा डालकर खडी थी। मै आधे घटे तक यह देखने के लिए वहा रुका रहा कि क्या अन्जाम होता है। बैठे हुए भारतीयो की पीठ पर कोडो की मार पडने लगी। गोरे लोग बेत और लाठी से उन्हे पीटते जाते थे और चीखते जाते थे, 'चलो उठो, काम करो, काम पर चलते हो या नही?' लेकिन कोई उठा नही। किसी भारतीय ने अगुली तक नही उठाई और ठडे दिमाग से जवाब देते रहे, 'जब तक गाधीराजा जेल मे है तबतक हम काम करने वाले नही है।'

"जब कोडो और लाठियो की मार से मामला सुलझा नही तब बन्दूक के कुन्दो का प्रयोग शुरू हुआ। पुरुषो के साथ-साथ स्त्रियो और बच्चो पर भी चोटे पडने लगी। कुछ तो 'हाय-हाय' करके रो पडते थे, किन्तु अपनी जगह से हटते नही थे। अन्त मे घुडसवार आये और उन पर घोडे दौडाये गए। कुछ आदमियो के पैर और पीठ के ऊपर घोडो की टापे पडी। उनकी चमडी छिल गई। घोडो और लातो की चोट भी पडी। लेकिन वे लोग वहा से हटे नही।

"इस बीच एक मुकादम को पकड करके वहा लाया गया। वह इन लोगो का अगुवा माना जाता था। उसने तो और भी साहस के साथ गोरो को उत्तर दिया। उस निर्भीक उत्तर के इनाम के रूप मे उस पर बेहद जुल्म किया गया। इस अत्याचार को देखकर मेरे रोगटे खडे हो गए।

मारपीट से भी जब वह मुकादम झुका नही तब पुलिस अफसर ने हब्शी पुलिस से डपट कर कहा, 'देखते क्या हो ? बेध डालो इसे अपने भाले से; इसी बदमाश का यह सब षड्यन्त्र है।' उस हब्शी पुलिस ने तत्काल आज्ञा का पालन किया और मजदूरो के उस नेता को भाले से बेध डाला। इस घटना से भारतीयो मे जोश आ गया। इस बहाने गोली चलाकर और भी दो को भून डाला गया। वह नेता स्वर्ग पहुच गया, दूसरे आहत हुए, फिर भी भारतीय लोग ज्यो-के-त्यो वही बैठे रहे। उनमे से एक भी भागा नही, हटा नही।"

अपनी कथा समाप्त करते हुए श्री डूब्रे ने कहा· "मै गोरे लोगो की इस क्रूरता से कापता हुआ और भारतीय भीड की सहनशीलता और दृढता से आश्चर्य-चकित होता हुआ घर लौट आया।"

: ५८ :

तपोधन मगनकाका

गोस्वामी तुलसीदास ने पार्वती के तप का मार्मिक वर्णन करते हुए रामायण मे लिखा है, 'बिसरी देह तपहि मनु लागा।' कुछ इसी प्रकार का तप बापूजी के जेल जाने के बाद मगनकाका फीनिक्स मे रहकर करते रहे।

जो लोग कारागृह मे डाल दिये गए थे वे सत्याग्रह सग्राम के सचालन के प्रत्यक्ष बोझ से निवृत्त हो गए थे। किन्तु जो बाहर रह कर उस भारी भार का वहन कर रहे थे उनमे मगनकाका, कुमारी स्लेशिन और श्री वेस्ट के नाम अग्रगण्य थे। बापूजी के सत्याग्रह के तरीके को समझने की अदम्य शक्ति के स्रोत को जानने के लिए मगनकाका के काम तथा तप का परिचय देना आवश्यक है।

जैसा कष्टमय जीवन मगनकाका घर मे रह कर फीनिक्स मे बिता रहे थे उसकी तुलना मे कारागार के कष्ट अल्प ही कहे जायगे। सबसे बडी बात यह थी कि उस समय फीनिक्स मे वह अकेले भारतीय थे, जिनको सत्याग्रह-युद्ध की गतिविधि पर स्वय मनन-चितन करके ध्येय-पूर्ति के लिए सत्य और अहिसामय सघर्ष पर प्रेरणात्मक विचार 'इडियन ओपीनियन' पत्र मे प्रति सप्ताह प्रकाशित करने पड़ते थे। भारतीयो के भीषण अपमान

और उत्पीडन की गाथाए नेटाल-ट्रान्सवाल के हर क्षेत्र से दिन-रात आया करती थी। उन आघातो को पीकर उन्हे दक्षिण अफ्रीका के भारतीय भाइयो मे शान्ति और धैर्य कायम रखना था। इस भारी सपादकीय काम के साथ-साथ साप्ताहिक का मुद्रण और प्रकाशन तथा हम सब बच्चो का सगोपन और शिक्षण आदि से उनका सारा समय भरा हुआ था। अब उन पर हडतालियो के स्वागत का काम और आ गया। मगनकाका मजबूत और गठे हुए बदन के थे। लेकिन काम के बोझ से उनकी देह सूखती गई। उस समय यह अनुमान नही था कि यह भारी सघर्ष कब तक चलाना पडेगा, परन्तु तीन महीने बाद जब समझौता हुआ और सब जेलवासी फीनिक्स मे आ गए तब बा-बापू की तरह ही, शायद उनसे कुछ अधिक, मगनकाका दुर्बल हो गए थे। उनका शरीर आधा भी नही रह गया था। लेकिन तपोमय जीवन के कारण उनके स्वभाव की उग्रता धुल-सी गई थी और उनमे शान्ति तथा प्रसन्नता का अनन्य विकास हुआ था।

मगनकाका की दिनचर्या उस समय एक पक्के तपस्वी की दिनचर्या थी। ब्राह्म-मुहूर्त्त से पूर्व रात मे दो या ढाई बजे उठकर वह 'इडियन ओपीनियन' के लिए लिखने बैठ जाते थे। अरुणोदय होने तक उनके बिस्तर पर उनके लिखने के कागजों का ढेर लग जाता था। लिखने मे काटछाट मुश्किल से कही नजर आती थी और उनका प्रत्येक अक्षर एक-सा सुन्दर व छपा हुआ-सा प्रतीत होता था। आठ-साढे आठ बजने से पहले ही दतौन आदि से निबट कर, जलपान किये बिना, वह छापाखाना मे पहुच जाते थे। फीनिक्स मे प्रात.काल जलपान करने का चलन था, परन्तु इस अवधि मे मगनकाका ने जलपान का त्याग कर रखा था। ब्राह्म-मुहूर्त्त मे उठने पर भी चित्त की एकाग्रता मे विक्षेप न हो इस हेतु से लिखने की समाप्ति तक वह कुल्ला-दतौन भी नही करते थे। छापाखाना मे कम्पोज करना, प्रूफ पढकर सुधारना, डाक के ढेर का निपटाना इत्यादि कामो की सदैव भरमार रहती थी। मध्याह्न मे मुश्किल से हम लोगो के साथ भोजन के लिए वह पौन घटा निकाल पाते थे। इसके सिवा सध्या के समय एक घटा बगीचे मे खुदाई करने के लिए प्रेस से बाहर आते थे। फिर रात को प्राय नौ बजे तक छापाखाना का काम करके घर लौटते थे। सोने से पहले प्राय घटा-भर तक फिर लिखने का काम करते थे।

जो काम बालको के जिम्मे किये गए थे उनमे बार-बार मगनकाका के पास पूछने और मार्गदर्शन के लिए हमे जाना पडता था। एक-न-एक बालक हर आध-पौन घटे बाद अपनी समस्या लेकर उनके पास पहुच जाता था। स्वभाव के बडे उग्र होने पर भी वह प्रत्येक बालक को प्रत्येक

वार शान्तिपूर्वक ही नही उत्साहपूर्वक उत्तर देते थे और बारीक-से-बारीक बात समझाने से चूकते नही थे। यदि कभी प्रेस मे वह नही मिलते तो मैं उनकी तलाश मे निकल पडता था। एक-दो वार भरी दुपहरी मे दो-तीन वजे के समय मैंने छापाखाने के सामने ऊची हरी दूव पर उनको लेट लगाते हुए पाया था। मेरे पहुचते ही वह उठ बैठते थे और स्नेहवत्सल स्वर से पूछते थे "क्या काम है ?" फिर स्वय ही वताते थे, "छापाखाना मे काम करते-करते आखे भारी हो गई, शरीर काम नही दे रहा था तब मैंने यहा आकर दस-पन्द्रह मिनट लेट लगा ली। बिस्तर पर सोने की अपेक्षा खुली जमीन पर लेटने से वडा लाभ होता है। यह मिट्टी हमारे शरीर की थकावट को बहुत जल्दी चूस लेती है। सचमुच धरती माता का हम पर अगाध उपकार है। केवल दस मिनट लेट लगाने से शरीर मे ताजगी आ जाती है।" सक्षेप मे काम के बोझ को पूरा करने के लिए अल्पाहार, फलाहार और अत्यल्प निद्रा की साधना मे मगनकाका ने अपने को वडी कडाई से बाध रखा था।

अपनी काया से कठोरतापूर्वक काम लेने के साथ-साथ अपने चित्त को उत्तेजित और क्रोधित न होने देने के लिए भी वह अत्यधिक सावधान रहते थे; इस बात का पता नीचे की एक घटना से चलेगा।

साधारणतया फीनिक्स का जलवायु आरोग्यदायी और श्रेष्ठ था। वहा पर बीमारी का दर्शन क्वचित् ही होता था। परन्तु मानो, मगनकाका की कसौटी के लिए ही उन दिनो शीत-ज्वर ने वहा अपना प्रताप दिखाया। दस वालको मे से पाच-छ वालक शीत-ज्वर के शिकजे मे जकड गए। और अन्त मे खुद मगनकाका को भी मलेरिया ने विस्तर पर पटक दिया। कुनीन या अन्य चूर्ण आदि का प्रयोग बापूजी ने फीनिक्स मे निषिद्ध कर रखा था। हर वीमारी का मुकावला प्राकृतिक चिकित्सा से ही किया जाता था। यह चिकित्सा वैसे बहुत अच्छी है, परन्तु उसमे रोगी की सेवा करने मे वहुत श्रम उठाना पडता है और चिकित्सक को इस विधि मे अपना वहुत समय देना पडता है। काम का भारी वोझ होते हुए भी मगनकाका ने प्रत्येक रोगी वालक के लिए समय दिया और विना प्रमाद के पूरी शुश्रूषा की।

प्रथम तो रोगी के आहार मे आवश्यक परिवर्तन किया, फिर जिनको वुखार आया था उनको दिन मे दो-तीन वार वाष्प-स्नान कराया। वाष्प-स्नान के लिए पानी खौलाना, रोगी को भाप देना, उसके कपडे वदल देना और विधिवत सुला देना ये सभी काम वे विना थके करते। रोगी वालक को जेल मे गई हुई माता का स्मरण दुखी न करे, इस वत्सलता से मगन-काका उन पर अपना प्रेम वरसाते थे। लेकिन जव वह स्वय पीडित हुए

तव उन्होने हम लोगो से कम-से-कम सेवा ली।

एक दिन ज्वर कुछ कम हो जाने पर मगनकाका विस्तर से उठकर प्रेस मे काम करने चले गए थे। वहा पर उनका शरीर ढीला पड गया और ज्वर का आक्रमण फिर से होने की आशका पैदा हुई। इससे बचने के लिए उन्होने भाप-स्नान करना चाहा और मुझसे कहा, "घर जाकर चूल्हा जला दो और उस पर पानी चढा दो; तव तक मै आता हू फिर भाप ले लूगा।" परन्तु मै घर आकर उस कर्तव्य को भूल गया और घर आकर खेल मे लग गया। मै काम मे काफी धीमा हू इस बात का हिसाब लगाकर मगनकाका करीब डेढ घटे वाद प्रेस से आये। पर घर मे आने पर उन्होने मुझे खिडकी मे मस्ती से बैठा हुआ और खेल करता हुआ पाया। मैने पानी गरम करने की कोई तैयारी नही की थी। मगनकाका ने आकर चुपके से मेरे कन्धे पर अपने कमजोर हाथ रखे तो मै सकपका गया। लगा कि अभी एक थप्पड मुह पर पड जायगा। परन्तु उन्होने तो मेरे सिर पर अपना वत्सल हाथ फेरा और मधुरता से बोले "अभी तक तूने चूल्हा भी नही जलाया? चल, अब और देर मत कर। आ मै तुझे जल्दी से चूल्हा जलाना सिखाता हू।"

यह कह वह मुझे अपने साथ रसोईघर मे ले गए। चूल्हा सुलगाया, चटपट पानी गरम किया और मुझसे छोटी-मोटी सहायता लेकर वाष्प-स्नान करके सो गए। उस दिन की क्षमा का मुझ पर इतना गहरा प्रभाव पडा कि मगनकाका का इशारा भी मुझे महान आज्ञा के रूप मे प्रतीत होने लगा।

अहिसा की उपासना मे मगनकाका कितना आगे वढते जाते थे उसका एक दूसरा प्रसग यहा देना अनुचित न होगा।

एक बार कृष्णपक्ष की अधेरी रात मे लगभग दस बजे जव सव वालक सो रहे थे मै शौच-निवृत्ति के लिए अपने बगीचे के शोचालय मे गया। जव लौटकर आया तो घर के दरवाजे पर मैने एक सुन्दर चित्तीदार तीन पहलूवाली अजीब लकडी पडी देखी। आश्चर्यचकित होने पर मैने अपने हाथ की लालटेन का प्रकाश उसपर डाला और तत्काल समझ गया कि यह तो साप है। मैने कूदकर देहलीज पार कर ली और सीधा मगनकाका के पास पहुचा। वह अपने विस्तर पर बैठे लिख रहे थे। मैने उनको साप की सूचना दी। तीन-चार दिनो से उनके पैर मे एक भारी फोडा निकल आया था। इस कारण उनको अपनी जगह पर बैठे ही रहना पडता था। फोडे पर मिट्टी की भारी पट्टी रखी हुई थी। साप की वात सुनकर वह लगडाते हुए उठे और देहलीज के पास आये। तव तक साप किवाड और चौखट के वीच की दरार से घर मे आधा घुस आया था। समय-सूचकता से मगन-

काका ने किवाड को दबाया और साप पकड मे आ गया। फिर उन्होने मुझसे साप को फासने की डोरी और लाठी मगाई, जो हम लोग सदैव तैयार रखते थे। लाठी लाकर मैने मगनकाका को दी। उन्होने मुझको वह किवाड मजबूती से दबाकर रखने के लिए कहा, जिसमे साप का आधा शरीर दबा हुआ था। फिर उन्होने चतुराई से लकडी और रस्सी के बीच साप की गरदन को पकड लिया। साप की जाति का परीक्षण करके उन्होने बताया कि "यह अत्यन्त जहरीला है। तुमने इसे देख लिया यह हमारा सद्भाग्य। यदि बालको के बिस्तर तक पहुच जाता तो बडी बुरी बात होती। ईश्वर ने ही सबकी रक्षा की है।"

उस समय उस साप को मगनकाका मार डाले, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय मेरी समझ मे नही आ रहा था। मुझमे वह बल या साहस नही था कि मै उस साप को उठाकर ले जाऊ। मगनाकाका से चला नही जाता था। परन्तु उन्होने साप को मार डालने के बजाय स्वय दुख उठाना ही पसन्द किया। लालटेन लेकर आगे-आगे रास्ता दिखाने का उन्होने मुझे आदेश दिया और खुद उस बोझ को लेकर लगड़ाते हुए जगल की ओर चल पडे। फीनिक्स आश्रम की जमीन पार करने के बाद विलायती बबूलो के घने जगल मे पहुचने पर, सापो के रहने के लिए अनुकूल और मनुष्य के लिए कम खतरे वाली जगह देखकर, उन्होने साप को जमीन पर रखा और रस्सी का फदा ढीला करके उसे मुक्त कर दिया। धीरे-धीरे रेगता हुआ दो मिनट मे वह साप घनी घास मे चला गया। मगनकाका उसे तब तक एकटक देखते रहे, जब तक वह अदृश्य नही हो गया। मानो इतना भी कष्ट देने के लिए वह उससे मन-ही-मन क्षमा माग रहे थे। फिर अपने पैर के फोडे की पीडा को सहन करते हुए, लगडाते-लगडाते वह घर लौटे। मुझे ईश्वर की अगाध दया और महिमा के दो शब्द सुनाये और ढाढस देकर तथा निर्भय बनाकर सुला दिया। इसके बाद भी वह जागते रहे और लिखते रहे। सबेरे उठने के बाद ही देवदासकाका को और दूसरो को रात की साप की कहानी बताई गई।

यह सारी कहानी तब की है जब फीनिक्स खाली और सूना था। जब हडताल वाले गिरमिटिये मजदूरो की बाढ फीनिक्स मे आनी शुरू हुई तब तो मगनकाका के परिश्रम की पराकाष्ठा हो गई। एक-एक रात मे कभी छ सौ तो कभी आठ सौ व्यक्ति आ पहुचते थे। जो दल आता था उसे दो शब्द आश्वासन और स्वागत के कहने होते थे और ठहरने-लेटने की जगह बतानी होती थी। दिन का समय हो तो उनके भोजन आदि का प्रबन्ध भी करा देना पडता था। रात मे एक दल को जगह देकर आध-पौन घटा

की नीद ले उससे पहले ही नए हडतालियो के आ पहुचने पर उन्हे उठना पडता था। दिन-भर के काम के बाद रात का यह काम बहुत ही थका देने वाला होता था। परन्तु मगनकाका एक दिन भी उत्तेजित नही हुए और सभी काम पूर्णता से निभाते रहे।

बापूजी ने जिस उच्च ध्येय से अहिंसा के युद्ध का आरम्भ किया था उसी उच्च भूमिका तक उठकर मगनकाका ने उस युद्ध मे अपने को खपा रखा था। यह सही बात है कि मगनकाका सत्याग्रह-युद्ध के अग्रणी या नेता नही थे। फिर भी कुशल और बहादुर योद्धा तो थे ही। उनकी यह विशेषता थी कि इतिहास-लेखको की कलम से अपने को सर्वथा मुक्त रखने मे उन्होने सफलता पाई थी। मूक तप उनके जीवन का सूत्र था। तुलसी रामायण की जिस चौपाई का वह बारबार रटन करते थे उसे उन्होने अपने आचरण मे भी उतारा था। वह चौपाई थी :

अति सुकुमार न तनु तप जोगू,
पतिपद सुमिरि तजेउ सब भोगू।
नित नव चरन उपज अनुरागा,
बिसरी देह तपहिं मनु लागा॥

: ५६ :

बापू के बाल-स्वयंसेवक

अमंत्रमक्षरं नास्ति नास्त्य मूलमनोषधम् ।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः ॥

"एक भी अक्षर ऐसा नही जो मत्र का काम न दे, कोई भी वनस्पति ऐसी नही जो औषधि के काम न आवे और ऐसा एक भी मनुष्य नही जो योग्य न हो, कमी है सबको परख कर ठीक काम मे लगाने वाले की।"

बापूजी एक ऐसे विरल योजक थे जो हरेक मनुष्य की शक्ति को परख लेते थे और उस शक्ति को ऊचे काम मे लगा देते थे। फिर वह पुरुष हो, स्त्री हो, वृद्ध हो या छोटा बालक ही क्यो न हो। प्रत्येक को भरसक काम मे लगाना और उसकी वृद्धि तथा कर्त्तव्य-भावना को बढाना बापूजी की शिक्षा-विधि का उद्देश्य था।

बच्चो से भी कितना अच्छा काम हो सकता है इसका उल्लेख बापूजी ने दक्षिण अफ्रीका के इतिहास की अपनी पुस्तक मे दिया है : "अब फीनिक्स, न्यूकेसल की तरह वायव्य दिशा के हडतालियो का केन्द्र बन गया। सैकडो ने वहा पहुचकर सलाह और आश्रय लेना आरम्भ किया। इस वजह से सरकार की दृष्टि फीनिक्स की ओर गए बिना कैसे रहती ? आस-पास रहने वाले गोरो की आख भी लाल हुई। फीनिक्स मे रहना अशत खतरनाक बन गया, लेकिन छोटे-छोटे बालक भी हिम्मत के साथ खतरे से भरे हुए कामो को करने लगे।"

दूसरी जगह 'इडियन ओपीनियन' मे बापूजी ने सन् १९१४ के एक विशेष लेख मे लिखा है .

"फीनिक्स मे जो पीछे रह गए थे उनमे सोलह वर्ष से कम आयु वाले लडके भी थे। उन्होने और कार्यकर्ताओ ने जेल के बाहर होने पर भी जेल मे जाने वालो से अधिक करके दिखाया। उन लोगो ने दिन-रात का भेद मिटा दिया। अपने साथियो और बडो के छूटने तक के लिए उन्होने कठिन व्रत लिये। अलोने आहार पर गुजर की और खतरे वाले कामो को निर्भीक होकर किया। जब विक्टोरिया काउटी मे हडताल हुई, तब सैकडो गिर-मिटियो ने फीनिक्स मे आसरा लिया। उनका आतिथ्य करना एक बडा काम था। गिरमिटियो के मालिको द्वारा हमला होने का डर होते हुए भी निर्भीकता से काम करते रहना विशेष बडा कार्य था। पुलिस वहा पहुची, श्री वेस्ट को गिरफ्तार किया। औरो का पकडा जाना भी संभव था, इन सब बातो के लिए तैयारी रखी गई। पर एक आदमी भी फीनिक्स से हटा नही। मै ऊपर बता चुका हू कि इसमे केवल एक ही कुटुब अपवाद रूप था। फीनिक्स के कार्यकर्ताओ ने इस अवधि मे कौम की जो सेवा की है, उसका अनुमान भारतीय जनता लगा सके यह सभव नही है। वह गुप्त इतिहास अभी तक लिखा नही गया है। इसलिए उसका थोडा-सा अश मै यहा दे रहा हू। यह इस आशा से कि किसी दिन कोई जिज्ञासु अधिक वृत्तात प्राप्त करके फीनिक्स के कार्यकर्ताओ के काम का मूल्याकन कर सके। अधिक लिखने का मुझे लालच हो रहा है, परन्तु फीनिक्स की बात को यहा पर छोडता हू।"

मै बता चुका हू कि बापूजी आदि के जेल जाने पर मगनकाका के पास हम दस बालक रह गए थे। उनमे ग्यारह वर्ष की आयु का मै और तेरह की आयु के देवदासकाका को छोड कर सभी बालक बहुत छोटे थे।

मगनकाका और देवदासकाका छापाखाने के काम मे ही आकंठ डूबे

रहते थे। भोजन के लिए आते थे तब भी उनमे बाते छापाखाना की ही चलती रहती थी। उन दोनो को उठने से सोने तक छापाखाना के काम के कारण छोटे बच्चो के कामकाज पर ध्यान देने की बहुत कम फुरसत थी। फलत बच्चो की देखभाल करने और उनकी आवश्यकताए पूरी करने का उत्तरदायित्व मुझ पर था। ये बच्चे खेल-खेल मे जितना काम कर दे इसके अलावा नित्यकर्म को पूरा करना मेरा काम रहता था। बिस्तर समेटना, बुहारना और रसोई का छोटा-मोटा काम करना। यदि वे बच्चे उन कामो को पूरा करने मे मेरा हाथ न बटाते तो मै अकेला शायद ही उस काम को पूरा कर पाता।

काम करने से भी अधिक कठिन बात मेरे लिए यह थी कि मै अपने बाल-साथियो को पूरी तरह अकुश मे नही रख पाता था। भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले बच्चो पर शासन जमाने के लिए आवश्यक कौशल मुझमे नही था, जितना देवदासकाका मे था। उनसे मुझे अनेक बार, रूठने-ऐठनेवाले बच्चो से काम लेने मे सहायता मिलती थी।

हमारी इस नन्ही टोली मे सबसे नटखट बालक था छोटम। उसका गुणगान करते हम थकते नही थे। छ वर्ष की आयु होने पर भी गुजराती, हिन्दी, तमिल और अग्रेजी— -इन चारो भाषाओ मे छोटम नि सकोच बातो की झडी लगा देता था। उसके सवाल-जवाब से बडे व्यक्ति को भी मात खानी पडती थी, साहसी इतना था कि मना करने पर भी जगल के अनजाने चित्र-विचित्र फलो को चख कर देखा करता था, कुत्ते पर सवारी किया करता था, ऊची घास मे घुसकर जमीन पर बैठे हुए पक्षी को चुपके से पकड लाता था। एक बार फीनिक्स स्टेशन पर वह गया। स्टेशन-मास्टर की गैर-जानकारी मे सिगनल भी गिरा दिया था। ऐसे महाशय से काम लेना आसान बात नही थी। पर जब मै उससे कह देता कि इतना काम अपने हिस्से का पूरा करने के बाद आपको खेलने-कूदने की इजाजत है तो वह अपना सारा बानरपन भूल कर एकाग्रता से काम पर जुट जाता था, और सबसे पहले काम पूरा करने की कोशिश करता था।

छोटम को यदि उत्तर ध्रुव माना जाय तो भैयन दक्षिण ध्रुव के समान था। अफीमची को भी मात कर देनेवाला आलसी ! दोनो हाथो से अपनी तोद पर की पतलून उसे हर समय पकडे रखनी पडती थी। बीच-बीच मे मक्खी आदि को मुह पर से हटाने के लिए एक हाथ मुश्किल से पतलून से ऊचा कर पाता था। उसको झाडने-बुहारने आदि का काम देना बेकार था। उसे काम पर लगाये रहने के लिए प्रायः घास खोदने का काम दिया

जाता था। लेकिन अपनी नन्ही फावडी कधे से लगाकर अधिक समय वह अर्धोन्मीलित आखो से समाधिस्थ-सा खडा रहता था।

आठ वर्ष का शान्ति मेरे और देवदासकाका के लिए सिरदर्द पैदा करने वाला था। काम करने का सामर्थ्य उसमे था, पर था वह बडा जिद्दी। कभी-कभी बगीचे मे इधर-उधर निकल जाता तो घटो तक उसका पता न चलता था। नाश्ते के समय तक मुह भी न धोता और अपने बिस्तर के पास योही आध-पौन घटे तक खडा रहता। जब वह अडियल टट्टू की तरह अपने घुटनो को मिलाकर तिरछे पैर से खडा हो जाता, तब हमे उस पर बडा गुस्सा आता था। देवदासकाका और मै उसे पुचकार कर समझाया करते थे कि जिद्द छोड दो, लेकिन वह अपने नथुने फुला कर हम लोगो को जोरो से डाट देता था, "तुम चौधरी क्यो बनते हो? हम हरगिज काम नही करेगे। जाओ, कह दो मगनकाका से। हमे किसी का डर नही। जाओ, हमे नाश्ता भी नही चाहिए।"

जब इस मूर्ति से मै थक जाता तब देवदासकाका को सौप देता था। देवदासकाका भी उससे हार मान कर उसे मगनकाका के सामने खडा करते थे। अन्त मे मगनकाका भी उकता कर कह देते थे, "तू जिद नही छोडेगा तो ये दोनो तुझे पीटेगे।" लेकिन इस धमकी का भी उसपर कोई असर नही होता था।

धीरे-धीरे हम दोनो ने उसे पीटना शुरू किया। आरम्भ मे सकोच हुआ फिर मारने मे रस पैदा हुआ। जब तक उसके मुलायम गाल पर पाचो अगुली के निशान न उठते, और भी जोर से हम उसे तमाचे मारते थे। परिणाम यह हुआ कि उसकी जिद बढती चली और हमने भी मारने का अपना विज्ञान विकसित किया। तमाचे के बाद बेत और बेत के बाद हलके तख्ते से गाल पर जोर का थप्पड लगाने का क्रूर आनन्द अनेक बार हमने लिया। फिर भी हमारे द्वारा मगनकाका के पास इस सफाई से सारी बात रखी जाती थी कि वर्णन सुनकर मगनकाका समझते थे कि बडी रहमदिली से ये लोग शान्ति को ठीक रास्ते पर लाने का प्रयत्न कर रहे है।

– लेकिन एक बार ऐसा हुआ कि शान्ति को मारते-मारते मेरी आख खुल गई और फिर उसको मारने का मेरा स्वाद सूख गया। इतना ही नही सदा के लिए वह अनुभव मुझे याद रह गया कि मारने से कभी भी किसी के दिमाग मे कोई बात घुसाई नही जा सकती। शान्ति को मारने का आनन्द लेने के लिए मैने और देवदासकाका ने मशविरा करके एक योजना बनाई। उस दिन हमने उसको ऐसा काम सौपा, जो उसे अन्यायपूर्ण प्रतीत हो। समूह मे काम करने के बदले बगीचे के एक कोने मे उसे जमीन

खोदने का काम दिया गया। घटे-भर के बाद देवदासकाका ने मुझसे कहा कि जाकर उसका काम देखो। शान्ति को वहा घुटने से घुटना मिला कर स्थिर खडा हुआ पाया। उसके पास जाकर मैने बुरी तरह उसे डाट दिया, फिर अपने दात पीसकर क्रोध से उसके दोनो कान ऐठे और जमीन से उसे ऊचा उठा दिया। फिर भी उस बहादुर ने 'उफ' तक नही की। केवल अपनी बिल्ली की-सी आखो से मुझे घूरता रहा। मैने समझा उसे काफी पीडा नही पहुची है, तब मैने उसके कान को पकड नाखून से दबाया और जोर-जोर से पूछा, "बोल, जमीन खोदेगा या नही?" पर वह कुछ न बोला। तब मैने तमाचो की झडी लगाई। काफी तमाचे लगाने के बाद मैने सोचा, जाने दो। मैने देवदासकाका के पास जाकर सारी कहानी सुनाई। मुझे याद नही है कि उस दिन देवदासकाका ने उसे और मारा या नही, परन्तु मेरा मारने-पीटने का मोह सदा के लिए जाता रहा, और मैने निश्चय किया कि उसको प्रसन्न रखकर जितना काम मिले उसी से सतोष करू। ज्योही मारना-पीटना बन्द किया, उससे काम लेने मे मुझे पूरी सफलता मिली, और किसीके पास उसकी शिकायत ले जाने की आवश्यकता नही रही। उसके पूर्व-इतिहास की भी मुझे जानकारी थी। उसके पिता एक व्यापारी थे और बड़ी बेरहमी से उसे पीटा करते थे। इसलिए बचपन से ही वह जिद्दी बन गया था। पर छोटम, भैयन और शान्ति से नवीन का मसला कम नही था।

वह अधिक छोटा नही था। कामचोर भी नही था। लेकिन बडा नाजुक मिजाज, भोदू और जरा-जरा देर मे गुस्से मे आ कर रो देने वाला लडका था। कोने मे जाकर घटा-दो-घटा जी-भर रो लेने के बाद वह स्वय मुस्कराता हुआ हमारे काम मे सहयोग के लिए आ जाता था और अपने रोने की कहानी खुद ही सुनाने लगता था।

फीनिक्स के नन्हे स्वयसेवको मे उक्त चार के अतिरिक्त दो और थे, मेरा चचेरा भाई केशु और मेरा छोटा भाई कृष्ण। दोनो की आयु मे उतना भी अन्तर नही था जितना देवदासकाका की और मेरी आयु मे था। ये दोनो भाई आपस मे सहोदर से भी अधिक घनिष्ठ थे। किसी भी काम मे यह जोडी अलग नही होती थी। आपस मे कभी रूठते-झगडते भी नही थे। दूसरो से झगडा हो जाता तो दोनो साथ ही रहते थे। चतुराई मे भी दोनो एक-दूसरे से बढकर थे। केशु दस्तकारी के काम मे बहुत तेज था और हर काम को फुर्ती से कर डालता था। कृष्ण मे स्थिरता और आकलन शक्ति बहुत गहरी थी। केशु की प्रशसा उसके सुघड काम के लिए होती थी और कृष्ण अपनी वाक्पटुकता एव सदैव प्रसन्नचित्त रहने के कारण लोगो

को मुग्ध कर देता था। केशु बहुत तेज मिजाज था तो कृष्ण मधुर स्वभाव का। दोनो मिलकर जो भी काम हाथ मे लेते थे उसे सुन्दर तरीके से पूरा करके ही छोडते थे। केशु जब काम पर लग जाता था, तब उसे अपने चारो ओर की सुध नही रहती थी। औरो से वह कटा-सा रहा करता था। कृष्ण चाहे किसी भी काम मे हो या कोई भी खेल कर रहा हो उसका ध्यान चारो ओर रहता था। एक नजर मे ही परिस्थति जाचकर लाभ-हानि को कूतने की उसमे शक्ति थी। क्या करना उचित या अनुचित रहेगा इस बात की सूचना वह तुरन्त केशु को देता था। किसी काम मे कृष्ण अगुआ नही बनता था, केशु की सरदारी मे रहकर ही उसके काम मे योग देता था। केशु को अपना बडा भाई मानता था और भूल से भी उसका अनादर नही करता था। केशु भी कभी अपने छोटे भाई कृष्ण को अपमानित नही करता था। दोनो की जोडी अभिन्न थी।

ऐसे शक्तिशाली भाइयो को प्राप्त करने से मेरा हृदय उत्साह से भर जाना चाहिए था, परन्तु न जाने कौन-सा मनोविकार मुझे सताता था जिससे उनके साथ काम करना मेरे लिए कठिन होता था। उनके चातुर्य की तुलना मे अपना भोदूपन देखकर मुझे कही भाग कर छिप जाने का जी होता था। किन्तु वहा के समूह-जीवन मे अकेले रहने का अवसर दुष्प्राप्य था। अत. मेरी कुढन मन मे ही रह जाती थी।

अलोनाव्रत और विशेषत फलाहार होने के कारण मूगफली छीलना हमारा एक अत्यावश्यक काम होता था। दो या तीन बोरी मूगफली हमे दे दी जाती थी और शनि-रवि की छुट्टी मे घटो उनको छीलकर उसकी मीगी से कनस्तर भरने मे हम लोग व्यस्त रहते थे। काम का हिसाब लगाने के लिए एक कटोरी का नाप निश्चित किया था। दाने निकाल कर कौन पहले उस नाप की कटोरी भर लेता है इसकी होड लगती थी। केशु तेरह मिनट मे, कृष्ण पन्द्रह मिनट मे और मै मुश्किल से बीस-बाईस मिनट मे अपनी कटोरी भर पाता था। देवदासकाका केशु से आधी मिनट पीछे रह जाते थे। इस प्रकार अपनी शिथिलता मुझे बेहद चुभती थी और मै बहुत मायूस हो जाता था।

बगीचे के काम मे मगनकाका ने एक रविवार के दिन हम लोगो को एक गुलाब के पौधे पर दूसरे गुलाब की कलम चढाने का काम सिखाया। एक पौधे पर उन्होने खुद कलम लगाई, दूसरे पर केशु से लगवाई और तीसरे पर मुझसे। कलम चढाते समय वह मेरे पास बैठे थे और बहुत कुछ काम उन्होने खुद ही करवाया था। फिर भी आठवे दिन मेरा पौधा

सूख गया और केशु ने जिस पर विना किसी के सहारे कलम लगाई थी, वह मगनकाका के पौधे के समान ही पल्लवित हो उठा।

मैंने मान लिया कि विधाता ने मुझे बडा भाई बनाने मे भूल की है। बडे भाई होने योग्य तो केशु व कृष्ण है। अपनी इस मान्यता के कारण उनसे काम लेने मे मुझे बडी परेशानी होती थी।

यह एक चमत्कार ही था जो इन छहो विपरीत स्वभाव वाले बालको का नेतृत्व मेरे हाथ मे महीनो तक रहा और उनके सहारे फीनिक्स आश्रम के नित्य-कर्म अबाध रूप से पार होते रहे।

एक विशेष प्रसग से ज्ञात हो जायगा कि छ बच्चो की यह छोटी टोली किस तरह भारी काम करती थी।

एक शाम को छापाखाना का काम कुछ जल्दी पूरा हो गया। घटा-भर की फुरसत मिल जाय तो मगनकाका सीधे बगीचे मे पहुच जाते थे और खोदने आदि का काम करते थे। देवदासकाका और मैं भी उनके साथ खोदने और पानी भरने आदि के काम मे जुट जाया करते थे। उस सध्या को गोभी के पौधे लगाने मे हम जुटे हुए थे । इस बीच अकस्मात आकाश मे काले-काले बादल छा गए और जोरो से गर्जना तथा बिजली का चमकना शुरू हो गया। नित्य की तरह केशु, कृष्ण, नवीन, और छोटम स्टेशन पर डाक लेने गये थे। उनके लौट आने का समय कभी का हो चुका था और हम लोग प्राय घटे-भर से उनके आने की प्रतीक्षा मे थे। हमारी यह चिन्ता बढ रही थी कि तेज वर्षा होने लगी। स्टेशन के रास्ते मे अनेक उतार-चढाव थे और पानी गिरते ही मिट्टी चिकनी और फिसलनी हो जाती थी। कोई ६-७ दिन पहले ही सवेरे की डाक लाते समय मैं वर्षा मे फस गया था। रास्ते मे चार-पाच बार रपट कर गिर पडा था। घर पहुचते-पहुचते, भीग कर बुरी तरह काप रहा था। तीन घटे देर से घर पहुच पाया था। तो फिर इन नन्हे स्वयसेवको की क्या दशा होती !

मगनकाका बोले, "छोडो काम को, तुम दोनो उन बच्चो को लिवाने जाओ !" आज्ञा पाते ही हिरन की तरह हम दोनो स्टेशन की ओर लपके। लगभग पाच मिनट मे पौन मील से अधिक दूर तक निकल गए और एक ऊचे टीले पर पहुचे तो देखा कि वे बाल-हरकारे एक बडे विलायती बबूल के वृक्ष के नीचे आराम से बैठे थे। डाक का थैला जमीन पर रखा था और मजे मे थे। हमने पूछा, "क्यो आज इतनी देर क्यो लगा दी ?" उन्होंने बताया, "आज देश की डाक है। थैला बहुत भारी है। अकेले तो उठता नहीं, इस वजह से लकड़ी मे टाग कर हम दो-दो बारी-बारी से थोडी-थोडी

दूर तक ला रहे है। बहुत थक जाते है, इसलिए बीच मे आराम करना पडता है। यहा पर वर्षा के कम होने की प्रतीक्षा मे बैठे है।" यह सारी बात सुनाते हुए चारो मे से किसी बच्चे के मुख पर शिकायत या दुख का जरा भी भाव नही था।

हडताली लोगो ने फीनिक्स आकर जब तक हम पर नया बोझा नही डाला, हम लोगो के काम का सिलसिला ऐसा ही चलता रहा।

: ६० :

पाखाना-सफाई का प्रथम प्रयोग

बापूजी के भारत लौटने के बाद का एक किस्सा है। वह मामूली मुसाफिर की हैसियत से रेलगाडी के तीसरे दर्जे मे सफर किया करते थे। एक बार ऐसी यात्रा मे वह शौच के लिए रेल के पाखाने मे गये। देखा, तो सारी सडास मल से सनी पडी थी। तुरन्त वह अपनी जगह पर लौट आये। उन्होने अपने सामान से एक रद्दी अखबार निकाला, सुराही से अपनी छोटी लुटिया मे पानी लिया, जाकर पहले पाखाने की फर्श पर पडा हुआ मल कागज मे समेट कर कदमचे के नीचे डाल दिया और फिर उस स्थान को पानी से धो डाला। इसके बाद ही उन्होने उस सडास का उपयोग किया। मुझे यह प्रसग छोटे काका श्री जमनादास गाधी ने सुनाया था। उन्होने मुझसे कहा कि टाल्स्टाय-वाडी और फीनिक्स मे बापूजी के साथ बरसो रहने के बाद भी जब मैने बापूजी का यह काम देखा तो मै चकित रह गया और उस काम को करते समय बापू के चित्त की शान्ति, प्रसन्नता और क्रोध का बिलकुल अभाव देखकर मेरा मन आश्चर्य से भर गया।

पाखानो की स्वच्छता के बारे मे बापूजी का इतना तीव्र आग्रह देखते हुए कल्पना की जा सकती है कि उनके आश्रमो मे पाखाना-सफाई के लिए कितना पुरुषार्थ किया जाता होगा। फीनिक्स तो एक साक्षात् जगल ही था। चारो ओर ऊची-ऊची घास थी, टीले थे, खदके थी और झरनो के किनारे घने वृक्ष भी थे। परन्तु वहा खुले मे शौच जाने की प्रथा बापूजी ने चलने नही दी। स्नानगृह के लिए वहा विशेष व्यवस्था नही की गई थी।

उस देश मे पुरुष-वर्ग का झरने और कुए पर समूह मे मिलकर दिगबर स्नान करना सामान्य बात थी, परन्तु पाखाने हर घर मे मौजूद थे।

मेहतर या भगी कोई नही था। भगी के घर मे जन्म लेने के कारण किसी व्यक्ति पर मनुष्य का मल ढोने का बोझ डाला जाय, यह बापूजी को मजूर नही था। दूसरे फीनिक्स मे फलवृक्ष और बगीचों को समृद्ध बनाने के लिए उत्कृष्ट खाद की आवश्यकता थी। अत प्रारम्भ से ही मल को मिट्टी मे गाडकर खाद बनाने के प्रयोग होने लगे थे।

छापाखाने के मकान के पास मैले को खेत मे गाडने की सुविधा नही थी। वह मकान बहुत नीची सतह पर था और उसके दोनो ओर पानी के झरने थे। उसके इर्द-गिर्द खेती के योग्य जमीन नही थी। इसलिए छापाखाने के पास का पाखाना बहुत गहरा, खदकनुमा बनाया गया था।

खदक-टट्टी की रचना इस प्रकार थी—सात आठ फुट गहरे और तीन-साढे तीन फुट चौकोर गड्ढे पर लकडी का ढाचा और कदमचे के स्थान पर तख्ते रख दिये गए थे। गड्ढा एक बाजू मे ढालू रखा गया था और मल इस ढाल पर पडता था। शौच के बाद प्रत्येक व्यक्ति एक लकडी की फावडी से मल को गड्ढे मे नीचे की ओर धकेल देता था। इस टट्टी के लिए मिट्टी या और किसी चीज की आवश्यकता नही थी। बरसात मे भी वह अच्छा काम देती थी। उसे सरकाने या हटाने की भी आवश्यकता नही पडती थी। न उससे बदबू ही उठती थी। मेरा खयाल है कि सारा मैला गहराई मे पानी मे जमा होता रहता था और मल के कीडे उसे खाकर जल को शुद्ध बनाये रखते थे। जगल की जगह थी और आसपास पीने के पानी का कोई कुआ नही था, इसलिए वहा यह खदक-टट्टी चल सकती थी।

एक दूसरी टट्टी थी, जो एक पक्के फर्श की कोठरी मे बनी हुई थी। इसमे तख्तो की बैठक के नीचे कनस्तर के कटे हुए दो डिब्बो को कोलतार पोतकर रखा जाता था। सफाई के समय लोहे की मुडी हुई सलाख से उन डिब्बो को खीच लिया जाता था। फिर किसी बडे वृक्ष के मूल मे, तने से चार-पाच फुट दूर गड्ढा खोदकर उसमे मलपात्र को पलट दिया जाता था और वह गड्ढा मिट्टी से पाट दिया जाता था।

इसके बाद सीधे ही खेत मे टट्टी रखने की व्यवस्था की गई। फल-वृक्षो को बोने के लिए जो चौकोर गड्ढे बनाये जाते थे उन्ही पर लकडी की टट्टी रख दी जाती थी। जो भी शौच जाय वह स्वय मिट्टी से अपना मैला ढक देता था। किन्तु इस प्रकार की टट्टी मे दो दिक्कते पैदा हुई। एक तो यह कि आधी के समय टट्टी का सारा ढाचा उड़कर दूर जा पड़ता था

और दूसरी यह कि वर्षा मे सारा गड्ढा पानी से ऊपर तक भर जाता था।

कई प्रयोगो और अनेक अनुभवो के बाद पाखाने का ढाचा ऐसा बनाया गया कि कैसी भी आधी मे वह टिक सके। ऊपर की छत हटा दी गई। पर्दो को कमर से अधिक ऊचा बनाना छोड दिया गया और तख्ते तथा टीन की चद्दरो की जगह बोरिया लटकाई गई। फिर यह टट्टी सरकाते-सरकाते कभी केलो की पक्तियो के बीच, तो कभी सतरो की पक्तियो के बीच रखी जाने लगी। परन्तु वर्षा होने पर पानी भर जाने से ये गड्ढे वाली टट्टिया बेकार हो जाती थी। इसका इलाज न तो फीनिक्स मे हाथ आया, न साबरमती मे ही। इसलिए पक्के फर्शवाली स्थायी टट्टिया बनाना अनिवार्य हो गया।

पक्के फर्श वाली टट्टीसे मलपात्र को ढोकर खेत मे ले जाने और टोकरी मे सूखी मिट्टी का सग्रह करने का काम बहुत परिश्रम का होता है। इस परिश्रम को बचाने और सुविधा एव शीघ्रता की दृष्टि से फीनिक्स मे भाति-भाति के प्रयोग चल रहे थे। मलपात्र मे जब मल से दुगुनी मिट्टी पडती तब मल ढका रहता और मक्खी-मच्छरो से बचा रह सकता। परन्तु यदि पाखाने को दस-बीस व्यक्ति बरतते हो तो मलपात्र इतना भारी हो जाता कि उसे अकेला आदमी दूर तक नही ले जा सकता था।

इस सिलसिले मे तरह-तरह के प्रयोग करते-करते मगनकाका इस निष्कर्ष पर पहुचे कि फर्श वाली स्थायी टट्टी मे मिट्टी का उपयोग न किया जाय। उन्होने टीन का एक बहुत उथला, लब-गोल मलपात्र बनवाया था। उसे कदमचो के बीच मे रख दिया जाता था कोठरी के दूसरे कोने मे एक बडी, ढक्कनदार बाल्टी रखी गई थी। प्रत्येक व्यक्ति मलविसर्जन के बाद उस बडी बाल्टी मे छोटा मलपात्र उलट देता था और उसे उसी समय धोकर कदमचो के बीच रख देता था। बाल्टी का ढक्कन ऐसा चुस्त होता था कि उसमे मच्छर या भुनगे घुसने नही पाते थे। चौबीस घटों मे एक बार यह बाल्टी खेत मे ले जाकर खाद के गड्ढे मे साफ कर दी जाती थी। मिट्टी का बोझ न होने से यह काम अपेक्षाकृत जल्दी और आसानी से हो जाता था।

यद्यपि इस प्रकार की टट्टी से मच्छर, मक्खी, दुर्गन्ध आदि की परेशानियां दूर हो जाती थी, फिर भी समूचे आश्रम मे उसका प्रचार नही हो सका। यह प्रयोग घर वालो तक ही सीमित रहा, क्योकि प्रत्येक व्यक्ति हाथ-के-हाथ शौचपात्र की सफाई कर लेना स्वीकार करे और पूरी सावधानी से वह काम करता रहे, यह कठिन बात थी। परन्तु साबरमती आश्रम मे इस प्रयोग को अपने लिए मगनकाका ने पूरे उत्साह से अन्त तक चालू

रखा था। इस तरीके मे खाद का थोडा-सा भी अश वरवाद नही होता था और जहा जितना चाहिए उतना ही पहुचाया जा सकता था।

कौन-सी वस्तु कितने समय मे गलकर खाद वन जाती है इसका प्रत्यक्ष अनुभव मगनकाका को था और पाखाने की सफाई के साथ-साथ वह हमे सिखाया करते थे कि कौन-सा मैला और कौन-सा कूडा कहा पर व किस भाति मिट्टी मे मिलाना चाहिए। फीनिक्स मे हम लोग पशु-पालन नही करते थे इसलिए गोवर की खाद उपलब्ध नही थी। फिर भी खाद की कमी से हमारी शाक-सब्जी और फल-वृक्ष सूखे और दुर्बल नही रहते थे। केले की पत्तिया, केले के तने, निराई की हुई हरी घास, फल-वृक्ष की काट-छाट के वाद बची हुई हरी टहनिया—जिनमे से ईंधन के योग्य लकडी अलग कर ली गई हो—पत्तिया, कपडे व कागज के वेकार टुकडे आदि प्रत्येक चीज भी अलग-अलग स्थान पर गाडने की व्यवस्था मगनकाका ने कर रखी थी। उन चीजों को कितने सप्ताह या कितने महीने बाद खाद के लिए काम मे लाया जाय, इन वातो का अपना अनुभव सुबह-शाम की साधारण बातचीत के समय अनेक बार वह हमे सुनाते थे।

अब भारत के बहुत-से आश्रमो और रचनात्मक सस्थाओ मे पाखाना-सफाई नित्य का आवश्यक कर्तव्य वन गया है। नये आश्रमवासी को इस काम का पहला अनुभव कठिन और घृणित-सा मालूम देता है परन्तु वाद मे अन्य कार्यो की तरह यह काम भी एक साधारण श्रम-यज्ञ प्रतीत होता है। पाखाना सफाई की विधि अब काफी सरल और साफ-सुथरी वन गई है परन्तु फीनिक्स मे जिस विधि से यह काम किया जाता था वह खाद की दृष्टि से अधिक लाभप्रद परन्तु करने मे कठिन था। इस काम का सर्वप्रथम अनुभव मुझे और देवदासकाका को बहुत कष्टदायी मालूम पडा था।

सोलह सत्याग्रहियो को विदा करने के दिन से पाखाना-सफाई का तथा सागसब्जी की देखभाल का काम मगनकाका ने अपने ऊपर ले लिया था। परन्तु जब बापूजी भी सत्याग्रह के लिए फीनिक्स गये तव मगनकाका के इस काम के लिए आधा घटा वचाना भी असभव हो गया। तव देवदास-काका और मै इस भारी काम को करने के लिए आगे वढे। मगनकाका ने वारीकी से हमे उसे करने का ढग वताया।

पक्की फर्श वाली कोठरी मे प्राय १८ या २० इच की वडी भारी बाल्टी मल और मिट्टी से भरी हुई होती थी। घर के आगन से फुलवाडी मे केले की क्यारी तक पहुचाते-पहुचाते पाच-छः सात वार हमे उसे जमीन पर रखना पडता था। हम दोनो मिलकर भी वड़ी कठिनाई से उसे उठा पाते

थे। मूत्र वाली बाल्टी उठा कर ले जाने मे इतनी भारी नही थी परन्तु उसकी बदबू बडी तेज होती थी। बाल्टिया अलग रख कर पहले तो हम सख्त काली मिट्टी मे गहरी लबी खाई खोदते। फिर मल वाली बाल्टी मे से हाथ की चुटकी से कागज के उन छोटे-छोटे टुकडो को चुनकर अलग करते जो मलपात्र मे पडे होते थे। अग्रेजो के तरीके के अनुसार फीनिक्स मे कई लोग आबदस्त के लिए पानी न ले जाकर कागज ले जाया करते थे और वे टुकडे मलपात्र मे रिलमिल जाते थे। मगनकाका का कहना था कि मानव-मल पाच-छ सप्ताह मे ही जब मिट्टी से मिलकर सडकर पूर्ण खाद बन जाता है तब कागज के टुकडो को गलने मे दस-पन्द्रह महीने लग जाते है, इसलिए मल के खाद के साथ उसे मिट्टी मे दबाना भारी भूल होगी।

कागज के टुकडे बाल्टी से चुन लेने के बाद और भी कठिन काम हमे यह करना पडता कि बेलचे से सारे मल को बाल्टी मे ही घोल घोल कर एक सा प्रवाही रूप देना पडता। जब उसमे एक भी गाठ न रहती तब सारी बाल्टी को तैयार की गई नाली मे पलट कर मल को बहा दिया जाता और करीब ढाई तीन फुट की लबाई मे प्रवाही मल को एक सा बिछा देते। मल के ऊपर मूत्र की बाल्टी को पलट कर बेलचे से सारे प्रवाह को फिर से खाई मे एक-सार कर देते और तब इस सावधानी से मिट्टी डालते कि उसके छीटे अपने या साथी पर न उडे।

यह सारा काम करने मे जो बदबू हमे सहन करनी पडती उससे हम लोग परेशान हो जाते। पहले दिन तो पाखाना-सफाई के बाद हम बहुत मलमल कर नहाये, धुले कपडे पहने, पर भोजन के समय भी उस बदबू की याद दिमाग से उतरी नही। मुझे कुछ ऐसा याद है कि इस अनुभव के दस-पन्द्रह दिन बाद तक मुझसे गोभी की तरकारी नही खाई जा सकी, क्योकि उसको देखते ही टट्टी सफाई के समय की दुर्गंधि याद आ जाती थी। जब लगातार टट्टी-सफाई का काम हम करने लगे तब मन की यह घृणा दूर हो गई।

जब प्रथम बार पाखाना-सफाई का स्वानुभव मुझे हुआ तब मेरे मन मे बडा आश्चर्य हुआ कि बापूजी और मगनकाका जैसे बहुत ही स्वच्छ रहने वाले व्यक्ति इस काम को कैसे कर सकते होगे। उस समय सर्वप्रथम मैने देवदासकाका से जाना कि बापूजी की सूघने की शक्ति प्राय है ही नही। गुलाब के फूल की सुगधि भी बापूजी नही ले पाते।

शौच-सफाई का यह अनुभव कागज पर शब्दाकित करना साहित्यिक दृष्टि से थोडा घिनौना माना जाय यह सभव है। परन्तु मनुष्य-मल को उत्तम-से-उत्तम खाद के रूप मे शीघ्र-से-शीघ्र परिवर्तित करने के अनुभव-

सिद्ध प्रयोग छोटी बात नही है। बापूजी ने बडे गहरे अनुभव के बाद इसका सही मूल्याकन किया और उसकी तुलना सुवर्ण से करके उसका नाम सोनखाद रखा।

: ६१ :

बापू के कुछ अन्य साथी

बापूजी के जेल जाने के कोई बीस-बाईस दिन बाद एक सध्या को मगनकाका के पास एक गौराग युवती आई। उसकी गरदन से नीचे के बाल कटे हुए थे और वह एक सफेद कमीज तथा काले रग का धारीदार कपडे का पेटीकोट पहने थी। वह बहुत प्रभावशाली और तेजस्वी दीखती थी। पहनावे मे वह जितनी सादी थी, उसकी मुखाकृति उतनी ही गभीर जान पडती थी। बहुत ही चिंतित चेहरे से उसने मगनकाका के साथ थोडी-सी बाते धीमे से की। फिर उसने खुल कर बहस शुरू कर दी। तब क्षण-क्षण मे उसके मुख पर स्मित लहराने लगा। मैने इतनी प्रफुल्लता और हास्य-तरगो का सातत्य क्वचित ही देखा था। मेरी जिज्ञासा बढ गई कि यह कौन है। पूछने पर देवदासकाका ने मुझे बताया कि यही तो है मिस स्लेशिन।

मिस सोजा स्लेशिन के चातुर्य, स्फूर्ति एव कार्यक्षमता के बारे मे मैने बहुत सुन रखा था। बडी पढी-लिखी बताई जाती थी। जब बापूजी बैरिस्टरी करते थे तब घटो वह उसे पत्र लिखवाते रहते थे, लेकिन वह जरा भी थकती नही थी। शीघ्र-लेखन विशारदों मे उसका स्थान श्रेष्ठ माना जाता था। जैसी उसकी बुद्धिमत्ता और दक्षता की ख्याति थी वैसी ही उसके विनोदप्रिय स्वभाव और नटखटपन की ख्याति थी। दक्ष, निर्मल और तरल-स्वभाव वाली होने के कारण बापूजी की अन्तेवासिनी बनकर उसने थोडे ही वर्षों मे बहुत प्रगति कर ली थी। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास मे बापूजी ने उसके सबध मे लिखा है :

"मेरे पास एक स्काच कुमारिका शार्टहैन्ड लेखिका और टाइपिस्ट के काम के लिए थी। उसकी वफादारी और नीतिमत्ता का अन्त नही था। इस जिन्दगी मे मुझे कटु अनुभव तो कई हुए है, परन्तु मेरे सपर्क मे इतने अधिक सुन्दर चरित्र वाले अंग्रेज और भारतीय आये है, कि इसे मै हमेशा

अपना सद्भाग्य मानता रहा हू। इस स्काच कुमारिका स्लेशिन को श्री केलनबैक मेरे पास ले आये और बोले, 'इस बालिका को इसकी माता ने मुझे सौपा है। यह चतुर है, प्रामाणिक है, परन्तु इसमे नटखटपन और स्वतन्त्रता बहुत है। कदाचित वह उच्छृंखल कहलायगी। अगर तुमको जचे तो इसे अपने पास रखना। वेतन के हेतु मै इसे तुम्हारे हाथ के नीचे नही रख रहा हू।' मै तो किसी अच्छे शार्टहैंड टाइपिस्ट को माहवार बीस पौड देने को तैयार था। कुमारी स्लेशिन की शक्ति का मुझे कुछ पता नही था। श्री कैलनबैक ने मुझसे कहा, 'फिलहाल छ पौड माहवार देते रहना।' मुझे यह मजूर होता ही।

"कुमारी स्लेशिन के नटखटपन का अनुभव मुझे तुरन्त ही हुआ, लेकिन एक महीने के अन्दर उसने मुझे अपने वश मे कर लिया। रात और दिन जब चाहो, काम के लिए तैयार। उसके लिए कुछ भी अशक्य या दुष्कर था ही नही। उस समय उसकी उम्र १६ वर्ष की थी। मुवक्किलो और सत्याग्रहियो के मन भी उसने अपनी सरलता और सेवा-परायणता से हर लिये। आफिस और सत्याग्रह-सचालन की नीति की वह एक चौकीदार और रखवाला बन गई। किसी भी कार्य की नीति के बारे मे यदि उसे थोड़ी-सी भी शका होती तो वह बहुत ही खुलकर मुझसे बहस करती और जब तक मै उसको यकीन न दिला दू तब तक उसे सन्तोष नही होता था।

"सबके जेल जाने पर, जबकि केवल काछलिया ही बाहर रहे थे, उसने लाखो रुपये का हिसाब सभाला; भिन्न-भिन्न प्रकृति के मनुष्यो से काम लिया। काछलिया भी उसका आसरा लेते थे, सलाह लेते थे। हम लोगो के जेल मे होने के कारण डोक ने 'इडियन ओपीनियन' का काम अपने हाथ मे लिया था। वह सफेद बालोवाला अनुभवी बुजुर्ग 'इडियन ओपीनियन' के लिए लिखे गए लेखो को स्लेशिन से पास कराता था, और उसने मुझे बताया था: 'यदि स्लेशिन न होती तो पता नही कि मै स्वय अपने काम से अपने को सतुष्ट कर पाता या नही। उसकी सहायता और सूचनाओ का मूल्याकन मै कर नही सकता। अनेक बार उसके द्वारा सूचित घट-बढ को उचित ही मानकर मैने स्वीकार कर लिया था। पठान, पटेल गिरमिटिये—सब जातियो के और सब उम्र के भारतीय उसको घेरे रहते थे, उससे सलाह लेते थे और उसका कहा करते थे।'

"दक्षिण अफ्रीका मे अकसर गोरे लोग भारतीयो के साथ रेलगाडी मे एक ही डिब्बे मे नही बैठते है। ट्रान्सवाल मे तो बैठने की मनाही की जाती है। सत्याग्रहियो ने तीसरे दर्जे मे ही प्रवास करने का नियम रखा

था। इस पर स्लेशिन जान-बूझकर हिन्दियो के डिब्बे मे ही सवार होती थी और गार्डो से झगडा भी मोल लेती थी। मुझे डर था कि स्लेशिन को किसी-न-किसी समय खुद गिरफ्तार होने की उत्सुकता थी। परन्तु उसकी शक्ति, सत्याग्रह-सचालन के बारे मे उसका पूरा ज्ञान और सत्याग्रहियो के हृदय पर उसका जमा हुआ साम्राज्य—ये तीनो बाते ट्रान्सवाल की सरकार के लक्ष्य मे होने पर भी उसने उसे गिरफ्तार न करने की नीति और विवेक का त्याग नही किया।

"स्लेशिन ने किसी दिन अपने माहवार ६ पौड मे बढौती की माग नही की, या चाही ही नही। उसकी कुछ आवश्यकताओ को जानने पर मैने उसको १० पौड देना शुरू किया। मगर उसने वह भी आनाकानी से लिया। किन्तु उससे आगे बढने के लिए उसने साफ इकार ही कर दिया। 'इससे अधिक मेरी आवश्यकता है ही नही; फिर भी यदि मै लेती हू तो जिस निष्ठा से आपके पास आई हू, वह गलत साबित होगी।' इस जवाब से मै चुप रहा। पाठक शायद जानना चाहेगे कि स्लेशिन की तालीम कहा तक की थी? केप-यूनिवर्सिटी की इटरमीजिएट परीक्षा उसने पास की थी। शार्ट-हैड आदि मे प्रथम नम्बर के प्रमाण-पत्र उसने प्राप्त किये थे। सत्याग्रह-आन्दोलन से मुक्त होने के बाद वह उस यूनिवर्सिटी की ग्रेजुएट बन गई और अब ट्रान्सवाल के किसी सरकारी कन्याविद्यालय मे प्रधान अध्यापिका है।"

अन्यत्र, कुमारी स्लेशिन के बारे मे बापूजी ने गोखलेजी का अभिप्राय बताते हुए लिखा है कि दक्षिण अफ्रीका के भारतीय एव गोरे अग्रणीयोका पर्याप्त परिचय गोखलेजी ने पा लिया था। उनमे से सभी मुख्य पात्रो का सूक्ष्म विश्लेषण करके उन्होने मुझे सुनाया। मुझे सही-सही याद है कि उन्होने हिन्दी और गोरे सभी मे कुमारी स्लेशिन को सर्वप्रथम पद दिया था। "उसके-जैसा निर्मल अन्त.करण, काम मे एकाग्रता और दृढता मैने बहुत कम आदमियो मे देखी है। और भारतीयो की लडाई मे लाभ की कुछ भी आशा के बिना इस हद तक सर्वार्पण देखकर मै तो आश्चर्यचकित हो गया हू। फिर इन सब गुणो के साथ उसकी होशियारी व चपलता तुम्हारी इस लडाई मे उसको एक अमूल्य सेविका साबित करती है। मेरे कहने की आवश्यकता नही है, फिर भी कहूगा कि उसे अवश्य अपने पास बनाये रखना।"

मगनकाका के साथ कुमारी स्लेशिन की बातचीत से पता चला कि जब चार्ल्सटाउन से चार हजार हडतालियो को लेकर बापूजी ने कूच का श्रीगणेश किया, तब से लेकर अन्त तक वह उस कूच मे थी। बापूजी, श्री पोलक और श्री कैलनबैक के पकडे जाने के बाद, जबतक सभी हडतालियो

को गिरफ्तार नही कर लिया गया, तबतक वह उनके बीच मे काम करती रही और फिर बापूजी की ही सूचना के अनुसार अविलम्ब फीनिक्स आ पहुची।

एक और बहन भी कुमारी स्लेशिन के साथ फीनिक्स आई थी। उसका परिचय देते हुए कुमारी स्लेशिन ने बताया, "यह फातिमा, इमाम अब्दुल कादर बावजीर की बडी बेटी है। इसके पिता जेल गये है, इसलिए बापूजी ने इसे यहा भेजा है। यह घर-काम बहुत अच्छा जानती है। सिलाई-काम मे निपुण है। तुम लोगो के साथ पढेगी भी।"

काले बुर्के मे लिपटी हुई फातिमा जब हमारे यहा आई, तो उसके लिए मुझे हमदर्दी हुई। पर जब फातिमा ने बुर्के का सबध अपने इस्लाम-धर्म के साथ अनिवार्य बताया, तब उसके प्रति दुख-भरी करुणा के सिवा हमारे मन मे और कोई भाव पैदा नही हो सका।

दस वर्ष की फातिमा दो-चार ही दिन मे हमारी बाल-मडली मे घुल-मिल गई। उसकी शक्ल-सूरत करीब-करीब गोरी लडकी की-सी थी। बोलने मे मानो कुमारी स्लेशिन की छोटी बहन ही थी। अग्रेजी बडी फर्राटे से बोला करती थी। थोडी-थोडी हिन्दी उसे आती थी, परन्तु अधिकतर वह अग्रेजी मे ही बाते करती थी। डच भाषा के मधुर और मृदु गीत भी उससे हम बार-बार सुनते थे।

जब कभी मौका मिलता, फातिमा अपने पिताजी का गुण-गान किया करती थी। वह बडी पितृ-भक्त थी। उसने बताया था कि इमाम साहब अपनी मिहनत से नवाब-जैसे दौलतमन्द बने है। बग्घी और तागो का रोजगार करते है। अगर कोई सईस या कोचवान घोडो को थोडा भी परेशान करता तो इमाम साहब बहुत दुखी हो जाते। वह बडे स्वाभिमानी है। पहली बार जब वह जेल गये तब उनको अपने रोजगार मे बडा नुकसान हुआ। और इस बार बापूजी की और अपने मित्रो की राय के खिलाफ फिर से वह सत्याग्रह की लडाई मे कूद पडे। अपना सारा रोजगार उन्होने समेट लिया है और जेल से छूटकर वह फिर फीनिक्स मे ही आकर रहने वाले है। फातिमा से यह सब हाल सुनकर उसके पिताजी के प्रति हमारे दिल मे भी आदर पैदा हो गया।

सन् १९३२ मे जब बापूजी यरवदा जेल मे थे तब साबरमती आश्रम के बच्चो को प्रति सप्ताह एक पत्र लिखा करते थे। उन पत्रो मे तीन सप्ताह तक उन्होने स्वर्गस्थ इमाम साहब के सस्मरण लिखे थे। उनमे इमाम साहब के जीवन की बात बताते हुए उन्होने लिखा है: "फीनिक्स मे

आकर बसने की उनकी बात सुनकर मैं दिङ्मूढ बन गया। जिसने कभी एक भी दिन अपने हाथ-पैरो को कष्ट नही दिया और मानो पूरी नवाबी से ही रहा हो वह एकाएक मजदूर कैसे बन जायगा? स्वय इमाम साहब कदाचित फीनिक्स का जीवन सह ले पर उनकी बीवी हाजी साहेबा का क्या होगा? फातिमा, अमीना का क्या होगा? इन सब बातो का इमाम साहब के पास साफ और छोटा उत्तर था, 'मैने तो खुदा पर भरोसा किया है। हाजी साहेबा को आप नही जानते। जहा मैं, वहा वह रहने को तैयार होगी ही। जैसा जीवन मैं बिताऊगा वह भी बितायगी। इसलिए मैने फीनिक्स आने का निश्चय कर लिया है। यह सत्याग्रह-सग्राम कब पूरा होगा कोई नही कह सकता। पर अब मैं बग्घी-तागो का या दूसरा कोई भी रोजगार कर नही सकता। मैने आपकी ही तरह देख लिया है कि सत्याग्रही को धन-दौलत आदि का मोह छोड देना चाहिए।'......

"...फीनिक्स की प्रवृत्ति मे इमाम साहब भाग लेने लगे...वह उस समय नाजुक शरीर के थे; लेकिन सवेरे तडके ही बहगी लेकर झरने पर पहुच जाते थे और पानी का बोझ लेकर पचास फुट वाली ऊचाई के टीले पर धीरे-धीरे चढते दिखाई देते थे।....छापाखाने की मशीन रुक जाती थी तब वह भारी चक्कर चलाने मे योग देते थे। हर किस्म के छोटे-मोटे काम इमाम साहब, हाजी साहेबा, फातिमा और अमीना—चारो अपने हिस्से का करते थे। उस बुजुर्गी मे भी इमाम साहब ने छापाखाना मे 'कपोजिंग' का काम सीख लिया। वह आश्चर्य की बात थी। इस प्रकार इमाम साहब फीनिक्स मे ओतप्रोत हो गए थे। वह और उनका परिवार रोज़ाना मास खाने का आदी था, परन्तु फीनिक्स मे इमाम साहब ने मास पकाया हो, ऐसा मुझे जरा भी स्मरण नही है।....नमाज़, रोज़ा आदि से कभी भी इमाम साहब या उनका परिवार चूकता नही था, बल्कि फीनिक्सवासियो मे हिलमिलकर और उनके लिए त्याग करके इमाम साहब इस्लाम की सभ्यता का सु-दर्शन कराते थे।

".....मेरा दृढ अभिप्राय है कि इमाम साहब दिन-दिन प्रगति कर रहे थे; उनकी वृत्तियां शुद्ध होती जाती थी; उनकी ईश्वरभक्ति वढती जाती थी; और आश्रम के नियमो के प्रति उनकी श्रद्धा बैठती जाती थी।"
—(यरवदा मदिर, २१–३–३२)।

एक और प्रसिद्ध व्यक्ति का परिचय देना आवश्यक है, जिनका आगमन करीब-करीब उन्ही दिनो फीनिक्स मे हुआ था जब मिस श्लेशिन वहा आई थी। उनका नाम था फकीरा भाई। जहा तक मेरा अनुमान है वह सूरत जिले के निवासी थे और पक्के गुजराती किसान थे। जिन लोगो की सरलता,

शान्तिप्रियता और तितिक्षा वृत्ति देखकर गाधीजी ने भारत मे आने के बाद सत्याग्रह का उग्र सघर्ष करने के लिए बारडोली तहसील को चुना था; उन्ही लोगो का श्रेष्ठ प्रतीक, फीनिक्स मे हमे फकीरा भाई मिले थे।

फीनिक्स मे आने से पूर्व फकीरा भाई ग्यारह वार कारावास भुगत आये थे। जोहान्सबर्ग मे बिना परमिट के शाक-फल की फेरी लगाकर उन्होने बरसो तक बार-बार जेल-गमन किया था। और इस प्रकार उस समय के वहा के जेल-यात्रियो मे वह प्राय: सर्वप्रथम थे। अब उनको जेल जाने से रोक कर फीनिक्स मे आने वाले हडतालियो की सहायता के लिए फीनिक्स भेजा गया था।

उनकी दो बाते अजीब मालूम देती थी, एक तो सिगरेट से उनकी बहुत ज्यादा मोहब्बत और दूसरी एक ही जगह पर बैठे-बैठे बाते करते रहना, ये दोनो ही फीनिक्स-वासियो के लिए अस्वाभाविक बाते थी। परन्तु जब फकीरा भाई काम करने के लिए उठते थे तब बेहद काम कर डालते थे। भूखे हडतालियो को सीधा तौल देने का उनका काम था। बारह-बारह और कभी पन्द्रह-पन्द्रह घटे तक वह खडे-ही-खडे सीधा तौलते रहते थे। इतने भारी काम मे भी प्रसन्न रहते थे और किसी से भूल कर भी ऊचे शब्दो मे तू-तडाक नही करते थे। कभी-कभी उनको प्रतिदिन आठ सौ से एक हजार लोगो को आटा-दाल तौल कर देना पडता था। मुझे फकीरा भाई का सहायक नियुक्त किया गया था, इसलिए उनके साथ मुझे भी बहुत देर तक जुटा रहना पडता था।

: ६२ :

सत्याग्रहियों की भोजन व निवास-व्यवस्था

एक दिन सुबह अचानक ही भारी शोर-गुल सुनकर मै अपने बिस्तर से चौंक कर उठ बैठा। पूछने पर मगनकाका ने बताया "हमारे बगीचो मे सब जगह आदमी-ही-आदमी उमडे पडे है। तुम सब लोग तो भर नीद सो रहे थे, और रात-भर हडतालियो का सतत-प्रवाह आता रहा है। मुझे तो रात-भर जागते ही रहना पडा। जरा-सी झपकी लगते ही नई टोली आ पहुचती थी और उसके लिए मुझे बाहर जाना पड़ता था। अब हमारा काम बहुत

बढ गया है। तुम सब जल्दी निबट कर काम पर लग जाओ। ये हडताली लोग जहा-तहा गन्दगी न करे इस बात की सावधानी रखनी होगी। रात को जब इतने आदमी आये है तो दिन मे इनसे भी अधिक लोग आयेगे। उन सबकी व्यवस्था के लिए हम सब लोगो को तैयार हो जाना है।"

अपना बिस्तर समेटकर मै जल्दी तैयार होकर हडतालियो को देखने निकल पडा। जिधर नजर डाली, उधर आदमी-ही-आदमी देखकर मै चकित रह गया। फीनिक्स के उस एकान्त मैदान मे एक साथ सौ आदमियो से अधिक पहले कभी मैने नही देखे थे। ऐसे स्थल पर एक ही रात मे जादू की तरह मानो जमीन से आदमी फूट पडे थे। उन लोगो ने हमारे सभी बगीचो को और रास्तो को घेर लिया था और नये लोग चले ही आ रहे थे। किसी टोली मे पाच-सात व्यक्ति होते थे, तो किसी मे चालीस-पचास का झुण्ड होता था।

ग्यारह बार जेल हो आने वाले वीर फकीरा भाई अन्नभडार के काम पर जुट गए। हडताली भाई-बहनो को देने के लिए दो प्रकार के सीधे-सामान की सूचिया मगनकाका ने तैयार की। एक सूची के मुताबिक दाल-चावल तथा नमक-मिर्च और दूसरी सूची के मुताबिक आटा और चीनी देने का नियम बनाया गया। प्रत्येक व्यक्ति के हिसाब से कितना अन्न दिया जाय यह भी ठहरा दिया गया। जो नये-नये परिवार आते थे उनके लिए टिकने का स्थान निश्चित कर देने के बाद मुख्य व्यक्ति को मै छापाखाना मे मगनकाका के पास ले जाता। वहा से चिट्ठिया बनवा कर उनको अन्न-भडार मे ले जाता और फकीरा भाई से निश्चित सीधा तुलवा कर उन लोगो को दे देता। फकीरा भाई बडी तेजी से काम करते थे और किसी पर भी नाराज नही होते थे; परन्तु मै छोटा बच्चा होते हुए भी अकस्मात बडा आदमी बन गया था। इसलिए द्वारपाल का अपना कर्त्तव्य करते हुए हडतालियों से अनेक बार अकड जाता था। उनमे कई हडताली ऐसे भी थे जिनके दो-दो दिन के फाके हो चुके थे। भूखे पेट वे लोग दिन-रात तीस-चालीस मील का रास्ता चल कर मुश्किल से फीनिक्स तक आ पाए थे। राशन की चिट्ठी के हिसाब से तुले हुए अन्न का कागज मे बधा थैला जब मै उन लोगो के हाथ मे रखता था तब उनके मुख पर प्रसन्नता झलक उठने के बदले कई बार गहरी निराशा प्रकट होती थी और खिन्न होकर उनमें से कुछ लोग कहते थे, "इतने से क्या होगा। इससे हमारी भूख थोडे ही मिटेगी? थोडा-सा आटा (या चावल) और दे दो न?" और इस माग को वे बार-बार दोहराया करते थे तथा भडार के दरवाजे से हटते ही नही थे। ऐसे समय फकीरा भाई दरवाजे पर जाकर उन लोगो को मधुरता

से समझाने का प्रयत्न करते थे कि "भैया, तुम एक-दो को अधिक कैसे दे दिया जाय! यह समय ही कष्ट उठाने का है।"

उन लोगो को रसोई के लिए जगह बताने मे मुझे अपना बहुत समय देना पडता था। बार-बार उन्हे समझाना पडता था कि फल के वृक्षो को आग से नुकसान न पहुचे। परन्तु जब तक किसी फल-वृक्ष को भारी नुकसान होने का खतरा न हो तब तक मै किसी को व्यर्थ रोकता-टोकता नही था।

यद्यपि उस समय हडतालियो का कोई बाकायदा सघ बना हुआ नही था, फिर भी जितने लोग आये थे, बडे भाईचारे से रहते थे। प्रत्येक परिवार अपनी अलग रसोई पकाता था सही, परन्तु उनमे परस्पर मेल बहुत था। अकेला कुटुम्ब कही नजर नही आता था। हर जगह अलग-अलग झुड मे वे लोग डेरा डाले हुए थे। उनके दिलो मे सबसे ज्यादा घबराहट इस बात की रहती थी कि अब यहा पहुच जाने के बाद भी उन्हे आराम मिलेगा या नही?

जब मै उनके बीच मे घूमने निकलता था तब वे लोग मुझे बुला-बुला कर बाते करने लगते थे। "एई, छोटा बाबा! जरा इधर तो आओ। देखो भैया, चावल तो मिला पर पकाने के लिए बरतन भी जरा मिला दीओ।" मै उत्तर देता "भाई यहा तो दाल-चावल मिलता है। इतने बरतन भडार मे कहा है?" कोई अपने मन की शान्ति के लिए पूछता था. "यहा से सोल्जर लोग हमको उठाकर नही ले जायगे न?" कोई भक्ति गद्गद् हो कर पूछता था, "ओ, छोटा बाबा! गाधी महाराज का घर कौन-सा है? वे कहा रहते है? उनको कहा से पकड कर ले गए? गाधी महाराज तुम्हारा क्या लगता है? तुम्हारे माई-बाप कौन है? यह बगीचा किसका है?" आदि।

उनके प्रश्नो का जोर जब कम होता था तब मेरी बारी आती थी। "देखिये, बगीचे को कोई नुकसान न हो यह देखना मेरा काम है। आप लोग मिहरबानी करके एक भी फल न तोडे।" मुझे तुरन्त उत्तर मिलता, "नही, नही, क्या हम इतना भी नही समझते? देखो हम इन बच्चो पर खास निगरानी रखते है कि वे फलो को हाथ न लगावे। तुम बे-फिकर रहो।" फिर मै उनसे कहता, "बगीचे को नुकसान नही पहुचायगे यह आपकी मेहरबानी है। अब इतना ध्यान रखे कि यहा पास मे कोई टट्टी बैठकर गन्दगी न फैलावे।" वे कहते, "ऐसा कौन मूर्ख होगा जो इतने सारे लोगो के बीच यहा टट्टी जाय। कोई जायगा तो हम उसे पीट न डालेगे!"

वे अपनी बात के इतने पक्के थे, इसका एक किस्सा मुझे याद आ रहा

हैं। एक बार मैं निगरानी के लिए चक्कर काट रहा था। दो जवानो को मैंने एक अमरूद के पेड पर हाथ मारते देखा। मैं तुरन्त वहा गया और जोर से चिल्लाया, 'ए, क्या तोडते हो !' वे दोनो उलट कर मुझ पर आ-धमके और डाटने लगे, 'तुमने देखा ? हमने कहा कुछ तोडा है ? बच्चे होकर झूठ क्यो बोलते हो ?' लेकिन मैं कुछ कहू, उससे पहले ही उन्ही हड-ताली भाइयो मे से कई मेरी सहायता को दौड आये। उन्होने उन दोनो को आडे हाथो लिया, 'तुम वहा पर गये ही क्यो ? हम सबकी आबरू मिट्टी मे मिलाना चाहते हो ? गाधीराजा के बगीचे मे चोरी करते शर्म नही आती।' वे बेचारे इतने शर्मा गए कि मुझे और कुछ कहना नही पडा।

जैसे-जैसे दिन बीतते गए, हडतालियो की बाढ हमे हैरत मे डालती रही। जिस दिन सैकडो नये आदमी न आये हमे अचम्भा होता था। रोज शाम को राशन की चिट्ठियो से मगनकाका अन्दाजा लगाते थे, आज ७०० आदमी बढे, आज १००० बढे और आज १५०० नये आये। फकीरा भाई का और मेरा कार्यक्रम ऐसा नियमित चल रहा था कि इतने आदमियो के स्वागत मे हमे दिक्कत नही होती थी, न कोई धाधली होती थी।

लेकिन एक बडा जटिल प्रश्न यह था कि इतने सारे आदमियो के लिए खाना कैसे पूरा किया जाय ? मगनकाका के सिर पर अपार चिन्ता थी। स्टेशन से दाल-चावल, आटा और चीनी की बोरिया रोज़ आती रहती थी, किन्तु कुछ घटे बीतने के बाद ही फकीरा भाई की चेतावनी मगनकाका के पास मुझे पहुचानी पडती थी कि सीधा खतम है; और नई चिट्ठिया न काटें।

जेल जाने से पहले बापूजी ने दक्षिण-अफ्रीका के भारतवासियो को अपना जो अन्तिम सन्देश दिया था, उसमे उन्होने हिन्दी व्यापारियो से इन हडताली भाइयो को सहायता देने की अपील की थी। उनका वह पत्र 'इडियन-ओपीनियन' मे निम्न प्रकार छपा था :

"इस बार की लडाई दुबारा नही होने वाली है। अब हद हो गई है। गरीब गिरमिटिये भारतीयो की हिम्मत की और उनके दुख की कोई सीमा नही रही है। डेढ रतल (साढे ग्यारह छटाक) डबल रोटी और मुट्ठी-भर चीनी पर रह कर प्रति दिन चौबीस मील कितने आदमी चलेगे ? यह काम हमारे गरीब भाइयो ने किया है। उन्होने घोडो की लाते खाई हैं गोरो की ठोकरें और उनके मुक्के चुपचाप सहे हैं। स्त्रिया दो-दो महीनो के बच्चो को गोद मे लेकर सिर पर गठरी उठाये भरी दोपहर मे चली हैं। सभी ने सर्दी, धूप और बारिश को सहन किया है। यह सब किसके लिए ? भारत

के लिए। ऐसे बलिदान से तीन पौंड का कर जायगा ही, किन्तु भारत का दर्जा भी बढेगा।

"ट्रान्सवाल की कूच पूरी फतहमन्द साबित हुई है, ऐसा मै मानता हू। उद्देश्य गिरफ्तार होने का था और सब पकडे गए।

"किन्तु लडाई का सही रग अब आयगा। इसमे वे सैकडो आदमी भी, जिनको जेल नही जाना है, काम कर सकेंगे। उनको इतना ही प्रण लेना है कि वे स्वय भूखे रह कर भी उनको खाना देगे, जिन्होने हडताल की है। हिन्दुस्तान से पैसे आये या न आयें, हम लोगो को यहा से उनको खाना देना ही चाहिए। हडतालियो को हिम्मत और ऐसी सलाह देनी चाहिए कि यदि उनके ऊपर लातो के प्रहार हो तो भी वे मुकाबला या मुठभेड न करे। इतना काम सभी भारतवासियो से हो सकता है। ऐसा अवसर लौट कर आने वाला नही है। प्रत्येक भारतीय व्रत ले सकता है कि स्वय जितनी बार भोजन करते हो, उसमे से एक बार कम खाकर पैसे बचाकर भूखो को अन्न देंगे। हर एक गाव के व्यापारियो का कर्त्तव्य है कि वे अपने यहा आये हुए किसी भी हडताली को खाना और आश्रय दे और फिर जहा बहुतो को खिलाने की सुविधा की गई हो वहा उन्हे भेज दे। इस महत्कार्य मे जो हिन्दी अपनी शक्ति-भर हिस्सा नही लेगा, उसको मै अभागा समझूगा।

सत्याग्रही हिन्दियो का सेवक

ता० १९-११-१३ मो० क० गाधी।"

बापूजी की इस अपील का बडा असर हुआ। जब हम फीनिक्स मे लोगो को खिलाने की चिन्ता मे थे, तब खबर आई कि डरबन मे भारतीयो की एक विराट सभा हुई है और मारित्सबर्ग तथा डरबन के हिन्दू-मुस्लिम व्यापारियो ने बहुत-सा अनाज अपनी दूकानो से निकाल कर दिया है। साथ-साथ हमने यह भी सुना कि हडताल की सारी बाते हिन्दुस्तान पहुच गई है और गोखलेजी महाराज ने तार देकर सूचना दी है कि वह अनाज के लिए इन्तजाम कर रहे है।

डरबन की सभा के समाचार मिलने के तीसरे या चौथे ही दिन एक बडी खच्चर-गाडी अनाज की बोरियो से लद कर डरबन से हमारे यहा आई। उस गाडी के साथ थे—श्री सोराबजी, रुस्तमजीकाका के छोटे पुत्र। सैकडो हडताली उस गाडी के पास जमा हो गए। श्री सोराबजी ने बहुत-सा अन्न वहां गिरमिटियो को बाट दिया। फिर कई बोरिया फीनिक्स में छोडकर गाडी आगे बढ गई। वह कुछ अनाज शाम से पहले वहा से आठ-नौ मील दूर माउटेजकब के 'घमोले' (चीनी मिल) पर पहुचा देना चाहते

थे, ताकि वहा पडे लोगो को भी भोजन मिल सके। इन्ही सोराबजी के एक दूसरे बडे पराक्रम के बारे मे बापूजी ने 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास' मे लिखा है :

"एक प्रसग अकित रखने जैसा है। वेरूलम मे बहुत-से मजदूर निकल पडे थे। किसी तरह वे लौट नही रहे थे। जनरल यूकिन अपने सिपाहियो के साथ वहा पर मौजूद था। उन लोगो पर गोली चलाने का हुक्म देने को तैयार था। स्वर्गीय पारसी रुस्तमजी का छोटा बेटा बहादुर सोराबजी, जिसकी उम्र मुश्किल से १८ वर्ष होगी, डरबन से वहा पहुच गया था। वह जनरल के घोडे की लगाम पकड कर बोल उठा, 'आप गोली चलाने का हुक्म नही दे सकते। अपने लोगो को शातिपूर्वक काम पर लौटाने का जिम्मा मै अपने ऊपर ले रहा हू।' जनरल यूकिन इस नौजवान की बहादुरी पर मुग्ध हो गया और उसने उसको अपने प्रेम का बल आजमाने की मोहलत दी। सोराबजी ने लोगो को समझाया। लोग समझे और काम पर लौटे। इस प्रकार एक जवान की समय-सूचकता, निर्भयता और प्रेम से खून-खच्चर होते-होते बच गया।"

: ६३ :

सूझाई का बलिदान

नित्य नियमानुसार एक दिन दोपहर छापाखाने के कार्यालय मे मै डाक की टिकटे लगाने मे व्यस्त था कि छोटम ने दौडते हुए आकर मगन-काका को खबर दी कि हमारे घर मे एक आदमी आ बैठा है। वह चल नही पाता, उसका हाथ अकड गया है; उसकी पत्नी भी साथ है और सहारा दे-देकर उस आदमी को चलाकर लाई है। वह औरत बार-बार रो पडती है, आदमी का मुह बडा भद्दा है; बार-बार कहता है, 'सेठ से मिलना है।' वह दूसरे हडतालियो के साथ रहने से इनकार करता है।

मगनकाका ने छोटम और उसके बाल-साथियो को तो बिदा कर दिया और उन बच्चो को समझाया कि वे उस बीमार आदमी को तग न करे। सध्या के समय काम समाप्त होने पर देवदासकाका और मुझे साथ लेकर मगनकाका उस व्यक्ति के पास पहुचे। पूछने पर उसने अपना

नाम 'सूर्भाई' बताया और अपना फटा कुरता उठाकर मगनकाका को अपनी पीठ दिखलाई।

उसकी सारी पीठ पर दो-दो अगुल की दूरी पर मोटी-मोटी लकीरें उछली हुई थी। कई जगह खाल फट गई थी और मास के लोथडे उभर आये थे। हमसे तो यह देखा नही जाता था।

मगनकाका के पूछने पर सूर्भाई ने बताया· "सा'ब ने शैम्बक से मारा है।" 'शैम्बक' गेडे के चमडे से बने हुए हटर को कहा जाता था।

सूर्भाई ने आगे बातया· "हमारे लोग बीच-बचाव न करते तो वह और भी मारता।" वह अधिक नही बोला और शेप बात उसने हमारे समझने और महसूस करने के लिए छोड दी। किन्तु उसके अन्तिम शब्द और भी मर्मवेधक थे "उसने मारा, सो तो कुछ नही, पर और दूसरा कोई आदमी जब उसके हाथ नही आया तब मुझ बीमार को ही पीट डाला, इसमे कौन-सी बहादुरी थी?"

किन्तु सूर्भाई की स्त्री मे सूर्भाई की-सी सहनशीलता और दिमाग की ठडक कहा से आती? वह रोती थी, बिलखती थी मानो उसके हृदय के दो टुकडे हुए जा रहे थे। उसने कहा, "मेरे पति ने कोई अपराध नही किया। उसने जरा भी विरोध नही किया। बीमारी के कारण वह तीन-चार दिन काम पर नही जा सका, बस इतने से ही उस पर यह कहर ढाया गया। वह भी खान से पहले ही निकल गया होता, भाग पाता तो इस मार से बच जाता।"

मगनकाका ने सब देखा, सुना और हृदय को कडा करके सूर्भाई तथा उसकी पत्नी को सात्वना दी। बाद मे उन्होने हमारी पाठशाला वाले छोटे-से मकान की एक कोठरी उनके अलग रहने के लिए खाली कर दी। छोटे छोटे बालक अपना खेल-कूद छोड कर उन दोनो की सेवा तथा सहायता करने लगे। जब और हडताली फीनिक्स से लौट गए तब भी सूर्भाई और उसकी पत्नी फीनिक्स मे टिके रहे, यद्यपि सूर्भाई की पत्नी का उद्वेग कई दिन बीत जाने पर भी कम नही हुआ, फिर भी स्वय सूर्भाई मानो मुनि बन गया था। उसके मुह से हम कभी 'उफ' भी सुनने को नही मिला। अकस्मात् एक दिन एक गोरा सोल्जर सूर्भाई-दपति को फीनिक्स से ले गया। और एक दिन हमने सुना कि वह अब इस ससार मे नही है। सत्याग्रह का अन्त होने पर उसका मामला चर्चा का विशेप विषय रहा। प्लैटर्स (बाग-मालिको) ने अपना बचाव कैसे किया यह मुझे नही मालूम; किन्तु

सूर्फाई मर कर सत्याग्रह के इतिहास मे अमर हो गया। वह अपने पीछे शौर्य और धैर्य का स्थायी प्रकाश छोड गया।

: ६४ :

फीनिक्स में गोरी पल्टन

फीनिक्स मे हडतालियो की सख्या जैसे-जैसे वढती जाती थी, उस पर सरकार की कोप-दृष्टि की आशका भी अधिक होती जाती थी। ऐसी आशका वनी रहती थी कि मगनकाका, श्री वेस्ट और श्री देवी बहन को गिरफ्तार कर लिया जायगा।

इन चर्चाओ'से हम वालको को आनन्द ही होता था। मैंने एक दिन मगनकाका से पूछा कि आपकी गिरफ्तारी के वाद हम लोग अकेले हो जायगे; फिर अपने छोटे-छोटे भाई-वहनो की हिफाजत कैसे करेंगे? मगनकाका ने हमे समझाया कि उनके गिरफ्तार होने के बाद साप्ताहिक पत्र तो बन्द हो जायगा, इसलिए काम भी कम रहेगा। फिर तुम लोग छोटे भाई-बहनो को सभालना और श्री गोविन्द स्वामी (जो पहले सोलह सत्याग्रहियो मे थे) की धर्मपत्नी—श्रीमती सेम—के यहा जाकर खेला करना।

उन्होने हमसे यह भी कहा, "मेरे पकडे जाने पर डरबन और मारित्स-बर्ग से लोग यहा आयगे, तुम पर दयाभाव दिखायगे और तुम्हे अपने साथ शहर मे ले जाना चाहेगे, परन्तु तुम्हारा जाना उचित न होगा। कोई आकर 'इडियन ओपीनियन' पत्र निकालने की बात करे तो तुम वह भी न करने देना। पत्र बन्द होने का समाचार भारत पहुचेगा ही, तव गोखलेजी व्यवस्था कर देगे।"

मगनकाका की गिरफ्तारी की वात बारवार उठती और प्रायः रोज ही ऐसा मालूम होता था कि वह गिरफ्तार कर लिये जायगे; बारबार हमे फीनिक्स के आसपास पुलिस घूमती हुई दिखलाई पडती और वारवार मगनकाका के जाने की तैयारी हो जाती; किन्तु लवी प्रतीक्षा के वाद भी वह आशका फली नही।

नए हडताली वड़ी तादाद मे अब भी चले आ रहे थे। किन्तु उनके

मुख पर धैर्य और उत्साह के चिह्न दिखलाई नही देते थे; उन्होने अपनी मानसिक दशा से अन्य सभी लोगो को भयभीत कर दिया था।

लोग आपस मे चर्चाए करते थे और यह अफवाह फैल रही थी कि यदि आगामी सोमवार तक हडताली अपनी-अपनी कोठियो मे लौट नही जायगे तो उनकी खूब मरम्मत की जायगी। रविवार को सारी रात घटा बजता रहेगा। उसे सुनने के बाद भी जो काम पर नही पहुचेगे उन्हे गिरफ्तार करके ले जाया जायगा। फौजी लोग आकर डडे मार-मार कर उन्हे वापस ले जायगे।

कुछ लोग उनमे ऐसे थे जो पुलिस की छाया देखकर भी घबडा जाते थे, किन्तु ऐसो की भी कमी नही थी जो कहते थे "जब आयगे तब देखा जायगा। यह उनका घर थोडे ही है, गाधी महाराज का घर है।" बारी-बारी से भय और समाधान की लहर-सी उठती थी।

एक दिन झरने के वृक्षो के उस पार मैने सात-आठ घोडे देखे। प्रत्येक पर एक-एक ऊचा, तगडा, गोरा सैनिक था। सब छापाखाने की ओर आ रहे थे। उनके पीछे नए-नए घुडसवार भी आते हुए दिखलाई पडते थे। मै प्रेस की दो सीढी उतर कर चार-पाच कदम उन गोरे सैनिकों की तरफ बढ रहा था कि वे लोग ठीक प्रेस के दरवाजे की ओर मुडे और एक ने बिलकुल मेरे सामने घोडा खडा कर दिया। उसकी कमर पर और सीने पर चमडे के चौडे पट्टे थे। उनमे कारतूसे भरी हुई थी और उसके एक हाथ मे बदूक थी। उसके पीछे दूसरा सवार भी कारतूसो के पट्टे तथा बदूक लगाये हुए था। बाद के सभी सैनिको के हाथ मे मोटे-लबे डडे थे। पहले घुडसवार ने मुझे अपने पास बुलाया और पूछा, "मिस्टर गाधी कहा है?"

मैने पूछा, "क्यो?"

उसने कहा, "मुझे उनसे मिलना है।"

"मि० गाधी यहा नही है। वह तो जेल मे है।"

इसपर उसके पीछे के सवार ने कुछ आगे बढकर मुझे समझाया—"हम मि० एम० के० गांधी के बारे मे नही पूछते; मि० मगनलाल के० गाधी के बारे मे पूछते है। वह तो यही पर है न?"

"हा, यही है, प्रेस मे काम कर रहे है।"

"जाओ उनसे जाकर कहो कि लेफ्टिनेट और कैप्टेन आये है, उनसे मिलना चाहते है।"

वे सीधे प्रेस मे नही घुसे। उनकी यह शिष्टता मुझे अच्छी लगी।

कुछ आश्चर्य और कुछ आनन्द की भावना से मै छापाखाना के अन्दर दौड गया और मैने मगनकाका से कहा, "सैनिको की एक बडी पल्टन आई है। श्री वेस्ट के घर की ओर से सारा रास्ता घुडसवारो से छाया हुआ है। आपको बुला रहे है, वारट लेकर आये दीखते है। उनके पास बदूके, कारतूस, सब-कुछ है।" मेरी बात सुनते ही मगनकाका, देवदासकाका आदि छापाखाना से बाहर आये।

छापाखाना के द्वार पर सब इकट्ठे हो गए। मगनकाका एक सीढी नीचे उतरे। लेफ्टिनेट ने अपना घोडा एक कदम आगे बढाया और बडी रूखी-मोटी आवाज से बात करने लगा। देवदासकाका और मै मगनकाका से बिलकुल सटकर बात सुनने लगे।

"मगनलाल के० गाधी आप ही है?" लेफ्टिनेट ने पूछा।

"हा!" मगनकाका ने उत्तर दिया।

"मै आपसे कहने आया हू कि आप इन सब आदमियो से कह दीजिए कि वे यहा से अपनी-अपनी जगह पर लौट जाय, वरना इन्हे बहुत तकलीफ भोगनी पडेगी। इनको राशन देना तो आप बन्द कर ही दीजिए।"

"यह नही हो सकता; जो लोग यहा आयगे, उनको अन्न और जगह तो हम देगे ही। हमारा यह कर्त्तव्य है।"

"किन्तु आप इन लोगो को मेरी बात समझाइए। इनसे कहिए कि सोमवार से पहले यदि वे काम पर नही चले जायगे तो उनकी बडी दुर्दशा होगी।"

"मै उनको यहा से लौटने की सलाह नही दे सकता।"

"अच्छा, तो आप मेरे हरएक वाक्य का हिन्दी मे अनुवाद तो उनके लिए कर देगे न? मै बोलूगा तो इन लोगो की समझ मे नही आयगा। और मेरे साथ का दुभाषिया कहेगा तो यह सारी भीड उत्तेजित हो जायगी। यदि शाति रखनी है तो जो मै बोलू उसका अनुवाद आप सुना दीजिए।"

"यह बात स्वीकार की जा सकती है, पर मै कुछ करू इससे पहले मुझे मि० वेस्ट से मिलना होगा। उनसे मिलने के बाद ही मै कोई कदम उठा सकता हू।"

"मि० वेस्ट से तो आप नही मिल सकेगे। उनको गिरफ्तार करके मोटर से रवाना कर दिया गया है। वह तो अब डरबन पहुचने वाले होगे।"

"क्या मि० वेस्ट पकडे गए? क्यों?"

"हा, उनके नाम वारंट था। वे गये।"

"मेरे लिए वारट क्यो नही है ?"

"सरकार आपको पकडना नही चाहती। आप हडतालियों को समझाकर लौटा दे; उन्हे न रखे। इतना ही सरकार आपसे चाहती है।"

"ठीक बात है, आपका सदेश मै हडतालियो को सुना दूगा। लेकिन जो यहा आयगे और रहेगे, उनको आश्रय हम अवश्य देगे।"

तीन-चार मिनट मे यह सारी चर्चा हो गई। इसके बाद मगनकाका ने मुझे तुरन्त घर पर जाकर बच्चो को सभालने की आज्ञा दी। मै घर पहुचा तो वहा इमाम साहब की बडी पुत्री फातिमा बहन सब बच्चो को घेर कर बैठी थी। सभी बच्चे आनन्द मे थे। मेरे पहुचते ही वे चिल्लाने लगे, "हमने मोटर देखी! हमने मोटर देखी! उसमे मि० वेस्ट बैठे थे।"

फातिमा बहन बोली, "हमे तुमसे पहले ही पता चल गया। हमने तो उनको गिरफ्तार होते और ले जाते हुए देखा। लाल मोटर थी। तुम इधर कैसे आए?"

मैने प्रेस मे आये हुए घुडसवारो की बात सुनाई और कहा कि मगनकाका ने मुझे बच्चो को सभालने के लिए भेजा है। यह सुन कर फातिमा बहन ने कहा, "तुम, बेफिक्र होकर जा सकते हो। हम सब बहुत मज़े में है। मगनकाका से कहना कि वह चिता न करे। यहा किसी को घबराहट नही है।"

मै फिर दौडता हुआ प्रेस की ओर चला। मार्ग मे हमारी पाठशाला के पास, जहा बहुत-सी हडताली औरतो को टिकाया गया था, बडी घबराहट फैली हुई थी। कई स्त्रिया रो रही थी। मै उनके बीच पहुचा तो उनमे से एक बुढिया ने मुझसे पूछा, "क्या, गोरी पल्टन आई है? वह गोली चलाने वाली है?" मैने उसको धीरज बधाया और कहा, "नही, गोली वगैरा नही चलेगी; मगनकाका उस पल्टन के मुखिया से बातचीत कर रहे है। सभी लोग प्रेस मे ही है। अगर वे इस ओर आयगे तो हम भी उनके साथ-साथ यहा आयगे। काका आप लोगो को अकेला नही छोडेगे। आप लोग बिलकुल न घबराए।"

उन्ही मे से दो-तीन अधेड आयु वाली बहनो ने औरो को साहस दिलाते हुए कहा, "यहा, गाधी महाराज के घर मे, कोई हमे नही सता सकता। डरने की कोई बात नही है। गोरे सिपाही आ गए तो क्या हो गया?" एक वृद्धा ने मेरी ओर सकेत करके सबसे कहा, "ये बच्चे नही डरते तो हम सब तो बड़ी है।"

मै दौडता हुआ प्रेस मे पहुचा। वहा गोरे घुडसवारो ने एक घेरा-सा वना रखा था। उसे पार करके पीछे वाले मैदान मे पहुचा, जहा हडतालियो की वहुत वडी सख्या जमा थी और उनके वीच मे मगनकाका खडे थे।

. लेफ्टिनेंट अपने घोडे पर वैठा हुआ अग्रेजी मे एक के वाद दूसरा वाक्य वोलता जाता था और मगनकाका उसका हिन्दी अनुवाद सुनाते थे। लोग लेफ्टिनेंट का भाषण ज्यो-ज्यो सुनते और समझते थे, त्यो-त्यो उनके चेहरो पर निराशा और ग्लानि की छाया वढती जाती थी।

हडतालियो के चेहरो से साफ मालूम होता था कि वे अपनी-अपनी कोठियो पर लौटने को तैयार नही है। फीनिक्स मे, 'गाधी महाराज के यहा,' गोरे लोगो के अत्याचारो और मारपीट का उनको इतना अधिक डर नही था, जितना कोठियो मे पहुचने पर था। पर मगनकाका ने हडतालियो को फीनिक्स से लौट जाने के लिए जो समझाया था, वह सत्याग्रह-सग्राम की निश्चित नीति के अनुसार ही किया था।

सत्याग्रह सग्राम मे सत्याग्रह करने वाले पक्ष की ओर से थोडी-सी भी अशाति पैदा की जाय, हाथा-पाई या मारपीट हो तो दमन करने वालो का काम सोलहो आने वन जाता है। सत्याग्रहियो का सवसे वडा मोर्चा यही होता है कि वे अपने धैर्य, शाति और सौजन्य को मरते दम तक न छोडे। अव्यवस्था और दगा करने से हर हालत मे लोगो को रोक देना चाहिए।

मुझे तव यह सब ज्ञान नही था, पर वाद मे, दक्षिण-अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास पढने पर मालूम हुआ कि और ज्यादा गिरमिटियो को हडताल करने से रोकने की स्पष्ट हिदायत वापूजी जेल जाते समय दे गए थे।

उन्होने लिखा था : "जेल जाते समय मै तो साथी लोगो को सावधान कर गया था कि अव वे अधिक मजदूरो को हडताल करने से रोके। मुझे उम्मीद थी कि खान के (कोयलो की खान के) मजदूरो की सहायता से सग्राम सिमट सकेगा। अगर सभी मजदूर अर्थात् साठ हजार मनुष्य हडताल करेगे तो उन सवको खिलाना-पिलाना भारी पड़ जायगा। इतने लोगो को कूच कराते हुए ले जाने का सामान ही हमारे पास नही था। इतने नेता नही थे और न इतने पैसे थे। फिर इतने आदमियो को जमा करने पर उन्हे दगा-फिसाद करने से रोकना असभव हो जाता।

"परन्तु जव वाढ़ फैल जाय तव किसका वस चल सकता है? सव

जगहो से मजदूर लोग निकल पडे। उन सभी जगहो पर अपनी ही सूझ-बूझ से स्वयसेवक उपस्थित हो गए।

"सरकार अब बन्दूक-नीति पर तुल गई। लोगो को हडताल करने से जबरन रोका गया। उनके पीछे घुडसवार दौडे और उन्हे अपने स्थान पर लौटाया। लोग थोडा-सा भी दगा करे तो उन पर गोलिया चलाने की आज्ञा थी। मजदूर लोग लौटने के खिलाफ हुए। किसी ने पत्थर भी चलाये। उनपर गोलिया चलाई गई। बहुत घायल हुए। दो-चार मरे। किन्तु लोगो का जोश ठडा नही हुआ। इन जगहो मे बडी मुश्किल से स्वयसेवको ने हडताल होने से रोकी। सब तो काम पर गये नही कुछ लोग भय के मारे छिप गए, जो लौटे ही नही।"

लेफ्टिनेट की बात का प्राय पौन घटे तक उल्था करके मगनकाका हडतालियो को समझाते रहे और फिर सीधे छापाखाना मे जाकर अपने नित्य के काम मे लग गए। थोडी देर बाद लेफ्टिनेट ने दुबारा उन्हे बुलाया और उनसे कहा, "मै जा रहा हू। मेरी पुलिस के थोडे घुडसवार यहा रुकेगे, और इस समय आपकी जमीन मे सब जगह घूम कर सभी हडतालियो को यहा से रवाना करेगे। इसके बाद मेरे तीन-चार सैनिक यहा रहेगे और कोठियो से भाग कर आने वाले हडतालियो को लौटा देगे। हमारी छावनी उस विलायती बबूल वाली टेकरी पर रहेगी। आप मेरे सैनिको को सहायता दीजिएगा।"

मगनकाका ने उत्तर दिया, "आपके सैनिक यहा रह सकते है। हमे कोई एतराज नही। लेकिन जो हडताली यहा आयगे और रहेगे उन्हे हम अन्न और जगह देगे। उनको आपके सैनिको के हवाले करना हमसे नही हो सकेगा। यह हमारा काम नही है। हा, हम आपके सैनिको के समझाने-बुझाने के काम मे बाधा नही डालेगे।"

दोनो अफसर अपने सैनिको के साथ घोडे दौडाते हुए स्टेशन की ओर अदृश्य हो गए। लेकिन वहा उनका आतक छा गया और हडताली धीरे-धीरे वापस लौट जाने का उपक्रम करने लगे।

दिन ढल गया। प्रेस बन्द करके भारी मन से हम लोग घर पर लौटे। हमारा घर ऊची टेकरी पर था, वहा से पश्चिम-दिशा की ओर दूर-दूर तक दिखाई देता था। सामान्यत उन टेकरियो पर छुटपुट झोपडियों और ऊची-ऊची घास के अलावा और कुछ नजर नही आता था। लेकिन उस दिन उन सब पर नीचे-ऊपर तक आदमियो का सचार हो रहा था। उस दिन सध्या के समय बाग-काम मे मेरा मन नही लगा। मै एक चबूतरे

पर बैठा देर तक लौटते हुए हडतालियो को एकटक देखता रहा।

समूचे पश्चिम आकाश मे सध्या की लाली फैलने लगी थी। छोटे-मोटे जो बादल इधर-उधर लहरा रहे थे, लाल-लाल हो उठे थे, मानो हडतालियो के मन का क्रोध और उनके दिल का उद्वेग उन बादलो मे प्रतिबिंबित हो रहा हो। पक्ति बाध कर आकाश मे सुदूर यात्रा के लिए जाने वाले पक्षियों की तरह क्षितिज मे लुप्त होती हुई, मानव-पक्तियो को मै देखता ही रहा। धीरे-धीरे बादल स्याह पडने लगे। आकाश मे अधेरे ने अपना अधिकार जमाना शुरू कर दिया। फिर भी हमारे आश्रम से लेकर टेकडियो की चोटियो तक सारी पगडडियो पर आदमियो की कतारे चली ही जा रही थी! उस दिन-भर मेरे मन मे विषाद और ग्लानि का जो अनुभव हुआ था वह आज भी मै नही भूला हू। मै सोचता रहा कि "क्या ये लोग इसी नतीजे के लिए इतना दु ख उठा कर यहा आये थे?" फिर अपने मन मे मैने आशा रखी कि "ऐसे बहादुर लोग कुछ सोच-समझकर ही लौट गए होगे। आज यहा मारकाट न हो, गोली न चले इसलिए वे सोमवार के दिन की हाजरी लगवाने गये होगे। हाजरी देकर फिर से यहा आने की तरकीब उन्होने सोची होगी।" परन्तु यह तो बच्चे की एक कोरी कल्पना ही थी। हडताली लोग गये सो गये ही। ऐसे शात और निर्दोष लोगो का दर्शन मेरे लिए पुनीत स्मृति बनी नही।

: ६५ :

अंग्रेज मित्र और शत्रु

बापू के पास अनेक गोरे मित्र आते-जाते थे, परन्तु फीनिक्स-निवासी कहे जा सके, ऐसे दो ही गोरे वहा पर थे और दोनो ही पक्के अग्रेज थे। एक थे मि० वेस्ट और दूसरे मि० टोड। मि० वेस्ट फीनिक्स आश्रम के स्वजन बने हुये थे और उनका पूरा परिवार हम लोगो मे घुल-मिल गया था; लेकिन मि० टोड हमारे आश्रम के रूखे पडोसी ही थे। जब कभी टोड दिखलाई पडते तब अकेले ही नजर आते थे। हाथ मे लम्बा 'शैम्बक' (गेंडे की खाल का कोडा) लिये हुये वह घोडे पर अपनी प्लैन्टेशन का चक्कर काटते रहते थे। मीलों तक फैली हुई लम्बी-चौडी भूमि पर खेती करनेवाला किसान भला धरती पर पैर कैसे रख सकता है? वह तो दूसरो के कधो पर

सवार होकर, अपने कर्मचारी और मजदूरो का मलीदा बनाकर ही महा-कृषि को जोत-बो सकता है और उससे धन प्राप्त कर सकता है।

अपरिमित धन-पिपासा से झुलसा हुआ मनुष्य, मानवता को भूलकर किस प्रकार मनुष्येतर प्राणी बन जाता है, इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण मि० टोड थे।

इधर श्री वेस्ट ने बापूजी से दीक्षा प्राप्त की थी। धन-लिप्सा का त्याग करके अपने निर्वाह-भर के लिए इतना सीमित वेतन लेते थे जो एक अग्रेज परिवार तो क्या, वहा बसने वाले भारतीय परिवार को भी पूरा नही पड सकता था। स्वेच्छा से त्याग, सतोष-वृत्ति और सतत परिश्रम तथा घर मे खेती के अध्यवसाय के कारण श्री वेस्ट बापूजी-जैसे महामावन के श्रेष्ठ अतेवासी बन गए थे। उनमे साधुता का विकास हो रहा था। ठीक इसके विपरीत धन के अति लोभ के कारण श्री टोड मानो अग्रेज जाति के नाम को बदनाम करने पर तुले हुए थे। हमारे गिरमिटिये, भारतवासी भाइयो के लिए तो श्री टोड मानव न रहकर दानव-से बन गए थे । उनके नाम से ही हडतालियो का हृदय काप उठता था। जब अग्रेज सैनिको की पल्टन फीनिक्स आकर हडतालियो को वापस ले गई, तब से श्री टोड का फीनिक्स मे चक्कर काटना बडी चिन्ता की बात बन गई थी। बच्चो को उनकी लपेट मे आने से बचाने के लिए बहुत सावधानी रखनी पडती थी।

हडताली भाइयो के चले जाने के बाद मगनलालकाका उद्विग्न मन से कहने लगे, "वेस्ट पहले पकड लिये जायगे, इस बात की मुझे स्वप्न मे भी कल्पना नही थी। रोज की घटनाओ का हाल वेस्ट ही गोखलेजी के पास भेजते थे। जान पडता है, सरकार से यह बर्दाश्त नही हुआ।"

बात हो ही रही थी कि श्रीमती वेस्ट वहा आ गई। अत्यन्त गद्गद् स्वर मे उन्होने सारी बाते मगनकाका से कह डाली। उन्हे और उनकी वृद्धा माता को श्री टोड के बर्ताव की बहुत शिकायत थी। उन्होने बताया कि श्री वेस्ट को पकडाने का सारा षड्यत्र टोड का था। शाम को घर आकर ज्योही श्री वेस्ट चाय के लिए मेज पर बैठे, एक लाल मोटर घर के सामने आकर खडी हो गई। उसमे बन्दूक आदि से लैस तीन सैनिक बैठे थे। मोटर के पीछे चार घुडसवार थे, जिनमे एक खुद टोड थे। टोड तुरन्त दो कदम आगे आये और उन्होने श्री वेस्ट को अपने पास बुलाया। वेस्ट मोटर के पास पहुचे तो उनको वारट दिखाया गया। वारट पर दस्तखत करके वह कपडे पहनने के लिए घर मे लौटे; उनके पीछे-पीछे एक सोल्जर भी घर मे घुस आया। पूरे पाच मिनट का मौका भी नही दिया गया। 'वारट

है, डरबन जाना है'—इन शब्दो के अलावा वेस्ट घर वालो से कुछ बात नही कर सके। चाय और नाश्ता मेज पर रखा रह गया। और वह लाल मोटर श्री वेस्ट का अपहरण करके चोर की तरह डरबन की दिशा मे अदृश्य हो गई।

श्री वेस्ट को गिरफ्तार करवा कर टोड का यह साहस नही हुआ कि वह हडतालियो के बीच मे से होकर छापाखाने तक घुडसवारो की पल्टन के साथ जाय। वह तो मोटर को विदा करा कर फौरन ही अपना घोडा दौडाता हुआ भाग गया।

इस बात को सुनाते-सुनाते श्रीमती वेस्ट सिसक-सिसक कर रोने लगी। उनका दुख सकारण था। फीनिक्स वासी भारतीय महिलाए तो बरसो से जेल जाने के गीत गाती थी और अपने स्वामी, भाई तथा पुत्रो को राष्ट्रीय गीत गा-गाकर जेल के लिए विदा करती रहती थी। परन्तु श्रीमती वेस्ट-जैसी निर्दोष महिला पर, उनके निर्दोष पति की गिरफ्तारी का प्रसग निरभ्र आकाश मे वज्रपात-सा था। सत्याग्रह सग्राम भारतीय लोग कर रहे थे। सरकार गोरो की थी। वह अपनी जाति के अग्रेज गृहस्थ पर हाथ डालेगी, ऐसी कल्पना नही थी। ऐसी हालत मे पति की गिरफ्तारी उनके लिए असह्य हो जाय, यह स्वाभाविक था।

मगनकाका ने श्रीमती वेस्ट को भरसक तसल्ली दी और यह निर्णय किया गया कि देवी बहन अर्थात् श्रीमती वेस्ट की बडी बहन उनको डरबन ले जाय, श्री वेस्ट से मुलाकात करने की कोशिश करे और जैसा श्री वेस्ट बताए, आगे के लिए घर की व्यवस्था करे। इस प्रकार हम बाल-गोपालो की पालिका देवी बहन भी फीनिक्स से चली गई और हमारा रसोई आदि का काम भी बढ गया। श्री वेस्ट के पकडे जाने के बाद दो दिन तक उनके बारे मे कोई समाचार नही मिला। दो दिन बीतने के बाद रात को खबर आई कि जिस दिन उनकी गिरफ्तारी हुई हवालात मे सारी रात उनको भूखा रखा गया। दूसरे दिन अदालत मे पेश किया गया और सात दिन की जमानत पर छोडा गया। वहा के सत्याग्रह सग्राम मे जमानत पर छूटने का चलन नही था। परन्तु श्री वेस्ट के अग्रेज होने के कारण वह अनुचित नही माना गया।

तीसरे दिन सध्या के समय फकीरा भाई बदहवास दौडते हुए आये और बोले, "चलो, चलो, श्री वेस्ट बहुत ही खतरे मे है। टोड ने हटर लेकर उनका रास्ता रोक लिया है।" तुरन्त ही मगनकाका और देवदासकाका दौडे। प्राय. आध घटे बाद मैने देखा कि लाल घोडे पर एक सुसज्ज,

घुडसवार, मगनकाका, देवदासकाका और वेस्ट-दम्पति आ रहे है। मगन-काका और देवदासकाका के मुख पर स्मित था और श्रीमती वेस्ट के मुख पर बडी घबराहट।

किस्सा यह था कि जमानत पर रिहा होने के बाद जब श्री वेस्ट सपरिवार फीनिक्स लौटे तब स्टेशन के सामने टोड हटर लेकर खडा हो गया और हवा मे हटर घुमा कर उसने वेस्ट से कहा कि जरा रेल की हद से बाहर तो आओ, चमडी उधेड डालूगा। हमारे आश्रम का रास्ता मीलो तक टोड के प्लेन्टेशन मे से होकर गुजरता था, इसलिए टोड साहब की धमकी से श्री वेस्ट स्तब्ध हो गए। वह लौटकर स्टेशन जा बैठे। स्टेशन-मास्टर एक भला अंग्रेज था और हमारे आश्रम का काम बडी हमदर्दी से करता था। उसने टेलीफोन करके अगले स्टेशन माउन्टेजकम्ब से एक सैनिक को बुलाकर, उसकी सुरक्षा मे श्री वेस्ट के आश्रम जाने की व्यवस्था कर दी।

माउन्टेजकम्ब मे चीनी का जो बडा कारखाना था, उसका मालिक टोड साहब से कही बडा जमीदार था। उसका नाम था कैम्पबेल। उसकी ख्याति थी कि वह बडा भला है और तीन पौंड के कर को हटा देने के पक्ष मे है। हडताल तो उसके यहा भी हुई थी। किसी बहाने गोली भी चली थी और एक हडताली मारा भी गया था। फिर भी कैम्पबेल ने अपना सतुलन नही खोया था। उसने अपने यहा शाति बनाए रखने के लिए सरकार से एक फौजी टुकडी मगा रखी थी। उसी टुकडी के घुडसवार ने वेस्ट-परिवार को हिफाजत से फीनिक्स पहुचाया था।

अगले दिन सवेरे ही अपने घर पर ताला डालकर श्री वेस्ट मय परिवार के डरबन चले गए। देवी बहन उन सबको पहुचाकर फिर से फीनिक्स लौट आई तथा उन्होने हमारे लिए मातृत्व का अपना काम जारी रखा।

जब से हडताली लोग गये, फीनिक्स मे तीन-चार सैनिक अड्डा जमाए ही रहे। एक तगडा डच जवान छापाखाने के दरवाजे पर कागज की गठरी पर आसन लगाकर दिन-भर बैठा रहता था। कोई दो सप्ताह के भीतर फीनिक्स मे एक भी हडताली बाकी न रहा। फिर से फीनिक्स बिलकुल निर्जन और सूना बन गया।

एक दिन मगनकाका ने एक खुशी का समाचार सुनाया "गोखले महाराज ने एक बहुत भले और विद्वान् पादरी को और उनके साथ उनके एक घनिष्ठ मित्र को, जो वेस्ट साहब के स्थान पर फीनिक्स मे काम करेगे, हिन्दुस्तान से रवाना कर दिया है। थोडे ही दिनो मे वे लोग यहा आ

जायगे। अब मै पकड लिया जाऊगा तो भी तुम लोग अकेले नही रहोगे।"

हम बालको ने रेवरड सी० एफ० एन्ड्रयूज़ तथा उनके साथी मि० डब्ल्यू० डब्ल्यू० पियर्सन के नाम रटने शुरू कर दिए।

: ६६ :

सादगी का कठोर संकल्प

बापूजी को अपने बीच पुन. पाकर हम लोग सत्याग्रह-सग्राम और अपने जेलवासी बधुओं को घडी-भर के लिए भूल कर आनन्द मे मग्न हो गए। लेकिन बापूजी जेल से छूट कर बिना एक क्षण का भी विलम्ब किये सत्याग्रह के काम मे जुट गए। हड़तालियो के कूच के समय उनकी दुबली-पतली काया योगाग्नि मे समिधा की तरह जल रही थी। उनके मुख की हड्डिया बाहर निकल आई थी। उनके हाथ-पैर इतने पतले पड गए थे मानो ये उनके थे ही नही। फिर भी रिहा होते ही उन्होने काम मे दिन-रात एक कर दिए।

जेल से निकल कर बापूजीने देखा कि अबोध गिरमिटियोने अकल्पनीय और अनुपम बलिदान किए थे और सरकारने अकथनीय और निर्मम अत्याचार किया था। ज्यो-ज्यो यह कहानी बापूजी सुनते गए उनकी देह मे आग-सी लगती गई। किंतु क्रोध किया जाय तो किस पर? सारी मुसीबत की जड तो एक प्रकार से वह खुद ही थे। अहिंसा के युद्ध और भीषण-से-भीषण कष्ट को चुपचाप सहन करने का पाठ भी तो उन्हीने पढाया था!

रिहाई के बाद जब वह बा सहित केपटाउन चले गए तो फीनिक्स-आश्रमके विद्यार्थियो के लिए सूचनाए देते रहते थे और जमनादासकाका के पत्रो द्वारा हम लोगो को उनकी साधना एव तप का भान होता रहता था।

जमनादासकाका ने केपटाउन से मगनकाका के नाम कई पत्र भेजे थे। उन पत्रो का सार, जो कुछ मुझे याद रह गया है, अपने शब्दो मे यहा दे रहा हू:

बापू का तप बडा भारी है। फलाहार तो है ही और वह भी एक ही बार। फिर बा की सेवा मे हर समय खडे रहते है और दोपहर की कडी धूप मे केपटाउन की कोलतार की बनी हुई पक्की सडको पर कई मील

नगे पैर चलते है। उनके पैरो के तलुवे नाजुक है, सडको का कोलतार दोपहरी मे बहुत गर्म हो जाता है। जहा जाते है पैदल ही चलने का आग्रह रखते है। समझौते के सिलसिले मे बातचीत करने के लिए उनको कई जगह जाना पडता है। इस पर भी पैरो मे जूते न पहनने का व्रत जरा भी ढीला नही करते, मानो शरीर के ऊपर होने वाले कष्टो की ओर उनका कुछ ध्यान ही नही जाता। बापू के इस भारी तप का प्रभाव केपटाउन के कई गोरो के ऊपर काफी पड रहा है। उनके हृदय पिघल जाते है और बडे-बडे घराने के गोरे स्मट्स के पास जाकर कहते है, 'अब इन भारतीयो की समस्या का निबटारा शीघ्र ही कर दे तो अच्छा। हमारे कारण गाधी को और भी कष्ट उठाना पडे, यह ठीक नही है।'

अब सत्याग्रह की बलिवेदी पर अपने जीवन की आहुति चढाने वाले उन गरीबो के साथ और उनके परिवार वालो के टूटे हुए हृदयो के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए बापूजी ने अपनी तपस्या और त्याग मे और वृद्धि करने का निश्चय किया। वह तीन घटे से अधिक नही सोते थे। आहार मे अल्प-से-अल्प फलो पर निर्भर थे। इतना ही नही, पहनावे मे भी उन्होने बडा भारी परिवर्तन कर डाला। उन्होने मद्रासी गिरमिटियो के समान लुगी और कुरता धारण करने तथा नगे पैर और नगे सिर रहने का व्रत ले लिया।

बापूजी के मन मे अनेक शहीद बस रहे थे। पचहत्तर बरस की आयु का बूढा हरबससिह कुछ दिन जेल मे बापूजी के साथ रहा था। बापूजी ने उससे जेल से लौट जाने का आग्रह किया था, लेकिन वह वीर सत्याग्रह से हटने को राजी नही हुआ और आखिर जेल मे ही उसने अतिम सास ली। बाहर एन्थोनी मुत्तु का बाप और अन्य हडताली वीर गोली के शिकार हुए थे। गोली से घायल एन्थोनी मुत्तु, उसका छोटा भाई और सिसकती हुई उसकी विधवा माता जब फीनिक्स आए तब उनका दुख देखा नही जा सकता था। सूझाई का किस्सा भी कम खेदजनक नही था। इसके उपरात बापूजी के छूटने के तीसरे ही दिन जोहान्सबर्ग मे कुमारी बाली-आमा की जेल से रिहा होते ही मृत्यु हो गई थी। इन सारी बातो का असर बापूजी के हृदय पर खजरो के घावो से भी अधिक हुआ। कुमारी बाली-आमा का बलिदान स्वेच्छा से हुआ था। वह अठारह वर्ष की बालिका बीमार होते हुए भी जेल से रिहा होने को तैयार नही हुई थी और उसका चल बसना उसकी मा तथा उसकी सखियो के लिए असह्य हो गया था।

खौलते हुए तेल के कडाह मे कूद पडने वाले परम वैष्णव-भक्त सुधन्वा बापूजी के लिए नित्य ही एक ध्यानमूर्त्ति बने हुए थे। असहनीय

कष्ट मे भी अन्तर मे शीतलता का आनन्द भोगने की अभिलाषा अक्षुण्ण रखी जाय, यह बापूजी ने सत्याग्रह-भावना की चरम सीमा निर्धारित की थी। इसलिए अपने या अपनो के दुख-कष्ट चाहे कितने ही असह्य क्यो न हो, बापूजी भूलकर भी शोक, खेद, विलाप आदि को टिकने नही देते थे। रोनेवालो के साथ यदि बापूजी खुद भी आसू गिराने लगे तो सत्याग्रह-सग्राम का और बलिदान का सारा तेज ही लोप हो जाय। दूसरी ओर सेनापति की कठोरता को जल्लादी की छाया से अछूता रखने के लिए मर्माहत हृदयो के साथ समभाव स्थापित किये बिना भी कैसे चल सकता था?

इस सबध मे बापूजी के अतर मे जो उग्र विचारधारा बह रही थी उसकी कुछ झाकी उन बातो से मिलती है जो रिहाई के बाद प्रथम बार फीनिक्स आने पर बापूजी ने आधी रात के समय मगनकाका से की थीं।

"मेरे कहने पर भोले और निरक्षर हजारो आदमियो ने अपनी आहुति दी है। मेरे लिए उनकी जो श्रद्धा थी उसी के बल पर ये लोग सत्याग्रह-सग्राम के दावानल मे कूद पडे। देखा न जा सके, ऐसा भीषण कष्ट उन्होने भोगा है। इनसे अलग मै कैसे रह सकता हू? अब मुझे इनमे से एक बनकर रहना चाहिए। चाहे गोरो के बीच जाना पडे, चाहे राजधानी मे, जबतक सत्याग्रह के इस युद्ध का अन्त नही होता, मै कोट-पतलून नही पहनूगा, न नेकटाई ही लगाऊगा। सफेदपोश समाज मे यह मर्यादाहीन माना जाय तो कोई चिन्ता नही। इनेगिने मनुष्यो मे मुझे विशेष रस नही है। मुझे तो इन हजारो दुखी गिरमिटियो के बीच एक बनकर रहना है। इस सत्याग्रह के कारण जो विधवाए हुई है, उनके आसू पोछने के लिए इतना तो मुझे करना ही चाहिए। कल सवेरे से लुगी और एक कुरता ही मेरा वेश रहेगा। चाक, पेसिल, कागज, रूमाल आदि चीजे रखने के लिए कल डरबन जाकर एक बगल का थैला सिलवा लूगा। लुगी, कुरता अभी आज ही तैयार कर दो।"

मगनकाका ने दलील करते हुए कहा, "लुगी के बदले धोती पहने तो ठीक न होगा? घूमने-फिरने मे वह अधिक अनुकूल रहेगी। फिर हमारा मूल पहनावा भी वही है।"

बापूजी ने समझाया, "बात सही है। मुझे धोती पसन्द भी है, परन्तु इस समय सवाल गिरमिटियो का है। उनमे अधिकतर लोग मद्रासी है। मेरी लुगी फटी नही रहेगी इतना अन्तर रहेगा। वे लोग अधिकतर कुछ-न-कुछ सिर पर बाधते है, किन्तु हम लोगो ने यह पहले से ही छोड दिया है, तो उसे दुबारा शुरू करने की जरूरत नही है। जो मेरे है, उनकी याद मे शोक के चिन्ह-रूप मूछो का मुडन भी जरूरी है। पैरो मे चप्पले भी

अब मै नही पहनूगा। असख्य गिरमिटियो को पैरो के लिए कहा कुछ मिलता है ?"

बापूजी ने अब चप्पलो को भी छोडने की बात की तो मगनकाका ने कहा, "लेकिन आपके पैर उन लोगो की तरह अभ्यस्त नही है। पैरों की एडियो मे यहा के तीखे ककड कदम-कदम पर चुभेंगे। इससे आपको ज्यादा कष्ट होगा और चलना तो दिन-भर रहेगा ही।"

"ठीक बात है, मेरे पैर के तलवे तुम सब लोगो से ज्यादा मुलायम हैं और बेवाई भी फटती रहती है, किन्तु जब मै और लोगो को ऐसे दुख मे ढकेल दू तब कुछ कष्ट तो मुझे भी उठाना चाहिए न ? बहुत पीडा होगी तो थोडा धीमे चला जायगा, यही न ?"

इस प्रकार फीनिक्स के एकान्त कोने मे मध्य रात्रि के समय मगनकाका तथा औरो की साक्षी मे बापूजी ने वह कदम उठाया। बाद मे वह लगोटीबाबा के रूप मे विख्यात हो गए। भारत मे आकर जब उन्होंने कच्छ धारण किया तब तो उन्हे महात्मा की उपाधि मिल चुकी थी। त्याग की महिमा उस देश मे कितनी अधिक थी, इसकी कल्पना भारत मे बैठे करना असम्भव है। जहा सूटबूट के बिना नगर के मार्गो पर चलना अभद्र माना जाय वहा वस्त्र-त्याग एक प्रकार से दीर्घ अनशन से भी कठिन कसौटी की बात थी। रास्ता चलने मे किसी के उपवासी होने का पता नही चल सकता, परन्तु जो व्यक्ति बरसो तक बैरिस्टरी का चोगा पहन कर डरबन और जोहान्सबर्ग-जैसे शहरो मे सुप्रसिद्ध हो चुका था, वह अपना नित्य का सूट उतार कर कफनी और लुगी पहने तो यह कम आलोचना की बात नही थी। वहा की आग्ल जाति के बीच रह कर ऐसा परिवर्तन करना बापूजी का ही साहस हो सकता था।

हमारे देश-भाइयो ने बापूजी के इस परिवर्तन का स्वागत उत्साह से नही किया। फिर भी लोगो पर इसका गहरा असर पडा ही। लोगो मे नम्रता बढी और भारत-माता की आन बनाये रखने के लिए सकल्प मे दृढता आई। तीन पौड के कर-विरोधी-आदोलन की समाप्ति के बाद जब विलायत जाने के लिए फीनिक्स से बापूजी ने प्रस्थान किया तब भी लुगी-कफनी मे ही वहा से विदा हुए। जोहान्सबर्ग छोडने के दिन उन्होने कोट-पतलून पहना, ऐसा हमने सुना, परन्तु उनका वह फोटो देखकर ही हमे सन्तोष करना पडा।

पिछली रात को मगनकाका के साथ हुई बात के अनुसार प्रात काल मे ही नहा-धोकर बापूजी ने अपना नया वेश धारण किया और मूछे भी

मुडा ली । उस समय बापूजी के मुख पर जो कान्ति चमक रही थी, उसे देखकर हम सहम गए। हसना या रोना कुछ भी नही हो सका। थोडी देर बाद जब बापूजी डरबन के लिए चले तब उनको नगे पैर चलते देखकर ऐसा दुख हुआ जैसा उनके नये वेश के कारण नही हुआ था ।

घर से बाहर निकलते ही मिट्टी से उभरे हुए कंकड उनके तलवों मे चुभने लगे। तलवो की चमडी बहुत मुलायम होने के कारण दो-दो तीन-तीन कदम चलने पर ही उनकी पीडा इतनी बढ जाती थी कि अपने शरीर का सन्तुलन बडी सावधानी से उन्हे सभालना पडता था। यह अच्छी बात थी कि उन्होने अपने हाथ मे एक पतली, लम्बी लकडी ले रखी थी। इसलिए एडियो मे दर्द बढने पर वह लाठी के सहारे अपने को सभाल सकते थे । उन्होने स्टेशन तक का लम्बा मार्ग ऐसे ही कष्ट के साथ पार किया, परन्तु इतना दुख सहते हुए भी उनका ध्यान अपने साथ चलने वालो से बातचीत करने मे ही लगा हुआ था। काम के चिंतन-मनन के आगे पैरो की तकलीफ को महसूस होने का उन्होने थोडा-सा भी मौका नही दिया।

बापूजी के दुबारा डरबन पहुचने के बाद हमे खबर मिली कि जनरल स्मट्स ने जिस कमीशन की नियुक्ति की है उससे न्याय पाने की भारतीयो को उम्मीद नही है । इस वजह से बापूजी ने और श्री पोलक ने मिलकर उस कमीशन के बारे मे अपनी बात स्मट्स साहब को लिख भेजी है। उसमे उनसे साफ-साफ कहा गया है कि कमीशन की नियुक्ति करने मे जहा सब-के-सब अपने मन के ही आदमी रखे है, वहा एक ऐसा भी व्यक्ति नियुक्त किया जाय जिसके लिए हम लोग कहे। यदि आपका आग्रह ऐसा ही हो कि उस कमीशन मे आपकी अपनी गोरी जाति के आदमी के अलावा और किसी को रखा ही न जाय तो भारतीय ऐसा आग्रह नही रखेगे कि किसी भारतीय को ही लिया जाय। जिस व्यक्ति पर भारतीयो का विश्वास हो ऐसे किसी अग्रेज को शामिल करना भी आप स्वीकार नही करेगे तो उस कमीशन के सामने गवाही न देने के लिए भारतीय लोग मजबूर हो जायगे ।

साथ-साथ यह खबर भी आई कि इस प्रकार जेल से छूटना वापूजी को विलकुल पसन्द नही आया है। वह स्मट्स साहव के उत्तर की प्रतीक्षा दिसम्वर मास की समाप्ति तक करेगे, वाद मे दुवारा जेल चले जायगे और जेल जाने के लिए वह अग्रेजो का नया वर्ष लगते ही दुवारा डरवन से पैदल यात्रा आरम्भ करेगे, जो चार्ल्सटाउन की पहली यात्रा से भी वड़े पैमाने पर होगी।

वापूजी और श्री पोलक की वात हमारे देश-भाइयो में से सभी प्रधान

व्यक्तियों ने सोच-विचार कर स्वीकार कर ली और जबतक स्मट्स साहब भारतीयों के बताये हुए किसी व्यक्ति को कमीशन मे लेना स्वीकार न करे तबतक कमीशन के सामने गवाही न देने की बाकायदा शपथ बहुत से भारतवासियो ने ले ली। उसका असर यह हुआ कि जिन लोगो ने शपथ नही ली, लोग उन्हे देशहित के विरोधी समझने लगे।

: ६७ :

हिंसक और अहिंसक हड़ताल

जोहान्सवर्ग की बहनो ने न्यूकेसल की कोयले की खान मे जाकर जब भारतीय गिरमिटियो से हडताल करवाई, तब सबसे पहले हमे पता चला कि सत्याग्रह-आदोलन का एक प्रखर प्रयोग हडताल भी है। फिर भी, जहा तक मुझे याद है, बापूजी ने फीनिक्स से चलने के दिन तक हडताल के सबध मे मगनकाका से भी कोई विशेष चर्चा नही की। न यह सूचना ही दी कि हडताल के सहारे सत्याग्रह-सग्राम को विराट रूप देना है।

पिछले प्रकरणों में हमने देखा कि सत्याग्रह-सग्राम के आवश्यक, अनिवार्य या उग्रतम रूप मे हड़ताल का आयोजन नही किया गया था। सत्याग्रह-सग्राम का नेतृत्व करनेवालो ने केवल कानून-भग करके सरकारी जेल भरने के हेतु हडताल की प्रवृत्ति चलाई थी। मजदूरो को वेहद भडका कर हडताल को बढाने की पैरवी नही की गई थी। हडताल चारो ओर फैली तो वह अपने-आप ही फैली थी और उत्तरदायी सत्याग्रह-सचालकों ने हडताल के दावानल को अत्यधिक बढने से रोकने पर अपनी शक्ति लगाई थी।

सत्याग्रह-सग्राम मे हडताल भी एक बहुत जोरदार प्रयोग है, यह बात अनपढ और अविकसित बुद्धिवालो की समझ मे भी बडे-बड़े उपदेशो के बिना ही आ जाती थी, परन्तु वास्तव मे वह कैसी कठिन और गभीर बात है, इसका पता हमे तब चला जब भारतीयो की हडताल के तीन महीने पूरे होते-होते दक्षिण अफ्रीका के रेलवे वालो ने भी समस्त रेलगाडियो मे हडताल कर दी। दक्षिण अफ्रीका की रेलवे मे काम करने वाले छोटे-बड़े सभी कर्मचारी गोरे तो थे ही, इसके अलावा शायद अंग्रेज लोग ही उनमे

ज्यादा थे। उन्होने स्मट्स-सरकार से झगडा करने का वही अवसर अच्छा समझा, जब तीन पौड कर-विरोधी-आदोलन मे गिरमिटिये मजदूरो ने विराट हडताल कर रखी थी।

दोनो हडतालो के बीच उत्तर-ध्रुव और दक्षिण-ध्रुव के समान जो परस्पर-विरोधी भेद मैने उस समय अपनी छोटी आखो से देखा था वह जीवन-भर के लिए मेरे अन्तर की गहराई मे समा गया। हम लोगो की हडताल थी अहिंसक सघर्ष की धीर-गभीर, ओजस्वी और पावनकारी धारा और गोरे लोगो की हडताल थी हिंसक दावानल की विकराल ज्वाला।

वह सोमवार का दिन था। अनेक महीनो के बाद फीनिक्स के सभी बालको को पर्याप्त अवकाश मिला था। हमारा मन दिवाली के उल्लास और आनन्द से भर गया था। बापूजी छूटकर फिर से हमारे बीच आ गए थे और फीनिक्स वाली मडली भी जेल से रिहा होकर आने वाली थी। उनके स्वागत के लिए फीनिक्स के सभी बच्चो को डरबन जाने की अनुमति मिल गई।

नहा-धोकर, अपने बढिया-से बढिया कपडो और शानदार जूतो से सजकर हम चले। जब हमारी गाडी तीसरे स्टेशन पर पहुची तो वहा हमने एक अजीब तमाशा देखा।

फीनिक्स स्टेशन पर हमने चार-पाच सैनिको को रेलवे के अहाते मे खास-खास जगहो पर पहरा देते हुए देखा था, किन्तु यहा तो आठ-आठ, दस-दस कदम की दूरी पर रेल की पटरी के दोनो ओर बन्दूक पर सगीन चढाये हुए गोरे फौजी पहरा देते दिखलाई पडे। हर मील-दो-मील पर सैनिको की रावटिया लगी थी। उनमे न मालूम कितनी बन्दूके जमा थी और कारतूसो से भरे हुए पट्टो की तो मानो प्रदर्शनी-सी हो रही थी।

इस तमाशे को देखकर मुझे वह बात याद आ गई जो फीनिक्स स्टेशन पर गोरे सैनिक ने हमे बताई थी। उसका वह लाल-लाल मुख भी याद आ गया जो रेलवे-हडताली का नाम लेते ही तमतमा उठता था। उसने बताया था कि "नेटाल प्रान्त मे तो रेलवे के इजन-ड्राइवर, फायरमैन, गार्ड और मजदूर कुछ ठीक है, परन्तु केपकालोनी और ट्रान्सवाल प्रान्त मे वे बहुत बेहूदेपन पर उतर आये है। केपटाउन से जोहान्सबर्ग जाने वाली डायमड एक्सप्रेस को उन्होने उलट दिया है, जोहान्सबर्ग का स्टेशन जला डाला है और वहा के रेलवे आफिसो को तोडने-फोडने के लिए हडतालियो की भीड-की-भीड धावा कर रही है। यही नही, जोहान्सबर्ग के बाजारो मे नागरिको को भी वे बुरी तरह सता रहे है। दूकानो पर तोड-फोड करते

है। केपकालोनी और ट्रांसवाल प्रान्त मे कई हफ्तो से फैली हुई यह बद-अमनी अब यहा नेटाल प्रान्त मे भी जोर पकड रही है।" उस सारजट ने हमे यह भी बताया कि "आजकल ट्रेनो की सख्या आधी भी नही रह गई है। केवल उतनी ही गाडियां चलाई जाती है, जिनके लिए हरएक पटरी पर एक-एक फौजी को पहरे पर लगाया जा सके। इन हडतालियो का उपद्रव रोकने के लिए हमको हरदम सतर्क रहना पडता है। गाडी चलाते-चलाते इजन के ड्राइवर बीच मे ही गाडी खडी कर देते है और उतरकर भाग जाते है। इसलिए इजनो मे भी सैनिको को सगीन तानकर उनकी छाती पर खडा रहना पडता है। रेलवे का जो नौकर बाकायदा काम करने को तैयार होता है उसे हडताली लोग काम छोड देने के लिए मजबूर करते है। अगर इजन-ड्राइवर और गार्ड का काम सैनिक करते है, तो हडताली रेल की पटरी ही हटा देते है। जहा जोड हो वहा उखाड देते है और पटरियों पर साबुन का पानी डालकर गाडी उलट देने की साजिश करते है। ऐसी हालत मे सरकार के सामने फौजी कानून का ऐलान करने के अलावा कोई चारा ही नही है।"

इतनी बात करने के बाद वह डच लडका अग्रेज लोगो के अनुचित स्वभाव की आलोचना करने लगा। उसने कहा, "अग्रेज बडे लोभी और जिद्दी होते है, अपना थोडा-सा वेतन बढाने के लिए इन्होने कितना भारी ऊधम मचा रखा है। क्या वे अच्छे तरीके से अपने वेतन मे बढती की माग नही कर सकते थे? बडी-बडी इमारतो को जला देने और मारकाट करने मे उन्हे जरा भी लज्जा नही आती। सरकार को परेशान करके वे लोग अपनी मनमानी कराना चाहते है; परन्तु सरकार इस तरह क्यो झुकेगी? अगर सरकार को झुकना ही है तो वह तुम भारतीयो के सामने झुकेगी। तुम्हारे हडताली लोग किसी का कुछ नही बिगाडते। वे खुद भूखे रहते है, भारी कष्ट उठाते है, परन्तु सरकार को नही सताते है। सरकार को ऐसे भले आदमियो की माग तो स्वीकार करनी ही चाहिए। ये उपद्रवी रेलवे वाले अगर यह समझते है कि वे अपनी मारकाट और धाधली के बल पर अपना वेतन बढवा लेगे तो वे भूलते है। उनको तो हम अपनी सगीनो से सीधा कर देगे।"

अग्रेजो के खिलाफ जब वह लडका बहुत बोला तब देवदासकाका ने मुझे बताया कि यह पूरा 'बोर' है। दक्षिण अफ्रीका मे बसे हुए हालैड-निवासी बोर कहलाते थे। पूछने पर जब पता चला कि वह लडका मुश्किल से अठारह वर्ष का है, तब हम लोगो ने उससे कहा, "तुम तो अभी बिलकुल लड़के हो, तुम्हारे बस मे ये बडे-बड़े रेलवे हडताली कैसे आयगे?" उसने

अपना मुक्का उठाकर कहा, "वस मे क्यो न आयगे। देखी यह कलाई। हमारा हाथ जब चलेगा तो उनके छक्के छूट जायगे।"

मूसल के समान उसकी मोटी, मजबूत भुजा हम देखते ही रह गए। और समय होता तो उससे हम और भी बात करते, परन्तु उस समय तो उसकी बात छोडकर हमे अपने काम पर जाना पडा।

डरबन जाते हुए रेलगाडी मे हम लोगो को उस वीर सैनिक की बात याद आ गई। ज्यो-ज्यो डरबन नगर पास आता गया, रेलवे-मार्ग पर गोरी पलटनो का और भी सतर्क पहरा नजर आया। उस दृश्य को जब याद करता हू तो महात्मा टाल्स्टाय की पुस्तक मे पढा हुआ यह वचन बिल्कुल सही मालूम देता है—"रेलगाडी जैसे भारी यत्र सचमुच सगीनो की नोक पर ही चल सकते है। बिना फौज के हमारे मजदूर-कारीगरो को वस मे नही रखा जा सकता और अत्यन्त भारी यत्र-व्यवस्था चल नही सकती।" कम-से-कम हम लोग तो एक प्रकार से बन्दूक की नोक पर सवार होकर ही उस दिन सकुशल डरबन पहुचे। जब हम डरबन के उपनगर अमगेनी स्टेशन पर पहुचे तो वहा बिल्कुल सूना था। वैसे वहा इजनो की दौड-धूप रहा करती थी, बहुत ऊचे ढेरो से इजनो मे कोयला भरते अनेक गोरे मजदूर दिखाई पडते थे, परन्तु उस दिन वहा मुश्किल से दो-एक मजदूर ही नजर आये और उनके सिर पर भी चमकती हुई सगीनो के साथ उससे दुगने सैनिक सवार थे।

डरबन स्टेशन पर उतरते ही हम डरबन की कुख्यात जेल की ओर चल पडे। हमे डर था कि कही हम लोगो के पहुचने के पहले ही हमारी फीनिक्सवाली मडली रिहा न कर दी जाय और हम उसका बाकायदा स्वागत करने से वञ्चित रह जाय। जेल के फाटक पर जब पहुचे तो हमने देखा कि डरबन के नागरिक हजारो की सख्या मे अपने लोकप्रिय सेठ श्री रुस्तमजीकाका का स्वागत करने के लिए जमा हो गए है।

: ६८ :

सत्याग्रहियों की प्रथम टोली की रिहाई

डरबन जेल के फाटक पर सवेरे से ही कडी धूप मे कोई दो हजार आदमी घटो तक तपते रहे। जरा-जरा देर मे फाटक खुलता था, सब

आतुरता से उस ओर देखते थे, परन्तु जेलवालो ने सत्याग्रहियो की टोली के पुरुषो को ठीक मध्याह्न मे रिहा किया।

उन लोगो के बाहर आने का क्रम व्यवस्थित था। सबसे पहले मेरे पिताजी, जो आयु मे सबसे बडे थे, बाहर आये। उनके पीछे श्री रावजीभाई पटेल से लेकर रामदासकाका तक सब सत्याग्रही बडे से छोटे के क्रम मे रिहा किये गए। अन्त मे ऊचे व भारी बदनवाले श्री रुस्तमजी सेठ के दर्शन हुए, जिनको डरबनवासी भारतीय अपने यहा के नगरपति के समान मानते थे। अपने नगर के सेठ, सेवक और त्यागी श्री रुस्तमजी को देखकर डरबन के भारतीयो का हृदय कृतज्ञता से भर गया और उनके दर्शन होते ही चारो दिशाए 'वन्देमातरम्' और 'हिप-हिप हुर्रे' के नारो से गूज उठी। भीड ने उनको घेर लिया। अपने पिताजी के चरण छूने के लिए मै बडी मुश्किल से उनके पास तक पहुच सका। पिताजी के मुख पर ऐसी प्रसन्नता मैने पहले शायद ही कभी देखी थी। पिताजी के बाद मैने अपने सहपाठियो से मिलने की कोशिश की; पर तबतक भीड का प्रवाह तेजी से स्टेशन की ओर चल पडा था। किसी तरह फीनिक्स से आये हुए हम सभी बच्चे अपनी कतार सभाल पाए और भीड से निकलकर रास्ते के किनारे आ गए। स्टेशन पहुचने की सबको बडी जल्दी थी। इसलिए लोग दौड-से रहे थे। मैरित्सबर्ग से ट्रेन आने का समय हो गया था। उसमे पूज्य कस्तूरबा आनेवाली थी। उनको लिवाने बापूजी स्वय मैरित्सबर्ग गये थे। कैलनबैक भी बापू के साथ थे।

हमारे स्टेशन पर पहुचने के पहले ही ट्रेन आ चुकी थी। बडी मुश्किल से भीड के पीछे, रास्ते के एक किनारे खडे-खडे हमारी मडली बा-बापू के दर्शन कर पाई। स्टेशन के ऊचे चबूतरे पर एक ओर बापूजी और श्री कैलनबैक खडे थे, उनके सामने कस्तूरबा, मेरी, मा, चाची और जयाकुवर बहन खडी थी। श्रीमती पोलक और दूसरे दो-तीन अग्रेज सज्जन पूज्य बा का अभिवादन कर रहे थे। कैमरेवाले इस ऐतिहासिक दृश्य को स्थायी बनाने की कोशिश मे लगे थे।

स्टेशन के प्लेटफार्म के नीचे स्वागत के लिए आये हुए भारतीयों का मानो सागर उमड रहा था। परन्तु वह अपने हर्षावेग को मर्यादा के अन्दर रखे हुए था। इतनी भारी भीड होने पर भी कोई व्यक्ति निश्चित पक्ति से आगे बढकर बापूजी या बा के पास नही जा रहा था।

जेल से निकली हुई पूज्य कस्तूरबा की दुबली काया को देखकर सब लोग अवाक् रह गए थे। मानो सबके हृदय से एक साथ टीस उठ रही

हो! कस्तूरबा इतनी बदल गई थी कि पहचान मे ही नही आ रही थी। उनकी वह परिचित साडी ही थी जिससे पता चलता था कि वह मूर्त्ति पूज्य बा की है। उनका गोल-सुडौल मुख लबा और पतला हो गया था, हाथ-पैर को देखकर जान पडता था कि केवल अस्थि-पजर ही खडा है। पूज्य बापू को जेल से रिहा होने के बाद जब हमने देखा था, तब उनकी सूखी काया को देखकर हम स्तभित रह गए थे परन्तु बापू की कृश देह फुर्ती और तेज से भरी हुई थी। लेकिन बा की देह तो सूखकर काटे-सी हो गई थी।

डरबन जेल के फाटक से सत्याग्रही लोग बाहर आये उस समय जो हर्ष वातावरण मे आ गया था वह डरबन स्टेशन पर नही रहा। बा-बापू के दर्शन से लोगो के चित्त पर गभीरता छा गई।

बा-बापू का स्वागत किस प्रकार किया जाय, जनता अपने हृदय की भावनाओ को कैसे प्रकट करे, इस बात का निर्णय नही हो रहा था। गोखले-जी महाराज के आगमन के समय जिस प्रकार उनकी बग्घी के घोडो को अलग करके उत्साही युवक खुद गाडी खीचकर ले जाना चाहते थे, उसी प्रकार बा-बापू को खुली गाडी मे बिठाकर डरबन के नागरिक उनका जलूस निकालना चाहते थे। परन्तु बापूजी ने उनकी बात नही चलने दी। दस-पन्द्रह मिनट बाद बा-बापू की घोडा-गाडी धीरे-धीरे रुस्तमजी सेठ के घर की ओर चली। पीछे-पीछे हजारो मनुष्य 'हिप-हिप हुर्रे' और 'वन्देमातरम्' के नारे लगाते हुए चलने लगे।

सेठजी के मकान पर जलूस के पहुचने पर पहला काम तसवीर लेने का था। फीनिक्स से चले हुए सोलह सत्याग्रहियो के प्रथम जत्थे का और बापूजी तथा कैलनबैक साहब का फोटो लिया गया। सध्या के समय सेठजी के मकान पर छोटी-सी स्वागत-सभा हुई।

दिन-भर सेठजी के मकान पर लोग आते-जाते रहे। सब मित्र आपस मे मिलने-जुलने मे मग्न थे, परन्तु इस सारे आनन्द के पीछे मन पर भारी बोझ था। छोटे-बडे सभी के चित्त मे इस बात का भार था कि यह मिला-भेटी दो-चार दिन की ही है। शीघ्र ही सबको पुन जेल जाना है। स्मट्स सरकार से अभी और भी भीषण मोरचा लेना है। व्याख्यानो मे और आपसी चर्चाओ मे यह बात दोहराई जा रही थी कि स्मट्स ने जो कमीशन बैठाया है वह हमारे लिए असम्मानपूर्ण है, उसका जोरो से बहिष्कार करना चाहिए, एक भी भारतीय को इस माया-जाल मे नही फसना चाहिए।

सत्याग्रहियो मे जो छोटे थे उनका मन सेठजी के यहा होनेवाली बात-चीत और सत्कार-समारम्भ मे जम नही रहा था। सध्या की ट्रेन से सबको

फीनिक्स जाना था, इसलिए वे लोग डरबन नगर मे अपने मित्रो और सबधियो आदि से मिलने के लिए व्याकुल थे। मै भी अपने उन सहपाठियो के साथ नई-नई जगह देखने के लिए उत्सुक था। जिनके भी घर हम जाते थे, बडे उत्साह से हमारे जेल-यात्री सहपाठियो का स्वागत होता था। मीठा मुह करने को भी कुछ-न-कुछ मिल जाता था और साथ-ही-साथ सभी जान-पहचानवाले अगली जेलयात्रा के लिए भी हमारे सहपाठियो के प्रति शुभकामनाए प्रदर्शित करते थे।

डरबन शहर के घने और अन्दर के मोहल्लो को मैने उस दिन प्रथम बार देखा। शहर मे गोरे लोगो के रहने का जो विभाग था उसमे और भारतीय लोगो के रहने के विभाग मे जमीन-आसमान का अन्तर था। गोरी नगरी बहुत सुन्दर थी। हर जगह पक्की सडके, उन पर कूडे-कर्कट का नाम नही। सडक के दोनो ओर व्यवस्थित और उज्ज्वल मकानो की चित्ताकर्षक पक्तिया। गोरो का सारा मोहल्ला शात और शोरगुल से मुक्त रहता था। हमारे भारतीय भाई जहा बसते थे वहा की सडके अच्छी नही थी। कूडा हर जगह नजर आता था। जहा-तहा आदमी थूकते नजर आते थे। मकान अव्यवस्थित तो थे ही, गदे भी दीखते थे। परन्तु एक बात मैने और देखी। भारतीय मोहल्लो मे रौनक थी, चहल-पहल थी। लोग आपस मे खुलकर मिलते थे, बाते करते थे और अपनी दुकानदारी के काम मे व्यस्त होते हुए भी अपने भाई-बिरादरो का परस्पर सम्मान करते थे। वातावरण मे जीवन और उत्साह की झलक थी, जब कि उन श्वेत पथो पर से, जहा केवल गोरे लोगो के बसने की ही व्यवस्था थी, गुजरते हुए मन मे यह सवाल उठता था कि इन गोरो को इस तरह अकेलेपन मे जाने क्या आनन्द आता होगा ! न इनके मोहल्लो मे कही चहल-पहल है, न कही आदमियो की मिला-भेटी नजर आती है, न कही उत्साह और उमग की बहार दीख पडती है।

श्वेत वर्ण प्रजा और अश्वेत वर्ण प्रजा के बीच स्वभाव का, जीवन के आनन्द का जो भेद है उसका सही विश्लेषण मै उस समय अपनी बाल-बुद्धि से नही कर पाया; परन्तु दोनो बस्तियो मे घूमने से मेरे चित्त पर जो प्रभाव पडा वह स्थायी हो गया। मुझे निश्चित रूप से याद है कि गोरी बस्ती अपनी हिन्दुस्तानी बस्ती के मुकाबले मे मुझे उदास मालूम दी थी। वहा पर सूना और स्वार्थपटु वातावरण अरुचिकर जान पडता था।

: ६६ :

बा की बीमारी और बापू द्वारा अनन्य सेवा

मैरित्सबर्ग जेल मे अपने शरीर की समस्त मास-मज्जा को दक्षिण अफ्रीकी सरकार के नाम वलि चढाकर जब पूज्य वा फीनिक्स लौटी तो उन्हे रोग-शय्या पर पड जाना पडा । उनकी बीमारी लगातार गभीर होती गई और फीनिक्स मे सर्वत्र चिन्ता छा गई। बा की इस समय की जेल की दुर्बलता के सवध मे बापूजी ने 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' मे निम्न पक्तिया लिखी है :

"स्त्रियो की वहादुरी की क्या कहे! सबको नेटाल की राजधानी मैरित्सबर्ग मे रखा गया। यहा पर उनको काफी दुख दिया गया। खुराक मे उनकी कुछ भी सभाल नही रखी गई। मजदूरी के लिए उनको धोबी का काम दिया गया। करीव अन्त तक बाहर से खुराक देने की सख्त मनाही रही। एक बहन को निश्चित आहार लेने का व्रत था। बडी मुसीवत से उसको वह खुराक देने का निश्चय किया गया। परन्तु वह इतना खराव था कि मुह मे नही दिया जा सकता था। जैतून के तेल की अनिवार्य आवश्यकता थी। प्रथम तो वह मिला ही नही। फिर मिला तो पुराना और कड़ुआ। अपने खर्च से मगाने की विनती की गई तो उत्तर दिया गया कि यह कोई होटल नही है। जो मिलेगा सो खाना होगा। यह बहन जब जेल से निकली तव केवल ककाल बन गई थी, महाप्रयास से वह बची।"

पहले बताया जा चुका है कि फीनिक्स मे कोई वैद्य-डाक्टर नही था; वाहर से कभी किसी को बुलाया नही जाता था। किन्तु एक दिन बा की अवस्था बहुत ही चिन्ताजनक हो गई। तव मगनकाका और देवदास-काका मध्य-रात्रि को फीनिक्स स्टेशन गए और उन्होने डरबन को टेलीफोन करके डाक्टर से आने की विनती की।

डाक्टर तुरन्त आये, परन्तु उन्होने बा की क्या चिकित्सा की, बा ने डाक्टरी दवा ली या नही और डाक्टरी उपाय से उनको क्या लाभ हुआ, इसकी जानकारी न मुझे तव हुई, न आज है। कुछ ऐसा याद है कि उन दिनो वापूजी फीनिक्स मे अनुपस्थित थे और सत्याग्रह आन्दोलन के सवध मे वातचीत करने के लिए ट्रान्सवाल गए हुए थे। आठ-दस दिन तक पूज्य वा की अन्तिम घडिया प्रतीत होती रही और फीनिक्स का वातावरण बहुत गभीर रहा। फिर मृत्यु का खतरा कुछ कम हुआ, परन्तु बीमारी महीनो तक

बहुत नाजुक बनी रही। इस अवसर पर देश का, सत्याग्रह का, आश्रम का तथा सरकार के साथ समझौते की बातचीत का काम करते हुए भी बापूजी ने अहर्निश बा की सेवा किसी परिचारिका से भी बढकर की ।

भारत मे आने के बाद, विशेषतः नमक-सत्याग्रह के बाद, बापूजी के सैकडो हजारो चित्र लिये गए है। पिछले दिनो मे तो कैमरावाले उनके पीछे-पीछे हर समय रहा करते थे। उन सफल चित्रो मे से बापूजी का एक ऐसा चित्र भी प्रकाशित हुआ है, जिसमे बा बापूजी की चरण-सेवा कर रही है और बापूजी स्टूल पर बैठे किसी विचार मे लीन है। पास मे ही सरदार श्री वल्लभभाई पटेल आते हुए दीख रहे है । जब यह चित्र बापूजी ने देखा तब तो वह खिलखिलाकर हस पडे और चित्र लेनेवाले को उलहना देते हुए बोले, "बा मेरी सेवा करती है इसका तो प्रदर्शन तुमने चित्र के द्वारा कर दिया, परन्तु मैने बा की सेवा की है उसका प्रसग तुमने कैमरे से नही पकडा !

बापूजी ने बा की सेवा करते समय बहुत ऊची साधना को अपनाया था।

मेरी माताजी अपना सारा समय बा की शुश्रूषा मे उनकी चारपाई के पास ही बिताती थी और हरएक छोटा-मोटा काम करने का आग्रह रखती थी। परन्तु जब बापूजी वहा मौजूद रहते थे तब वह उनकी एक नही चलने देते थे। उनके हाथ से काम ले लेते थे और कहते थे, "मुझे ही यह करने दो। बा को सतोष कैसे दिया जाय, इसका पता मुझे ज्यादा है। इस समय तो मैने फुरसत निकाल ली है । जब मै इस काम के लिए न होऊ तब तुम करना।"

बापूजी दिन-भर मे अनेक बार थूकदानो और मलमूत्र के पात्र उठाकर बा के कमरे से बाहर आते थे और खेत मे बाकायदा मैला आदि दबाकर तथा मल-पात्र को धोकर वापस बा के पास ले जाते थे। उस सफाई के काम मे सहायता देने के लिए यदि मेरे पिताजी, मगनकाका, रावजीभाई या और कोई आगे बढता तो बापूजी उन्हे रोक देते थे और स्वय ही वह काम पूरा करते। इसी प्रकार रसोईघर मे भी बा के लिए पीने का पानी गरम करना हो या चूल्हे का और कोई काम हो तो बापूजी अपने हाथो से ही करते।

पानी मे जरा-सा कूडा दीख जाय, बरतनो पर कही कालोच या चिकनाई का अश हो या और कोई थोडी-सी भी गफलत हुई हो तो बापूजी दुबारा उसकी सफाई बडी सावधानी से स्वय करते थे और ऐसे छोटे प्रमाद के कारण बा का जी जरा भी न दुखे, इसका पूरा खयाल रखते थे ।

बापूजी सारा समय बा की चरापाई के पास खडे रहते थे। कुर्सी या स्टूल डालकर बैठे हो, उनके मुख पर थकावट या उदासी दीख पडती हो, ऐसा प्रसग मुझे याद नही।

बा की बीमारी इतनी गभीर होने पर भी उनके लिए बापूजी के उस मकान मे अलग कमरा नही था। जिस बडे खड मे हम सब लोग एक साथ बैठकर भोजन करते थे उसी कमरे के एक सिरे पर, उत्तर दिशा मे, पर्दा डालकर आड कर ली गई थी। चारपाई या तख्त भी वहां पर नही था। पढाई के समय बच्चो के बैठने के लिए जो दो-तीन बेचे थी उन्हे इकट्ठा रखकर तख्ता बना लिया गया था और उसपर बा का बिस्तर था। जब हम लोग भोजन के लिए बैठते थे तब जरा भी बातचीत नही करते थे, ताकि बा के आराम मे बाधा न हो। किसी के हाथ से यदि कभी बर्तन टकरा जाते तो उसपर चारो ओर से नाराजगी बरसती थी; क्योकि बा की कमजोरी इतनी बढ गई थी कि उनसे जरा-सी आवाज भी सहन नही होती थी।

बालको को बा के पास जाने से रोका जाता था; परन्तु मै कभी-कभी देवदासकाका के साथ पर्दे के उस तरफ चला जाता था। देवदास-काका बा के सिरहाने जरा देर रुककर बहुत चिंतित और दुखी होकर लौटते थे।

बा की जीवन-नैया इस प्रकार जब जीवन और मरण के बीच डोलती रही और बापूजी बा की सेवा मे जुटे रहे, उन्ही महीनो मे बापूजी को राज-नैतिक काम मे भी बहुत समय देना पडा, क्योकि दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का सग्राम अब गाधी-स्मट्स समझौते का रूप ले रहा था।

बा की यह प्रथम बीमारी नही थी। सन् १९०८ के अन्तिम चरण मे जबकि सत्याग्रह-सघर्ष का ट्रान्सवाल मे आरम्भ ही हुआ था और बापूजी दो महीने की जेल की सजा काट रहे थे, उन्होने जेल से बा को पत्र लिखा था :

९ नवम्बर, १९०८

"तेरी तबियत के बारे मे श्री वेस्ट ने आज तार भेजा है। मेरा हृदय चूर-चूर हो रहा है। परन्तु तेरी चाकरी करने के लिए आ सकू ऐसी स्थिति नही है। सत्याग्रह की लडाई मे मैने सब-कुछ अर्पित कर दिया है। मै वहा आ ही नही सकता। जुर्माना भर दू, तभी आ सकता हू। जुर्माना तो हरगिज नही दिया जा सकता। तू साहस बनाए रखना। कायदे से खाना खाओगी तो ठीक हो जाओगी। फिर भी मेरे नसीब से तू जायगी

ही, ऐसा होगा तो मै तुझको इतना ही लिखता हू कि तू वियोग मे, पर मेरे जीते-जी, चल वसेगी तो बुरी बात न होगी। मेरा स्नेह तुझ पर इतना है कि मरने पर भी तू मेरे मन मे जीवित ही रहेगी। यह मै तुझको निश्चय-पूर्वक कहता हू कि अगर तेरा जाना ही होगा तो तेरे पीछे मै दूसरी स्त्री करनेवाला नही हू। यह मैने तुझे दो-एक बार कहा भी है। तू ईश्वर पर आस्था रखकर प्राण छोडना। तू मरेगी तो वह भी सत्याग्रह के अनुकूल है। मेरी लडाई केवल राजकीय नही है। यह लडाई धार्मिक है, अर्थात् अति स्वच्छ है। इसमे मर जाय तो भी क्या और जीवित रहे तो भी क्या ? तू भी ऐसा ही जानकर अपने मन मे जरा भी बुरा नही मानेगी, ऐसी मुझे उम्मीद है। मै तुझसे यही माँगता हू।"

ईश्वर-कृपा से सन् १९०८ मे वा रोगमुक्त हो गई।

वापू के लिए वा भी कितनी व्यथित थी, इसका पता नीचे की बात से चलता है :

"सन् १९०८ मे वापू की प्रथम बार की गिरफ्तारी का समाचार जब फीनिक्स पहुचा तब वापू की सबसे बडी पुत्रवधू—श्री हरिलाल गाधी की पत्नी—के सीमतोन्नयन-सस्कार का घरेलू उत्सव मनाया जा रहा था। पुरुष-वर्ग का भोजन हो चुका था और महिलाओ की पक्ति वैठ रही थी। उसी समय वापूजी के पकड़े जाने का तार आया। भोजन के लिए खीर विशेष रूप से बनी थी, जो वा को अत्यन्त प्रिय थी। भोजन चलता रहा परन्तु वा का जी उचट गया। भोजन समाप्त होने तक एक अगुली भी उन्होने उसमे नही छुआई। और उसी समय मन-ही-मन सकल्प करके दूध का सर्वथा त्याग कर दिया। चाय भी विना दूध के ही लेने लगी। वापूजी के रिहा होने तक उन्होने यह व्रत निभाया। जब स्वास्थ्य के लिए उनसे दूध लेने का आग्रह किया गया तो उन्होने कहा कि जेल जाने वाले को घी-दूध नही मिलता तो मै कैसे ले सकती हू ?"

"यही नही, वा ने और आहार भी छोड दिया। कई दिनो तक केवल मक्का के नमकीन दलिये पर ही निर्वाह किया। बहुत कह-सुनकर थोडी डबलरोटी लेने पर उनको राजी किया जा सका, पर वह भी उन्होने रूखी ही ली। फलतः उनका स्वास्थ्य एकदम गिर गया। जब वापू घर आये तब उन्होने वा के इन नियमो को छुडवाया।"

यह हुई वा की सन् १९०८ की वीमारी की वात। उस वीमारी के मुकावले सन् १९१४ की वीमारी कही अधिक कठिन और भयावह थी। मेरी माताजी के एक पत्र से उनकी इस वीमारी का कारण और पूरा स्वरूप समझ मे आ जायगा।

सेवाग्राम, ता. १७–१२–४७

"चि. प्रभु,

"तुम्हारे पत्र का उत्तर तुम्हारे पिताजी ने कल दिया है, पर मैंने उसे देखा नही, इसलिए अपने विचार इस पत्र मे लिख रही हू।

"...पहले तो कानून (दक्षिण अफ्रीका मे हिन्दू-मुस्लिम विवाह को गैर-कानूनी घोषित करने वाले) का जिक्र होता रहा और उसके कारण वारवार यह चर्चा की जाने लगी कि 'यदि साहस हो तो' बहनो को भी जेल जाना चाहिए। इसी प्रकार की चर्चा पू. बापू ने जोहान्सबर्ग से लौटकर पहले पू० वा से और बाद मे हम लोगो से की, ऐसा मुझे स्मरण है। पू० वा को जेल भेजने के लिए पू० बापू का विचार शिथिल था, क्योकि उस समय बा का स्वास्थ्य विल्कुल कमजोर था। उनको रक्त-स्राव की वीमारी थी, इसलिए उनका शरीर क्षीण हो गया था। दूसरा कारण यह था कि पू० बापू के सात दिन के प्रथम उपवास के समय पू० वा ने भी साढे चार महीने के लिए दिन मे एक ही वार भोजन का व्रत कर रखा था। इस कारण पू० वा के स्वास्थ्य और उनके आहार के नियम आदि को देखते हुए उनको जेल भेजने का दुस्साहस वापूजी नही कर सकते थे। इसलिए दलील दे-देकर पू० बापू ने बा को जेल जाने के लिए तैयार किया था, यह मेरी जानकारी से बाहर की बात है। मुझे जहा तक पता है बा स्वय ही अपनी इच्छा से जेल जाने के लिए तैयार हुई थी। जब वापूजी ने उनसे अपने शरीर की निर्बलता का विचार करने को कहा तव वा ने तेज होकर जवाव दिया था कि 'ये सब बहुएँ जा सकेंगी और मैं न जा सकूगी? काशी (लेखक की माता) तो मुझसे कमजोर है। जब वह जेल के कष्ट वर्दाश्त करेगी तो मै क्यो न करूगी?' वा के इस प्रकार आग्रह करने पर बापू उनको जेल भेजने के लिए सहमत हुए।

"जेल जाने से पहले अनेक बार जेल के सबध मे चर्चाए होती ही रही थी, इसलिए निश्चय से बताना कि वा-वापू के बीच यही बात हुई, कठिन है। पर तथ्य की बात यह है कि पू० वा के स्वास्थ्य के कारण ही पू० वापू को उन्हे लडाई के लिए तैयार करने की हिम्मत नही हो रही थी। जब वा ने लडाई मे जाने का निश्चय कर ही लिया तब पू० वापूजी ने उनको जेल के कष्टो को उठाने के लिए तैयार किया। एक वार वा ने पूछा कि जेल मे अगर खाने के लिए फल न मिले तो? पू० वापू ने कहा कि फलाहार न दिया जाय तबतक अनशन करना, किन्तु फलाहार के व्रत का आग्रह मत छोडना। ऐसा करने मे यदि मृत्यु हो जाय तो भले! और सचमुच वा को जेल मे तीन-चार उपवास करने भी पड़े थे। इसके वाद मैरित्सवर्ग

की जेल मे जो फलाहार बा को दिया गया वह मात्रा मे बहुत कम और असतोषप्रद था। इसका परिणाम यह हुआ कि तीन महीने का कारावास कर जब पू० बा जेल से निकली तब सख्त बीमार पड गईं और पू० बापूजी ने भी तब उनकी आश्चर्यजनक सेवा की। यह बात तो तेरे बापू को भी याद होगी ही।

शुभेच्छुक मां के आशीर्वाद।"

मेरे पिताजी ने उसी पत्र मे लिखा था :

"बा का लिखा हुआ ठीक जान पडता है।

पिता के आशीर्वाद।"

मेरी माताजी ने ऊपर वाले पत्र मे जो लिखा है उसके अतिरिक्त मैरित्सबर्ग जेल के अनुभव सुनाते हुए उन्होने मुझे बताया :

"जब हम लोग मैरित्सबर्ग जेल मे थे और बापू को एक वर्ष की कैद की सजा होने की खबर आई तब बा को बहुत घबराहट होने लगी। उनकी आखो से आसू बह चले। रोके रुकते ही नही थे। उनके मन मे भय बैठ गया कि इतनी लम्बी सजा से बापू फिर लौट भी पायेगे या नही? बापूजी उनसे पहले रिहा हो गए, इस बात का पता तो उन्हे तब चला जब जेल से बाहर आने पर उन्होने बापू को फाटक पर देखा।

"एक तो बा का आधा उपवास रहता था, ऊपर से बापू की भारी चिन्ता। इस कारण वह सूखने लगी। नतीजा यह हुआ कि उनका शरीर हड्डी का ढाचा-मात्र रह गया।

"अपनी ऐसी विपदा मे भी बा हम लोगो को नित्य ढाढस दिलाती रहती थी। जेल का खाना हमारे लिए एक बडी आफत थी। परन्तु जब हम भोजन कर चुकती थी तो वह हमे सन्तोष के शब्द सुनाती थी कि चलो, सकट के दिनो मे से एक दिन कम हुआ! हम लोगो को जेल के कपडे सीने का काम मिला था। हमारे काम मे भी वह हाथ बटाती थी और बाकायदा जेल का काम पूरा करवाती थी। फुरसत के समय मे सबको भजन-कीर्तन मे लगाये रखती थी।"

विद्वान न होने पर भी बा की महत्ता बापूजी के समान ही थी। बा की आत्मा उतनी ही ऊची थी। उन दोनो के बीच की आपस की श्रद्धा, परस्परसेवा करने की उमग और एक-दूसरे के लिए त्याग करने की अगाध निष्ठा अद्भुत थी।

बा और बापू के बीच इतनी घनिष्टता होने पर भी देशसेवा का काम आने पर बापूजी कैसी दृढता से अपने कर्त्तव्य और धर्म का पालन करते

थे इसका एक रोमाचकारी प्रसग श्री रावजीभाई पटेल ने अपनी पुस्तक 'गांधीजीनी साधना' मे दिया है। ट्रान्सवाल की राजधानी प्रिटोरिया मे सरकार के साथ सत्याग्रह-सग्राम को समाप्त करने के सबध मे प्राथमिक समझौता हो रहा था। दोनो ओर से मौखिक वातचीत मे अपनी शर्तें वताई गई थी। कच्चा मसविदा भी वन गया। सिर्फ वाकायदा पत्र का आदान-प्रदान वाकी रह गया था। इस बीच फीनिक्स से तार पहुचा—"कस्तूरबा वहुत बीमार है और उनकी हालत बडी खतरनाक हो गई है। आप तुरन्त आवे।" बापूजी ने यह तार मि० एड्रयूज को वताया। एड्रयूज साहब ने पढते ही कहा, "हमे इसी समय यहा से फीनिक्स चल देना चाहिए।"

वापू ने उत्तर दिया, "यह कैसे हो सकता है? जहा कौम के लिए समझौते की वात चल रही है और चौबीस घटे के भीतर पत्रो का आदान-प्रदान हो जाने की उम्मीद है, वहा किसी भी कारणवश मुझे यहा से चले जाने का और सारी हिन्दी कौम के लिए होने वाले समझौते को खटाई मे डाल देने का खतरा उठाने का क्या अधिकार है? मै अपना कर्त्तव्य छोड-कर यदि एक दिन पहले पहुच जाऊगा तो वह बच जायगी, इसका भी क्या भरोसा? जिस काम को हाथ मे लिया है उसे पूरी तौर से निपटाकर ही यहां से हटा जा सकता है। इसके सिवा और कुछ हो ही नही सकता।"

वापूजी के इस निश्चय को देखकर मि० एड्रयूज वडी चिंता मे पड गए और उन्होने टेलीफोन पर जनरल स्मट्स से फीनिक्स से आये हुए तार का जिक्र किया। जनरल ने कहा, "मि० गाधी अवश्य जा सकते है। हमारा समझौता अव निश्चित है।"

मि० एड्रयूज ने वापू का सकल्प वताते हुए उनसे कहा, "शाम तो होने पर है, फिर भी मै गाधीजी का पत्र आपके पास ले आऊगा और आप अपना पत्र तैयार करके तुरन्त मुझे दे दे तो अच्छा है।"

कार्यभार मे अत्यधिक व्यस्त होने पर भी जनरल स्मट्स ने इसे स्वीकार कर लिया और तुरन्त सरकार की ओर से पत्र लिख दिया। रात को ट्रेन से एड्रयूज साहव वापू को साथ लेकर फीनिक्स के लिए चल पडे।

वापूजी फीनिक्स पहुचे तव कस्तूरवा की अन्तिम घडिया मालूम हो रही थी। डाक्टर का सहारा लेने की वात वापूजी ने त्याग दी। अपने ढग से ही चिकित्सा आरम्भ कर दी और वा खतरे से पार हो गई।

स्मट्स-गाधी समझौते के वाद पार्लमेट की वैठक के समय वापू को केपटाउन जाना पड़ा था। तवतक वा की वीमारी चल रही थी, इसलिए वापू उन्हे अपने साथ ही लिवा ले गए। वहा पर वा की स्थिति फिर

नाजुक हो गई। बा के साथ ही केपटाउन जाने के लिए देवदासकाका भी व्याकुल थे, परन्तु बापू ने उनको फीनिक्स मे ही रखा और आश्रम के कार्य-क्रम मे ढील न करने का आग्रह किया, वापू केपटाउन से पत्रो द्वारा उनको साहस दिलाते रहे। उनमे से एक पत्र निम्न प्रकार है :

फाल्गुन सुदी ६, १६७० (ई० स० १६१४)

चि० देवदास,

तुम अपने अक्षर सुधारना। वा का स्वास्थ्य तो वहुत बिगड गया है। वह और मै भी मानता हू कि डाक्टरी दवाई का बहुत अनिष्ट असर हुआ है। उसने ही इच्छा की थी कि डाक्टरी दवाई की जाय। दो या तीन खुराक पीने के बाद बीमारी बढ गई। अब कुछ खाया नही जा सकता। अन्त मे मौत आ जाय तो भी हम सबने तो मौत से न डरने का निश्चय किया है। इसलिए चिन्ता करने की कोई बात नही है। शरीर तो गिरने वाला है ही और फिर अपने गिरने के दिन ही वह गिरता है। और उसी के अनुसार हमे उपाय सूझते है। फिर आत्मा तो अमर है। अब शरीर की ऐसी स्थिति जानकर हमे साधुता और उदासीनता को अपनाना चाहिए। साधुता का मतलब स्थूल वैराग्य अथवा जगत मे भटकने के लिए निकल पडना, यह नही है। यहा उसका शुद्ध अर्थ अपने चारित्र्य के सबध मे है। उदासीनता का मतलब रज-शोक नही, किन्तु विषयों के प्रति अरुचि और ससार के वारे मे निर्मोहीपन है। वा की बीमारी मे तुम सब यह सीखो, वही उनके प्रति तुम्हारा सच्चा भक्तिभाव माना जायगा।

—वापू के आशीर्वाद

: ७० :

"प्रतिज्ञा नहीं टूट सकती"

चौमासे मे कभी पानी का, कभी खाली वादलो का, कभी तेज धूप का और कभी धूप और पानी दोनो का एकसाथ जोर वढता है, कभी घटता है। उस अवधि मे कोई ऋतु का निश्चित रूप वता नही सकता। वापूजी और फीनिक्सवासियो के छूट आने के वाद सत्याग्रह-आदोलन की भी यही हालत कई सप्ताह तक, या यो कहिए, तीन-चार महीने तक, चलती रही। युद्ध-विराम होने से पहले वहुत दिन असमजस मे वीते।

बापूजी, श्री पोलक और श्री कैलनबैक की रिहाई के बाद सरकार ने और किसी को मियाद से पहले रिहा नही किया। स्मट्ससाहब ने अपने कमीशन मे बापूजी की माग के अनुसार अपनी ही पार्लमेट के सदस्य मि० श्राइनर को भी शामिल करने से इनकार कर दिया। इस कारण सत्याग्रहियो के दिल मे यही बात जोर पकड रही थी कि अभी दक्षिण अफ्रीका की सरकार और गोरो के हृदय मे परिवर्तन नही हुआ है और निश्चय ही सत्याग्रह की लडाई और भी जोरो से लडनी पडेगी।

इस बीच खबर आई कि गोखले महाराज ने नए साल के दिन डरबन से होने वाली विराट कूच स्थगित करके कमीशन के काम मे उसके पूरा होने तक भली भाति सहयोग देने का सन्देश बापूजी के पास भेजा है।

दो-तीन दिन बाद ही यह खबर आई कि उस समय के हिन्दुस्तान के वाइसराय लार्ड हार्डिज ने अपने प्रतिनिधि के रूप मे मध्यप्रदेश के गवर्नर श्री बेजामिन को भारत से अफ्रीका भेजा है और वह ऐसी युद्ध-नौका मे आ रहे है जो नौ दिन मे ही बम्बई से डरबन पहुच जायगी।

एक और बात भी सुनने मे आई कि हिन्दुस्तान के बडे-बडे लोग बापूजी पर नाराज हो रहे है और तार-पर-तार दे रहे है कि अब सत्याग्रह स्थगित कर लार्ड हार्डिज की भलमनसाहत पर भरोसा किया जाय और कमीशन का बहिष्कार करके अपने हाथ अपने पैरो कुल्हाडी न मारी जाय, अन्यथा ऐसी नौबत आयगी कि हिन्दुस्तान के वाइसराय की सहायता मिलनी बन्द हो जायगी और हिन्दुस्तान से पैसे की मदद भेजने वालो को भी अपना हाथ रोक देना पडेगा। परन्तु बापूजी ने कुछ ऐसा मत्र पढा रखा था कि इन चेतावनियो का असर सत्याग्रहियो पर उलटा ही पडा। उनकी नसो मे खून और भी जोरो से दौडने लगा और उनका सकल्प मजबूत हो गया। फीनिक्स के जेलयात्री विद्यार्थी आपस मे तरह-तरह की चर्चा करते रहते।

गोखलेजी का तार इस प्रकार था: "कमीशन को स्वीकार न करके नए वर्ष के दिन से दूसरा कूच आरम्भ करने के समाचार से मुझे भारी दुख हुआ है। तुम्हारे इस निश्चय से मेरी और वाइसराय लार्ड हार्डिज की परिस्थिति बहुत ही विकट हो गई है। यूनियन सरकार तुम्हारे प्रश्नो का निबटारा करेगी ही, ऐसा पूरा विश्वास रखकर कमीशन को स्वीकार करो। उसके लिए आवश्यक गवाहिया दो और कूच बन्द रखो।"

गोखलेजी के इस तार से दक्षिण अफ्रीका के भारतीय असमजस मे पड़ गए। सत्याग्रह मे बापूजी को योग देनेवाले बड़े-बड़े नागरिको और

समझदार लोगो ने बापूजी से कहा भी कि गोखलेजी के दिल को दुखाना ठीक नही है। जब पूरा विश्वास दिलाया जा रहा है कि कमीशन हमारे अनुकूल सिफारिश करेगा तो बडो का कहना क्यो न मान लिया जाय? परन्तु बापूजी ने जरा भी विचलित हुए बिना अपने सगी-साथियो को उत्तर दिया, "यदि सम्राट महोदय खुद आकर भी भरोसा दिलाये कि इस कमीशन को स्वीकार करने पर तुमको मै हिन्दुस्तान का स्वराज्य दे दूगा तो भी मै कहूगा कि ऐसा निर्वीर्य और अपमानजनक स्वराज्य मुझे नही चाहिए। भारत को अपमानित करके और अपना सिर नीचा कर जिस स्वराज्य को मै प्राप्त करूगा, वह कैसा होगा? और वह कितने दिन टिकेगा? भारत का स्वाभिमान प्रथम बात है। फिर स्वराज्य अपने-आप स्व-मान के पीछे-पीछे रेगता हुआ चला आयगा।"

अपने साथियो को अपना दृढ सकल्प सुनाकर बापूजी ने गोखलेजी को निम्न तार भेजा:

"आपका दुख समझ सकता हू। चाहे कितना भी छोडना पडे, छोडकर भी आपकी सलाह का सम्मान करने की मेरी इच्छा रहेगी ही। लार्ड हार्डिज ने जो सहायता दी है वह अमूल्य है। उनकी सहायता अन्त तक मिलती रहे, यह मै भी चाहता हू। परन्तु हमारी परिस्थिति को आप समझे यह मेरी आपसे विनती है। इसमे हजारो मनुष्यो की प्रतिज्ञा का प्रश्न समाया हुआ है। प्रतिज्ञा विशुद्ध है। इस सारी लडाई की रचना प्रतिज्ञा के ऊपर निर्मित हुई है। यदि प्रतिज्ञा का बधन न होता तो हम लोगो मे से कइयो का आज पतन हो गया होता। हजारो व्यक्तियो की प्रतिज्ञा पर यदि पानी फेर दिया जायगा तो फिर नीति-बधन जैसी कोई बात रहेगी ही नही। प्रतिज्ञा करते समय लोगो ने पूर्ण विचार किया था। उसमे कुछ भी अनीति तो है ही नही। वहिष्कार की प्रतिज्ञा लेने का कौम को अधिकार है ही। ऐसी प्रतिज्ञा किसी भी व्यक्ति के निमित्त नही टूटनी चाहिए और चाहे कितना ही खतरा उठाना पडे तो भी उसका पालन करना ही चाहिए, यह सलाह आप भी दे, ऐसा मै चाहता हू। यह तार लार्ड हार्डिज को बताइएगा। आपकी स्थिति विकट न हो, यह मेरी इच्छा है। हम लोग ईश्वर को साक्षी रखकर, उसकी सहायता पर निर्भर रहकर लडाई शुरू कर रहे है। हम बुजुर्गों की सहायता चाहते है और उसकी याचना करते है। उसके मिलने पर हमे आनन्द होता है। परन्तु यह सहायता मिले या न मिले, प्रतिज्ञा का बन्धन टूटना नही चाहिए। मेरा यह नम्र अभिप्राय है। इसके पालन मे मै आपका सहारा और आशीर्वाद चाहता हू।"

इस प्रकार भारत के स्वाभिमान को बनाये रखने और प्रतिज्ञा के पालन

के लिए बापूजी अपनी बात पर डटे रहे। गोखलेजी और वाइसराय अप्रसन्न भी हुए, फिर भी उन दोनो से सहायता मिलती ही रही। उधर स्मट्स-साहब भी बापूजी की आन को भाप गए और कडककर बोलने के बदले विनय से बोलने लगे। फिर क्या था ? जैसे ही बापूजी ने स्मट्स साहब आदि के हृदय मे थोडा-सा परिवर्तन देखा, वह समान भूमिका पर युद्ध-विराम के लिए तत्पर हो गए।

गोखलेजी के आदेश पर बापूजी ने जिस कूच को स्थगित करना स्वीकार नही किया, उसे बाद मे मनुष्यता और नीति की दृष्टि से स्थगित कर दिया।

बात यह हुई कि जिन रेलवे के हडतालियो ने उस समय देश-भर मे अपना ऊधम मचा रखा था उन्होने बार-बार बापूजी के पास सदेश भेजा कि दक्षिण अफ्रीका की सरकार को अब पूरी तरह मात देने का सुयोग आप न चूके। हम लोगो की हडताल चल रही है, इसी समय आप भी अपनी योजना के अनुसार डरबन से बडी-से-बडी कूच शुरू कर दीजिए। आप लोगो का और हमारा सहयोग हो जायगा तो सरकार को तुरन्त झुकना पडेगा।

उक्त सन्देश रेलवे की हडताल के मजदूरो की ओर से किसने भेजा, किन शब्दो मे भेजा, इसका मुझे पता नही है। परन्तु यह ठीक याद है कि इस प्रकार की बाते जोरो से चल रही थी और सरकार के विरुद्ध भारतीय तथा गोरे हडतालियो का इकट्ठा वल लगाने की माग बढ रही थी। इस माग को सुनकर हम लोग, जो नवयुवक और बालक थे, अधीर हो उठे कि बापूजी ऐसा सुन्दर अवसर हाथ से क्यो जाने देते है। रेलवे हडतालियो के साथ मिलने से हमारा जोर बहुत बढ जायगा।

परन्तु अकस्मात एक दिन फीनिक्स मे खबर आई कि बापूजी ने नए साल के दिन डरबन से कूच शुरू करने का सकल्प स्थगित कर दिया है। और अब पहली तारीख के बदले जनवरी की दसवी तारीख को सत्याग्रह-सग्राम दुबारा छेडा जायगा। कारण यह है कि बापूजी रेलवे हडतालियो की अनुचित प्रवृत्ति को बल प्रदान करना ठीक नही समझते थे। उन्होने स्मट्स साहब को कहलवा दिया कि आप जब सकट मे घिरे हुए है तब हम आपकी दिक्कत को बढाना नही चाहते। आपको रेलवे हडतालियो से समाधान करने के लिए सहूलियत रहे, इसलिए हम दस दिन बाद अपनी पैदल यात्रा आरम्भ करेंगे।

बापूजी के मन मे सत्याग्रह के मूलतत्व की यह बात थी कि उसपर

हिंसा की छाया भूलकर भी न पड़ने दी जाय। रेलवे की हड़ताल के कारण जब चारो ओर हिंसा फैल रही थी तब सत्याग्रह-आदोलन पर जोर देना हिंसा को बढावा देने के बराबर होता। बापूजी के आदर्श से वह बिल्कुल उलटी बात होती। उनका आदर्श विरोधी को दबाने का नही, उसके सद्विचार को जगाने और उसका हृदय-परिवर्तन करने का था। इसीलिए उन्होने स्मट्स-जैसे घोर विरोधी को भी उसके निजी सकट मे सहारा देकर उसको तग न करने का धर्म अपनाया। आगे चलकर बापूजी की इस नीति ने दक्षिण अफ्रीका के गोरे लोगो का और स्मट्स सरकार का दिल जीत लेने मे बड़ा भारी काम किया।

दस दिन के लिए स्थगित किया गया यह कूच पन्द्रह दिन के लिए दुबारा स्थगित कर दिया गया। इसका कारण भी दक्षिण अफ्रीका की पार्लमिट की एक भद्र महिला बनी।

उस महिला का नाम था कुमारी हाब हाउस। उसने दक्षिण अफ्रीका मे अग्रेज-बोर युद्ध के समय युद्ध-पीडित बच्चो तथा बहनो की स्तुत्य सेवा की थी। उसकी सेवापरायणता की ख्याति बहुत थी। यद्यपि बापूजी उस महिला से परिचित नही थे फिर भी जब उसका तार मिला कि "कृपा करके मेरी-जैसी एक महिला की विनती पर आप अपनी पैदल-यात्रा पन्द्रह दिन के लिए स्थगित कर दीजिए," तब बापूजी ने उस विनती को स्वीकार किया और अपनी भद्रता का परिचय देकर साबित कर दिया कि सत्याग्रह केवल हठ ही नही होता; उसमे पग-पग पर विवेक-बुद्धि से काम लेना पड़ता है।

: ७१ :

दो नये मित्र

दक्षिण अफ्रीका मे भारतीयो की कसौटी जैसे-जैसे अधिक उग्र होती गई, वैसे-वैसे भारत मे बड़े-बड़े नेताओ की और जनता की चिन्ता भी बढती गई। गोखलेजी, श्री फीरोजशाह मेहता, श्री नटराजन, महात्मा मुशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे कई गण्यमान्य महापुरुषो ने दक्षिण अफ्रीका के इस अपूर्व सत्याग्रह मे भरसक

सहायता पहुचाने के लिए अहर्निश प्रयत्न किया। अनेक नगरो मे सभाएं हुई, चन्दे किये गए। विद्यार्थियो के अनेक सघो ने श्रमयज्ञ करके और खाना छोडकर बापूजी के सत्याग्रह के लिए पैसे भेजे।

जगह-जगह होने वाली इन सभाओ मे एक सभा लाहौर मे भी हुई। उसमे एक ऐसा सहृदय अग्रेज उजाले मे आया, जिसने अपनी कमाई की सारी बचत दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रहियो को अन्न आदि पहुचाने के लिए दे डाली। मनुष्य को परखने वाले और चतुर राजपुरुष गोखलेजी ने इस विशालहृदय अग्रेज को ध्यान मे रख लिया और जब बापूजी के साथियो मे पोलक, कैलनबैक और वेस्ट-जैसे शक्तिशाली गोरो की भी गिरफ्तारी करने मे दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने सकोच नही किया तब वहा के गोरे लोगो को जगाने के लिए तथा बापूजी का काम सभालने के लिए गोखलेजी ने उस अग्रेज युवक को दक्षिण अफ्रीका भेजा। चलते समय उस अग्रेज ने अपने एक दूसरे अग्रेज मित्र श्री पियर्सन को भी अपना सहयात्री बना लिया।

उस समय कदाचित गोखलेजी को भी कल्पना न होगी कि यह अग्रेज युवक ससार-भर के पीडित भारतवासियो के लिए अपना सारा जीवन ही प्रदान कर देगा और भविष्य मे 'दीनबन्धु' के नाम से याद किया जायगा। जिन दिनो अग्रेज को देखते ही भारत के अधिकतर लोगो के दिल मे बेहद डर पैदा होता था अथवा उनके हृदय मे वैर की आग जोरो से धधक उठती थी तब एड्रयूजसाहब के प्रति असख्य भारतीयो का हृदय आदर और भक्ति से झुक जाता था।

बम्बई से एड्रयूजसाहब जब चले थे तबतक के ही दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के समाचार उन्हे मालूम थे। समुद्र-यात्रा मे बीस-बाईस दिन जो बीत गए, उस अवधि मे सत्याग्रह-आदोलन ने कैसी करवट बदली इस बात का उन्हे जरा भी अनुभव नही था। डरबन मे जब एड्रयूजसाहब जहाज से उतरे, उन्होने स्वागत करने वाली मडली मे लुगी-कुर्ता पहने, हाथ मे पतली लकडी पकडे, मुडे हुए सिर वाले एक व्यक्ति को देखा; परन्तु उसे कोई मामूली हिन्दू वैरागी समझा। उन्होंने सारी मडली में अपने पूर्व परिचित पोलक को देखा और बोले, "अच्छा, आप यहा मिलेंगे, ऐसी मुझे आशा ही नही थी। बडा अच्छा हुआ जो आप रिहा हो गए। अब बताइए गाधीजी किस जेल मे है? मै उनसे कैसे मिल पाऊगा?" यह सुनकर उपस्थित लोगो के मुख पर हलकी-सी मुस्कराहट छा गई। श्री पोलक ने जब बताया कि लुगीवाले ही गाधीजी है, तब एड्रयूजसाहब गद्गद हो गए और उन्होनें झुककर गाधीजी को प्रणाम किया। पियर्सन

साहव ने भी एड्रयूजसाहव की तरह ही वापूजी के चरणो पर सिर झुकाया और दोनो उसी क्षण से वापूजी के अनुयायी के समान वन गए।

दक्षिण अफ्रीका मे कोई गोरा व्यक्ति काले कुली कहे जानेवाले भारतीय को इस प्रकार प्रणाम करे, यह वहा के गोरो के लिए वडी भयकर वात थी। इसलिए एड्रयूजसाहव के ऐसे वर्ताव पर गोरे अखवार बिगड गए। सपादकीय स्तभो मे एड्रयूजसाहव और श्री पियर्सन की कडी आलोचना की गई कि एक भारतवासी के पैरो पर इतना अधिक झुककर प्रणाम करके उन्होने सारी गोरी जाति की प्रतिष्ठा पर बुरी तरह कुठाराघात किया है और इस वात का उन्हे प्रायश्चित्त करना चाहिए। परन्तु एड्रयूजसाहव ने अपनी विद्वत्तापूर्ण मीमासा और सरकारी भाषा द्वारा गोरो को मानवता का पाठ पढाया और वापूजी-जैसे महान व्यक्ति के सामने हाथ जोडकर प्रणाम करने की विधि का समर्थन किया।

एड्रयूजसाहव जव फीनिक्स पधारे तव फीनिक्स के सव लोग उनके स्वागत के लिए स्टेशन पहुचे। रेल से उतरते ही दोनो साहवो ने बडे लोगो को हाथ जोड-जोडकर प्रणाम किया और हम-जैसे छोटे विद्यार्थियों के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। हम लोग तो तबतक यही जानते थे कि जव कोई गोरा मिले तव हाथ मिलाना चाहिए, किन्तु उन्होने तो आते ही हमारी तरह अभिवादन किया, यह देखकर हमे ऐसा मालूम हुआ कि ये अजनवी अतिथि नही है, अपने घर के ही लोग है। उनसे सटकर चलने मे, उनका हाथ पकडने मे हमे कोई सकोच न रहा और स्टेशन से आश्रम पहुचने तक हम उन दोनो से वहुत ही घुल-मिल गए। सध्या के समय प्रार्थना हो जाने के वाद जव हम लोग वडी मेज के चारों ओर वैठे तो मेज के केन्द्र मे वैठकर एड्रयूजसाहव ने कहा:

"मै गुरुदेव के पास से आ रहा हू। उनके शातिनिकेतन की वाते जितनी वताऊ, कम ही होगी। किन्तु इस समय तो मै गुरुदेव का सन्देश ही सुनाऊगा।"

यह कहकर एड्रयूजसाहव खडे हो गए और हाथ जोडकर तथा आखें अर्द्धोन्मीलित करके वहुत धीमे स्वर से मत्र का उद्घोष करने लगे "सत्यं ज्ञान अनन्त ब्रह्मानदरूपम्। अमृत यद्विभाति शात शिवमद्वैतम्।"

"सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म नंदरूपम्। अमृतं यद्विभाति शांतं शिवमद्वैतम्।"

(वही शांत है, कल्याणकारी है और अपने जैसा एक ही है, जो सत्यस्वरूप है, साक्षात ज्ञान है, अपरिमित है, ब्रह्म के आनन्द की मूर्ति के समान है और अमृतमय है।)

श्लोक का उच्चारण करते समय उन्हे अपने होठो को जवर्दस्ती नीचे-ऊपर खीचना पडता था और बहुत कठिनाई से वह उच्चारण कर पाते थे। इससे हम लोगो को हसी आती थी, परन्तु उनकी गम्भीर और ध्यानयुक्त मुख-मुद्रा ने हमे भी गम्भीर वना दिया और हमारे अन्तर मे पवित्र भाव जगाया।

मत्रोच्चार के बाद उन्होने जो प्रवचन किया उसका सार यह था कि वापू के सैनिक बनकर तुम लोग जो सत्याग्रह कर रहे हो इससे गुरु-देव वहुत प्रभावित हुए है। उन्होने यह मत्र दिया है कि जो करो वह सत्य के लिए, सवकी भलाई के लिए और ईश्वर को सदैव उपस्थित समझकर करो। ऐसा करने से अन्त मे कल्याण ही होगा।

उस दिन का प्रवचन बहुत छोटा था; क्योंकि उस दिन उनको वापू-जी के साथ सत्याग्रह के कामकाज की वहुत-सी वाते करनी थी।

उन दिनो एंड्रयूजसाहव दाढी नही रखते थे। अपनी मूछ भी साफ कर देते थे। भारत मे उनके दर्शन करने का सयोग मुझे अनेक बार मिला है। उनके निकट पढने का अवसर भी मुझे मिला है। उनकी सुमधुर वाणी सुनने तथा उनके ऋषितुल्य मुख को देखने से चित्त की तृप्ति ही नही होती थी। परन्तु उनका जो दर्शन मैने फीनिक्स मे पाया वह अनोखा था। उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह सग्राम को सफल करने मे वडा सहायक सिद्ध हुआ।

पियर्सनसाहव फीनिक्स मे मुश्किल से दो या तीन सप्ताह रहे होगे, परन्तु इतने थोडे समय मे ही हमारे वडे घनिष्ठ मित्र और स्वजन बन गए। वह सत्याग्रह-सघर्ष का अनुभव लेने के लिए आये थे। फिर भी उन्होने फीनिक्स मे आते ही अपने चारो ओर वाल-मडली जमा कर दी। हमे लेकर वह वगीचे मे पहुचते थे और कही केले के तने और पत्तों की रचना का निरीक्षण कराते थे, कही फूलो की विविधता पर ध्यान दिलाते थे और फूलो को चुन-चुनकर ऐसे प्रश्न करते रहते थे कि हमे अपनी वुद्धि पर जोर देने के लिए विवश हो जाना पडता था। फूल-पत्तो और कीट-पतग आदि के जीवन और गुण-कर्म के वारे मे पियर्सनसाहव की वहुत जानकारी थी और अपने ज्ञान का लाभ सुवह-शाम वह हमे देते ही रहते थे।

इनाडा नामक जल-प्रपात की, जो हमारे यहा से पाच-छ. मील की दूरी पर था, सुरम्यता और भव्यता का आनन्द लेने के लिए वर्ष मे अनेक वार हम लोग वहा जाया करते थे। दिन-भर जगल मे घूमते थे, पानी मे तैरते थे, परन्तु वहा जाकर जो हमने कभी नही देखा था वह पियर्सन-

साहब के साथ जाने पर देखा। प्राय. तीन सौ फुट की ऊंचाई से गिरने वाले पानी को उन्होंने अलग-अलग स्थान से देखा और हमे उस सौंदर्य की विविधता बताई। वहा की वृक्ष-राजि मे घूमते समय नए-नए प्रकार के पौधो को इस तरह देखते थे, मानो किसी मित्र से दोस्ती कर रहे हो। उन्होंने वहाके पत्थरो को उठा-उठाकर और घुमा-फिराकर देखा और उनमे भी हमे नवीनता का दर्शन कराया। वहा की प्राकृतिक गुफा के सौंदर्य से वह मुग्ध हो उठे। बारीक सुकोमल पत्तियो वाले फर्न नाम के पौधो की हरियाली, उसके पत्तो की लहरदार तथा कलामय लम्बी किनारी और बहुत नाजुक टहनियो की ओर उन्होंने हमारी अभिरुचि जगाई।

एड्रूजसाहब ने अपना समय अधिकतर बापूजी के साथ बिताया और राजनैतिक गुत्थियों को सुलझाने मे सहायता दी। पियर्सनसाहब ने अपना समय जनता के जीवन का अध्ययन करने मे लगाया। फीनिक्स के चारो ओर मीलो तक उन्होंने पैदल-यात्राए की। भारत के गिरमिटिया मजदूरो के रहन-सहन को उन्होंने देखा। वहा के आदिवासियो के निवास-स्थानो मे भी वह गये और सबसे सुख-दुख की बाते पूछ-पूछकर लिख ली। यद्यपि वह पादरी नही थे, उनमे नम्रता बहुत थी। अप्रसिद्ध रहकर सेवा-मय जीवन बिताने मे उनको आनन्द मिलता था।

प्रिटोरिया मे जब एड्रूजसाहब के प्रयत्नो से बापूजी और जनरल स्मट्स के बीच सत्याग्रह के युद्ध-विराम के लिए लिखा-पढी हो गई तब आशा यह थी कि दीनबन्धु एड्रूज और पियर्सनसाहब कुछ समय फीनिक्स मे स्थिरता से बिताएगे, परन्तु उन दोनो को दक्षिण अफ्रीका के अनेक नगरो मे परिभ्रमण के लिए जाना पडा। वहा एड्रूजसाहब की अमृतमयी वाग्धारा ने कट्टर अग्रेजो के दिलो मे भी भारतीयो के प्रति सहानुभूति का भाव पैदा किया। यह प्रयास चल ही रहा था कि अकस्मात लदन से एड्रूजसाहब की माताजी के स्वर्गवास का तार आया। इस समाचार से फीनिक्स-भर मे शोक छा गया।

एड्रूजसहाब को तुरत इग्लैंड जाने का निश्चय करना पडा। पियर्सन-साहब भी उनके साथ ही लौट गए। फीनिक्स से उन दोनो की विदा हमारे लिए अति दुखदायी थी। उनके प्रस्थान के समय विशेष रूप से प्रार्थना-सभा हुई और फिर से वह अनमोल मत्र अग्रेजी-मिश्रित सस्कृत-पाठ से वातावरण मे गूज उठा :

सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्मानंद-रूपम्।
अमृतं यद्विभाति शान्तं शिवमद्वैतम्॥

: ७२ :

कुछ और अंग्रेज अतिथि

एड्रयूजसाहब और पियर्सनसाहब फीनिक्स के वातावरण को अधिक मधुमय और अधिक सुरभित करके विदा हुए उसके कुछ ही दिन बाद हमारे यहा दूसरे दो अग्रेज अतिथि पधारे। एक थे सर बेजामिन राबर्टसन और दूसरे थे उनके सेक्रेटरी मि० स्लाटर। एक भारतीय अतिथि भी उनके साथ थे, जिनका नाम था श्री रायसाहब चौधरी।

स्मट्स-सरकार द्वारा दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रही और हडताली लोग निर्दयता से कुचले जाने लगे तब ससार के समक्ष अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए भारत के वाइसराय ने अपने प्रतिनिधि के रूप मे मध्य-प्रात के तत्कालीन चीफ कमिश्नर सर बेजामिन को दक्षिण अफ्रीका भेजा और स्मट्स-सरकार से बातचीत करके भारतीयो को न्याय दिलाने का काम उनके जिम्मे किया। ट्रान्सवाल मे जब बापूजी और जनरल स्मट्स के बीच कच्चा समझौता हुआ तब बेजामिन साहब वहा पर थे।

बेजामिन साहब दक्षिण अफ्रीका पधारे तो वहा भारतीयो का बल और हिन्दू-मुसलमान, पारसी और ख्रिस्तियो का अखड और सुदृढ भ्रातृत्व देखकर चकित रह गए।

ट्रान्सवाल से लौटकर सर बेजामिन ने अपना समय नेटाल के भारतीयो से मिलने मे बिताया। चूकि बापूजी की प्रेरणा से भारतीयो ने स्मट्ससाहब द्वारा नियुक्त सालोमन-कमीशन का बहिष्कार करने की प्रतिज्ञा कर रखी थी, सर बेजामिन इस प्रतिज्ञा के बन्धन को हटाने मे अपना सर खपा रहे थे। भारत की ओर से सरकारी प्रतिनिधि होने के नाते उनके दिल मे इस बात की चिता थी कि सालोमन-कमीशन के सामने कुछ तो ऐसी गवाहिया अवश्य दी जाय जो भारतीय गिरमिट-मजदूरो को न्याय दिलाने मे सहायक हो। उनकी समझ मे यह बात किसी तरह नही आ रही थी कि केवल एक गाधी के पीछे सब-के-सब भारतीय क्यो चल रहे है?

बेजामिनसाहब बरसो तक भारत मे ऊचे पद पर रहने के कारण भारतीयो की नस-नस पहचानने मे कदाचित अपने को कुशल समझते होगे, परतु दक्षिण अफ्रीका मे उनको कदम-कदम पर भारतीयो की शक्ति का नया ही अनुभव होने लगा। उनको बहुत जल्द महसूस होने लगा कि

भारत मे भले ही वह बडे पदाधिकारी हो, दक्षिण अफ्रीका मे भारतीयो के बीच उनका मूल्य कोई विशेष नही है और गाधी-जैसे साधारण व्यक्ति का मूल्य अपेक्षाकृत कही ज्यादा है। वह भारत से सत्याग्रहियो को सहायता देने के लिए आये थे, परंतु आकर असमजस मे पड गए कि सत्याग्रही भारतीयो पर कृपा करने के लिए अपने श्वेत-बन्धुओ से कैसे कहा जाय ! ये सत्याग्रही याचक होते तो कहा जा सकता था, पर ये सब तो पक्के योद्धा थे ! जहा दोनो ओर से ताकत की आजमाइश हो रही थी, वहां रहम करने के लिए कहे तो किससे !

जब बापूजी के बल को दक्षिण अफ्रीका के हर कोने मे बेंजामिनसाहब ने अनुभव किया तो बापूजी की सस्था फीनिक्स को भी देखने की उत्सुकता उनके मन मे पैदा हुई। श्री पोलक उन्हे फीनिक्स लिवा लाए।

फीनिक्स स्टेशन पर सर बेंजामिन के स्वागत के लिए बापूजी स्वय नही गये। बापूजी को पता था कि हिन्दुस्तान मे लाटसाहबो का स्वागत करने मे किस प्रकार अतिरेक किया जाता है और भारत के अग्रेज अफसर खुशामद के कैसे आदी हो गए है। इसलिए भी शायद फीनिक्स आश्रम मे बेंजामिनसाहब के आगमन को अधिक विशेषता नही दी गई। फिर भी शिष्टता के नाते बापूजी ने फीनिक्स के दो-एक बडे कार्यकर्ताओ को स्टेशन पर स्वागत के लिए भेजा। विद्यार्थियो मे से चार-पाच लडके उनका सामान उठा लाने के लिए स्टेशन तक गये, जिनमे मै भी एक था। एड्र्यूजसाहब और पियर्सनसाहब जब फीनिक्स आये तब सारा-का-सारा आश्रम उनके स्वागत के लिए गया था। परन्तु सर बेंजामिन के लिए आवश्यकता से अधिक कोई नही था। ज्योही सर बेंजामिन स्टेशन के प्लेटफार्म पर उतरे, इधर-उधर देखने लगे, मानो उनकी दृष्टि अपना स्वागत करनेवालो की खोज कर रही थी। किसी के हाथ मे फूलमाला नही थी, न कोई जलूस था। बिना कोट-कालर वाले, अधनगे-से हम ग्रामीण विद्यार्थियो को अपने सामने खडा हुआ देखकर वह चकित-से हुए। हमारे साथ के मगनभाई मास्टर और रावजीभाई पटेल से दो-चार शब्द पूछपाछकर वह आश्रम के लिए चल पडे। उनके सेक्रेटरी और उनके दल के तीसरे व्यक्ति रायसाहब चौधरी भी उनके पीछे-पीछे चले। तीनो को बिना सवारी के ढाई मील तक चलना भारी पड गया। रास्ते-भर तीनो मे से कोई कुछ बोल नही रहा था। रायसाहब सर बेंजामिन के पीछे-पीछे नौकर की तरह सभल-सभलकर चल रहे थे।

आश्रम मे पहुचने पर इन सरकारी मेहमानो का स्वागत फलो आदि

से किया गया। तीन-चार घंटे फीनिक्स मे घूमघामकर रात की गाडी से वे लौट गए।

सर बेंजामिन के स्वागत और बापूजी से उनकी मुलाकात के बारे मे श्री रावजीभाई पटेल ने अपनी पुस्तक मे लिखा है :

"श्री पोलक के साथ पैदल ही जब वह संस्था के मकानों तक पहुचे तब गाधीजी अपने निवास-स्थान के द्वार पर खडे हुए थे । उन्होने सर बेंजामिन का स्वागत किया। बीच वाले कमरे मे सब बैठे। नित्य की तरह मेज पर धुली हुई स्वच्छ चादर बिछी थी और आगन के बगीचे से कुछ फूल तोडकर फूलदान मे सजा दिये गए थे। दो-चार मिनट बातचीत करने के बाद गाधीजी ने जलपान के लिए फल आदि मगाए। केले, अनन्नास, सतरे, पपीते, आम आदि हमारे यहा के ताजे फल उनके सामने रखे गए और गाधीजी ने सर बेंजामिन से कहा, "मैने और मेरे सहयोगियो ने अपने हाथ से जिन पौधो को लगाया और पाला-पोसा है उन्ही से प्राप्त ये फल है। इसलिए पूर्णयता स्वदेशी है। इन फलो को प्रेमपूर्वक आपको अर्पित करने से अधिक और हम आपको क्या दे सकते है ? यदि आप पसद करे तो चोकर वाले आटे की घर मे बनी हुई डबल रोटी और दे सकते है। इनमे से कुछ चीजे ग्रहण करके हमे कृतार्थ कीजिए।"

साहब और उनके दोनो साथियो ने फलो को आनन्द से खाया। बाद मे गाधीजी ने उनसे नम्रता के साथ कहा, "क्षमा कीजिए सर बेंजामिन, श्री पोलक आपको घूम-फिर कर सस्था दिखायगे। श्रीमती गाधी बीमार है, इसलिए मै आपके साथ नही चल सकूगा।"

सर बेंजामिन खडे हो गए और बोले "जी-जी, याद आ गया, श्रीमती गांधी बीमार है, यह तो मै भूल ही गया था। अब उनका स्वास्थ्य कैसा है ? क्या मै उनसे मिल सकता हू ?"

गाधीजी ने कहा, "अवश्य ! आइए, पास के कमरे मे ही है।"

सर बेंजामिन कस्तूरबा के पास गये तो देखा कि उनके लिए चारपाई तक नही है। दोनो बेंच इकट्ठी करके उनको लिटाया गया है। गाधीजी और कस्तूरबा के घर की यह सादगी देखकर वह कुछ बोले नही, पर सोचते रह गए। उन्होने गाधीजी से कहा, "आप श्रीमती गाधी की सेवा मे ही रहिए। हम लोग श्री पोलक के साथ सस्था देख लेगे। आप हमारे साथ चलने का जरा भी कष्ट न करे।"

जिस प्रकार वह पैदल आये थे उसी प्रकार जरा देर बाद पैदल लौट गए। जाते समय एक बात फीनिक्स मे छोड़ते गए और एक अपने साथ

लेते गए। छोड गये 'अपना तेज' और ले गये अपने हृदय मे यह अनुभूति कि "भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का यदि कोई भयकर शत्रु है तो वह गाधी है।"

अन्य अग्रेज अतिथियो मे एक बहुत वृद्ध और गण्यमान्य महिला केप-टाउन से उस समय फीनिक्स आई थी। उनका नाम था मिस मोल्टीन। उनके नाम के साथ फीनिक्स मे मिस हावहाउस को भी बहुत आदर के साथ याद किया जाने लगा; क्योकि भारतीयो और स्मट्ससाहब के बीच समझौता कराने मे उन्होने भी अपना काफी प्रभाव डाला था। उनके ही तार पर बापूजी ने डरबन से आरम्भ होने वाली दस हजार सत्याग्रहियो की पैदल यात्रा को तीन सप्ताह के लिए स्थगित कर रखा था। मिस मोल्टीन मिस हावहाउस की साथिन थी। फीनिक्स मे आकर उन्होने बीमार कस्तूरबा के लिए अपनी विशेष सहानुभूति प्रकट की और हमारे भारतीय रहन-सहन को बार-बार बहुत उत्सुकता से देखा।

मिस मोल्टीनो बहुत वृद्ध थी, पर बडी फुर्ती से चलती थी। हाथ मे छतरी लेकर छरहरे बदनवाली वह जब तन कर खडी होती थी तो मेरे पिताजी और मगनकाका जैसे पूरे आदमियो से भी बाजी मार ले जाती थी। यद्यपि उनके मुख पर झुरिया थी तथापि होठो पर मूछ की रेख के कारण वह बलवान दीखती थी। कई दिन तक वह फीनिक्स मे बापूजी का सत्सग प्राप्त करने के लिए रही।

: ७३ :

बापूजी का अनुपम उपहार

सत्याग्रह-सघर्ष के लिए पुन असरकारक कदम उठाने की चर्चा कम हो गई और डरबन से विराट् पैदल यात्रा प्रारम्भ करने की बात और भी दूर खिसकती गई। फीनिक्स के वातावरण मे युद्धकाल की-सी उत्तेजना अदृश्य हो गई और जेल-यात्रा से पूर्व जैसा कार्यक्रम था प्राय. वैसा ही दैनिक कार्यक्रम फिर से चालू हो गया। फिर भी यह दुविधा सब के मन मे बनी ही हुई थी कि न जाने कब फिर से जेल जाना पडेगा। इसलिए हम लोगो का ध्यान पढने-लिखने मे कम ही लगता था। बगीचे का और छापा-खाना का काम ऐसा था ही नही, जहा उचटे हुए मन से कुछ किया जा सके।

ऐसे रूखे वातावरण मे एक दिन सवेरे मैने देखा कि आश्रम के एक कोने मे महीनो से बन्द पडी हुई मोची का काम करने की कोठरी मे झाड-बुहारू लग रही है। उसमे जो औजार थे उनको भी घिसकर पैना बनाया जा रहा था। मुझे मोची-काम सीखने का उत्साह कई दिनो से था। मैने समझा कि अब हमे एक नया उद्योग सिखाया जायगा। उत्साह से मै उन चमकते औजारो को देखने लगा और पूछने लगा, "यह क्या है, किस काम का है ?" परन्तु मेरे प्रश्न का उत्तर मुझे रूखेपन के साथ मिला। एक सयाने लडके ने डाटते हुए कहा "हाथ मत लगाओ किसी चीज को। तुम्हारे सीखने के लिए यह सब तैयार नही किया जा रहा है। अभी क्या मालूम कब जेल जाना पडे ! कोई मोची-काम का वर्ग थोडा ही खुलने वाला है ! इस समय तो जनरल स्मट्स के लिए एक जोडी 'सैडल' बनाया जायगा। उन्होने बापूजी से सैडल बनवाकर भेजने की माग की है।"

मोची का काम सीखने का हौसला मुझे इतना ज्यादा था कि सेडिलो की उस जोडी के बन जाने तक बीसियो बार उसे देखने के लिए मैने चक्कर काटे, परन्तु किसी दिन मुझे उसे छूने तक नही दिया गया और मेरी यह इच्छा अधूरी ही रह गई। जोडी के बन जाने पर बापूजी ने बहुत सावधानी से उसकी जाच की। स्मट्ससाहब के पैरो के निशान का जो कागज अकित था उसके आकार से जोडी का मिलान किया और जहा कसर मालूम दी, वहा सुधारने का निर्देश किया। जोडी की पालिश, सिलाई के टाके आदि हरेक बात बहुत बारीकी से काफी समय लगाकर बापूजी ने देखी और जब पूरा-पूरा सतोष हो गया तब उन्होने स्मट्ससाहब के पास वह प्रेमोपहार भेज दिया।

मित्र, माता-पिता, अध्यापक आदि के द्वारा छोटी-मोटी भेट बच्चो को और बडो को दी जाती है, लेकिन अपनी याद मे एक भी भेट मैने ऐसी नही देखी जैसी बापूजी ने स्मट्ससाहब के लिए इन सैडिलो की भेजी थी। अभी तो स्मट्ससाहब के साथ आखिरी समझौता तक नही हुआ था, कच्चे समझौते पर लोगो को पूरा भरोसा नही था। अपने वचनो से मुकर जाने मे स्मट्स-सरकार को देर नही लगती, यह कटु सत्य दक्षिण अफ्रीका के भारतीयो के अनुभव मे बार-बार आया था। फिर भी बापूजी जब प्रारभिक समझौते के सिलसिले मे स्मट्ससाहब से मिलने जोहान्सबर्ग गये थे तब उन्होने (शायद उनके सेक्रेटरी ने) कहा था, "गाधी, आपके आश्रम के सैडिल बहुत बढिया होते है। एक जोडी भेज देगे ?" और बापूजी ने हृदय के प्रेम से सराबोर वह उपहार स्मट्ससाहब के लिए भेज दिया।

वर्षा के पहले कुछ समय तक जिस प्रकार वातावरण स्थिर और

शात हो जाता है उसी प्रकार सैंडलो की जोडी भेजे जाने के बाद फीनिक्स के वातावरण में दिनो तक चुप्पी-सी रही। दुविधा सबके दिल मे थी कि आगे क्या होगा, परन्तु चिंता या परेशानी नही थी। सोलोमन-कमीशन अपना काम कर रहा था, परन्तु उसे भारतीयो का सहयोग प्राय. कही भी प्राप्त नही था।

ऐसे समय एक दिन दोपहरी मे फीनिक्स मे बापूजी के पास समाचार आया कि "अब जेल मे कोई नही रह गया है। दक्षिण अफ्रीका की सभी जेलो मे से प्रत्येक सत्याग्रही कैदी को रिहा कर दिया गया है।" इस समाचार ने हमारे मन मे उत्साह की लहर दौडा दी। हमे यह आशा हो गई कि अब दक्षिण अफ्रीका मे भारतवासियो की सकटमय स्थिति समाप्त हो जायगी। तीन पौड का कर हटाया जायगा, सत्याग्रहियो की मागे पूरी की जायगी, गिरमिटिया भाइयो के साथ किया जाने वाला पशु से भी बदतर दुर्व्यवहार बन्द होगा तथा 'कुली,' 'सामी' जैसे अपमानजनक शब्द भी भारतीय भाइयो को नही सुनने पडेगे।

अनेक सत्याग्रही वीर अपनी रिहाई के बाद बापूजी के दर्शन और भेट के लिए फीनिक्स आने लगे। प्राय पाच-सात व्यक्ति रोज आते, एक-दो दिन फीनिक्स मे रुकते और बापूजी के आशीर्वाद पाकर अपने-अपने काम पर लौट जाते। इन व्यक्तियो मे कई ऐसे थे, जो साग-फल की फेरी करके अपनी रोजी कमाते थे। अधिक पढे-लिखे तो थे ही नही, परन्तु बापूजी पर पूरी श्रद्धा रखकर लगातार जेल जाते रहते थे। राजनीति के दाव-पेच आदि से उन्हे कोई मतलब नही था। हारने-जीतने की बहस मे उलझना उन्हे पसन्द नही था। बापूजी जबतक अपनी अतिम विजय की घोषणा न करें तबतक वे लोग आज्ञाकारी सैनिक के नाते अपना काम-धधा छोडकर बार-बार जेल जाने के लिए तत्पर रहते थे। परतु अब की बार सचमुच जीत है या कुछ देर के लिए युद्ध-विराम, यह प्रश्न उनके मन मे था ही। एक जेलयात्री ने अपने मन का विश्वास पक्का करने के लिए बापूजी से कह भी दिया, "यदि सचमुच इस बार की हमारी जीत पक्की है तो आप अपने हाथ से मिठाई बाटे।"

गुजरात के सीधे-सादे किसान की यह माग बापूजी ने बडे प्रेम से स्वीकार कर ली और उन्होने हसते-हसते विश्वास दिलाया कि अब, जबकि सभी सत्याग्रही कारावास से मुक्त किये जा चुके है, यह बात हमारे समझौते के टिकाऊपन की सूचक है और शीघ्र ही मिठाई बाटने का इन्तजाम वह खुद करेगे।

यह बात नही थी कि फीनिक्स आश्रम मे मिष्टान्न और नमकीन का आनद कभी लिया ही नही जाता था, परन्तु बिल्कुल बचपन से बारह वर्ष की आयु तक मैंने भूलकर भी हलवाई के यहा की मिठाई फीनिक्स मे देखी तक नही थी, सूघने की तो बात ही क्या।

प्रथम बार सत्याग्रह के विजयोत्सव के निमित्त डरबन शहर से फीनिक्स मे मिठाइया लाई गई। डरबन मे गुजरात के अच्छे-अच्छे नामी हलवाई, कलाकद-बालूशाही आदि के जोड की गुजराती मिठाई बनाते थे और वहा उनकी दुकान काफी चलती थी। उन दुकानो से डलिया भरकर मिठाई फीनिक्स मे आ पहुची।

अपने मकान के पूर्व की ओर के खुले आगन मे एक किनारे पर छोटी-सी मेज लगाकर उसके सहारे बापूजी खडे हो गए और मेज पर रखी हुई मिठाई क्रमश एक-एक व्यक्ति को परोसने लगे। सत्याग्रही—अतिथि और विद्यार्थी इस अमूल्य प्रसाद को अपने पात्र मे बापूजी से लेकर आगन मे जहा स्थान मिले, बैठ जाते थे और बडी प्रसन्नता से उसका स्वाद लेते थे।

अपने हिस्से का प्रसाद पाकर मै बापूजी के पास ही कुछ दूर घास पर बैठ गया। खेलने जाने को मेरा जी नही करता था। बापूजी से कोई बात करता तो उसे सुनने की इच्छा रहती थी। कुछ देर बाद अतिथियो मे से एक प्रौढ व्यक्ति ने चर्चा छेड दी, "आज मिठाइया बाटी गई, यह ठीक ही हुआ, परन्तु अब कुछ ऐसा टिकाऊ काम करना चाहिए कि हमारी जीत स्मरणीय बन जाय। विजय का दिन हमारा सुवर्ण दिन होगा। आप इस उपलक्ष मे 'इडियन ओपीनियन' का अक स्वर्णाक्षरो मे प्रकाशित करे तो कैसा हो ?"

यह सुनकर बापूजी के मुख-मडल पर छाई हुई गभीरता कम हो गई। कुछ मुस्कराते हुए उन्होने उस प्रौढ अतिथि को देखा और बोले, "कबूल है। हम स्वर्ण-अक अवश्य प्रकाशित करेगे। उसमे सत्याग्रह-सग्राम का पूरा सार और चिट्ठा दिया जायगा। परन्तु अभी स्वर्ण-अक प्रकाशित करने योग्य समझौता नही हुआ है। तुम सब लोग जेल से छूटकर आ गए, यह आनद की बात है और इसी निमित्त मिठाई बाटने की बात तुम्हारे सतोष के लिए मैंने स्वीकार की, किंतु अभी यहा कानून वे ही पुराने मौजूद है। जब वे कानून बदले जायगे तब हमारी विजय मानी जायगी। उस जीत से पूर्व क्या खुशी मनाए ?"

'स्वर्ण-अक' के नाम से मै अचम्भे मे पड गया। कैसा होगा वह स्वर्ण-अंक ! क्या उसका प्रत्येक अक्षर स्वर्ण-रज से लिखा जायगा ? उसके सभी

पन्ने सुनहले होगे और उसकी जिल्द सोने की गिन्नी की तरह चमकती होगी। स्वर्ण-रज से हमारे छापाखाने मे साल-भर मे दो-चार वार किसी चित्र या लिफाफे पर नाम छपता था। कभी, वह रज लगाने का काम मुझे भी मिलता था। इसलिए स्वर्ण-अक का पूर्ण काम देखने को मेरा मन बहुत अधीर हो उठा। परन्तु जबतक हम लोग फीनिक्स रहे तबतक स्वर्ण-अक निकलने की बारी आई ही नही। हमारे फीनिक्स से भारत आने के बाद फीनिक्स से मेरे पिताजी और अन्य सपादको द्वारा 'इडियन ओपीनियन' का वह स्वर्ण-अक प्रकाशित किया गया। उसमे दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का लगभग सम्पूर्ण इतिहास लिखा गया। दस वर्ष बाद बापूजी ने जब यरवडा जेल मे बैठकर दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रह का इतिहास केवल अपनी स्मृति के आधार पर लिखा तब घटनाओ का क्रम किस सावधानी से उसमे दिया, इस बात का प्रमाण 'स्वर्ण-अक' देखने से मिलता है।

: ७४ :

जनरल स्मट्स की चाणक्य-नीति

दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रहियो को जिनसे सतत मोरचा लेना पड रहा था वह जनरल स्मट्स चाणक्य-नीति मे अपने समय के प्रथम व्यक्ति के रूप मे विश्व-भर मे सुप्रसिद्ध थे।

किन्तु बापूजी ने अपनी युद्ध-नीति मे धर्म-पक्ष को ही अगीकार करने का दृढ सकल्प कर रखा था। अपने व्यवहार मे मिथ्याचार और धोखादेही की परछाई तक बापूजी सहन नही कर सकते थे। सत्याग्रह-शास्त्र मे बापूजी ने इस सिद्धात पर अत्यधिक जोर दिया था कि सौ बार दगा देनेवाले के प्रति भी सच्चा सत्याग्रही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कपट नही करेगा। इतना ही नही, मन से भी धोखेबाज का अहित नही चाहेगा, न उससे बदला लेने की भावना ही रखेगा।

भद्रता के इस अतिरेक के कारण बापूजी के सगी-साथी बार-बार तग आ जाते थे और उनसे विनती करते थे, "कृपा करके आप अपना महात्मापन बेहद न बढाए। आप खुद धोखा न दे, दगा न दे, यहा तक तो ठीक है; परन्तु धूर्त-शिरोमणि को भी अपना दांव खेलने का मौका न दे!"

जनरल स्मट्स वास्तव मे धूर्त-विद्या मे बहुत ही प्रवीण थे । अग्रेजी साम्राज्य उनकी चाणक्य नीति का आसरा लेने के लिए अनेक बार लालायित रहता था। जब बापूजी का स्मट्स के साथ कच्चा समझौता हो गया और अफ्रीका-भर मे सत्याग्रहियो की आम रिहाई हो गई, तब बापूजी ने सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित कर दिया और लोगो की जेल जाने की महत्त्वाकाक्षा पर रोक लगा दी । उस समय दक्षिण अफ्रीका के कई समझदार सेवको ने बापूजी से कहा, "आप इस धूर्त-शिरोमणि की चिकनी-चुपडी बातों मे न आवे । वह इस समय सत्याग्रहियो का जोश ठडा कर देगा और बाद मे जब हम लोगो मे जेल जाने का उत्साह न रहेगा तब वह फौरन करवट बदल लेगा। आपके हाथ से बाजी निकल जायगी। उस समय यदि आप फिर से सत्याग्रह करेगे और लोगो को जेल जाने का न्योता देगे तो कोई आगे कदम नही बढायगा।"

"दूध का जला छाछ भी फूक कर पीता है" इस न्याय से दक्षिण अफ्रीका के भारतवासियो को जनरल स्मट्स से बहुत ही चौकन्ना रहने का विशेष कारण था। पहले भी स्मट्स की धूर्तता और धोखेबाजी कई बार प्रकाश मे आ चुकी थी । पहली बार सन् १९०८ के सत्याग्रह मे स्मट्स साहब ने सत्याग्रहियो को साफ-साफ धोखा दिया था। उस वर्ष १० जनवरी के दिन बापूजी को सर्वप्रथम जेल भेजा गया। उनकी सजा दो मास की थी, परन्तु बीस ही दिन मे स्मट्स सरकार सत्याग्रह के इस अजीब तरीके से तग आ गई और उन्हे छोड दिया गया। बापूजी के साथ सभी सत्याग्रहियो की आम रिहाई कर दी गई। समझौते के लिए स्मट्स ने नम्रतापूर्वक बाते की। जेल से छूटकर आने वाले सत्याग्रही स्मट्स के सामने अपनी ताकत ऊची रखना चाहते थे, परन्तु बापूजी का दृष्टिकोण भिन्न था। जेल के साथियो का विरोध सहन करके तथा पठान मीर आलम के हाथो बुरी तरह जख्मी होने पर भी बापूजी ने स्मट्स के साथ अपना समझौता निभाया। ट्रान्सवाल के सभी भारतीयो ने समझौते के अनुसार दसो अगुलियो के निशान देकर अपनी रजिस्ट्री करवाई। किन्तु इसके बाद स्मट्स ने वर्ण-भेद के कानून को रद्द कर देने का अपना वादा पूरा नही किया और बापूजी के लिए दुबारा सत्याग्रह-सग्राम करना अनिवार्य हो गया।

ऐसी ही धूर्तता उन्होने सन् १९११ मे भी बरती थी। उन्होने सत्याग्रहियो को वर्ष-भर इस आशा मे लटकाए रखा कि अब की बार पार्लमेंट मे वर्ण-भेद के कानून को हटा दिया जायगा, पर जब पार्लमेंट का अधिवेशन हुआ तब उन्होने सभागृह के सामने स्वय ऐलान किया, "एशियावासियो को हम इस देश मे अपने समान नही मान सकते, उनके लिए वर्ण-भेद के

आधार पर अलग कानून अनिवार्य ही है।" इसी प्रकार गोखले महाराज को दिये गए वादे से भी स्मट्स साहब यह कहकर बडी सफाई से मुकर गए कि "तीन पौंड का कर हटाने का वादा मैने किया ही नही।"

जबकि भारतवासियो के चित्त मे यह सारा इतिहास ताजा ही था तब यह विश्वास करना मुश्किल हो रहा था कि अब की बार स्मट्स साहब अपना वक्र-मार्ग छोड देगे और दुबारा सत्याग्रह करने की परिस्थिति पैदा न होगी। परन्तु बापूजी जरा भी बेचैन नही थे। पूरे धैर्य और निर्भयता के साथ वह स्मट्स साहब को भरपूर मौका देते जा रहे थे। वह चाहते थे कि वातावरण को क्षुब्ध करने का दोष भारतीयो के सिर पर न मढा जाय। इसलिए उन्होने सत्याग्रह और कानून-भग की हम लोगों की बातचीत पर भी रोकथाम लगा दी।

जीत हमारे पक्ष मे थी। सत्याग्रह-युद्ध के दबाव से दक्षिण अफ्रीका की सरकार थकी-थकी-सी हो गई थी। फिर भी बापूजी चिंतित थे कि जीत के ताव मे आकर कोई सत्याग्रही स्मट्स सरकार को चुभनेवाली बाते कही न कह बैठे।

फीनिक्स के हम उत्साही नवयुवको को भी यह बात पसद न आई कि ऐन मौके पर सत्याग्रह-आंदोलन को रोक दिया जाय। आपस मे हम यह चर्चा करते रहते थे, "लडने का यह कितना अच्छा मौका है। लेकिन स्मट्स ने समझौते का तूल खडा करके अपनी बात बना ली। इस समय हजारो की सख्या मे पैदल कूच किया जाता और ट्रान्सवाल-नेटाल की सीमा पार कर ली जाती तो गोरे लोगो का घमड चूर-चूर हो जाता और उनके ये अन्यायी कानून धरे-के-धरे रह जाते। बापूजी तो हमारे गिरमिटिया भाइयो का जोश ठडा कर रहे है। स्मट्स के वचनो का क्या भरोसा। वह किसी भी समय दगा दे सकता है।"

परन्तु साथ-ही-साथ हमारी यह अमिट श्रद्धा थी कि सत्याग्रहियों की शोभा किस बात मे है, यह बापूजी भलीभाति जानते है। बापूजी की आगामी आज्ञा की हम लोग प्रतीक्षा कर रहे थे।

इधर सालोमन-कमीशन जगह-जगह जाकर अपना काम कर रहा था। वह जहा जाता, वहां भारतीय लोगों के चित्त खिचे-खिचे रहते। न तो कोई उमग से अपनी बात सुनाने कमीशन के सामने जाता और न कोई काली झडियो से उस कमीशन का विरोध करता। इक्का-दुक्का भारतीय अपनी ही गवाही देने यदि पहुच भी जाता तो लोग उसके बारे मे सोचने लगते थे कि इसने कौम के साथ दगा की है।

सालोमन-कमीशन को सभी धोखे की टट्टी समझते थे। उसकी हलचले हमे खिलवाड-सी लगती थी। फीनिक्स मे हमे इस बात का पता लगता रहता था कि कमीशन को शहादत मिलने मे कैसी मुसीबत पड रही है। इसपर भी वह अपना स्वाग नही छोडता था। सालोमन साहब और उनके साथियो का यह तमाशा देखने के लिए हमारा जी ललचाता था, परन्तु फीनिक्स की पाठशाला के विद्यार्थी उस कमीशन की झाकी देखने कैसे जा सकते थे।

पर मुझे अकस्मात् यह मौका मिल गया। फीनिक्स पाठशाला के सबसे सौम्य और गम्भीर विद्यार्थी रामदासकाका ने उस कमीशन को देखने की उत्सुकता बडो के सामने प्रकट की। उनसे कहा गया कि कमीशन के सामने हम लोगो का, विशेषत: फीनिक्स के चुने हुए सत्याग्रहियो का जाना शोभा नही देता, भले ही हम गवाही न दे, फिर भी वे लोग समझेगे कि इन्हे हमारी गरज है। लेकिन रामदासकाका माने नही। आखिर अकेले उनको जाने की स्वीकृति दे दी गई, पर उनसे यह कह दिया गया कि फीनिक्स के विद्यार्थी अथवा बापूजी के पुत्र के नाते वहा अपने को प्रकट न करे। दूसरे किसी बडे विद्यार्थी को रामदासकाका के साथ जाने की स्वीकृति नही मिली, परन्तु मुझे मिल गई। हम लोगो ने श्री सुरेन्द्रनाथ मेढ को अपने साथ लिया, जो ट्रान्सवाल के एक मजे हुए और ख्यातनामा सत्याग्रही थे। हमारी तीन जनो की टोली कमीशन देखने के लिए फीनिक्स से पैदल चल पडी। मुझे यह याद नही आता कि हमने कमीशन कहा पर देखा, डरबन मे, अवोका मे या माउटेजकब मे। परन्तु कमीशन की वह झाकी मै आजतक नही भूल पाया हू।

एक बहुत बडे शानदार कमरे मे कमीशन विराजमान था। हम लोग कमीशन के कमरे के पास नही गए, रास्ते के उस पार मुख्य द्वार के सामने से कुछ दाई ओर एक पेड के नीचे खडे रहे। दूसरे भी दस-बीस भारतीय खडे थे, जो गरीब गिरमिटिये मालूम पडते थे। ये लोग भी घूर-घूरकर कमीशन का तमाशा देख रहे थे। इन लोगो की ओट मे छिपकर हम लोग पाच-सात मिनट तक तीनो साहबो का काम-काज देखते रहे। तीन मोटे-ताजे गोरे अकडकर अपनी कुरसी पर बैठे हुए थे। क्या बोलते थे, इसका हमे पता नही चला, किन्तु उनकी मुख-मुद्रा बहुत रूखी थी और उनकी दृष्टि मे हमदर्दी के बदले तिरस्कार का भाव अधिक था। घटो बैठे रहने पर भी मुश्किल से उन्हे एकाध भूला-भटका आदमी पाच-दस मिनट मे मिल पाता था और कुल पाच-दस मिनट मे अपनी बात पूरी करके लौट आता था।

कमीशन का ऐसा करारा बहिष्कार देखकर हमे आनन्द हुआ और हम फीनिक्स लौट आए।

कमीशन का ऊट किस करवट बैठेगा, यह समस्या हमारे सामने बनी हुई थी। स्मट्स के वचन पर बापूजी ने यह भरोसा कर रखा था कि कमीशन भारतीयो के अनुकूल सिफारिश करेगा। बापूजी हम लोगो को धैर्य रखने की बात कह तो रहे थे, लेकिन वह स्वय निश्चिन्त नही थे। स्मट्स सरकार की छोटी-से-छोटी हरकत को वह बडी बारीकी से जाचते रहते थे। स्मट्स के जिन दोहरे अर्थवाले शब्दो से उन्हे यह आशका होती कि आगे चलकर बात बदल जायगी, उन्हे वह स्मट्स को बताकर बदलवा देते थे। इस विषय मे वह कितने जागरूक थे, इसका पता निम्नलिखित पत्र से लगता है, जो उन्होने प्रिटोरिया से फीनिक्स भेजा था :

पौष बदी १०, सवत् १९७०,
बुधवार, प्रिटोरिया
ता० २१-१-१४

भाई श्री रावजीभाई,

मै आज ही मि० एड्रूयूज के साथ जोहान्सबर्ग जाने की उम्मीद मे था, परन्तु यह नही हो सका। जनरल स्मट्स ने मेरे पत्र का जो उत्तर दिया है वह सतोषप्रद नही है। उसमे सुधार करवा लेना है। इसके लिए कल यहा रुका रहूगा। सतोषजनक उत्तर मिलने पर मै कह सकूगा कि समझौता हो गया, पर वह उस दिशा मे एक महान कदम अवश्य होगा। इतना समय नही कि सबकुछ इस पत्र मे समझाऊ। अभी तुरत ही सर बेजामिन से मिलने जाना है।

मगनभाई का रोग हटता नही, आश्चर्य है। उनके रोग की चेष्टा देखने के लिए भी मै फीनिक्स मे निश्चिन्त हो कुछ समय बिताना चाहता हू। आप लोगो से जो हो सके वह करे। जनरल स्मट्स से सतोषप्रद उत्तर मिलेगा तो थोडा-बहुत अवकाश मिलने की सम्भावना है। लडके लोग फिर से नियमित हो जाय, इस बात का भी ध्यान रखे।

—मोहनदास के आशीर्वाद

स्मट्स साहब की शब्दावली सदैव खतरनाक मानी जाती थी। २० दिसम्बर, १९१३ से लेकर ३० जून, १९१४ तक बापूजी उनके वक्तव्यो के लिखित स्पष्टीकरण मागते रहे और जब ३० जून को समझौते पर दस्तखत हो चुके, उसके बाद भी करीब महीने-भर तक वह भारतवासियो के अधिकारो के बारे मे लिखित खुलासा लेने मे व्यस्त रहे। सार यह

कि सत्याग्रही योद्धाओ के जोश को ठडा करके छ. सात महीने तक बापूजी अपने बल पर ही स्मट्स सरकार के साथ जूझते रहे। केवल यह कहना ठीक नही होगा कि हजारो गिरमिटियो के हडताल करने के कारण अथवा सत्याग्रही भाई-बहनो के जेल मे भर जाने के कारण ही तीन पौंड-कर-विरोधी सत्याग्रह मे विजय प्राप्त हुई। अधिक तथ्य तो यह है कि अपनी शुद्ध और तेजस्वी बुद्धि तथा अपार उदारता के कारण ही बापूजी ने स्मट्स साहब के हृदय को द्रवित किया और उन्हे नेकनीयत बनाया। यही वजह है कि वह समझौता सफल रहा।

स्मट्स के विषय मे बापूजी की निम्नलिखित पक्तिया उद्धृत करने योग्य है

"जनरल स्मट्स का अपना नाम 'जेन' है, परन्तु दक्षिण अफ्रीका मे लोग उसे 'स्लिम जेनी' कहते है। 'स्लिम' का अर्थ होगा 'हाथ से सरक जाने वाला', 'मुट्ठी मे किसी तरह न रहने वाला,' जिसे हम अपने यहा 'चलता-पुर्जा' या 'चालाक' कहते है। मुझसे कई अग्रेज मित्रो ने भी कहा था कि जनरल स्मट्स से सचेत रहना, वह बहुत ही चतुर आदमी है। बात बदलने मे देर नही लगती। अपना कहा आप ही समझ सकता है। कई बार इस तरह बोलता है कि दोनो पक्षवाले अपना मनपसन्द अर्थ निकाल सके और जब मौका आये तब दोनो अर्थ अलग रखकर वह अपने मतलब का तीसरा ही अर्थ साबित कर देगा, जिससे लोगो के दिल मे यह बात बैठ जाय कि हमने गलत अर्थ लगाया था और जनरल स्मट्स का अर्थ ही सही था। सन् १३-१४ मे जनरल स्मट्स का मुझे जो अनुभव मिला वह मैने ऐसा कडुवा नही माना था और आज नौ वर्ष बाद और भी तटस्थता से कह सकता हू कि वह इतना कडवा नही था। सम्भव है कि १६०८ का उसका विश्वासघातपूर्ण बर्ताव भी जानबूझकर किया हुआ विश्वास-भग न हो। मैने 'इडियन ओपीनियन' मे जनरल स्मट्स के विश्वासघात की सुर्खी देकर लेख लिखे थे, किन्तु उनका असर उसपर कुछ नही पडा था। तत्ववेत्ता अथवा निष्ठुर आदमी के लिए चाहे कैसे ही कटु विशेषण प्रयुक्त किये जाय उसपर कोई असर नही होता। वह अपना मनचाहा ही करता रहता है। मै नही जानता कि जनरल स्मट्स के लिए कौन-सा विशेषण काम मे लाया जाय। यह स्वीकार करना पडेगा ही कि उसकी मनोवृत्ति मे एक प्रकार की दार्शनिकता अवश्य है।"

: ७५ :

मृत्यु से शोक क्यों ?

न जाडा था, न गरमी। वडा सुहावना दिन था। फीनिक्स भर के पत्तो से अपनी दोस्ती वढाने की अपनी आदत के कारण सुबह की प समाप्त होने पर थोडा अवकाश मिलते ही मै जामुन सतरे, नीवू के पेड रग-विरगे पत्तो की शोभा निहारता हुआ वापूजी के घर की ओर जा रहा कि अचानक मगनकाका को खेत की मेड के पास बैठे हुए देखकर वडा आश्चर्य हुआ। अपने दो-एक सहपाठियों को भी देखा। मा क्या है ? वहा जाकर देखा। एक अजनवी आदमी को दो लडको ने प रखा था। तीसरे ने उसका पैर दवा रखा था। उसके पैर की पिडली के घाव को दवाकर मगनकाका काला-काला रक्त उसमे से वाहर नि रहे थे। थोडा रक्त निकल जाने पर अपने पास के औजार से उस घाव और भी गहरा वनाकर अधिक रक्त निकालते थे। यह क्रिया तवतक जवतक काला रक्त समाप्त होकर शुद्ध लाल रक्त वाहर नही आया। जाकर मगनकाका के माथे की सलवट दूर हुई और मधुर मुस्कान के उन्होने कहा—जहर खत्म हुआ। अव परमेंगनेट भरकर पट्टी वाध यह कहकर उन्होने घुटने के पास वधा हुआ कपडा खोल दिया और घा परमेंगनेट भरना शुरू किया। लडको मे से एक ने पूछा, "हरा साप तो जहरी होता है न ? उसका सारा जहर साफ हो सकता है क्या ?"

मगनकाका ने कहा, "हरे साप का जहर पूरा खतरनाक होत परन्तु अव इसके पैर मे जहर नही रह गया है। अच्छा हुआ जो दात गहरा नही वैठा है। भगवान चाहेगा तो अव इसे कुछ न होगा।" वध जाने पर मगनकाका ने उस आदमी को खडा कर दिया। उसने अ पगडी ठीक तरह वाध ली और मगनकाका पर अपनी कृतज्ञता वरस हुआ धीरे-धीरे लौट गया।

मेरे पूछने पर मालूम हुआ कि यह गिरमिटमुक्त किसान स वाली टेकरी पर रहता है। हरे पतले साप ने उसे काट खाया। तो भाग गया, परन्तु इसने वडी वुद्धिमानी की और घुटने के पास पैर को कसकर वाध दिया। वह उसी समय यहा न आता तो उ वचना मुश्किल था।

उक्त प्रसग के वाद फीनिक्स मे हम लोगों को साप का डर अ

लगने लगा। उसके उपाय के लिए बापूजी की सूचना के अनुसार छोटे-बडे प्रत्येक विद्यार्थी और शिक्षक अपनी जेब मे सदैव 'लेनसेट' (छोटा औजार जिससे मगनकाका ने काटकर जहर निकाला था) रखे, यह नियम बन गया।

इसके कुछ दिन बाद ही एक भीषण घटना हो गई। गुरुवार का दिन था। कुछ लोग भोजन करके उठ चुके थे, कुछ अब भी कर रहे थे। इसी बीच हमने देखा कि सामने की टेकरी पर एक झोपडी धू-धू करके जल रही है और उसके पास खडी हुई एक स्त्री चीख रही है। पलक मारते ही आठ-दस लडके, रावजीभाई, और मगनकाका उस ओर दौड़ पडे।

उस स्त्री की आवाज पहचानने मे हमे देर न लगी। वह नेपाल की बहू थी। नेपाल बेचारा हरदम बीमार रहता था। रोज सुबह-शाम कुछ-न-कुछ झगडा उठाकर वह औरत घटो तक अपने पति को कोसती रहती थी। उसकी आवाज इतनी तीव्र थी कि पश्चिम और पूर्व की टेकरिया उसकी ध्वनि से गूज उठती थी। आज उसके गले से जो चिल्लाहट निकल रही थी, वह और दिन से चौगुनी थी और उसमे कोसने के साथ-साथ 'हाय, तोबा' भी भरी हुई थी। उसके शब्द तो मुझे ठीक याद नही है, परन्तु बात का सार यह था: "इस पाजी को कैसी कुमत सूझी? अपने हाथ से आग दे दी। मै तो लुट गई।" आश्चर्य की बात यह कि वह आग बुझाने के लिए कुछ भी कोशिश नही कर रही थी। जलती हुई झोपडी से दूर खडी-खडी जीभ का ही जोर दिखा रही थी। उसकी चीख मे सहायता के लिए पुकार नही थी। केवल नेपाल को कोसने मे ही अपनी सारी ताकत खर्च कर रही थी।

जबतक आश्रम के लोग दौडकर पहुचे तबतक उस झोपडी की घास और कडिया जलकर जमीन पर ढेर हो गई थी, क्योकि वह हमारे यहा से आध मील से भी ज्यादा दूर थी। वहा पर पहुचते ही हमारे भाइयो ने सबसे पहला प्रयत्न उस आग से नेपाल को बचा लेने का किया, किन्तु वह बिल्कुल घिर गया था। उसको जीवित नही निकाला जा सका। इतना ही नही, उसका शव भी जलती हुई कडियो के बीच से निकालना कठिन हो गया। दूसरे दिन उस स्थान की सफाई के लिए हमारे यहा से जो टोली भेजी गई, उसमे मुझे भी जाने का मौका मिला। तब मैने देखा कि वहा कोयले और राख के ढेर के अलावा दो-चार बर्तन और थोडे से कपडे-लत्ते पडे थे। बहुत बोलने वाली नेपाल की बहू अब बिलकुल गुम-सुम बैठी थी, न जाने मन-ही-मन क्या सोच रही थी।

किस प्रकार आग लगी ? इस प्रश्न का वह एक ही उत्तर देती थी कि उस नालायक ने चारपाई मे पडे-पडे अपने-आप आग लगा ली। किन्तु हम मे से बहुतो का अनुमान था कि उस स्त्री ने खुद वह झोपडा जलाया था और अपने पति को जान-बूझकर जला देने का वह उसका षड्यन्त्र था।

कई दिनो बाद मुझे पता चला कि जिसे हम नेपाल की बहू कहते थे, वह उसकी विधिवत पत्नी नही थी। दक्षिण अफ्रीका के गन्नो के खेतो पर काम करने के लिए १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे जिन मजदूरो को फुसलाकर भारत से ले जाया गया था, उनपर जो विपत्तिया पडी थी, उनमे भारी-से-भारी विपत्ति स्त्रियो पर आई थी। गिरमिट प्रथा के इतिहास मे स्त्रियो पर होने वाले अत्याचार का प्रकरण काले-से-काला है। आकडो से बताया जाता है कि औसतन १०० मजदूरो के पीछे मुश्किल से १५-२० औरते भेजी जाती थी। भारत के गरीब गावो से और घरो से पुरुष मजदूर जिस तरह लुक-छिपकर तथा भागकर दक्षिण अफ्रीकी गोरो के दलालो के हाथ मे फस जाते थे, उसी तरह जवान स्त्रिया भी फस जाती थी। जब ये लोग दक्षिण अफ्रीका के गन्नो के खेतो पर पहुचते थे तब बैरको के अन्दर मालिक की मर्जी के मुताबिक पुरुषो और स्त्रियो को रख दिया जाता था और इस प्रकार पाच-दस पुरुषो मे एक-दो स्त्रिया हुआ करती थी। इन लोगो मे आपस मे गाव, जिले, बिरादरी आदि का कोई सबध नही होता था। ऐसी हालत मे नई जवानी मे भले ही नेपाल और उसकी बहू का मन आपस मे मिल गया हो, परन्तु वे लोग सच्चे दम्पति नही बन पाए थे।

इस सारी घटना का विवरण बापूजी के पास लिखकर भेजा गया। तब केपटाउन से तत्त्वचिन्तन से भरा हुआ उनका एक पत्र आया, जो इस प्रकार है .

केपटाउन
फाल्गुन सुदी ४, स० १९७०
(२८-२-१४)

भाईश्री,

तुम्हारा खत मिला। नेपाल छूट ही गया। उसकी बहू कठोर हृदय की पाई गई है। मरण से हमे अपने कर्त्तव्य का विचार करना है और शरीर पर प्राय तिरस्कार उत्पन्न करना है। किंतु मरण से भयभीत होने की आवश्यकता नही है। आदमी जलकर मरता है तब भी वह अतिशय दुख नही भोगता, ऐसा प्रतीत होता है। बहुत दुख पडने पर वह मूर्छित हो जाता है। देह से अधिक चिपकने वाले लोग अधिक पीडा पाते

है। आत्मतत्त्व जानने वाला मनुष्य मौत से घबरायगा नही। नेपाल की तरह हजारो आदमी, हजारो जन्तु इस समय प्रत्येक पल मे जलकर मर रहे है। ब्रह्माण्ड मे नेपाल एक चीटी से भी सूक्ष्म जन्तु है। हम लोग जान मे या अनजान मे आग जलाते समय, रात को वत्ती का उपयोग करते समय, तुलना मे नेपाल से कितने ही बडे जन्तुओ को जला देते होगे।

ब्रह्मा के समान किसी महाजीव की कल्पना करो। उसके हिसाव से हम लोग चीटी से भी सूक्ष्म जान पडते होगे। उसकी आखो की परिधि ही इतनी बडी होगी कि उसके सामने हम पिस्सू के बराबर दिखाई देगे। ऐसे महाजीव ने नेपाल को जलाया होगा तो क्या आश्चर्य है और उसका खयाल यह होगा कि उसके अपने महाजीव के सुख के निमित्त नेपाल-जैसे जतु को जिंदा जला देना आवश्यक है। हमारे मन मे नेपाल हमारे बराबर का जन्तु है। इसलिए हमारी भी ऐसी दुर्दशा हो तो हमारा क्या होगा, इस भय से हमारे दिल मे दया फूट पडती है। किन्तु चीटी, खटमल, पिस्सू आदि असख्य जन्तु तथा जिन्हे हम अपनी आखो से देख नही पाते, ऐसे जीवो का घात करने मे जो दलील अपनी बुद्धि के बल पर हम पेश करते है, वही दलील अधिक बुद्धिवाला ब्रह्मा हमारे बारे मे लागू करता होगा। यह वात अगर हम समझे तो नेपाल-जैसे के किस्से से हमे नीचे की नसीहत मिलेगी।

१. अपने खुद के ऊपर करुणा लाकर सब जीवो को समान समझे और उनके ऊपर करुणा करे। अपने निज के किसी भी सुख के लिए प्राण-हानि करने से रुके, चौकन्ने रहे।

२. देह के प्रति मूर्छा (मोह का अतिरेक) न पालते हुए मृत्यु का जरा-सा भी भय न माने।

३. देह दगाबाज है, ऐसा समझकर इसी क्षणसे मोक्ष की सामग्री वटोरे।

इन तीन सूत्रो का उच्चार कर देना आसान है, परन्तु उसका विचार करना कठिन है और विचारने के बाद उसके अनुसार आचरण करना तो तलवार की धार के ऊपर चलने के बराबर है।

यह प्रात काल का समय है। विचार का प्रवाह इस दिशा में वह रहा है, क्योकि वा फिर से पीडित हो रही है और उसको मरण के भय से मुक्त करने का प्रयत्न कर रहा हू।

—मोहनदास के आशीर्वाद

इस पत्र से पता चलता है कि केपटाउन मे बैठे-बैठे भी फीनिक्स-वासियो को उच्च भूमिका पर ले जाने के लिए बापूजी कितना भारी प्रयत्न कर रहे थे।

नेपाल की मृत्यु को सप्ताह-भर भी नही बीता होगा कि पोरबन्दर से एक अनपेक्षित तार आया। उसमे बापूजी के बडे भाई कालिदास गाधी उर्फ लक्ष्मीदास गाधीजी के स्वर्गवास की खबर थी। पाच-छ महीने पहले करसनदास गाधी—बिचले भाई—की खबर जब आई तब बापूजी फीनिक्स मे उपस्थित थे। इस खबर के समय वह केपटाउन थे। देवदासकाका के मन को इस समाचार से बडा दुख हुआ। इधर जल्दी ही भारत पहुचने की आशा लगी हुई थी। उधर दो काकाओ मे से एक भी न रहे। परिवार की इस क्षति के कारण उस दिन देवदासकाका अत्यन्त उदास रहे और काफी देर तक उनकी अश्रुधारा बहती रही।

पोरबन्दर से आये हुए तार की बात जब केपटाउन बापूजी के पास पहुचाई गई तब बापूजी ने देवदासकाका को एक पत्र भेजा, जिसका सार नीचे दे रहा हू :

"काका की मृत्यु के समाचार से खेद होगा ही। स्वदेश लौटकर उनसे मिलने का दिन करीब आया तब वह चल बसे। इस बात से विशेष दुख होता है, परन्तु हमे ऐसे दुखो को मन मे लाना ही नही चाहिए। ईश्वर की इच्छा ऐसी ही होगी। काका गये, उसी प्रकार बा भी इस बीमारी से यदि नही उठती, मुझे बा के बिना ही फीनिक्स लौटना पडे, तब भी तुम दुख न मानो और जरा भी आसू न गिराओ, यह मै चाहता हू। इतनी भारी बीमारी मे भी डाक्टर की चिकित्सा या और कोई औषध न लेने पर हम तुले हुए है। बीमारी दूर हो या न हो, बा को दवाई आदि न देने की बात पर तुमने भी सोच-समझकर हा कही है। इसलिए तुमको बहादुर और दृढ बनना है। किसी की भी मृत्यु के कारण हमे रोना ही नही चाहिए।"

श्री कैलनबैक के नाम एक पत्र मे बापूजी लिखते है—

७ व्यइटेन सिगल (केपटाउन)
१०-३-१९१४

प्रिय कैलनबैक,

मुझ पर भारी-से-भारी आपत्ति आ पडी है। मेरा खयाल है कि अन्तिम क्षण तक मेरे बारे मे ही सोच-विचार करते हुए कल मेरे भाई मर गए। मुझसे मिलने की उन्हे कितनी उत्कट इच्छा थी! और मै भी जितनी जल्दी हो सके भारत लौटू, उनके चरणो पर सिर रखू और उनकी तीमारदारी करू, इस विचार से अपना काम शीघ्रता से समेट रहा था। परन्तु नियति कुछ और ही थी। अब तो मेरे लिए विधवाओ के कुटुम्ब मे लौटना बदा है और वह कुटुम्ब भी मेरा ही आसरा ताकने वाला!

है। आत्मतत्त्व जानने वाला मनुष्य मौत से घबरायगा नही। नेपाल की तरह हजारो आदमी, हजारो जन्तु इस समय प्रत्येक पल मे जलकर मर रहे है। ब्रह्माण्ड मे नेपाल एक चीटी से भी सूक्ष्म जन्तु है। हम लोग जान मे या अनजान मे आग जलाते समय, रात की बत्ती का उपयोग करते समय, तुलना मे नेपाल से कितने ही बडे जन्तुओ को जला देते होगे।

ब्रह्मा के समान किसी महाजीव की कल्पना करो। उसके हिसाब से हम लोग चीटी से भी सूक्ष्म जान पडते होगे। उसकी आखो की परिधि ही इतनी बडी होगी कि उसके सामने हम पिस्सू के बराबर दिखाई देगे। ऐसे महाजीव ने नेपाल को जलाया होगा तो क्या आश्चर्य है और उसका खयाल यह होगा कि उसके अपने महाजीव के सुख के निमित्त नेपाल-जैसे जतु को जिदा जला देना आवश्यक है। हमारे मन मे नेपाल हमारे बराबर का जन्तु है। इसलिए हमारी भी ऐसी दुर्दशा हो तो हमारा क्या होगा, इस भय से हमारे दिल मे दया फूट पडती है। किन्तु चीटी, खटमल, पिस्सू आदि असख्य जन्तु तथा जिन्हे हम अपनी आखो से देख नही पाते, ऐसे जीवो का घात करने मे जो दलील अपनी बुद्धि के बल पर हम पेश करते है, वही दलील अधिक बुद्धिवाला ब्रह्मा हमारे बारे मे लागू करता होगा। यह बात अगर हम समझे तो नेपाल-जैसे के किस्से से हमे नीचे की नसीहत मिलेगी।

१. अपने खुद के ऊपर करुणा लाकर सब जीवो को समान समझे और उनके ऊपर करुणा करे। अपने निज के किसी भी सुख के लिए प्राण-हानि करने से रुके, चौकन्ने रहे।

२. देह के प्रति मूर्छा (मोह का अतिरेक) न पालते हुए मृत्यु का जरा-सा भी भय न माने।

३. देह दगाबाज है, ऐसा समझकर इसी क्षणसे मोक्ष की सामग्री बटोरे।

इन तीन सूत्रो का उच्चार कर देना आसान है, परन्तु उसका विचार करना कठिन है और विचारने के बाद उसके अनुसार आचरण करना तो तलवार की धार के ऊपर चलने के बराबर है।

यह प्रात काल का समय है। विचार का प्रवाह इस दिशा मे वह रहा है, क्योकि बा फिर से पीडित हो रही है और उसको मरण के भय से मुक्त करने का प्रयत्न कर रहा हू।

—मोहनदास के आशीर्वाद

इस पत्र से पता चलता है कि केपटाउन मे बैठे-बैठे भी फीनिक्स-वासियो को उच्च भूमिका पर ले जाने के लिए बापूजी कितना भारी प्रयत्न कर रहे थे।

नेपाल की मृत्यु को सप्ताह-भर भी नही बीता होगा कि पोरबन्दर से एक अनपेक्षित तार आया। उसमे बापूजी के बडे भाई कालिदास गाधी उर्फ लक्ष्मीदास गाधीजी के स्वर्गवास की खबर थी। पाच-छः महीने पहले करसनदास गाधी—बिचले भाई—की खबर जब आई तब बापूजी फीनिक्स मे उपस्थित थे। इस खबर के समय वह केपटाउन थे। देवदासकाका के मन को इस समाचार से बडा दुख हुआ। इधर जल्दी ही भारत पहुचने की आशा लगी हुई थी। उधर दो काकाओ मे से एक भी न रहे। परिवार की इस क्षति के कारण उस दिन देवदासकाका अत्यन्त उदास रहे और काफी देर तक उनकी अश्रुधारा बहती रही।

पोरबन्दर से आये हुए तार की बात जब केपटाउन बापूजी के पास पहुचाई गई तब बापूजी ने देवदासकाका को एक पत्र भेजा, जिसका सार नीचे दे रहा हू :

"काका की मृत्यु के समाचार से खेद होगा ही। स्वदेश लौटकर उनसे मिलने का दिन करीब आया तब वह चल बसे। इस बात से विशेष दुख होता है, परन्तु हमे ऐसे दुखो को मन मे लाना ही नही चाहिए। ईश्वर की इच्छा ऐसी ही होगी। काका गये, उसी प्रकार बा भी इस बीमारी से यदि नही उठती, मुझे बा के बिना ही फीनिक्स लौटना पडे, तब भी तुम दुख न मानो और जरा भी आसू न गिराओ, यह मै चाहता हू। इतनी भारी बीमारी मे भी डाक्टर की चिकित्सा या और कोई औषध न लेने पर हम तुले हुए है। बीमारी दूर हो या न हो, बा को दवाई आदि न देने की बात पर तुमने भी सोच-समझकर हा कही है। इसलिए तुमको बहादुर और दृढ बनना है। किसी की भी मृत्यु के कारण हमे रोना ही नही चाहिए।"

श्री कैलनबैक के नाम एक पत्र मे बापूजी लिखते है—

७ ब्यइटेन सिगल (केपटाउन)
१०-३-१९१४

प्रिय कैलनबैक,

मुझ पर भारी-से-भारी आपत्ति आ पडी है। मेरा खयाल है कि अन्तिम क्षण तक मेरे बारे में ही सोच-विचार करते हुए कल मेरे भाई मर गए। मुझसे मिलने की उन्हे कितनी उत्कट इच्छा थी। और मै भी जितनी जल्दी हो सके भारत लौटू, उनके चरणो पर सिर रखू और उनकी तीमारदारी करू, इस विचार से अपना काम शीघ्रता से समेट रहा था। परन्तु नियति कुछ और ही थी। अब तो मेरे लिए विधवाओ के कुटुम्ब मे लौटना बदा है और वह कुटुम्ब भी मेरा ही आसरा ताकने वाला !

भारत की कौटुम्बिक व्यवस्था को तुम समझते नही हो, इसलिए इस प्रसग को नही समझ पाओगे। चाहे जिस तरह हो, भारत जाने की मेरी इच्छा दिनोदिन प्रबल होती जाती है और अब भी निश्चित रूप से कौन बता सकता है ! मेरी यह इच्छा फलीभूत होगी या नही इसके बारे मे मुझे अब भी सदेह है। फिर भी मुझे उस यात्रा के लिए तैयारी करनी चाहिए और परिणाम के लिए शात चित्त से सर्वशक्तिमान प्रभु पर विश्वास रखना चाहिए।

ऐसे-ऐसे आघातो से मनुष्य मे मृत्यु के विषय मे अधिक निर्भयता बढती जाती है। इस घटना से मेरे हृदय मे खलबली क्यो मचनी चाहिए ? घबराहट क्यो होनी चाहिए ? इस प्रकार के शोक के मूल मे स्वार्थ की परछाई होती है। अगर मै मृत्यु के लिए कटिबद्ध होता हू और मृत्यु को स्वागत के योग्य प्रसग मानता हू तो मेरा भाई मर गया यह कोई आपत्ति की बात नही है। हमको मृत्यु का डर लगता है इसलिए दूसरो की मृत्यु पर हम रुदन करते है। शरीर नाशवान है और आत्मा अमर है, यह जानते हुए भी शरीर और आत्मा के अलग हो जाने पर मै किस तरह शोक कर सकता हू ? परन्तु ऐसे सुन्दर और आश्वासनपूर्ण सिद्धान्त मे सच्चा विश्वास हो तब ही वह स्थिति प्राप्त होती है। जिसे इस बात मे श्रद्धा होती है, उसे शरीर की पुचकार और परवरिश करना उचित नही, बल्कि उसे नियता बनना उचित है। अपने शरीर की आवश्यकताओ को उसे इस प्रकार रखना चाहिए कि देही पर स्वामित्व भोगना छोडकर उसकी अधीनता मे रहे। दूसरो की मृत्यु पर शोक करने का अर्थ प्रायः शाश्वत शोक की स्थिति को अपना लेना है, क्योकि शरीर और आत्मा का यह सम्बन्ध स्वय ही शोकप्रद है।

इस समय मेरे चित्त पर इसी विचार की प्रधानता है। फिलहाल ऐसा दूसरा पत्र मुझसे नही लिखा जा सकेगा। यह तो अपने-आप लिखा गया है। इसलिए श्री पोलक को यह पत्र पहुचाना और मणिलाल को भी यह पत्र पढने के लिए देना और बाद मे श्री वेस्ट आदि के पढने के लिए छगनलाल के पास भेज देना। —बापू

जमनादासकाका जब केपटाउन से फीनिक्स आए तब उन्होने हमे बताया कि कालिदास बापूजी के चल बसने का समाचार मिलने पर उस समय या उसके बाद भी बापूजी ने अपनी आखो से आसू की एक भी बूद नही गिराई थी। अपने मन को बहुत ही दृढ बनाकर उन्होने बडे भाई की मृत्यु का यह भारी-से-भारी आघात सहन कर लिया था। यह विवरण सुनकर मै सोचता रह गया कि बापूजी कितने बलवान है। अभी चन्द

माह पहले अपने विचले भाई की मृत्यु पर जब वह अपने आसुओ को गिरने से नही रोक सके थे तब आज इस अधिक गहरी चोट पर उन्होने एक भी आसू नही गिरने दिया! मृत्यु से डरने की व शोक करने की कमजोरी को छोड देने का जो उपदेश उन्होने उस रोज दिया उसे इतने थोडे समय मे उन्होने प्रत्यक्ष करके दिखा दिया।

: ७६ :

बापू का कठोर अनुशासन

केपटाउन मे वापूजी के साथ दो विद्यार्थी उनकी सहायता तथा वा की सेवा-शुश्रूषा के लिए रहते थे। एक थे उनके द्वितीय पुत्र श्री मणिलाल गाधी और दूसरे उनके छोटे भतीजे श्री जमनादास गाधी। दोनो की आयु अठारह से वीस वर्ष के वीच थी।

दोनो सुशील, सस्कारी, मेधावी और श्रेष्ठ कर्तृत्वशक्ति वाले थे। सत्याग्रह-सग्राम मे वडी वीरता से दोनो ने जेल काटी थी। कई दिनो तक कारावास मे पूरा अनशन करके सत्याग्रहियो का और भारतमाता का अपमान दूर करने पर दोनो ने वड़ी प्रशसा पाई थी। केपटाउन मे भी प्रात:-काल से सध्याकाल तक वापूजी का काम करने मे दोनो व्यस्त रहते थे।

ऐसे उत्तम विद्यार्थी और अपने ही वालको पर बापूजी ने अनुशासन का सूक्ष्म हटर चलाया और उन्हे तुरन्त ही केपटाउन से लौटा दिया। इस सबध मे वापूजी के लिखे हुए पत्र पढने पर पूरा प्रकाश मिलता है :

केपटाउन
ता० २१-२-१४

भाई श्री रावजीभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। चि० मणिलाल को वहा (फीनिक्स) नही भेजना है। उसको यहा के वैभव से हटाया है। ऐसे ही सबब से चि० जमनादास को वहा (फीनिक्स) भेजा है। जिसे ब्रह्मचर्य का पालन करना है उसे वैभव वाली परिस्थिति मे नही वसना चाहिए, ऐसा मै मानता हू। वा का स्वास्थ्य ठीक मालूम दे रहा है। वहा पर (फीनिक्स मे) लडके उद्यमशील बन जाय और सुवह उठने मे जरा भी पिछडे नही इस वात की सावधानी रखना।

मगनभाई पटेल का स्वास्थ्य कैसा रहता है? मुझे ब्यौरे से लिखना। इमामसाहब की वहू परेशानी महसूस न करे, ऐसा इन्तजाम करना। उसके लिए कुछ विशेष भोजन की आवश्यकता हो तो विशेष रूप से वह बना देना, या उनको खुद को बना लेने देना, यह उचित समझता हू।

श्री एड्रूचूज ने बडा भव्य काम किया है इसमे कोई शक नही है।

—मोहनदास के आशीर्वाद

केपटाउन, फाल्गुन सुदी २-१९७०
ता० २६-२-१४

चि० जमनादास

तुमने और मणिलाल ने इस वार मुझे समझने मे गलती की है, ऐसा मै पाता हू। तुमको रखने से तुम्हारा श्रेय नजर आता तो अपने स्वार्थ के कारण ही मै तुमको यहा से अलग न करता। यहा के वातावरण के सामने मै भिड ही नही सकता। वातावरण का सूक्ष्म असर कैसा होता है, उसका तुमने विचार नही किया।

..डाक्टर गुल का जौहर तुम सबने देखा, उससे पहले मैने देख लिया है। किन्तु जिस प्रकार तुम्हारा जौहर देखने पर भी मै तुमको निर्बल और बालक समझता हू तथा तुम्हारे अधीन किसी और को रखने मे मुझे सकोच हो, उसी प्रकार डा० गुल के असर के नीचे तुन-जैसे निर्मल जवान को रखने से सकोच करता हू। डाक्टर गुल बालक है, यह बात खुद भी जानते है। अपने दोषो को भी जानते है और इसी वजह से अपने सगे भाई को उन्होने अपने से अलग कर रखा है।.. साहसिक (अविचारी) और रागी (अति आसक्त) है। तुम लोगो मे मै उनका साहस और राग देखना नही चाहता। तुममे हसमति नही आई है। अगर आई होती तो मेरे लिए कठोर टीका करने का कारण ही न रहता। मेरा अतिप्रेम तुम लोगो को इस वार दाहक प्रतीत हुआ है। ऐसा हो जाता है, परन्तु तुम पुन शात हो जाना। मैने अविचारी कदम नही उठाया है। तुम मुझ पर वकीलपने का जो आरोप रख रहे हो वह उचित नही है। पहले भी तुमने ऐसा ही कहा था। मुझमे पृथक्करण करने की और भला-बुरा परखने की शक्ति विशेष है, ऐसा मुझे अनुभव होता जा रहा है। इस कारण मेरी सूक्ष्म दलीले सुनने वाले व्यक्ति को वकालत-सी महसूस होती है।

चाहे कुछ हो, लेकिन तुम अपने बचाव मे या मेरी गलती सुधारने के लिए जो कुछ कहना चाहो बेखटके कहना। तुम्हारा यह कर्त्तव्य है।

मुझे हमेशा पत्र लिखते रहो। बा का स्वास्थ्य काफी ठीक है। पर खतरा टला नही है।

—बापू के आशीर्वाद

केपटाउन, ता० २७-२-१४

चि० जमनादास,

तुम्हारा न तार है न चिट्ठी, एक के सिवा। मानो तुम रोष से भरे हो। किवरली वाला तुम्हारा पत्र उचित नही है। किन्तु जहा तुम्हारा बर्ताव ही मैने उलटा देखा वहा चिट्ठी के लिए क्या शिकायत करू। तुम दोनो के ही पत्र सूचित करते है कि तुम लोगो को केपटाउन अनुकूल नही आया।

फीनिक्स मे क्यो मै किसी के बर्ताव से तग नही आया? एक अपवाद है सही। वह है मिस स्लेशिन। परन्तु वह तो अन्त मे अपना दोष देख सकी। शुरू मे तो उसने मुझे तग ही कर डाला। तुम दोनो तो मेरा दोष देखने लग गए। खूब विचार करके तुम शात बनो, ऐसा मै चाहता हू। आज मै मणिलाल को पत्र नही लिख रहा हू, इसलिए यही उसके पास भेज देना।

—बापू के आशीर्वाद

एक अन्य पत्र मे मणिलालकाका को लिखा है :

तुमने मुझ पर निर्दयता का आरोप रखकर अनजान मे पाप किया है। पन्द्रह दिन के भीतर मै निर्दयी बन गया? ऐसा असर औरो पर तो नही पडा। फीनिक्स मे वह नही हुआ। बा के प्रति मै अति कोमल बना हू, ऐसा बा देखती है। अगर तुम्हारे प्रति मै निर्दय बनता हू तो मेरी साधुता, जो कुछ हो, वह दभ ही कही जायगी और अपना जीवन मै व्यर्थ समझूगा।

परन्तु इसमे कोई शक नही है, फिलहाल मै तुमको निर्दय जान पडूगा। ..जिस मोह के कारण मै तुम्हारे भीतर मोह नही देखता था वह मोह नष्ट हो गया है और केवल निर्मल प्रीति रह गई है। वह प्रीति इस समय तुमको निर्दयता रूप जान पडती है; क्योकि मुझे वैद्य के जैसे कडए प्याले पिलाने है। . तुम्हारे बारे मे ...सपूर्णता प्राप्त करने के लिए मै अधीर हो बैठा हू। अधीरता यह मेरा दोष है। इस अश मे मै राग वाला (आसक्ति वाला) प्रेमी हू। तुम मेरे बेटे हो, यह मोह अब भी रहा है। उसके नष्ट होन पर जो निर्दयता तुम मुझमे देख रहे हो वह भी कदाचित नही देखोगे। तबतक मुझ निभा लेना।

अब तुम्हारे पत्र वाले विरोधो की बात। तीन दिन मे तुमने केपटाउन

नही देखा, क्योकि मेरे वचन कटु थे, फिर भी चलते समय मेरा उग्र ताप होने पर भी, केपटाउन देखने की इच्छा तुमने बताई। कटुवचन तो रविवार को भी थे । तुमने जब मुझको निर्दय मान लिया तब मेरे साथ रहकर तुम किस तरह कुछ सीख सकते थे ? तुमने टेबल माउटन घूम आने की वडी भारी इच्छा वताई। तब मैंने तुमसे कहा कि तुम और भी विशेष (कई विशेष स्थान) देखोगे, तो उसमे तुमने मेरा क्या अपराध पाया ?

किन्तु हुआ सो हुआ। मेरा दोप न देखना, यह तुम्हारा कर्त्तव्य है। बेटे मे इतनी भक्ति होनी चाहिए कि वह बाप का दोष न देखे, पर उसके गुणो का ही विचार करे। मै तुमको फकीर नही बनाना चाहता। मै तुम्हारा शुद्ध आचरण देखना चाहता हू। तुममे सत्य, शील, सरलता, कोमलता, प्रभुता, नम्रता, साधुता देखना चाहता हू। ससार के साधारण रागो से तुममे विरक्तता देखना चाहता हू। परन्तु वह सब इस समय है, ऐसा नही लगता। मै करता हू वैसा तुम कर डालो, यह मै नही कहता। परन्तु तुम मेरे गहरे उद्गारो को समझकर अपने जीवन को सफल करो, ऐसा मै चाहता हू ।

यह पत्र चि० जमनादास को भेजना।

(केपटाउन) —बापू के आशीर्वाद

इस प्रसग के बारे मे जमनादासकाका ने जो वर्णन मुझे सुनाया था वह उनके शब्दो मे यहा दे देना उचित होगा :

"जेल से छूटकर जब मै बापूजी के पास पहुचा तब वह अपने लुगी-कुर्ते वाले नए वेश मे थे। उस पोशाक मे जब केपटाउन के राजमार्ग पर बापूजी पैदल चलते हुए निकलते थे तब गोरे लडके उनके पीछे पड जाते थे, खिल्ली उडाते थे, तरह-तरह की आवाजे कसते थे और आपस मे मजाक करते थे। लेकिन बापूजी तो मानो कुछ हुआ ही न हो इस प्रकार शान्तिपूर्वक आगे बढते चले जाते थे।

"बा का स्वास्थ्य कमजोर था ही। स्वय बापूजी उनकी सेवा का काम करते थे। बा को प्रत्येक काम बहुत ही स्वच्छ और सागोपाग सपूर्ण चाहिए इसलिए बापूजी किसी को भी बा के काम मे हाथ नही लगाने देते थे। मुझे वह काम करने की उन्होने स्वीकृति दी और सुबह से शाम तक बा की सेवा मे ही रहने का अवसर मुझे मिला। परन्तु थोडे ही दिनो मे हमको बापूजी ने केपटाउन छोड जाने की आज्ञा दी।

"वह दिन बुधवार का था। अकस्मात् बापूजी ने सूचना दी कि हम दोनों को शनिवार की दोपहर की ट्रेन से केपटाउन से जाना है। हम दोनो

का मतलब मणिलालभाई और मैं। मणिलाल को बापूजी ने अपने साथ एड्रयूज साहब की सेवा के लिए ही लिया था। जिस शनिवार को केप-टाउन छोड देने के लिए बापूजी ने हमको सूचित किया था उसी शनिवार को सवेरे ग्यारह बजे की स्टीमर से श्री एड्रयूज इग्लैड के लिए रवाना होने वाले थे और उसके घटे-भर बाद हम लोगो को केपटाउन से चलना था।

"बापूजी की बात सुनकर मणिलालभाई ने कहा कि हम सोमवार को यहा से जाय तो? रविवार के दिन डाक्टर गुल के साथ हमने यहा के प्रसिद्ध शिखर टेबल माउटन को देखने जाने की व्यवस्था की है। वह देखकर सोमवार के दिन हम जायगे। लेकिन बापूजी ने वह बात नही मानी। शनिवार के दिन ही हम चले जाय। ऐसा आग्रह उन्होने किया और कहा "टेबल माउटन मे देखने की बात है ही क्या? देखना हो तो हिन्दुस्तान जाकर हिमालय देखना। हिमालय मे तो कई हजार टेबल माउटन समा जायगे।"

"डा० गुल और उनकी माताजी ने जोरो से हमारी सिफारिश की और बापूजी को समझाने की कोशिश की, परन्तु बापूजी ने एक न मानी। हमें शनिवार को ही वहा से चलना पडा और टेबल माउटन देखना रह गया।

"इस प्रकार बापूजी ने जो सख्त आग्रह किया उसकी जड मे बापूजी का सदेह था कि हम लोग मौज-शौक मे फस गए है। डाक्टर गुल का कमरा आलीशान था। सारा ठाठ अग्रेज साहब का-सा था। हम लोग भी उन्ही के साथ उनके ही 'डाइनिग टेबल' पर भोजन के लिए बैठते थे। वे लोग अडे-गोश्त आदि लेते थे। लेकिन हम लोग मेज के दूसरे सिरे पर अपना निरामिष भोजन ही लेते थे। हमारा सबसे अलग-अलग रहना अच्छा नही मालूम देगा, ऐसा हमारा खयाल था। परन्तु बापूजी को ऐसा प्रतीत होता था कि डाक्टर गुल के साथ हम भी शौकीनी की ओर लुढक रहे है। हम दोनो मे से किसी को भी बापूजी ने अपने पास नही टिकने दिया, इसका कारण यह था कि एक को रहने देते तो वह पक्षपात माना जाता।"

बापूजी के कठोर अनुशासन का यह प्रसग अविस्मरणीय है। इस से पता चलता है कि यद्यपि बापूजी ने अपना निवास किसी अरण्य के एकात कोने मे रखने का आग्रह नही रखा था, फिर भी उनके चित्त मे नागरिको के राग-रग से दूर तपोवन का आश्रम ही रम रहा था और अपने विद्यार्थियो को वैसे ही वातावरण मे सुशिक्षित करने का उनका मनोरथ था।

साथ-ही-साथ जबतक अपने विद्यार्थी की बुद्धि को बापूजी जगा नही देते थे तब तक उसकी बात को बार-बार सुनते थे और अपनी आज्ञा की यथार्थता समझाने का बार-बार प्रयत्न करते थे। चाहे अपना पुत्र भी क्यो न हो।

केवल आज्ञा पालन करने के लिए पुत्र या शिष्य को आज्ञा पालन करना चाहिए, ऐसा आग्रह बापूजी ने बिल्कुल नही रखा था। यह बात नीचे के पत्र से और भी स्पष्ट हो जाती है.

केपटाउन
शनिवार, ई. स. १९१४

चि० मणिलाल और जमनादास,

तुम सब मेरे साथ दौडो, यह इच्छित है, पर मै ऐसी आशा रखता नही हू। जो मै करता हू वह सब तुम लोग भी करो, ऐसी माग मैने कभी की नही है; लेकिन जो करने को अपने ऊपर लो वह तो करना ही पडता है।...बलात्कार की तो बात ही नही है, लेकिन जब तुम अपने-आप समझ-बूझकर ही अमुक व्यसन छोडने के बाद मुझे धोखा देने लगो तो वह दोष तुम्हारा ही कहा जायगा। ...बडे भी और लडके भी सीमित हद तक पहुच पाए है, ऐसा हम माने। अमुक वस्तुओ का त्याग फीनिक्स मे वे लोग करते है और उन वस्तुओ को वहा पर वे त्याज्य समझते है, फिर वहा से बाहर जाने पर उन्ही वस्तुओ को क्यो अपनाया जाय? अलोना आहार करने के लिए कोई भी बाध्य नही है। तेज मसाले, छोटे-मोटे व्यसन, महास्वादिष्ट भोजन, चाय, काफी आदि वस्तुए सबके लिए त्याज्य है। विषय, चोरी, देर से उठना, सबके लिए त्याज्य है। यह मर्यादा जिसे असह्य जान पडे, उससे किस बूते पर सस्था मे रहा जा सकता है? प्रत्येक सस्था के निश्चित नियम होते है। उन नियमो का सस्था के अन्दर और बाहर सब जगह पालन करना ही चाहिए। जो न पाले, उसका सस्था मे रहना मिथ्या है।

तुम्हारे कहने का मतलब यह निकलता है कि मेरे लिहाज के कारण लडके और दूसरे भी कई बाते करते है, अपनी स्वतत्र वृत्ति से नही करते। और फिर वे धोखा देते है। यह मेरा दोष हो सकता है, परन्तु उससे एक ही प्रकार से मुक्त हो सकता हू, अर्थात् किसीके साथ मे न रहू। यह इस समय मेरा कर्तव्य प्रतीत नहीं होता। मेरे लिहाज मे आकर अगर कोई मेरे कहे बिना ही अलोना खानेका दिखावा करता है और मुझे धोखा देता है तो मै दोषी क्यो ठहरूगा? ...तुम अलोना नही खाते हो, इसलिए मै तुम पर कम प्यार रखता हू और जमनादास केवल फलाहार ही करता है

इसलिए उसको विशेष चाहता हू ऐसी तो कोई बात नही है। लोने-अलोने मे कुछ भी पाप-पुण्य नही है। उसके पीछे जो रहस्य है उसमे पाप-पुण्य है। इमामसाहब कभी भी अलोना नही करेंगे, इसलिए वह मुझे अप्रिय नहीं है। मिस स्लेशिन हर बात मे मुझसे विरोधी बर्ताव करती है, फिर भी कुछ अश मे तुम सब लोगो के मुकाबले मे उसका चरित्र बहुत ऊचा मानता हू।

सभी परिवर्तनो के पीछे हमारा उद्देश्य सयम पालन करने का और उसमे वृद्धि करने का है। यह जिसको मजूर न हो उसे मेरा त्याग कर जाना चाहिए, यही उस रात्रि को मेरा कथन था और वह उचित ही दीखता है।

सयम का मतलब यह मत समझो कि अलोना खाना। दो दिन की सूखी रोटी और कण-भर नमक से गुजर करके तुम जीवन बिताओ या मै अनेक प्रकार के फल-मेवे का स्वाद लू—उससे बहुत ऊची बात हो सकती है। तुम किस हेतु से सूखी रोटी ले रहे हो और मै किस हेतु से फल-मेवे लेता हूँ, इसके आधार पर उस कार्य की शुद्धता का निर्णय किया जा सकता है।

पवित्रता दूसरो के द्वारा किये गए दोषारोपण से फीकी नही पडती किन्तु और भी प्रबल बनती है।

तुमसे यदि कुछ भी अनुचित बात बन गई है तो तुम उसे मेरे सामने मंजूर कर लो। ऐसा किये बिना तुम्हारा उपवास या सैकडो प्रायश्चित्त फलने वाले नही है।

वहा आने के लिए मै तरस रहा हू, पर अपना कर्त्तव्य नही छोड सकता।

की हुई प्रतिज्ञा मै लौटा लू, यह पश्चिम मे सूर्य उगे तब भी नही हो सकता। मनुष्य अपने प्रण को आसानी से निभा नही सकता।

तुम दोनो को इस पत्र से रोष आयगा, लेकिन जो मेरे मन मे है मै न लिखू तो मुझमे जो कुछ सत्य है उसको दाग लग सकता है और इस तरह मै तुम्हारा बुरा करनेवाला बन जाता हू। तुम्हारे लिए दुख उत्पन्न करना, यह इस समय मेरा धर्म हो पडा है।

—बापू के आशीर्वाद

: ७७ :

कर्त्तव्य और संयम

उपनिषदो के सबध मे एक ऋषि ने कहा है, "यदि यह वाणी किसी सूखे ठूठ को सुनाई जायगी तो वह भी नवपल्लवित हो उठेगा।" केपटाउन से लिखे हुए बापूजी के कई पत्रो मे भी ऐसी ही अमृतमयी वाणी भरी हुई है, जिसपर मनन करनेवाला चाहे कितना ही दुर्बल-चित्त क्यो न हो, शक्ति-शाली बनने का सकल्प करने लगेगा।

कब सत्याग्रह किया जाय, कब न किया जाय, इसकी विधि समझाते हुए बापूजी के लिखे एक पत्र की कुछ पक्तिया इस प्रकार है :

केपटाउन
मगलवार, ज्येष्ठ बिदी १ (८-६-१४)

"....जो सत्याग्रही होता है आमतौर से तटस्थ रहता है। हमे हमेशा बोलना ही चाहिए ऐसा नियम नही है। सत्याग्रह कब किया जाय, इस प्रश्न का उत्तर सहज मे नही दिया जा सकता। सत्याग्रही जब सत्याग्रह शुरू करता है तब वह पहले कुछ विचारकर नही रखता। उसकी आत्मा के उद्गार के विरुद्ध काम हुआ है ऐसा जब उसे प्रतीत होता है तब उसके प्रतिरोध मे वह आत्मबल का प्रयोग करता है। मैने सत्याग्रह शुरू किया तब भी मैने उसे धर्म का अंग ही समझा था। अनुभव से मालूम हुआ कि वही धर्म है और वही चिन्तामणि है, इस कारण मेरे अन्दर वह धर्म के रूप मे विशेषत. विकसित हुआ।

"सत्य के अलावा और कुछ कभी करना ही नही है यह बात जिसने पक्की कर ली वह सत्याग्रही है और ऐसे आदमी को प्रत्येक मौके पर उपाय सूझ ही जाता है। जीवन-मात्र सत्यमय होना चाहिए। यम-नियम आदि का पालन करने से धीरे-धीरे वह बात आ जाती है। जिस प्रकार स्थूल विषयो को सीखने मे बरसो तक प्रयत्न करना पडता है उसी प्रकार सत्याग्रह का स्वरूप समझने के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए। आत्मा पर छाये हुए तुम्हारे और मेरे आवरण दूर होते चलेगे त्यो-त्यो आत्मा प्रकाशित होगी और उसी अनुपात से वह बलवान सत्याग्रही के रूप मे जूझेगा..."

बापूजी जब केपटाउन थे तब विद्यार्थियो की दिनचर्या पर ध्यान रखने का काम श्री रावजी पटेल विशेष रूप से करते थे। उस समय वह एक

प्रकार से नये फीनिक्सवासी ही थे। फीनिक्स मे आये हुए उन्हे दो वर्ष भी नही बीते थे। वही पर दूसरे कार्यकर्ता प्राय. अपने-अपने परिवार के साथ थे और रावजीभाई के घरवाले भारत मे थे। उनकी माता का स्वास्थ्य कमजोर होने की खबर मिलने से घर लौट जाने का उन्होने इरादा किया. परन्तु बापूजी ने आश्रम-कार्य मे एकाग्रता से लगे रहने का और मातृ-सेवा को गौण समझने का उनको परामर्श दिया। वह पत्र इस प्रकार है :

केपटाउन
शनिवार

भाई श्री रावजीभाई,

तुम्हारा पत्र आज इतनी देर से मिला कि न मै तुमको आज की डाक से पत्र भेज सकू, न तार ही पहुचा सकू। अब सोमवार को ही तार करूगा। जहा पर माता के प्रेम का प्रश्न है, जहा पर पुत्र-वात्सल्य का सवाल सामने आता है वहा किसी अन्य व्यक्ति के लिए परामर्श देना एक धर्म-सकट है। फिर भी यह अनिवार्य है कि मै परामर्श दू। अपने पिताजी के पत्र पर से तुम जिस निर्णय पर आये थे उस समय तुम्हारी माताजी के विचारो का अनुमान हम लोग लगा पाए थे। उनका पत्र आने से कोई नई बात पैदा नही होती, लेकिन नई भावना उत्पन्न हुई है और प्रेमभाव ने स्वभावत. ही तुम्हारे हृदय मे प्रधानता प्राप्त कर ली है। अब अगर तुम निर्मोही बनकर निर्णय कर सको तो तुम्हारा प्रेम निर्मल और दिव्यस्वरूप प्राप्त कर सकेगा। तुम सारे जगत को अपना प्रेम दे सकते हो, अर्थात् ऐसा करने का प्रयत्न कर सकते हो। मातृ-भक्ति का यही उद्देश्य है और जो भक्ति है वह स्थूल लौकिक और केवल देह के प्रति है। इसमे से मुक्त होने के भजन अवसर तुम गाते हो। "आ ससार असार विचारी"—(एक गुजराती भजन की टेक) वाला भजन गाकर उसकी गूढ ध्वनियो पर विचार करना, "जीव ने श्वास तणी सगाई" के पद की क्या ध्वनि है ? फीनिक्स के और दूसरे रहन-सहन मे यह अन्तर है कि जिस बात को हम पढते है उसे अपने मे दृढीभूत करने का प्रयत्न करते है।

तुम्हारे हिन्दुस्तान जाने का परिणाम क्षणिक होगा। पन्द्रह या पाच दिन के बाद तो रोना ही पडेगा। फिर तो वियोग है ही।

फिर हम ऐसी जिन्दगी बिताना चाहते है कि हमारे पास एक पाई भी न रहे। ऐसा गरीब आदमी इस प्रकार के अवसर पर क्या करेगा यह विचार करना।

अपने माता-पिता के दर्शन करने की भावना नित्य बनी रहे यह उत्तम

बात है। इस उत्कठा को फिलहाल दवाकर अपने जीवन को और भी वीतरागी बनाना यह तुम्हारा कर्त्तव्य है। अपने चरित्र को सुदृढ करने के लिए ही तुम परदेश भुगत रहे हो। तुम्हारे लिए यह स्थिति वनवास की है। ऐसा करने मे ही तुम अपने माता-पिता को सुशोभित करोगे। तुम स्वेच्छाचार नही कर सकते किन्तु दिनोदिन आत्मोन्नति करो, सयमी वनो तो इस समय स्वदेश लौटने के कर्त्तव्य से मुक्त हो जाते हो।

यह विचार करने मे प्रेस की (फीनिक्स के काम के लिए तुम्हारी आवश्यकता की) बात का जरा भी विचार नही किया है। किस वात मे तुम्हारी आत्मोन्नति है, यह सोचकर ही मैने परामर्श दिया है।

इतने पर भी अगर लौकिक मातृभक्ति तुमको स्वदेश की ओर ही आर्कषित करती है और यहा रहने से तुम्हारे चित्त को शाति नही मिलती तो तुम सुख से जाना। मेरा लिखना परामर्श रूप समझकर तुम स्वतत्रता-पूर्वक निर्णय करना और उसके अनुसार चलना।

—मोहनदास के आशीर्वाद

केपटाउन, जेठ विदी ८

(ता० १६-६-१४)

चि० मणिलाल,

. तुम जो कुछ करो वह विचारपूर्वक, निडरता से, स्वतत्र रहकर करना। वापू को क्या पसद आयगा यह विचार वाद मे करने का है। तुम अपने कल्याण के लिए क्या करना चाहते हो यह पहले समझ लेना है और उसके अनुसार चलना है। किसी की देखादेखी न समझी हुई दिशा मे किया हुआ कार्य निष्फल है, ऐसा जानो।

—वापू के आशीर्वाद

इस क्रम मे कुछ अन्य पत्र भी उल्लेखनीय है·

केपटाउन, फाल्गुन विदी २

(ता० १४-३-१४)

भाई श्री रावजीभाई,

तुम्हारा पत्र पढा और दुवारा पढा। शकराचार्य ने एक श्लोक कहा है। उसमे वताया है कि समुद्र किनारे वैठकर घास के तिनके की नोक से एक विन्दु पानी उठाकर समुद्र उलीचने के लिए जितने धैर्य की आवश्यकता रहेगी और जितना समय वीतेगा उसकी तुलना मे मन को मारने मे अर्थात्

मोक्ष को साधने मे अधिक धैर्य और अधिक समय की आवश्यकता होगी। तुम तो बहुत उतावले हो गए हो, ऐसा लगता है।

मरण का भय, मैंने बहुत सोचा-विचारा है, तब भी मुझतक से नही गया है। फिर भी मै अधीर नही होता, प्रयत्नवान रहता हू। इसलिए किसी दिन उससे मुक्त हो ही जाऊगा। तुम भी प्रयत्न करने का एक भी मौका हाथ से न जाने देना। यह हमारा कर्त्तव्य है। परिणाम प्राप्त करना या उसकी इच्छा करना प्रभु के अधीन है। फिर झझट किस बात की? माता बच्चे को दूध पिलाते समय परिणाम का विचार नही करती। उसका परिणाम तो आता ही है। मरण-भय टालने के लिए—मनोविकारो को भगाने के लिए प्रयत्न करने के बाद प्रफुल्ल चित्त बने रहो तब वह जायगा, नही तो फिर वही मिसाल साबित होगी कि बन्दर को याद न करने का नुस्खा अमल मे लाते समय बन्दर का विचार अवश्य आयगा।

हम पाप-योनि मे से जन्मे है, पाप-कर्म से देह के अधीन हुए हैं। उस सब मल को तुम एक पल मे कैसे धो सकोगे? हमारे यहां के अखा भगत ने बोध दिया है कि 'सुतर आवे तेम तु रहे, जेम तेम करीने हरि ने लहे' (जैसा अनुकूल पडे वैसे तुम रहो, पर जिस प्रकार बने हरि को जान लो)। तुलसीदासजी कहते है कि सकट हो या न हो, रामनाम जपते रहो तो सपूर्णतः सिद्धि है ही। हमे तो वही अर्थ सिद्ध करना है, जो गुसाईंजी ने बताया है। इसलिए वही जप जपते रहना।

राम कौनसे, यह निश्चय अपने मन में कर लेना। वह राम निरजन है, निराकार है। राक्षसी वृत्तियों के समूहरूपी रावण का दैवी वृत्तिरूपी अनेक प्रकार के शस्त्रो से सहार करने वाला वह है। उस विपुल बल की प्राप्ति के लिए १२ वर्ष तक तपस्या करने वाला वह है।

अन्त में, शरीर को या मन को एक क्षण-भर के लिए भी खाली मत रहने देना। दोनो को उत्साहपूर्वक काम मे लगाए रखना। तब तुम्हारी सब झझटे अवश्य टल जायगी। इसके बिना तो प्रभु के ऊपर भरोसा करना और मेरे भरोसे रहना, यह सब वृथा है। ऊपरवाले कर्त्तव्य कर चुकने के बाद ही वे सब भरोसे काम देगे।

याद रखना कि हम जैसे देव मागते है वैसे ही देव मिलते है। तुलसीदासजी ने जब रामचन्द्रजी को मागा तब कृष्ण श्रीराम बने और लक्ष्मीजी सीताजी बनी।

केपटाउन,
फाल्गुन सुदी १०, रविवार
(ता० ८-३-१४)

भाई श्री रावजीभाई,

हृदय पवित्र हो तो विकारेन्द्रियो को विकार पाने की वात नही रहती। लेकिन हृदय क्या चीज है? वह कव पवित्र माना जाय? हृदय ही आत्मा है अथवा आत्मा का स्थान है। उसमे पवित्रता का अर्थ होगा शुद्ध आत्मज्ञान का होना, और उसकी उपस्थिति मे इद्रिय-विकार सभव हो ही नही सकता। किन्तु साधारणतया जब हम हृदय को पवित्र बनाने की उधेडबुन करने लगते है तव अक्सर मान बैठते है कि हमारा हृदय पवित्र हो गया। तुम पर मेरी प्रेमवृत्ति है इसका अर्थ इतना ही है कि वैसी वृत्ति रखने के लिए मै प्रयत्नवान हू। अगर अखड प्रेमवृत्ति हो तो मै ज्ञानी बन गया। वह तो मै नही हूं। जिसके प्रति मेरा सच्चा प्रेम होगा वह मेरे मतव्य का या मेरे बोलने का अनर्थ नही करेगा। वह मुझपर तिरस्कार भी नही करेगा अर्थात् इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि जब हमको कोई मनुष्य शत्रु मानता है तब दोष प्रथम तो हमारा होता है। यह बात गोरे लोग और हमारे बीच मे भी लागू होती है। इस कारण सर्व अश मे पवित्रता यही चोटी की स्थिति है। इस बीच हम पवित्रता मे जितना आगे बढेगे हमारे विकारों का शमन होगा। विकार इद्रियो मे रहा हुआ है ही नही। 'मन एव मनुष्याणा कारण बधमोक्षयो.।' इद्रिया मनो-विकारों के प्रदर्शित होने का स्थान है। उनके द्वारा हम मनोविकारो का परिचय पाते है।

अर्थात् इद्रियो का नाश करने से मनोविकार जाते ही नही है। पण्ड लोग विकार से भरपूर देखे जाते है। जन्म से नपुसक पुरुष मे इतने अधिक विकार होते है कि वे बहुत से अकार्य करते देखे जाते है। मेरी घ्राणशक्ति मन्द है फिर भी सुवास लेने को मन करता है और जब कोई गुलाब आदि की सुगध की बात करता है तब उस ओर अबाध मन चला जाता है और उस पर बडे बलात्कार से बल-प्रयोग करने के बाद काबू पाया जा सकता है। जब मन पर काबू नही रहता और विचार-धारा उग्र बनी हुई होती है तब मनुष्य को इद्रिय-छेदन करते सुना गया है। सभव है कि ऐसे समय वह कर्त्तव्य हो।

मान लो कि मेरा मन चलित हुआ और मैंने अपनी बहन पर कुदृष्टि की। मुझे काम जला रहा है लेकिन मै बिल्कुल मूढ नही बन गया हू। ऐसे मौके पर अगर और कोई उपाय नही सूझता तो इद्रिय-छेदन कर डालना यह पवित्र कार्य है, ऐसा लगता है। ऐसा प्रसग धीरे-धीरे उठनेवाले

पुरुष पर नही आता। जिसको तीव्र वैराग्य आया है और जिसका भूतकाल का वर्तन ठीक नही है, उसके लिए ऐसा होने की सभावना है नहीं। विकार उत्पन्न न हो और इद्रिय चलित न हो, इसके लिए तात्कालिक उपाय मागना—नुस्खा ढूढना—वन्ध्या पुत्र को पाने की इच्छा के बराबर है। वह कार्य (अविकारी बनने का काम) बहुत ही धीरज मे होगा। जादू का आम जैसे देखने-भर को होता है, वैसे तात्कालिक रूप से होने वाली मन-शुद्धि के बारे मे भी समझना।

हा, ऐसा होता है कि मन पवित्र होने के लिए तैयार हो जाता है और केवल सत-समागमरूपी पारसमणि की खोज मे रहता है। वह मिल जाने पर अपनी पवित्रता का वह सहसा दर्शन करता है और उसके लिए अपवित्रता स्वप्न की-सी जान पडती है। ऐसा हो तो वह तात्कालिक हुआ ऐसा कहा नही जा सकता।

परन्तु आम नुस्खा, जो छोटे-से-छोटा होने के कारण तात्कालिक भी है, इस प्रकार है:

एकात-सेवन, सत्सग, शोधन, सत्कीर्तन, सत्वचन, लगातार शरीर को कसना, अल्पाहार, फलाहार, अल्प-निद्रा, भोग-विलास का त्याग। इतना जो कर सके, उसके लिए मनोजय हस्तामलकवत् प्राप्त होता है। इतना करना और आगे के लिए चिन्तन करना। जब-जब मनोविकार हो तब-तब उपवास आदि व्रतो का पालन करना।

× × ×

वहा पर खेत का काम बराबर न चलता हो और उसमे वास्तव मे तुम्हारा अपना ही दोष दिखाई देता हो तो उस दोप को उत्साहपूर्वक भगा दो। तुम जो बडे लोग हो, उनके रहन-सहन के ऊपर लडको के रहन-सहन का आधार है।

केपटाउन, ता० १०-६-१४

भाईश्री,

स्नेहियो के प्रति वीतराग उत्पन्न हो तभी हृदय वास्तव मे दयावान होता है और स्नेहियो की सेवा करता है। बा के प्रति जिस अनुपात मे मैं वीतरागी बना हू, उस अनुपात से उसकी सेवा अधिक कर सकता हू। बुद्ध ने अपने माता-पिता को छोडकर उनका भी उद्धार किया। गोपीचन्द ने वैराग्य लेकर अपनी माता पर अतिशय शुद्ध प्रेम बताया। इसी प्रकार तुम अपने चरित्र को गढकर (ठोस बनाकर) और अत्यन्त निर्मल नीति को अपने मे दृढ बनाकर अपने माता पिता की सेवा कर सकोगे। जब तुम्हारा आत्मा विशुद्धि को प्राप्त करेगा तब तुम्हारे सभी स्नेहियो पर उसका प्रतिघोप पडे बिना रहेगा ही नही।

—मोहनदास के आशीर्वाद

: ७८ :

फीनिक्स का प्राणवान विद्यालय

मनसि वचसि काये पुण्य-पीयूष-पूर्णाः
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यम्
निज हृदि विकसन्त' सन्ति संतः कियन्तः॥

—इस जगत मे ऐसे सत कितने होगे जो मन-वचन-काया मे पुण्य के अमृत से भरे-पूरे हो, उपकारो की शृखलाओ से समस्त ससार को प्रसन्न करने मे जुटे हुए हो तथा नन्हे-से परमाणु के बराबर दूसरे के छोटे-से-छोटे गुणो को पर्वत के समान बड़ा समझकर उन्हे अपने हृदय मे पनपाते रहते हो।

× × ×

फीनिक्स के विद्यालय का पहला प्रयोजन अब प्राय: समाप्त हो चुका था। दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रह करके जेल जाने के लिए आदर्श स्वय-सेवको को तैयार करने की अब आवश्यकता नही रही थी। अब कच्चे समझौते के अनुसार पक्का समझौता हो जाने की देर थी और वह सपन्न होने पर भारत के लिए प्रस्थान करने की प्रतीक्षा थी।

इस बीच के समय मे विद्यालय मे क्या पढाया जाय और कौन पढावे, यह समस्या सरल नही थी। परीक्षा, अभ्यास-क्रम तथा अभ्यास-क्रम की मान्यता देने वाली युनिर्वासिटी के अभाव मे जो पढाई होती है वह अधिकतर वार्तालाप, गपशप और मनोरजन का रूप ले लेती है। जेल से लौटने के वाद फीनिक्स मे हमारा विद्यालय जब दुबारा शुरू हुआ तब उसका करीब यही हाल रहा। जिस समय जो कोई पढा-लिखा व्यक्ति विद्यार्थियो के बीच पहुच गया उसने अपनी रुचि के अनुसार पढाने का उपक्रम किया। एक पढाने वाले के चले जाने पर जब दूसरा व्यक्ति आया तब चाहे विषय न बदला हो, पढाई का तरीका और पाठ्यक्रम बहुत करके बदल ही गया।

इस स्थिति मे बापूजी का व्यक्तित्व और बापूजी का एक निश्चित आग्रह हमारे विद्यालय को सजीव और सुगठित बनाये रखने मे सफल रहा। फीनिक्स मे बापूजी स्वय एक साथ महीना-भर भी नही रह पाए थे। बार-

वार प्रिटोरिया—केपटाउन की यात्रा उन्हे करनी पडती थी तथा पाच-दस सप्ताह तक फीनिक्स से लगातार अनुपस्थित रहना पडता था। फिर भी उनके उग्रतम उपदेशो की जो अखड धारा उनके पत्रो मे फीनिक्स पहुचती रही थी, बीच-बीच मे आकर वह स्वयं जो प्रार्थना-प्रवचन करते थे तथा फीनिक्स के विद्यार्थियो के चारित्र्य की शिथिलता धो डालने के लिए उनके जो उपवास, अल्पाहार और कष्ट-सहन चल रहे थे, उनके कारण छोटे-बडे सभी विद्यार्थी बापूजी के व्यक्तित्व के प्रभाव मे दबे रहते थे।

दीवार पर बडे अक्षर से लिखकर अथवा सुन्दर सूत्रो मे विद्यार्थियों को रटाकर नही, परन्तु बारबार अच्छाई के ग्रहण करने तथा अवगुणों को छोड देने के लिए प्रेरणा देकर बापूजी ने सभी विद्यार्थियो के सामने यह लक्ष्य स्थापित कर दिया था कि प्रत्येक को अपने जीवन मे विनम्र बनना है, प्रत्येक पल सेवा-परायण रहना है और जिससे भी सीखने का अवसर मिले उससे जो कला-विद्या-सुसस्कार प्राप्त हो सके वह ग्रहण करने के लिए प्रत्येक विद्यार्थी को तत्पर रहना है। सक्षेप मे, बापूजी हम लोगों से यही बात चाहते थे जो राजर्षि भर्तृहरि ने 'मनसि-वचसि' वाले श्लोक मे बताई है। हमारे कानो पर यह उद्‌घोष सदैव गूजता रहता था; "विद्वान तुम चाहे बन सको या न बन सको, परन्तु सुपात्र अवश्य बनो।"

जेल-यात्रा की समाप्ति के बाद बापूजी के पास रहे हुए विद्यार्थी के लिए यही शिक्षण और यही दिनचर्या थी, ऐसा कहा जा सकता है।

फीनिक्स का हमारा विद्यालय बहुत छोटा था। पढने-पढानेवालो की सख्या के हिसाब से यदि विद्यालय की सफलता अथवा महत्व देखा जाय तो वह विद्यालय अल्प से भी स्वल्प था। सात-आठ विद्यार्थी और तीन-चार शिक्षको के जेल जाने पर जिस विद्यालय की नब्बे प्रतिशत से भी अधिक शक्ति युद्ध-मोर्चेपर फसी हुई बताई जाय उसे आधुनिक अर्थ मे विद्यालय कहना हास्यास्पद होगा। सख्या की दृष्टि से न सही, पढाई की दृष्टि से भी उसे पाठशाला बताना मुश्किल था।

स्वय हम लोग भी, जो फीनिक्स मे उस समय पढने-पढाने वाले थे, अपनी सस्था को विद्या-सस्था या पाठशाला कहने से झिझकते थे। हम इस असमजस मे घिरे हुए थे कि जहा पर पढाई का सिलसिला तीन-चार महीने भी एक-सा नही टिकता उसको किस मुह से विद्यालय कहा जाय।

सही पढाई तो भारत मे पहुचने पर ही होगी, ऐसा हमारा विश्वास था। परतु हममे से, जिन्होने अपना जीवन बापूजी के हाथ मे सौप रखा था,

उनके लिए भारत मे भी पढने का प्रश्न वडा बेढब था। भारत मे चलने वाली अग्रेजी पाठशालाओ, कालिजो और विश्वविद्यालयो मे पढने की हम आशा नही रख सकते थे। बापूजी के विचार के अनुसार हमारे लिए मैट्रिक आदि की सारी पढाई सोलहो आना वर्जित थी। साथ-ही-साथ लडके और बडे भी यह नही चाहते थे कि भारत मे पहुचकर फीनिक्स के लडके अनपढ, बुद्धिहीन या असस्कारी साबित हो।

जेल जाने मे जिन लडको के कई महीने बरबाद हो गए थे उनको अब पढने के लिए अधिक समय मिले, इस हेतु से ही शायद इस बार छापाखाना के काम मे बडे लडको को अधिक समय नही रोका जाता था। पहले की तरह अब बडे लोग ही साप्ताहिक अखबार छापने-प्रकाशित करने का काम कर रहे थे। परिणाम-स्वरूप, मेरे पिताजी, मगनलालकाका आदि शिक्षक हमे पढाने के लिए कम समय दे पाते थे और हम लोगो को आपस मे मिल-कर स्वाध्याय करने का समय अधिक मिलता था।

उन दिनो दोपहर के भोजन के बाद सध्या के चार-साढे चार बजे तक हम सब विद्यार्थी पुस्तकालयवाली कुटिया के आगन मे बैठकर पढते थे। परतु उस स्वाध्याय मे नियम नही-सा था। कुछ लडके अग्रेजी किताबो से कठिन-कठिन शब्दो को एकत्र करके अग्रेजी शब्दकोष से उनके अर्थ और हिज्जे याद करते रहते थे, कुछ अपने सुलेख को सुधारने की कोशिश मे रहते थे और करीब आधे लडके बातचीत और मटरगश्ती मे रहते थे। भरपेट खाना खाकर मुश्किल से दो घटे भी न बीतते कि फल खाने की उत्कठा कुछ लडको मे पैदा हो जाती थी। दो-तीन नौजवान सतरो के बगीचे मे चले जाते थे और सैकडों सतरो को तोडकर अगोछो मे गठरी बाध लाते थे। फिर चार-छ लडके बैठकर सारे सतरो को एक साथ छीलकर हमारे पढने की जगह पर उनका ढेर लगा देते थे और पढने मे एकाग्र बने हुए लडको को भी छिले-छिलाये सतरो की दावत मे शामिल होने का आग्रह करते थे। इस प्रकार स्वाध्याय के प्राय आधे समय बेखटके आमोद-प्रमोद चलता रहता था और दोहरा नुकसान होता था। एक नुकसान अपनी पढाई का और दूसरा नुकसान फलवृक्षो की बरबादी का। इस एक प्रसग से ही अनुमान किया जा सकता है कि हमारे बीच बापूजी की प्रत्यक्ष उपस्थिति और अनुपस्थिति मे कितना अतर पड जाता था। उनके उच्चतम उपदेशो को सुनकर-समझकर भी हम कितनी शिथिलता को अपनाते थे। स्वभावत पढाई मे भी वह गहराई और ज्ञानवृद्धि नही हो रही थी जो बापूजी के स्वय पढाने के समय प्रतिदिन होती थी।

परतु बापूजी की सूचना के आधार पर एक ऐसा कड़ा नियम फीनिक्स

मे शुरू हुआ जिससे प्राय: सभी विद्यार्थी तग आ गए। वह नियम था बडे सवेरे अधेरे मे उठने का।

छात्रावास के गृहपति के नाते श्री रावजीभाई पटेल हम लोगो का बिस्तरे से तब उठा देते थे जब आकाश मे तारे चमकते हो। जेल-यात्रा से पूर्व सब विद्यार्थियो को बापूजी अरुणोदय के बाद उठाते थे और कोई तो सूरज निकल आने के बाद बिस्तर छोडता था। परतु अब छोटे बच्चो को भी ऐसी सुस्ती नही करने दी जाती थी। पाच बजे से बहुत पहले पाठशाला के स्थान पर सब विद्यार्थियो को श्री रावजीभाई इकट्ठा कर देते थे और करीब पौन-घटे तक भक्त-कवि नरसिंह मेहता के तथा गुजरात के अन्य पौराणिक कवियो के काव्य पढकर सुनाते थे। उस समय मुझे तो क्या, और किसी को भी यह अनुमान नही होगा कि भविष्य मे बापूजी के आश्रम मे सदैव अनिवार्य बनने वाली ब्राह्ममुहूर्त्त की प्रार्थना का यह प्राथमिक स्वरूप है। किसी-किसी दिन बार-बार उठाये जाने पर भी मेरी नीद नही खुलती थी और देर से पहुचने के कारण मुझे सबके बीच शर्मिन्दा होना पडता था। मन मे गुस्सा भी आ जाता था। लेकिन तडके उठने की थोडी-सी आदत पड जाने पर प्रातकाल उन धार्मिक काव्यो और आख्यानो को सुनने मे मुझे आनद आने लगा और भजन के समय ऊघना छोडकर मै उन सरल काव्यो का अर्थ समझने की कोशिश करने लगा।

यहा पर यह बता देना आवश्यक है कि भारत आने की तैयारी के रूप मे बापूजी ने फीनिक्स के विद्यार्थियो को ब्राह्ममुहूर्त्त मे उठा देने का नियम बनाया। दक्षिण अफ्रीका के जलवायु मे बहुत अधेरे उठने की आवश्यकता नही थी। परतु भारत मे, विशेषकर देहातो मे, यदि बहुत अधेरे न उठा जाय तो दिन की तेज धूप और गर्मी मे किसान अपना खेती-बाडी का और जुलाहा अपनी बुनाई आदि का काम पूरा नही कर सकता। जो दरिद्र रहना न चाहे उसे भारत मे ब्राह्ममुहूर्त मे उठना ही चाहिए, यह बापूजी का अटल विश्वास था और वह फीनिक्स से ही हमारी पाठशाला मे भी अनिवार्य नियम बना दिया गया।

कुछ दिन बीतने के बाद दो नये शिक्षक फीनिक्स आये। उनके आने पर विद्यालय की दिनचर्या कुछ व्यवस्थित हो गई और पढाई मे भी थोडा ठोसपन आया। वैसे आयु मे दोनो ही नौजवान, बीस वर्ष से भी कम के थे। परतु उनका पढाने का तरीका अच्छा था और पढाई मे वे दोनो पूरा समय दे रहे थे। इसलिए लडको पर उनका प्रभाव अच्छा पडा। दो मे एक थे श्री जमनादास गाधी और दूसरी थी मिस स्लेशिन। वैसे फीनिक्स के लिए दोनो परिचित व्यक्ति थे परतु फीनिक्स मे रहकर पढाने का काम

अबकी बार ही दोनो ने शुरू किया था। जमनादासकाका बापू के विचारों को समझने की भरसक कोशिश करते थे। केपटाउन से जब बापूजी ने उनको फीनिक्स भेज दिया तब उन्होने हम लोगो को पढाने मे अपना समय लगाया। जिन तीन विषयो को जमनादासकाका ने पढाना शुरू किया वे तीनो विषय बापूजी की दृष्टि से बहुत आवश्यक थे—सुलेखन, सस्कृत और 'हिन्दस्वराज'। बापूजी के अपने अक्षर विद्यार्थी अवस्था से ही सुन्दर नही रहे थे। इसलिए उनका आग्रह था कि विद्यार्थियो को प्रारभ से ही सुन्दर और स्वच्छ अक्षर लिखने की आदत डाली जाय। जमनादासकाका के अक्षर बहुत सुदर थे। वह सीधी पक्ति मे प्रत्येक अक्षर सुवाच्य, व्यवस्थित और छपा हुआ-सा लिखते थे।

सुलेख लिखने का जो अभ्यास जमनादासकाका ने हमसे करवाया उसमे सब से आगे निकलनेवाले देवदासकाका थे, ऐसा मुझे स्मरण है। हमारे बीच डाह्याभाई मोची के अक्षर पहले से ही अच्छे थे, परतु प्रयत्न-पूर्वक अपनी कापी मे सुन्दरता के साथ पाठ लिख लाने मे देवदासकाका कमाल करते थे।

दूसरा विषय था सस्कृत। जमनादासकाका सस्कृत के पडित नही थे, राजकोट के हाई स्कूल मे दो किताब पढे थे। पर बापूजी की इच्छा थी कि हम लोग सस्कृत का परिचय प्राप्त कर ले। इसलिए हमे बहुत छोटे-छोटे शब्द सिखाये जाने लगे। अश्वः, कन्दुकः, वदति, गच्छति आदि शब्द हमारे लिए सर्वथा नये थे और व्याकरण के अनुसार उनके विविध रूपो को सुनकर हमारे आश्चर्य का ठिकाना नही रहता था। कुछ विद्यार्थी हममे ऐसे थे जो बारबार याद करने पर भी 'अश्व' शब्द भूल जाते थे और जमनादासकाका पूछते थे तो सहज भाव से 'घोडा दौडति', 'अह बोलामि' जैसे उत्तर देकर वर्ग-भर को हसा देते थे। इस सस्कृत-वर्ग का विशेष लाभ लिया तो देवदासकाका ने और मैने।

जमनादासकाका का सबसे महत्व का वर्ग था 'हिन्दस्वराज' का। बापूजी की लिखी हुई 'हिन्दस्वराज' पुस्तक पढाने मे वह अपना सारा कौशल खर्च कर रहे थे। 'हिन्दस्वराज' पढते समय हमे ऐसा प्रतीत होता था मानो साक्षात् बापूजी ही हमे पढा रहे है। बडी सावधानी से हमारा सारा वर्ग इसे पढता था। बापूजी के द्वारा स्थापित प्रत्येक सिद्धात को समझने और याद करने की पूरी कोशिश छोटे-बडे सभी विद्यार्थी करते थे। हमारे मन मे यह बात बैठ गई थी कि हिन्दुस्तान जाने पर बापू के सत्याग्रह के सैनिक के नाते हम पर प्रश्नो की झडी लगेगी और तब बापूजी की बात समझाने की बुद्धिमत्ता हम नही दिखा पायेगे तो हम हँसी के पात्र बनेगे।

आपस की बातचीत मे भी हम लोग 'हिन्दस्वराज' के वाक्यो का और भाषा का प्रयोग करते थे, यहा तक कि प्राय: तीन महीने की अवधि मे 'हिन्दस्वराज' के इक्कीस प्रकरण हम लोगो को लगभग कठस्थ हो गए थे।

जमनादासकाका से भी अधिक प्रभाव हम लोगो पर मिस स्लेशिन का पडा। मिस स्लेशिन आमतौर से बहुत बोलने वाली, विनोद करने वाली और चचल स्वभाव की जान पडती थी, परतु पढाते समय इतनी गभीर और एकाग्र बन जाती थी कि छोटी उम्र की होने पर भी बडे आदमी-सी मालूम देती थी।

वह अग्रेजी, निबधलेखन और कविता तीनो विपय अग्रेजी के माध्यम से पढाती थी। बडे और पढने मे चतुर लडको को वह जरा देर मे स्वाध्याय के लिए सूचनाए दे देती थी, छोटे तथा कमजोर विद्यार्थियो को सिखाने मे अपना बहुत समय खर्च करती थी। नन्ही-सी मुन्नी रूखीबहन से लेकर बडे-विद्यार्थियो तक सभी मिस स्लेशिन के कहने मे रहते थे। उनके बुलाने पर बालक उनके पास दौडकर जाता था और बडा विद्यार्थी उनकी सूचना का पालन खुशी-खुशी करता था। फीनिक्स मे रहने वाले प्रौढ पुरुष भी मिस स्लेशिन के आग्रह को टाल नही सकते थे।

बापूजी के पथ पर सीधा न चलकर उनकी छोटी-छोटी बातों का विरोध करने मे मिस स्लेशिन को झिझक या क्षोभ नही होता था, शायद थोडा आनद ही आता था। मनमौजी तो वह थी ही, इसलिए लडको को पढाने और विद्यालय का सचालन करने मे वह अपने स्वतत्र विचार से चलती थी। बापूजी की बताई हुई मर्यादाओ का बधन वह सदैव नही मानती थी। बापूजी किसी विद्यार्थी को ऊचा नबर और किसी को नीचा नबर देने के पक्ष मे नही थे। जब कभी बापूजी कापी जाचकर नबर देते थे तब भी विद्यार्थियो को परस्पर के नबरो की तुलना करने से रोकते थे। केवल अपनी ही प्रगति की तुलना उन नबरो से करने को कहते थे। मिस स्लेशिन ने नबर ही क्या, आगे निकलने वाले लड़को को इनाम देने की भी व्यवस्था की।

उन्होने छोटे से लेकर बडे तक तीन विभाग मे निबध लिखने की स्पर्धा का आयोजन किया। फीनिक्स के बडे कार्यकर्त्ताओ से भी निबन्ध लिखने का आग्रह किया गया।

एक दिन मध्याह्न मे प्रार्थना के स्थल पर सब लोग इकट्ठे हुए और सारी सभा के सामने चुने हुए निबध पढे गए। औरो के निबध का कैसा स्वागत

हुआ यह तो मुझे याद नही, परतु इतना याद है कि बडो मे मगनकाका का निबध अव्वल माना गया और छोटो मे मैं इनाम का पात्र ठहरा था।

गदगी और आलस्य के अवगुणों पर एक अग्रेजी कविता मिस स्लेशिन ने मुझे सिखाई थी और उसी विषय को लेकर मैंने वह निबध अग्रेजी मे ही लिखा था। मजे की बात यह थी कि अग्रेजी पढाई मे मैं सबसे पिछडा हुआ विद्यार्थी था। हिज्जो से मेरी पूरी अनबन थी, इसलिए जब कभी डिक्टेशन लिखवाया जाता, बेहद भूले निकलती। परतु मिस स्लेशिन ने मेरी इस कमजोरी पर मुझे शर्मिन्दा करना बद कर दिया था। भूलकर भी वह मुझसे हिज्जे नही पूछती थी। न मुझसे रटने को कहती थी। सरल और सुदर अग्रेजी पुस्तक मेरे हाथ मे देकर वह उसमे से अच्छी-अच्छी कविताए सुनाती थी और बार-बार मुझसे पढवाती थी। फिर उस पर मुझसे प्रश्नोत्तर करती थी। कभी-कभी उसका अर्थ लिख लाने को भी कहती थी। इसका नतीजा यह हुआ कि मुझसे आगे पढने वाले विद्यार्थियो के निबधो से मेरा अग्रेजी निबध अच्छा माना गया। मिस स्लेशिन के हाथ से मैंने इनाम मे अरबिस्तान के दानवीर हातिमताई की जीवनी भेट मे पाई। वह मोटे अग्रेजी टाइप मे छपी हुई थी और उस पर मिस स्लेशिन के हस्ताक्षर थे। करीब पच्चीस वर्ष तक मेरे सग्रह मे वह पुस्तक सुरक्षित रही। बाद मे कहा गुम हो गई, पता नही चला। पर इस एक निबध और इनाम की एक पुस्तक ने मेरे जीवन की प्रगति पर काफी असर डाला।

बडो मे मगनकाका का निबध जो अव्वल आया था उसका इनाम क्या दिया गया मुझे याद नही, परतु वह निबध फीनिक्स-भर मे सबके लिए प्रेरणादायी माना गया। बडो के निबध गुजराती मे थे और वहा पर मगनकाका की गुजराती भाषा सबने बहुत पसद की। उस निबध का कथानक था भारत के छोटे-से देहात मे परिश्रम करने वाले एक किसान भाई-बहन का और उनके पसीने से लहराने वाली सुदर खेती का।

पाठशाला की पढाई के अतिरिक्त दूर-दूर तक भ्रमण के लिए विद्यार्थियो को ले जाने का सिलसिला भी मिस स्लेशिन ने चलाया। अबोका का समुद्री किनारा हमारे यहा से छ मील दूर था, माउन्टेजकम्ब का सात-आठ मील। अबोका जाने मे मीलो तक बालू और गोखरू का रास्ता पार करना पडता था और वहा का तट निर्जन होने से दिन-भर धूप आदि का कष्ट उठाना पडता था। माउन्टेजकम्ब मे बस्ती थी, पर चट्टाने ऐसी खतरनाक थी कि वहा समुद्र-स्नान करने का साहस कम होता था। दोनो स्थलो पर नहाने के बाद जब लौटते थे तब हम मन मे सोचते थे कि दुबारा इस यात्रा मे नही आयगे,

लेकिन मिस स्लेशिन और रावजीभाई जव टोली लेकर समुद्र-स्नान के लिए निकल पडते थे तव घर पर एक-दो विद्यार्थी भी मुश्किल से रुकते थे।

जव मिस स्लेशिन हम लोगो को पैदल डरवन की यात्रा कराती थी तव हमे लगातार तीस-वत्तोस मील चलना पडता था। तगडे युवको से भी वह आगे चलती थी। थकती तो थी ही नही। जव रास्ते मे हम लोग केवल गोरी वस्ती से गुजरते थे तव अनेक गोरे लोग मिस स्लेशिन की ओर क्रोधभरी दृष्टि से घूरते थे। हिन्दुस्तान के काले लडको के यूथ को लेकर पढी-लिखी गोरी कुमारिका इस तरह से जाती थी, यह उनके दिल को चुभता था, परन्तु वे जानते थे कि यह मडली गाधी के फीनिक्स आश्रम की है और उस समय गाधी स्मट्ससाहव से समझौते की वात कर रहे थे; इसलिए गोरे लोग गम खा जाते थे।

इस प्रकार फीनिक्स का हमारा आतरिक विद्यालय चार-पाच महीने ही चला, परतु वह था प्राणवान विद्यालय।

: ७६ :

भारत लौटने की तैयारी

सत्याग्रह-आदोलन की समाप्ति होने पर वापूजी के सामने यह प्रश्न विशेष रूप से उपस्थित हो गया कि अव हिन्दुस्तान लौटने पर किस प्रकार जीवन विताया जाय? भारत के जलवायु मे—वहा के विविधतापूर्ण वाता-वरण मे—फीनिक्स के साधक-जीवन को किस प्रकार और भी उज्ज्वल वनाया जाय? दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह-सग्राम की समाप्ति उनके लिए विश्रान्ति का अवसर नही था, अपितु विशेष कठिन जीवन के लिए सामने आया हुआ गम्भीर पर्व था। जिस सत्याग्रह की दक्षिण अफ्रीका मे सफलता प्रतीत हो रही थी उसका हिन्दुस्तान मे और भी जितना वन सके अधिक विकास साधने की मनोकामना वापूजी के मन मे वेग पकड रही थी। सत्या-ग्रह का अगाध और अमोघ वल विश्व को दिखा देने के अदम्य सकल्प को वह अपने हृदय मे दृढ कर रहे थे। इस उद्देश्य से वह अपना एव अपने सगी-साथियो का जीवन पूरा तथा श्रेष्ठ और सत्याग्रह को सुशोभित करने योग्य

बनाने के लिए जी-जान से प्रयास कर रहे थे। इन प्रयासों मे बापूजी के विचार से स्वाद-जय एक अनिवार्य साधन था।

फीनिक्सवासियो की अधिक सख्या का जब बापूजी के साथ भारत आना निश्चित-सा हो गया तब फीनिक्स की सामूहिक रसोई मे दूध-घी का सर्वथा त्याग करना बापूजी का सब से अधिक महत्त्व का प्रयोग था। बापूजी के दिल मे यह आग्रह बना हुआ था कि हिन्दुस्तान मे, जहा पर सैकडो व्यक्ति भूखे मरते है, अथवा निरे सत्तू, ज्वार-मक्का के पतले दलिए या उससे भी अधिक हीन आहार से उदर-पोषण करते है, वहा हम लोगो को ऐसे ही आहार की आदत डालनी चाहिए, जो गरीबो के बीच अनुचित मालूम न दे।

दूध के परित्याग के बारे मे बापूजी की एक तीव्र भावना यह भी थी कि यदि बालक युवावस्था मे प्रवेश करने से पूर्व ही दूध के बने हुए पदार्थो का सेवन छोड दे तो उसके लिए अन्य प्रकार के सयम आसान हो जायगे और उसे ब्रह्मचर्य का पालन सहज प्रतीत होगा। मास, मछली, अडे आदि के समान दूध भी जानवर के रक्त-मास से प्राप्त वस्तु होने के कारण मन-इन्द्रियो को चचल बनाने और शरीर की रक्त आदि धातुओ मे विकृति पैदा करने का बडा बलवान निमित्त बन सकता है। सच्चे सत्याग्रही के लिए विवाह आदि के पचडे से अलग रहकर और इस प्रकार निर्द्वद्व ब्रह्मचारी बनने के लिए दूध का परित्याग बहुत ही सहायक है। इस प्रकार का विश्वास बापूजी के दिल मे इतना सुदृढ बना हुआ था कि इसके विपरीत किसी भी प्रकार का तर्क उनपर असर नही करता था।

नौजवानो मे से औरो के मुकाबले जमनादासकाका दूध-घी का त्याग करने के बहुत ज्यादा खिलाफ थे। बापूजी के सामने उन्होने अपना विरोध खुलकर प्रकट कर दिया था। इसलिए बापूजी ने जब जमनादासकाका को केपटाउन से फीनिक्स भेजा तब पत्र के द्वारा उन्होने पहले से ही फीनिक्स मे सूचना भेज दी थी कि "जमनादास के लिए घी खरीदकर रखना।" परन्तु फीनिक्स-भर मे इस तरह एक ही व्यक्ति के लिए अपवाद किया जाय यह जमनादासकाका ने अपने लिए उचित नही समझा। इसलिए उन्होने स्वेच्छा से फीनिक्स के अनुशासन मे रहना पसद किया। घी के बदले मे वहा पर जैतून का तेल मिलता था। उसे वह खा नही पाते थे, इसलिए रूखा आहार लेकर ही उन्होने सतोष किया। परन्तु बापूजी से उन्होने इस विषय पर बहुत पत्र-व्यवहार किया। जमनादासकाका की मुख्य दलील यह थी कि हमारे आर्यावर्त मे प्राचीन ऋषि-मुनियो ने दूध-घी का त्याग करने का आदेश नही दिया, बल्कि मदिरो मे तो एकादशी के फलाहार मे घी-दूध का ही प्रयोग किया जाता है। वह अधिक पवित्र समझा जाता है और तेल

वर्जित माना जाता है। इन पत्रो के उत्तर मे बापूजी ने जमनादासकाका को निम्न पत्र भेजे थे :

आषाढ विदी १, १९६९

चि. जमनादास,

दूध के विषय मे किसी ने कुछ विचार किया ही नही होगा, ऐसा मानने का कोई कारण नही है। मै समझता हू कि दूध के विना काम चलाने वाले बहुत-से मनुष्य होगे। किन्तु मै कह चुका हू कि किसी महापुरुष ने हिन्दुस्तान मे मास का जो परित्याग करवाया वह इतना महत्वपूर्ण परिवर्तन था कि दूध के वारे मे लिखने या कहने वाले नजर नही आते। किन्तु यह हमारे अज्ञान के कारण है। हमने सबकुछ पढा नही है। सबको देखा नही है। एक ही कसौटी उत्तम है—भूतकाल मे विचार किया गया हो या न किया गया हो, पर बुद्धि को वह बात जचती है या नही ?

फिर दूध को त्यागने मे किसी ने न पाप बताया है, न माना है।

—बापू के आशीर्वाद

एक अन्य पत्र मे बापूजी ने लिखा :

चि० जमनादास,

पवित्र माने जाने वाले तीर्थ-स्थानो मे तेल को त्याज्य और घी को पवित्र माना जाता है, इसका कारण वही मालूम होता है जिसका मैने अनुमान किया है। हिन्दुस्तान जब मासाहारी ही था और किसी ने बहुत-से लोगों को निरामिषाहारी बनाया तब घी को अति पवित्रता दी। इसलिए हम लोग अपने आहार मे बेहद घी बरतते है यहा तक कि रसोई मे जितना अधिक घी हो उतनी ही वह श्रेष्ठ मानी जाय। इससे बढकर और क्या अधेर हो सकता है ? लेकिन मान्यता ऐसी ही चली आ रही है। इस कारण पवित्र स्थानो मे भी घी को उच्च-पद दिया गया। परिवर्तन करने वाले ने मान लिया कि लोग घी खूब लेगे तो उनको मास की ज्यादा आवश्यकता महसूस नही होगी। इस प्रकार के उद्देश्य से इग्लैड के शाकाहारी (वेजिटेरियन) लोग भी अडो का इस्तेमाल करते है। अडो को उन लोगो ने प्राय. पवित्रता का स्थान दे दिया है।

स्वाद को जीतने के बारे मे तुमने जो श्लोक उद्धृत किया है वह तो मैने देखा है। फिर भी मेरी टीका सही बैठती है। एक श्लोक का कुछ असर नही होता। उन लोगो ने इस बात पर जोर नही दिया है। अगर दिया होता तो ठाकुरद्वारो मे हरएक बहाने से मिष्टान्न न रहते। प्रत्येक उत्सव और पर्व के दिन घी-गुड के सीधे देने की बात न रहती। ब्रह्मभोज भी नही

होते और इन दिनो तो ऋषि लोग और साधुगण भी स्वादेन्द्रिय को जीतते नही है, परन्तु उससे जीते गए देखे जाते है। यह बात बहुत लम्बी-चौडी है। किसी के ऐब बताने के लिए ऐसा कहे तो पाप के भागी बने। परन्तु अपने और परायो के उपकार की ही जहा मुख्य बात है वहा चाहे कैसे भी गण्यमान्य पुरुष क्यो न हो उनके बारे मे भी जो अपूर्णता हम देखे उसपर विचार करने का हमारा कर्त्तव्य है।

—बापू के आशीर्वाद

और भी एक पत्र बापूजी ने लिखा :

जेठ बिदी १४, १९६९

चि० जमनादास,

दुग्धोपचार की पुस्तक मै देख गया हू। मुझे ठीक नही लगी। किन्तु मेरी मन स्थिति ही ऐसी है। यदि कोई मास के सम्बन्ध मे शरीर को श्रेष्ठ बनाने वाले भारी गुणो को साबित कर दे तो भी वह त्याज्य है। मेरे लिए दूध के विषय मे भी यही किस्सा है। वह मास का ही रूप है और मनुष्य को उसे खाने का अधिकार नही है। बच्चा माता का दूध पीता है, इसलिए मनुष्य को गाय का दूध पीना चाहिए, यह बात तो अज्ञान की सीमा है।

—बापू के आशीर्वाद

फाल्गुन सुदी ६, १९६९

चि० जमनादास,

तुम दूध-दही को त्यागोगे नही, यह ठीक है, पर उसको प्रधान पद मत देना।

—बापू के आशीर्वाद

फीनिक्स मे बगीचा था, विशाल भूमि पर ऊची घास छाई रहती थी, परतु वहा गोशाला नही थी। वहा एक भी गाय किसी ने नही पाली थी। डरबन शहर के दुग्धालय से रोजाना बडे-बडे दूध-पात्र ट्रेन द्वारा आते थे। कभी सामने वाली टेकरियो से कोई हिन्दुस्तानी किसान अपनी गाय का थोडा-सा ताजा दूध पहुचा देता था। फीनिक्स मे साग-सब्जी का स्वावलबन था, दूध का नही था। सस्था की इस कमी पर कभी बापूजी को असतोष पैदा होते हुए मैने नही देखा। बाहर से दूध मगाने की कुछ भी परेशानी किसी को महसूस नही हो रही थी। परतु ज्योही हिन्दुस्तान आने की तैयारी होने लगी, महीनो पहले से फीनिक्स मे दूध मगाना बिल्कुल बद कर दिया गया।

दूध को वर्जित करने पर उसके स्थान मे कौन-सी वस्तु ली जाय, इसका निश्चय करना आसान नही था। बापूजी की सूचना से एक के बाद

एक कई प्रयोग किये गए, क्योंकि भारत मे फल तो छूटने वाले थे :
दूध भी छोडने पर क्या लिया जाय, यह समस्या थी।

इस प्रकार का पहला प्रयोग, जो मुझे याद है, वादाम का था। फीनि
के भोजन मे सुबह-शाम गेहू की वनी जो कॉफी मिलती थी, उसमे आधा
ज्यादा दूध रहता था। दूध के वद होने के साथ गेहू की काफी का वद
जाना मानो पूरी सामूहिक रसोई का सतोप समाप्त हो जाना था।

कॉफी मे दूध के वदले शुरू-शुरू मे वादाम घोटकर उसका दूध-
मिलाया जाने लगा। गेहू की कॉफी मे इस नए दूध का मिश्रण मुझ-
वालकों को वहुत पसद आया। दूध न मिलने का रज मन मे नही रह

परन्तु वादाम का प्रयोग कुछ ही दिन चल पाया। भारत की गरी
को देखते हुए यह प्रयोग आहार की दृष्टि से सफल हो तो भी चल नही सक
था। इसलिए अमीरो के वादाम को छोडकर गरीबो के वादाम का प्रयं
शुरू हुआ, अर्थात् मूगफली भिगोकर तथा घोटकर उसका दूध वनने लग
और हमारा कॉफी के पेय का आनन्द चालू रहा।

परतु पेय की तुष्टि मिल जाने पर दूध की गरज हर प्रकार से पू
नही हो सकती थी। दूध मे जो पोषक तत्व होता है उसकी हमारे नित्य
भोजन मे ही कमी रह जाती थी। इस हेतु से मूगफली का प्रयोग दुवा
नए ढग से शुरू किया गया। पोपक तत्वो की दृष्टि से मूगफली की पोप
शक्ति भरपूर होती है, लेकिन दूध की तरह वह सुपाच्य वस्तु नही है
मूगफली को पचाने मे आसान वनाने के लिए उसे दाल की तरह पानी
पकाने का प्रयोग किया गया। किंतु दो-ढाई घटे तक खौलने पर भी मूं
फली पकने वाली चीज सावित नही हुई। तव रात-रात-भर उसे डव
रोटी वाली भट्टी पर रखा जाने लगा। दस-वारह घटो तक पकने के वा
वह कुछ मुलायम होती थी फिर भी पूरी तरह पकती तो थी ही नही
इस तरह घटो तक पानी में पकने के वाद मूगफली कुछ ऐसी वदस्वा
हो जाती थी कि भात-रोटी के साथ उसे खाना कठिन हो जाता था।

नित्य के भोजन मे मूंगफली का यह प्रयोग कई सप्ताह तक चलत
रहा। फिर दो नई चीजो का प्रवेश फीनिक्स के भोजन मे हुआ और उवल
मूगफली के प्रयोग की इतिश्री कर दी गई। ये दोनो चीजे दक्षिण अफ्रीक
की विशेष पैदावार थी। एक का नाम था 'सावर फिग्स' और दूसर
का नाम था 'काफिर नट्स'।

'सावर फिग्स' केपटाउन मे वापूजी के हाथ लगे थे

'खट्टे अजीर' क्यों कहा जाता था, यह मेरी समझ मे नही आया। खाने मे वे खट्टे के बजाय खारे-खारे होते थे। अलोना व्रत रखनेवालो के लिए वह नमक का काम देते थे। केपटाउन के पास समुद्र-तट पर इनकी पैदावार होने की बात मैंने सुनी थी। 'काफिर नट्स' फीनिक्स से कुछ दूर के जगल मे रहने वाले हब्शी लोग अपने खेत मे पैदा करते थे। हम लोगो को इतने वर्षों तक इस आहार का पता क्यो नही चला, यह मेरे मन मे एक आश्चर्य ही रहा। 'काफिर नट्स' का स्वाद अच्छा था। उन्हे उबालकर ही खाया जाता था। उबालने पर उन्हे पकने मे देर नही लगती थी और पकने पर वे शकर कद-जैसे मुलायम पड जाते थे। इस खाद्य को प्राप्त करने के बाद हमारे यहा मूंगफली को पकाने का सिलसिला बद हो गया था। खाद्य तथा पोषण की दृष्टि से अब दूध के बदले दूसरी वस्तु ढूढने की आवश्यकता नही रहेगी, ऐसा कुछ विश्वास हम लोगो मे बढ चला था। फिर भी यह चिन्ता मन मे थी कि भारत पहुचने पर यह प्रयोग चलेगा या नही? वहा यह चीज कैसे मिलेगी? परतु फीनिक्स से दलबल सहित हम लोग चले तबतक हमारे नित्य के भोजन मे ये मीगियां महत्व का आहार बनी हुई थी।

केपटाउन से लौटने के बाद बापूजी ने फीनिक्स के विद्यार्थियो और नौजवानो के शरीर पर दूध-घी छोडने से होने वाले परिणाम पर बारीकी से विचार किया। पौष्टिकता के हिसाब से दुग्धाहार की क्षतिपूर्ति करना उन्हे आवश्यक जान पडा। अन्यो के मुकाबले देवदासकाका का शरीर बहुत पतला-छरहरा था। उनके शरीर मे स्फूर्ति बहुत थी और बल भी था; परतु देखने मे दुर्बल नजर आते थे। उनके शरीर को घी-दूध के अभाव मे और भी दुर्बल होने से बचाना आवश्यक था। दुग्धाहार को बन्द करने के समय यदि पूज्य बा बीमार न होती और फीनिक्स मे उपस्थित होती तो मेरा खयाल है कि इन प्रयोगो की रफ्तार इस प्रकार से न चल पाती जिस प्रकार वह चलाई गई थी। बापूजी के आदेश पर भोजन मे जो प्रयोग और परिवर्तन शीघ्रता से हो रहे थे उनपर थोडा-बहुत अकुश रखने वाला बा के सिवा और कोई न था। फीनिक्स का सामूहिक भोजनालय बापूजी के रसोईघर मे ही चलता था और सब विद्यार्थियो के लिए जो कुछ पकता था वही बापूजी के अपने बेटो को भी मिलता था। रामदासकाका और देवदासकाका को तो बापूजी के पुत्र होने के नाते और भी कडाई से इसका पालन करना पडता था।

बापूजी ने यह निश्चय किया कि शरीर की पुष्टि के लिए देवदासकाका को कुछ विशेष खुराक देने की आवश्यकता है। तब उन्होने दोपहर के भोजन के बाद प्रतिदिन दस-दस बादाम देवदासकाका को देना प्रारम्भ किया।

देवदासकाका के वाद मेरी वारी आई, क्योकि मेरी गिनती भी कमजोर लडको मे थी।

भोजन-समाप्ति के वाद चौका-वरतन के अपने काम से छुट्टी पाकर हम दोनो वापूजी के पास जाते थे। वापूजी उस समय या तो अपना भोजन कर रहे होते, या रसोईघर के किसी-न-किसी काम मे लगे होते थे। एक खास बोतल से वह हमारे हाथ मे गिनकर दस-दस वादाम दे देते थे। वापूजी की इस कृपा से मेरे दिल का उत्साह वहुत वढ जाता था। वादाम का प्रयोग शुरू कराते समय वापूजी ने मुझसे कहा, "देख, इसे तुरन्त मत खा जाना, चलते-फिरते धीरे-धीरे खूब चवाकर खाना। एक-एक वादाम को मुह मे तवतक चवाते रहना जवतक कि वह विल्कुल दूध न वन जाय। उसके दूध-जैसा बन जाने के वाद ही उसे गले से नीचे उतारना।"

वापूजी ने हमारे भोजन के ढग मे भी कुछ परिवर्तन कर दिया। मेज-कुर्सी पर वैठकर खाने का तरीका वन्द कर दिया गया और वाहर के वरामदे मे हिन्दुस्तानी ढग से फर्श पर पालथी मारकर पक्ति मे वैठने का तरीका शुरू किया गया। हममे से वहुत से नौजवान ऐसे थे जो फर्श पर पालथी मारकर वैठने का ढग जानते ही न थे और कई सप्ताह तक उन्हे अपने पैरो को इस तरह मोडने मे तकलीफ उठानी पडी। नीचे वैठने मे घुटने और टखने ऐसे दुखते थे कि कुर्सी की वारवार याद आजाती थी, परन्तु हम भारतवासी थे, इसलिए वैठने की भारतीय आदत हमे डालनी थी। इसी प्रकार भोजन मे चम्मच का उपयोग छोडकर हाथ से खाने की विधि भी हमे सीखनी पडी।

फीनिक्स मे चीनी मिट्टी के या तामचीनी के वरतन काम मे लाये जाते थे। इन दोनो ही विलायती चीजो को छोडकर लकडी के वरतनो के प्रयोग पर वापूजी ने जोर दिया। वह स्वय तो पहले से ही छोटी-सी-कठौती और लकडी का चम्मच अपने इस्तेमाल मे लाते थे। औरो के लिए भी वह लकडी के बरतन प्राप्त करने की कोशिश करते रहे; परन्तु अधिक नही मिले, केवल छ कठौतिया मिली। ये कठौतिया सुन्दर थी और किसको दी जाय, यह तय करना कठिन हो गया। दो दिन तक कोई निर्णय न हो पाया तब वापूजी ने चिट्ठी डालकर इन छ. कठौतियो का वटवारा करने का निश्चय किया।

उस दिन शाम की प्रार्थना के वाद इन कठौतियो के लिए चिट्ठी डालने का कार्यक्रम वहुत मनोरजक रहा। छः अदद के लिए वारह-पद्रह उम्मीदवार थे। चिट्ठी मे अपना नाम दर्ज करनेवालो की वापूजी मीठी

चुटकिया लेते जाते थे, "बोलो, अलोना करना मजूर है ? भोजन मे कौनसा नया प्रयोग करोगे ?" इत्यादि। नवीन प्रयोग का साहस करने के लिए जो तैयार थे उन्ही का नाम बापूजी ने चिट्ठी मे लिखा। फिर प्रत्येक चिट्ठी को अपने हाथ से गोलिया बनाकर उन्हे चौसर खेलने की कौड़ियो की तरह मेज़ पर बिखेरा।

अब प्रश्न यह उठा कि कौन चिट्ठी उठाये ? थोडी-सी बहस के बाद बापूजी ने निश्चय किया कि कोई वयस्क व्यक्ति चिट्ठियां न उठाये। छोटा, निर्दोष और चतुर बालक ही उठाये। यह मान मेरे छोटे भाई कृष्णदास को मिला। बापूजी ने उसे तरीका समझाया और वह एक-एक गोली उठाकर बापूजी के हाथ मे देता गया। हर नाम के निकलने पर बडी तालिया बजती रही। दूसरा नाम मगनलालकाका का था। मेरे दिल मे विचार उठा कि नसीब भी न्याय को देखता है। सबसे अधिक सुयोग्य का नाम चुनने मे नसीब ने गलती नही की। छ मे पाचवा नाम मेरा निकल आया तब मुझे बडी खुशी हुई। बापूजी बोले, "लो, यह परभूदास का नाम भी आ गया।" फिर मुझसे पूछा, "बोल, तू इसे सम्भालेगा या तोड-फोड डालेगा ? गदी तो नही रखेगा ?" मै झेप गया, पर साहस से वादा किया—"सम्भालूगा।"

मै सबसे छोटा था इसलिए सबसे पहले मुझे अपनी मन-पसन्द कठौती उठा लेने को कहा गया। मैने मज़ाक से नाजुक और सुन्दर कठौती उठा ली।

इस कमाई का प्रभाव मेरे मन पर बरसो तक रहा। फीनिक्स मे ही नही, भारत मे आने पर भी चार-पाच वर्ष तक मै उसी मे भोजन करता रहा। इस काष्ठपात्र मे भोजन करते समय सदैव अपने मन मे सकल्प दृढ करता रहा कि अस्वाद-व्रत के प्रयोग मे मुझे बापूजी के सामने हारना नही है। वह चाहे कितना ही अलोना करा ले और अच्छी चीज न दे, मै सभी नियमो का पालन करूगा। इस सकल्प मे मुझे प्राय सफलता भी मिली।

उपसंहार

'आजु धन्य मैं धन्य अति'

आजु धन्य मैं धन्य अति, जद्यपि सब विधि हीन ।
निज जन जानि राम मोहि, सन्त समागम दीन्ह ।।
नाथ, जथामति भाषेऊं, राखेऊं नहि कछु गोइ ।
चरित सिंधु रघुनायक, थाह कि पावइ कोइ ।।

—रामचरितमानस

सत-महात्माओ के चरित-सागर मे जितना अधिक गहरा उतरा जाय, उसकी विशालता तथा उसका प्रभाव चित्त को अधिकाधिक उत्साह, विनय और आश्चर्य से भरते जाते है। फिर बापूजी के जीवन मे जो उन्नत ज्वाला प्रज्वलित होती रही है उसका प्रकाश तो चित्त को और भी आश्चर्य-मुग्ध बना देता है। उसकी थाह पाना मुझ-जैसे अल्प बालक के लिए असभव ही है। किन्तु ईश्वर ने मुझे ऐसा अवसर दिया कि मै बापूजी के जीवन-सिधु मे अपने बचपन से ही, जान मे या अनजान मे, गोता लगाता रहा। वास्तव मे बापूजी की जीवनी को सागर के समान अगाध स्वरूप धीरे-धीरे प्राप्त हुआ है। बापूजी के सुचरित का सागर अपने-आप प्रकट हो गया है, अथवा दैवयोग से ससार के सामने विस्तीर्ण क्षितिज पर लहराने लगा है, ऐसी बात नही है। उनके चरित-सिधु का आरम्भ पहले छोटी और बाद मे वेगवती सरिता के रूप मे हुआ है। पृथ्वीतल पर बहनेवाली सहस्रो सरिताओ के बीच गगा की धारा ने जिस प्रकार लोक-हृदय मे अपना अनोखा स्थान जमा लिया है उसी प्रकार बापूजी की जीवन-सरिता ने मानव-जीवन के अनेकानेक प्रवाहो के बीच अपना अनोखा स्थान प्राप्त कर लिया है।

बापूजी के जीवन की यह त्रिभुवनपावनी सुरसरि सुदीर्घ क्षेत्र मे प्रवाहित हुई है। उस सुरसरि के प्रारम्भिक पथ का जो सौदर्य और जो महिमा अपने चर्म-चक्षुओ से मै देख पाया था तथा उस अद्भुत वातावरण की जो सुरभि अपनी अल्प शक्ति से मै ग्रहण कर पाया था, उसको इन पक्तियो मे शब्दाकित करने का मैने थोडा-बहुत दुस्साहस किया है।

न जाने क्यो अपने अन्तर की गहराई मे दबी हुई बातो को जब मनुष्य बताने लगता है तब चाहने पर भी वह अपनी वाणी पर रोक नही लगा पाता। अपने कड़वे-मीठे अनुभवो को सुनाते-सुनाते वह अघाता ही

नही। कुछ ऐसा उत्साह उसके अन्तर से फूट पडता है कि सुननेवाला चाहे पसन्द करे या न करे, वह अपनी राम-कहानी कहता ही चला जाता है। जब छोटे-मोटे अनुभवो की स्मृतिया मनुष्य को इस प्रकार वहा देती है तब बापूजी के पुण्यस्मरण से उठनेवाली हृदय की भावुकता रोकी न रुके तो आश्चर्य ही क्या?

बापूजी का पुण्यस्मरण ऐसे महापुरुष का पुण्यस्मरण है जिनके साथ रहकर भी हम उन्हे पहचान नही पाये, उनके वचनामृत की धारा मे बहने पर भी उस अमृतवाणी का यथावत आचमन नही कर पाये, अपनी निजी आखो से उनकी महानता को देखकर भी तथा उनकी कृपा से हर्ष-गद्गद होकर भी उन्हे समझ नही पाये। ऐसे महामानव के चरणामृत का आचमन करते-करते परितृप्ति हो भी कैसे!

परन्तु अब आवश्यक है कि मै यहा पर रुक जाऊ। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह-सग्राम की कहानी यहा पूरी नही होती। गाधी-स्मट्स समझौते पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद भी सत्याग्रह के मौलिक अध्वर्यु के नाते दक्षिण अफ्रीका से प्रयाण करने की घडी तक, उस सत्याग्रह को सफल बनाने के लिए बापूजी आगे कदम बढाते ही जा रहे थे, किन्तु इस पुस्तक का उद्देश्य दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का राजकीय इतिहास चित्रित करने का नही है। यहा पर मैने यह दिखाने का यत्किंचित प्रयत्न किया है कि बापूजी ने स्वय अपने-आपको किस प्रकार बनाया, अपने को अपना यथार्थ शिष्य बनाने मे उन्होने किस प्रकार सफलता पाई, सत्याग्रह का प्रादुर्भाव किन परिस्थितियो के बीच हुआ, सत्याग्रही जीवन की गहरी नीव फीनिक्स की अनोखी सस्था मे किस प्रकार डाली गई, और छोटे-छोटे बालको को तथा अल्हड नवयुवको को निराले ढग की शिक्षा-दीक्षा देने का अपना नया प्रयोग किस उत्साह से उन्होने किया।

यह सब जब मैने देखा तब मुझे यह सुध नही थी कि मुझे जन्म-जन्म का यह दुर्लभ लाभ मिल रहा है। जब मेरे ध्यान मे यह आया कि बापूजी की छत्र-छाया मे मेरा जो बाल्य-काल बीता वह मेरे जीवन की बहुत बड़ी निधि है तब मै अपने हृदय पर सतत बोझा-सा अनुभव करने लगा। मुझे चिन्ता होने लगी कि इतने अमूल्य सुयोग का कुछ भी सद्व्यय मै नही कर पाऊगा तो अपयश का भागी बनूगा। बापूजी से प्राप्त सस्कार-निधि को अपने जीवन मे चरितार्थ करना तो अलग रहा, उसपर अपनी अविचल निष्ठा बनाए रखना भी जीवन की बडी कसौटी है। तब मैने सोचा कि और कुछ मुझसे बने या न बने, बापूजी से प्राप्त इस अनुपम

सस्कार-निधि का वखान तो करू—अपने सगी-साथियो को यह भव्य खजाना दिखा तो दू।

इसी भावना से प्रेरित होकर सहृदय पाठको के सामने उपस्थित होने का कठिन साहस मैंने किया और मैं इस ग्रथ का ततु यहा तक ले आया। अव आगे वढना और भी कठिन जान पडता है। वापूजी का जीवन यहा से आगे एक नया ही मोड लेता है। जैसे कलकल-निनादिनी भागीरथी हिमालय की अनेकानेक घाटियो मे से वहती हुई हरिद्वार के पास आकर एकदम चौडे मैदान मे फैल जाती है और इस किनारे पर से पार के किनारे तक विस्तीर्ण गगा-पट मे वहनेवाली सभी धाराओ को एक साथ, एक नगर मे, देखना मुश्किल हो जाता है, वैसे ही वापूजी की जीवन-सरिता को यहा से आगे चित्राकित करना दुष्कर हो जाता है। अवतक, अर्थात् केपटाउन से वापूजी के फीनिक्स लौटने तक, उनकी साधना अधिकतर अपनी निजी साधना थी और वाद मे उसने आगे वढकर समष्टिगत साधना का विशाल रूप ले लिया। अवतक वापूजी अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत करने मे और उसे सफलता से सचालित करने मे अपनी अदम्य प्राणशक्ति को लगाए हुए थे, अव के वाद वह अपने-अपने चुने हुए अन्य व्यक्तियो को अपने अगप्रत्यग के रूप मे नाथकर निज के व्यक्तित्व को विराट रूप देने के लिए आगे वढे। यहा से आगे चलकर वापूजी के व्यक्तित्व के विकास का इतिहास सत्याग्रह-आश्रम के विकास का इतिहास बन जाता है।

मेरे मन मे यह विश्वास पक्का हो गया कि दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के अन्तिम दौर मे तथा विशेष रूप से केपटाउन मे मानव-सुलभ छोटी-मोटी दुर्वलताओ को बापूजी सदा के लिए पार कर गए। मान-अपमान, वडप्पन-अभिमान, क्रोध-मोह आदि के सागर को बापूजी अगस्त्य की तरह पी गए, उन्होंने मृत्यु-भय को जड-मूल से उखाड फेंका। उन्होंने विचार और कर्म को समकक्ष बना लिया और इन्ही शुभ घड़ियो मे वह मानव से महामानव बन गए।

ऐसी विराट मूर्ति के साधनामय जीवन का यथाशक्य समग्र स्मृति-चित्र शब्दाकित करने का मैंने इस पुस्तक मे प्रयत्न किया है। पता नही मैं अपने मन मे समाई हुई उस भव्य मूर्त्ति को कहां तक कागजो पर चित्रित कर पाया हू।

बहुत वर्ष पहले के और वह भी विल्कुल वचपन के स्मरणों को जुटा-जुटाकर जव मैं इन प्रकरणों की रचना करने लगा तव मन मे यह डर बना

रहा कि मै इसमे तथ्य के बदले काव्य की ओर तो अधिक नही बह रहा हू ? स्मरणो की शृखला को तैयार करते समय पहले वाली कडी पीछे और पीछे वाली कडी आगे नाथ लेने की भूल तो नही करता हू ? अथवा, बात का रग जो था उससे गहरा तो नही बैठ रहा है ?

गुजराती मे जब ये प्रकरण प्रकाशित हो रहे थे तब पूज्य महादेवभाई ने मुझसे एक बार प्रश्न किया था कि "जब तेरे पास उस समय की डायरी नही है, तब भी तू फीनिक्स-पुराण लिखता जा रहा है। ऐसी बात तो नही है कि जैसे मकडी अपने पेट मे से ही अपना जाला बनाती रहती है वैसे तू भी अपने उदर से ही मनमानी बाते गढ रहा है ?" फिर विनोद के साथ पीठ ठोकते हुए खुद ही बोले, "घबराओ मत। मैने यो ही तुम्हे सावधान किया। इतने विस्तार से जो बाते दे रहे हो, ठीक कर रहे हो। पर कही लिखने के प्रवाह मे कपोल-कल्पित किस्से न आ जाय, यह ध्यान रखना। मै सब पूरे गौर से पढता हू। अच्छा आ रहा है।"

मैने महादेवभाई को विश्वास दिलाया कि जो बाते मेरी स्मृति मे बहुत धुधली है तथा जिनके तथ्य के विषय मे मुझे शका पैदा हो सकती है, उनका उल्लेख करने से मै बचता हू और तथ्य को तोडने-मरोडने का अपराध भूल से भी न कर बैठू, इसके लिए भरसक सावधानी रखता हू।

महादेवभाई ने तो मेरा निवेदन स्वीकार कर लिया, परन्तु मेरे दिल मे इस आलोचना का भय कायम रहा और बार-बार मैने अपनी स्मृति को कसा। इन प्रकरणो को जाचने के लिए मैने अपने पिताजी से विनती की। जहा कही उनको सन्देह हुआ या कोई बात खटकी उसे उन्होने ठीक करवा दिया या निकलवा दिया। फिर भी अपनी स्मृति की यथार्थता परखने के लिए जहा सम्भव हुआ, बापूजी के पत्रो का सहारा लिया। बापूजी के लेखो से कई उद्धरण मेरे पिताजी ने ढूंढ दिये। इस प्रकार इस पुस्तक की सामग्री को तथ्य से भिन्न न होने देने के लिए मै अपनी शक्ति-भर जागरूक रहा हूं।

बापूजी की विविध प्रवृत्तियो तथा उनकी विविध साधना का मैने अपनी बुद्धि के अनुसार विवेचन भी किया है। मेरे एक-दो विद्वान मित्रो ने, जो बापूजी के निष्ठावन उपासक है, मुझसे आग्रह किया कि "केवल बापूजी की प्रवृत्ति और जीवन-प्रसग से विशेष कुछ मत लिखो। बापूजी की छत्र-छाया मे रहकर जो अनुभव तुमने पाया वह अनुभव ही लिख दो। उस अनुभव के साथ जो भावनाए तुम्हारे मन मे उठी उन्हे मिलाकर बात का बतगड़ क्यो करते हो ?" लेकिन उन मित्रो की राय मै अपना नही सका।

यह नही कि मुझे उपदेशक बनने का मोह है, परन्तु बापूजी के जीवन का और उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रतिबिम्ब पग-पग पर मेरे अन्तर मे और मेरी बुद्धि मे किस प्रकार पडा, इसका उल्लेख करना आवश्यक समझता हू। सूर्य को, जल को, वायु को मनुष्य हर समय देखते हैं और उनका भरपूर अनुभव पाते हैं। लेकिन उनके आरोग्यवर्धक लाभ की बात जब प्राकृतिक चिकित्सा पाया हुआ कोई रोगी हमारे सामने रखता है तभी उनकी वह महत्ता हमारी समझ मे आती है। बापूजी के तेजस्वी जीवन के लिए भी ऐसी ही बात है। उनके जीवन-प्रसगो का और उपदेशो का अपना महत्त्व अपार है, परन्तु मुझ-जैसा तन-मन का दुर्बल बालक जिस प्रकार उसे ग्रहण कर पाया अथवा नही ग्रहण कर पाया, इस विषय मे जब अपना अनुभव बतायगा तो उसकी उपयोगिता अनेक जिज्ञासुओ के लिए बहुत बढ जायगी, ऐसा मुझे विश्वास है। इसी हेतु से मैंने बापूजी का स्वर्ण-सा देदीप्यमान जीवन अपने से हीन काठ पर मढकर यहा उपस्थित किया है।

अन्त मे बापूजी के महान् व्यक्तित्व तथा उनके जीवन के चमकते हुए अनेक विध पहलुओ को एकत्र करने पर जो एक विशिष्ट प्रकाश दिखाई देता है उसका उल्लेख करके अपनी बात मैं समाप्त करूगा।

बापूजी ने पुन बताया है कि मेरे लिए "जीवन के शब्द-कोष का काम सदैव श्रीमद्भगवद्गीता ने दिया है।" अर्थात् उनके जीवन की मार्ग-दर्शिका गीता थी। गीता मे भी तीसरे अध्याय के आदेशो पर बापूजी की अत्यधिक श्रद्धा थी। मुझ-जैसे विद्यार्थी को गीता सिखाते समय तीसरे अध्याय का मर्म समझाने पर वह अधिक जोर देते थे। जब मैं बापूजी के व्यक्तित्व का स्मरण करता हू तब गीता के तीसरे अध्याय का तीसवा श्लोक मेरे सामने आ जाता है और उस श्लोक मे मैं बापूजी का पूरा वर्णन पाता हू। वह श्लोक है—

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वर ॥

इस श्लोक के द्वारा कृष्ण भगवान बडी आत्मीयता से अर्जुन से कह रहे है, "भाई, अपनी अध्यात्मवृत्ति को सजग रखकर अपने सारे कर्मो के बोझ को मुझ पर डाल दो, मन मे जितनी भी ममताए और आशाए मडरा रही है उन्हे बिल्कुल अलग कर दो, और राग-द्वेषादि के आवेगो से मन मे पैदा होनेवाले बुखार को हटाकर लडाई के मैदान मे डट जाओ। लडना, और लडना ही, तुम्हारा काम है।"

निर्देशिका